डॉ. रामकुमार वर्मा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इतिहास के स्वर

(पच्चीस ऐतिहासिक नाटकों का संकलन)

आत्माराम एण्ड सन्स

दिल्ली. नई दिल्ली. चण्डीगढ़. जयपुर. लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास के स्वर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास के स्वर

[पच्चीस ऐतिहासिक नाटकों का संकलन]

लेखक

डॉ० रामकुमार वर्मा

आत्माराम एण्ड संस

दिल्ली . नई दिल्ली . चण्डीगढ़ . जयपुर . लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ITIHAS KE SWAR

(Collection of Historical Plays)

by

Dr. Ram Kumar Verma

Rs. 15.00

© 1968, ATMA RAM & SONS, DELHI-6

प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस,
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

State Museum Library • Lucknow •
4729

शाखाएँ
हौज़ खास, नई दिल्ली
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़
चौड़ा रास्ता, जयपुर
17, अशोक मार्ग, लखनऊ

प्रथम संस्करण : १९६८
मूल्य : १५ रुपये

आत्मा राम एण्ड सन्स
संशोधित मूल्य
30/-
अशोक मार्ग, लखनऊ

मुद्रक
शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस,
18, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिल्प-संकेत

किसे अपने देश पर गर्व नहीं है ? ग्रापको भी है। और जब उस देश का इतिहास ग्रापके सामने ग्राता है तब ग्राप देखते हैं कि ऐसे कितने महापुरुष हुए हैं जिन्होंने ग्रपने ऐश्वर्य को देश के ग्रात्म-सम्मान की वेदी पर समर्पित कर दिया है । ऐसी कितनी घटनाएँ हुई हैं जिन्होंने देश के इतिहास में नवीन परिच्छेद जोड़े हैं। साथ ही ऐसे कितने स्वार्थी ग्रौर स्वकेन्द्रित व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने वैभव ग्रौर ग्रधिकार-लोलुपता में देश को पतन के गर्त्त में ढकेलने की चेष्टा की है ।

देश, समाज और व्यक्ति प्राय: एक त्रिकोरण का रूप ले लेते हैं जिनकी भुजाएँ परिस्थितियों से घटती-बढ़ती हैं और प्रत्येक परिस्थिति में त्रिकोरण का रूप भिन्न हो जाता है । जो स्थान त्रिकोरण की भुजाग्रों से घिरता है, वही परिस्थितियों का क्षेत्र बनता है जिसमें घात-प्रतिघात का मनोविज्ञान प्रतिफलित होता है । यह मनोविज्ञान संस्कार ग्रौर परिस्थितियों से उद्‌भूत होता है ग्रौर दोनों की सापेक्ष्य शक्ति में वह सुखान्त ग्रथवा दु:खान्त की दिशा ग्रहण करता है ।

प्रस्तुत नाटक-संग्रह ग्रपने देश के इतिहास का एक संक्षिप्त रेखा-चित्र है जिसमें काल-क्रमानुसार ईस्वी-पूर्व 600 से लेकर ईस्वी सन् 1947 तक की महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों ग्रौर पात्रों के मनोविज्ञान की गतिशील रेखाएँ ग्रंकित की गई हैं । इस महान् देश की गौरव-गाथाएँ क्रान्तिकारिणी हैं ग्रौर उनका स्मरण कर मन में उत्साह की तरंगें ग्रान्दोलित होने लगती हैं। इस देश की सांस्कृतिक निष्ठा इतनी सुदृढ़ ग्रौर घनीभूत रही है कि गहरी से गहरी विपत्ति में भी उसने ग्रात्म-विश्वास ग्रौर ग्राशावाद नहीं खोया ग्रौर दासत्व की शृंखलाग्रों से कसे जाने पर भी उसमें स्वच्छन्द चेतना की किरणें ग्रपनी ज्योति फैलाती रहीं । इस देश की महानता का यही सबसे बड़ा संकेत है ।

इतिहास का नव-निर्माण

मेरे एकांकी नाटकों ने यही संकेत ग्रहण किया है । यह संकेत ध्रुव नक्षत्र की भाँति स्थिर रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है । इस संकेत की ग्रनेकानेक दिशाएँ हैं जिनमें इतिहास के विविध पार्श्व उद्‌घाटित हुए हैं । राजनीति, धर्म ग्रौर समाज की परिणतियाँ किस सीमा तक जन-जीवन के मोड़ने में सहायक या बाधक रही हैं, इनका लेखा इतिहास-कार ही हमें दे सकता है, किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि हमारा इतिहास ग्रधिकतर विदेशी लेखकों द्वारा ही लिखा गया जिन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि यह देश बौने ग्रादमियों का देश है, जिसमें ग्रज्ञान से उठी हुई स्वार्थपरता ग्रौर हीन ग्रंथियों के ग्रनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। जिन व्यक्तियों ने देश की स्वतंत्रता के लिए सतत संघर्ष किया वे राजद्रोही ग्रौर ग्रात्मसेवी सिद्ध किये गये ग्रौर स्वाधीनता के युद्ध को ग़दर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और विद्रोह की संज्ञा दी गई। हमारे महापुरुष अत्याचारी और लुटेरे कहे गये जिससे उनके प्रति हमारे मन में श्रद्धा के स्थान पर घृणा उत्पन्न हो और हम विदेशियों को ही अपना आराध्य मानते रहें। किन्तु अंगार-खंडों को कितने समय तक रुई में लपेटा जा सकता है ?

हमारे कवियों ने अपने समकालीन महापुरुषों और परिस्थितियों के जो चित्र दिये हैं वे कितने प्रभावपूर्ण और प्रेरणाप्रद हैं ! अतिशयोक्तियों को घटा देने पर भी पुरुषों और घटनाओं का जो रूप हमें मिलता है, उसमें कितना नैतिक बल और चारित्रिक प्रेरणा है ? इस आधार पर हमारे इतिहास का नव-निर्माण आवश्यक है। हमारे इतिहास के विविध उपकरणों को एकत्र करने की आवश्यकता है। न जाने कितने शिलालेख हैं, दानपत्र हैं, वंशावलियाँ हैं, ख्यातें हैं, सिक्के हैं, वास्तु और ललित कलाओं के रूप हैं, मूर्ति, चित्र, संगीत और काव्यगत उल्लेख हैं जिनके आधार पर तथ्यों का संयोजन किया जा सकता है और इस प्रकार विपत्तियों के घने बादलों में विद्युत् की भाँति तड़प उठने वाली देश की कीर्ति-रेखा चमक उठी है।

इतिहास का परिवेश

ऐसे इतिहास को लेकर मेरी एकांकी-कला साधना के पथ पर अग्रसर हुई है। पात्रों और परिस्थितियों को उनके वास्तविक परिवेश में उपस्थित करना ही वास्तव में कलाकार की कसौटी है। इस कसौटी पर मेरे एकांकियों ने कुछ रेखाएँ खींचने का प्रयत्न किया है, वे कहाँ तक और कितनी स्पष्ट हैं, इसका निर्णय तो पारखियों द्वारा ही दिया जा सकता है। इतिहासकार पात्रों और परिस्थितियों की वास्तविकता कुछ घटनाओं के द्वारा ही देता है। सन्-संवत् की बात छोड़ दीजिए, इतिहास की शृंखला तो व्यक्तियों की गतिविधि और घटनाओं की कड़ियों से ही आगे बढ़ती है। ये गतिविधियाँ और घटनाएँ कितना सत्य बटोर सकती हैं ? इतिहास को इतना अवकाश कहाँ कि वह व्यक्तियों के जीवन के प्रत्येक क्षण का लेखा रख सके और घटनाओं के कारण-कार्य के सूत्रों को जोड़कर उत्थान और पतन की उलझनों को सुलझा सके ? वह तो कार्य के प्रतिफलन को देखता है और प्रमुख घटनाओं पर चिह्न बनाकर आगे बढ़ जाता है। वह तो ऐसा कोषाध्यक्ष है जो बड़ी संख्या वाले नोटों को ही तिजोरी में रखता है, थोड़े मूल्य के नोटों पर उसकी दृष्टि ही नहीं जाती। जब नाटककार, और विशेषकर एकांकीकार, कोषाध्यक्ष के पद पर बैठता है तो उसके सामने छोटे मूल्य के नोटों द्वारा ही बड़ी संख्या वाले नोटों के हिसाब की समस्या आती है, भले ही बड़ी संख्या वाले नोट थोड़े ही हों।

इतिहास की समस्या

यह समस्या इसलिए है कि जितना सत्य इतिहास ने सुरक्षित किया है, उतने सत्य से प्रतिफलित घटना या व्यक्ति की क्रियाशीलता का रूप स्पष्ट नहीं होता। सत्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का कोई अंश उल्लिखित होने से रह गया है या जान-बूझ कर छोड़ दिया गया है जिससे घटना तो अंकित हो गई है किन्तु घटना को प्रतिफलित करने वाले सूत्र टूट गये हैं या अदृश्य ही रह गये हैं। ऐसा लगता है कि जादूगर की तरह इतिहासकार ने सन्-संवत् को मुट्ठी में बन्द कर काल-क्रम के जादू का डंडा घुमाया है और धूल से रुपया बना दिया है।

सत्य का जितना अंश छोड़ दिया गया था, वह क्या है और कितना है, यह समय के प्रवाह में बह गया। उसके सम्बन्ध में न इतिहास ने कोई रेखा खींची, न इतिहासकार ने। जिस रात सिद्धार्थ ने 'महाभिनिष्क्रमण' किया, उसके पूर्व दिन में उन्होंने क्या किया होगा ! यशोधरा से कोई बात भी की होगी या राहुल को खिलाया होगा, यह कौन कह सकता है ? इतिहासकार ने तो केवल सिद्धार्थ के अवसाद की बात कहकर रात में उन्हें महल से बाहर कर दिया। जाते समय उनके मन में कितना संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व हुआ होगा, इसका लेखा क्या इतिहास के पास है ? संभवतः सिद्धार्थ एक-दो बार सोती हुई यशोधरा को देखने के लिए लौटे हों, राहुल के निरीह मुख पर उन्होंने एक करुण दृष्टि डाली हो, परिचारिकाओं की गहरी नींद पर व्यंग्य-भरी मुस्कान भरी हो ! अपने पिता की चिन्ता पर एक निःश्वास छोड़ा हो, यह कौन जानता है ! जीवन के मनोविज्ञान पर दृष्टि डालने का अवकाश इतिहासकार के पास कहाँ है ? उसके पास तो घटनाओं को 'रैडी मेड' बनाने का यंत्र है। परिस्थितियों के साँचे में घटनाएँ डालीं और उनसे गुड्डे की तरह कटा-छटा व्यक्ति निकल आया।

जीवन्त इतिहास

नाटककार को तो जीवन का जीता-जागता पात्र उपस्थित करना है। उसके पास हृदय है जिसकी धड़कनें हर्ष और विषाद से बढ़ती-घटती रहती हैं। जितना सत्य इतिहास ने दिया है, वहीं एक अधूरा अवलम्ब है जिसके सहारे उसे पात्र के हृदय में स्पन्दन उत्पन्न करना है। ऐसी स्थिति में वह अधूरे सत्य की सम्पूर्ण सम्भावनाओं को लेकर छूटे हुए सत्य की निर्मिति—एक प्रकार से पुनर्निर्मिति —अपनी कल्पना के आधार पर करता है। यह कल्पना जितनी अधिक निर्दिष्ट सत्य में डूबेगी, उतनी ही सशक्त होकर संभावित सत्य के निकट पहुँचेगी और इस प्रकार वह छूटे हुए सत्य की पूर्ति करने में सक्षम होगी।

यह कल्पना दो प्रकार से नियोजित होगी। पहले तो वह पात्र के क्रिया-कलाप का संश्लेषण कर उसके मनोविज्ञान में उतरेगी और दूसरे वह उस मनोविज्ञान में उन सूत्रों का निर्माण करेगी जिन्हें इतिहासकार ने अपनी विहंगम दृष्टि में छोड़ दिया है। इन दोनों प्रकारों पर कुछ विस्तार से विचार करना आवश्यक होगा।

पहला प्रकार : मनोविज्ञान का रूप

जिस प्रकार किसी फूल का बीज पृथ्वी की उर्वर शक्ति और जल की तरलता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाकर सजीव हो उठता है और ऊपर उठने के लिए अंकुर का हाथ बढ़ा देता है उसी प्रकार घटनाओं की उर्वरता और कल्पना की तरलता से पात्र भी सजीव हो उठता है और उसमें मनोविज्ञान का संचार होने लगता है। इस मनोविज्ञान का प्रतिफलन विशिष्ट प्रकार से होता है। प्रत्येक पात्र में कुछ-न-कुछ जन्मजात संस्कार होते ही हैं। ये संस्कार परम्पराओं से चले आते हैं जो उसके रक्त की ध्वनि में विलीन रहते हैं। राष्ट्र-परम्परा, वंश-परम्परा, जाति-परम्परा, वर्ग-परम्परा आदि अनेक परम्पराएँ समष्टि रूप में या व्यष्टि रूप में सहज ही उसके मन की प्रवृत्तियों में अन्तर्निहित रहती हैं जिनका विशिष्ट स्थान उसके मनोविज्ञान में होता है। दूसरे, वह पात्र परम्परा के अतिरिक्त बाहरी प्रभावों से भी अनुशासित होता है। ये प्रभाव जल-वायु से लेकर मनुष्य के जीवन-भर की परिस्थितियों से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार संस्कारों

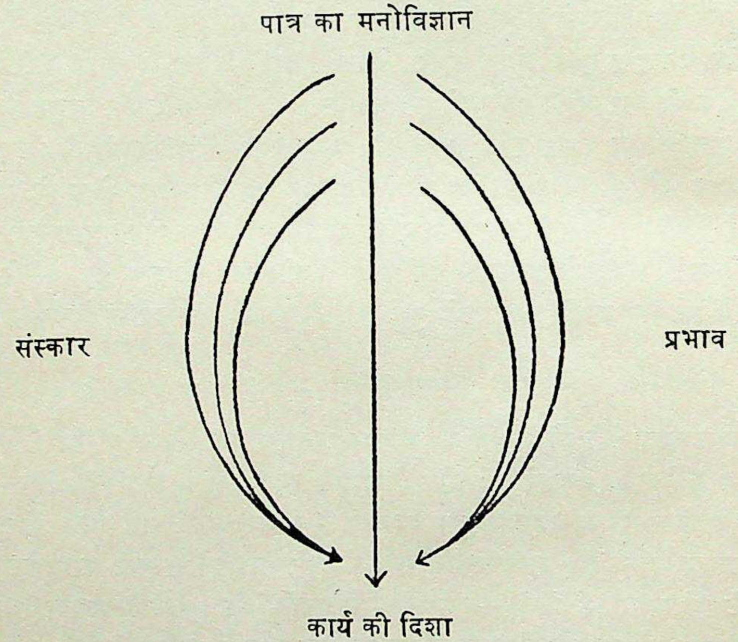

से अन्तरंग और परिस्थितियों से बहिरंग प्रवृत्तियों के संयोजन में मनोविज्ञान नाना रूप ग्रहण करता है। परम्परा और प्रभाव का अनुपात ही पात्र के क्रिया-कलाप की दिशा निर्धारित करता है। यदि दोनों समानान्तर चलें तो पात्र की मनोवैज्ञानिक स्थिति संघर्षहीन होकर एक ही दिशा का निर्देश करेगी। प्रभाव संस्कार को बल देंगे और संस्कार प्रभाव की छाया में ही विश्राम लेंगे। यदि विलासी पिता के पुत्र को विलास के संस्कारों के साथ प्रचुर संपत्ति का ऐश्वर्य प्रभावित करने लगे तो वह और भी विलासी बन जाएगा और जीवन के आरम्भ से अन्त तक उसके मनोभावों की रेखा केवल लंबाई में रहेगी, चौड़ाई में नहीं। वह चरित्र एक ही दिशा में चलेगा। उसके जीवन का विस्तार संघर्षहीन भूमिका में ही समाप्त हो जायगा। वह स्थिर पात्र (Static) कहा जायगा। उसका रेखा-चित्र कुछ ऊपर के चित्र-जैसा होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरी ओर यदि संस्कार और प्रभाव विपरीत दिशा में चलें तो जीवन का प्रत्येक क्षण संघर्ष करने में ही व्यतीत होगा। यदि एक कर्मकाण्डी ब्राह्मण अपने छुआ-छूत के संस्कारों को लेकर अछूतों की बस्ती में बसने को बाध्य हो तो उसका जीना दूभर हो जायगा। पग-पग पर उसे संघर्ष लेना होगा और या तो वह बस्ती से निकल जायगा या ज़हर खा लेगा। संस्कार और प्रभावों के अनुपात पर पात्र परिवर्तित भी हो सकता है। यदि संस्कार की अपेक्षा प्रभाव प्रबल हुआ तो पात्र अपने संस्कार दबा देगा। ग्रामीण वंश का लड़का यदि आधुनिकता के प्रभाव में आ गया तो वह सूट और हैट से सुसज्जित होकर अपनी सीदी-साधी ग्रामीण पत्नी से कहेगा—"यू फूल, यू आर नो गुड, अनलेस यू हैव युवर हेयर कट आफ़्टर साधना-स्टाइल।" किन्तु यदि संस्कार प्रबल हुआ तो प्रभाव निर्मूल हो जायगा। डा० राजेन्द्रप्रसाद अपने जीवन की सहजता में अडिग रहे और राष्ट्रपति-पद का समस्त वैभव उनके चरणों को धोकर प्रभावहीन होता हुआ निकल गया।

पात्र का मनोविज्ञान

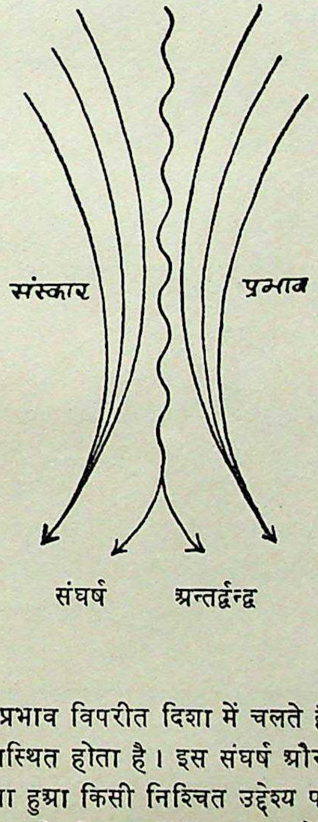

संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व

जब संस्कार और प्रभाव विपरीत दिशा में चलते हैं तो बाहरी जगत् में संघर्ष और अन्तर्जगत् में द्वन्द्व उपस्थित होता है। इस संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व में पात्र गतिशील होता है। वह क्रान्ति करता हुआ किसी निश्चित उद्देश्य पर आत्म-बलिदान भी कर सकता है। स्कन्दगुप्त आरंभ से ही गुप्त-साम्राज्य का सैनिक राजकुमार था, किन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देश की परिस्थितियों ने उसे प्रकृति का अनुचर और नियति का दास बना दिया। अन्त में देवसेना की अस्वीकृति से उसने जीवन-भर कौमार-व्रत ही धारण किया। अन्तर्द्वन्द्व से आक्रान्त ऐसा पात्र गतिशील (Dynamic) कहा जायगा। उसका रेखा-चित्र पिछले पृष्ठ पर अंकित प्रकार का होगा।

दूसरा प्रकार : सत्य के सूत्रों का अनुसंधान

मनोविज्ञान के नियोजन के साथ ही साथ कल्पना ऐतिहासिक सत्य के सूत्रों का अनुसंधान भी करेगी। ऐसे कितने और किस प्रकार के मनोवैज्ञानिक कारण थे जिनसे इतिहास में उल्लिखित घटना एक विशिष्ट प्रकार से घटी। इतिहास ने घटना के आधारभूत सूत्र छोड़ दिए हैं अथवा उनका उल्लेख ही नहीं किया है। घटना बिना किसी कारण के नहीं घट सकती। लेकिन जब घटना घटित हो गई तो उसके कारण अवश्य ही होंगे जिनकी खोज कल्पना के द्वारा नाटककार को करनी पड़ती है।

इतिहासकार ने कलिंग-युद्ध के उपरान्त सम्राट् अशोक को बौद्ध तो घोषित कर दिया किन्तु क्रूरता की अग्नि-सीमा से करुणा की अश्रु-सीमा तक आने में अशोक के मनोविज्ञान ने कितनी मंज़िलें पार कीं, यह कौन जानता है! जन्मजात संस्कारों से मुक्ति पाने में प्रभावों की अन्वितियों का चक्रव्यूह वास्तव में मनोविज्ञान का एक प्रश्न है जिसके समाधान के लिए स्वस्थ और क्रियाशील कारणों की सृष्टि आवश्यक है। घटना अधूरे रूप में आती है, स्वाभाविक और संभावित कारणों को जोड़कर उसे विस्तृत और विश्वसनीय रूप में उपस्थित करने में नाटककार की कल्पना क्रियाशील होती है। उसका रेखा-चित्र कुछ इस प्रकार होना चाहिए :

सम्पूर्ण घटना का परिकल्पित रूप

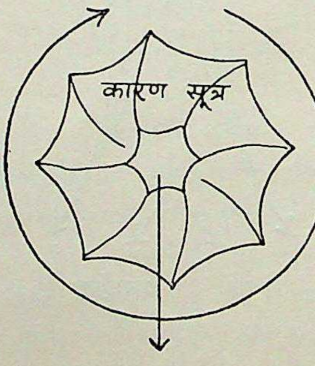

इतिहास से घटना का उपलब्ध रूप

ऐतिहासिक नाटकों में कल्पना सत्य के साथ ही क्रियाशील होती है और टूटे हुए सूत्रों का संयोजन कर उसे सम्पूर्ण रूप देती है। मेरे इन ऐतिहासिक नाटकों में अधूरी घटनाओं को उनके संभावित विकास की दिशा में अग्रसर करने का कार्य मेरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कल्पना ने किया है। वह सत्य के समानान्तर चली है जिससे पात्रों के मनोविज्ञान की वास्तविकता स्पष्ट हो सके।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

मैं अपने एकांकियों के शिल्प में इस बात का अनुभव सदैव करता रहा हूँ कि पात्रों को उनके मनोविज्ञान में 'स-चेतन' करने के लिए उनके समय की सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि अवश्य तैयार कर दी जाय। राजनीति, समाज और परिवार की तत्कालीन मान्यताएँ जब तक उनके समक्ष नहीं रखी जाएँगी तब तक वे क्रियाशील ही नहीं हो सकेंगे। अतः पात्रों के मनोभावों में जो ऐतिहासिक सत्य प्रतिफलित हुआ है, वह उस वातावरण से सम्बन्ध रखता है जिसमें उन पात्रों ने साँस ली है और जिसने उनके राग-विराग, ईर्ष्या-द्वेष और आशा-निराशा की भूमिका प्रस्तुत की है। अतः ऐतिहासिक नाटकों में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना मेरी प्रमुख मान्यता है। ऐतिहासिक सामग्री संकलन करने में मुझे महीनों लगे हैं जबकि तत्सम्बन्धी एकांकी मैंने एक दिन में ही लिख लिया है।

एक बात और है ! मैं पात्रों की स्वाभाविक सत्ता सुरक्षित रखने के लिए उनके वातावरण और मनोभावों के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग करता हूँ। इस देश में मुसल-मानों के प्रवेश के पूर्व के सभी एकांकियों के पात्र विशुद्ध हिन्दी में ही अपने मनोभाव व्यक्त करते हैं। मुसलमानों के आगमन के बाद के एकांकियों में पात्रों के संवादों में उर्दू-मिश्रित हिन्दी अथवा कहीं-कहीं उर्दू का प्रयोग परिस्थिति के अनुसार किया गया है। पात्रों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति की दृष्टि से ही ऐसा किया गया है।

नाटकों में कथा-शिल्प का संयोजन भी महत्त्वपूर्ण है। कथावस्तु वास्तव में एक पौधा है। उस पौधे के बढ़ने की एक निश्चित ऊँचाई है।

कथा-शिल्प

उसमें विशिष्ट रंग के फ़ूल लगेंगे और उनकी अपनी विशिष्ट सुगंध भी होगी। उसके पत्रों का आकार निश्चित है। एक वृन्त में कितने फूल लगेंगे, यह भी प्रकृति-सिद्ध है। वस्तुतः वह पौधा प्रकृति का एक कथा-शिल्प है।

नाटक में कथा-शिल्प आवश्यक है। पश्चिमीय साहित्य के प्रभाव से पात्रगत मनोविज्ञान अधिक उभरा है किन्तु नाटक का रंगमंच से अधिकाधिक सम्पर्क होने से कथावस्तु का कौशल भी आवश्यक समझा गया है। संस्कृत नाट्यशास्त्र में कथा-शिल्प के तो बड़े सूक्ष्म और आकर्षक विधान प्रस्तुत किए किये थे। कथावस्तु की अवस्थाएँ बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य; कथावस्तु की सन्धियाँ—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण; अर्थोपक्षेपक के पाँच प्रकार—विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकमुख और अंकावतार तथा कथावस्तु की परिस्थितियाँ—आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियप्ताप्ति और फलागम—की व्यवस्था अति सतर्कता के साथ की गई थी। इनमें से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोई भी ऐसा अंग नहीं था जो कथा के मुख्य उद्देश्य की पूर्ति में नियोजित न हो।

आधुनिक जीवन अत्यन्त अव्यवस्थित और अशान्त हो गया है। प्रत्येक परिस्थिति समस्या का रूप लेकर आती है। ऐसी स्थिति में यह और भी आवश्यक है कि जीवन की परिस्थिति को रंगमंच पर अत्यन्त स्पष्ट और सुलझे हुए रूप में रखा जाय। ऐतिहासिक नाटकों में कथावस्तु तो निश्चित-सी रहती है परन्तु उसमें जीवन की प्रबल प्रतिष्ठा के लिए नवीन परिस्थितियों या पात्रों की सृष्टि करनी पड़ती है। ऐसी परिस्थितियाँ जीवन और उसके मनोविज्ञान के अध्ययन और अधिकार के बिना नहीं आ सकतीं। यदि ऐसा अधिकार हो जाय तो ऐतिहासिक नाटक कथावस्तु का एक ज्वलन्त चित्र बन जाता है।

हमारा सामाजिक और राजनैतिक जीवन तो न जाने कितनी विषमताओं से आक्रान्त है। इन विषमताओं का अध्ययन हमें उसी प्रकार करना है जिस प्रकार वनस्पतिशास्त्र का विद्यार्थी सूक्ष्मदर्शक यंत्र से फूलों या पत्तों की सूक्ष्म और छोटी-छोटी नसों का अध्ययन करता है। रसवाहिनी शिराएँ कौन-कौन-सी हैं और किन-किन शिराओं से पत्ते या पाँखुरी का आकार विशिष्ट रूप से निर्मित हुआ है, उसी भाँति हमें सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से समस्याओं का अध्ययन करना है।

जब तक हम घटनाओं और मन:-स्थितियों को स्पष्ट नहीं देखते तब तक कथावस्तु अपनी स्वाभाविक गति से अग्रसर नहीं होती। न जाने कितनी असंगत बातें हमारे दृष्टिकोण को धूमिल करने के लिए आती हैं। अनुभवी नाटककारों की लेखनी समस्या को लेकर निर्विकल्प रूप से आगे बढ़ती है, जिस प्रकार थर्मामीटर का पारा ताप को पाकर अपनी सीधी रेखा में आगे बढ़ता चला जाता है। अनुभवी नाटककारों की दृष्टि समस्या की रूपरेखा पहचानती है और वह जानती है कि नाटक के किस अंग को कितना विस्तार मिलना चाहिए।

कथा-शिल्प के कौशल में जब पात्रों का मनोविज्ञान उभरता है तो जैसे सत्य नाटक के प्रत्येक वाक्य में स्पन्दित होने लगता है। मुझे विश्वास है कि आधुनिक भारतीय नाटकों में कथा-शिल्प पर पर्याप्त ध्यान दिया जायगा। तभी उनसे नाटक रंगमंग पर कंचन की भाँति खरे उतर सकेंगे।

मेरे इन ऐतिहासिक एकांकियों में भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड—नैतिक मूल्यों में आस्था और विश्वास का दृष्टिकोण—प्रस्तुत किया गया है। क्योंकि अपने इतिहास की महानता पर मैं गर्व करता हूँ। अपने इन प्रयोगों के 'इतिहास-रस' से यदि किसी को थोड़ी भी प्रेरणा प्राप्त हो तो मैं कहूँगा कि हिन्दी में ऐतिहासिक एकांकी-कला का और भी अधिक विकास होना चाहिए।

'साकेत',
प्रयाग स्ट्रीट, इलाहाबाद

—रामकुमार वर्मा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रम

1.	सम्राट् उदयन पर अभियोग	(ई० पू० 600)	. . . 1
2.	रात का रहस्य	(ई० पू० 548)	. . . 13
3.	मर्यादा की वेदी पर	(ई० पू० 326)	. . . 29
4.	कौमुदी महोत्सव	(ई० पू० 322)	. . . 47
5.	सोन का वरदान	(ई० पू० 274)	. . . 69
6.	चारुमित्रा	(ई० पू० 261)	. . . 91
7.	वासवदत्ता	(ई० पू० 261)	. . . 117
8.	स्वर्ण-श्री	(ई० पू० 185)	. . . 135
9.	श्री विक्रमादित्य	(ई० पू० 57)	. . . 157
10.	समुद्रगुप्त पराक्रमांक	(ई० 363)	. . . 177
11.	कृपाण की धार	(ई० 382)	. . . 193
12.	कादम्ब या विष	(ई० 455)	. . . 215
13.	राज्यश्री	(ई० 600)	. . . 237
14.	भाग्य-नक्षत्र	(ई० 1192)	. . . 253
15.	तैमूर की हार	(ई० 1398)	. . . 269
16.	दीप-दान	(ई० 1536)	. . . 285
17.	दुर्गावती	(ई० 1564)	. . . 307
18.	दीने-इलाही	(ई० 1566)	. . . 327
19.	शिवाजी	(ई० 1657)	. . . 335
20.	ध्रुवतारिका	(ई० 1679)	. . . 381
21.	औरंगज़ेब की आख़िरी रात	(ई० 1707)	. . . 403
22.	पानीपत ही हार	(ई० 1761)	. . . 421
23.	नाना फड़नवीस	(ई० 1773)	. . . 437
24.	कलंक-रेखा	(ई० 1810)	. . . 461
25.	बापू	(ई० 1945)	. . . 481

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 1 :

अभियोग

•

पात्र-परिचय

सम्राट् उदयन—कौशाम्बी के सम्राट्
वासवदत्ता—सम्राट् उदयन की सम्राज्ञी
मंजुघोषा—किरात-कन्या
सुहासिनी—सेविका
कंचुकी

•

काल—ई० पू० 600
स्थान—सम्राट् उदयन का राजकक्ष
समय—प्रभात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभियोग

[शुक और सारिकाओं के शब्द, जो स्वर्ण-पिंजरों में निवास कर रहे हैं। महादेवी वासवदत्ता सुघोषवती वीणा के तारों में क्षण-क्षण पर कुछ नये सरगमों का विन्यास कर रही हैं। दो क्षण रुककर तारों में नया सरगम, फिर रुककर दूसरा राग निकालने का यत्न करती हैं। सेविका सुहासिनी का प्रवेश]

सुहासिनी : महादेवी की जय हो ! महाराज कक्ष में आ रहे हैं।

वासवदत्ता : सुहासिनी तू है ! इस स्वर-लहरी में तो मैं ऐसी लीन हो गयी थी कि तुझे देख नहीं सकी। क्या कहा, आर्य आ रहे हैं ? मैं तो बहुत देर से उनकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। मैं उनके आगमन की ध्वनि अपनी वीणा के तारों से निकालने की चेष्टा कर रही थी।

सुहासिनी : महादेवी की जय हो ! महाराज यहाँ शीघ्र ही आ जाते ; किन्तु वे कक्ष-द्वार के स्वर्ण-पिंजर में बैठी हुई सारिका को देखकर न जाने क्यों रुक गये। अनिमेष नेत्रों से वे सारिका को देखते रहे, फिर उन्होंने एक ठंडी साँस लेकर दूर क्षितिज की ओर देखा और सिर झुकाकर न जाने किन विचारों में लीन हो गये।

वासवदत्ता : सारिका की ओर अनिमेष दृष्टि से देखते रहे, क्यों ? इस कक्ष में आते समय पहले कभी तो सारिका पर इतना ध्यान नहीं दिया।

सुहासिनी : आपकी सतर्क दृष्टि महाराज को किसी की ओर देखने का अवसर नहीं देती। शंका न करें, देवि ! वह तो निरीह पक्षिणी है। किन्तु क्या जानूँ, महादेवी, कि आज ही सारिका के प्रति उनके हृदय में इतनी करुणा कैसे उत्पन्न हो गयी ! महाराज का हृदय इतना संवेदनशील है, महादेवी, कि घटना का छोटा-सा अँकुर उनके हृदय में विशाल वट वृक्ष बन जाता है।

वासवदत्ता : मैं जानती हूँ, सुहासिनी ! मेरे पिताश्री के यहाँ जब बन्दी होकर आये थे, उस अवस्था में भी उनके हृदय में कितनी विशालता थी ! उन से वीणा-वादन की शिक्षा ग्रहण करते समय मैं तो उनकी ओर अनिमेष दृष्टि से देखती ही रह जाती थी। (**ठंडी साँस लेकर**) जाने दे वह बात। आज बड़ी पुरानी स्मृति हृदय में उभर आई।

सुहासिनी : मैं समझ गयी, महादेवी, महाराज की अनिमेष दृष्टि का रहस्य। संभव है, उस सारिका के कंठ में उन्होंने आपकी वीणा के स्वर सुन लिये हों।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वासवदत्ता : क्या तू नहीं जानती कि एक सारिका कक्ष के बाहर है, दूसरी भीतर। द्वार की सारिका सुखी है, क्योंकि आर्य उसके समक्ष हैं। किन्तु कक्ष की सारिका दुखी है कि आर्य ने अभी तक कक्ष में प्रवेश नहीं किया। और वे यह भी जानते हैं कि इस सारिका के हृदय में उनके अनुराग का क्षण-प्रति-क्षण कसकता रहता है। मेरी वीणा के ये तार! (**उँगली से दो-तीन तारों को बजाती है।**)

[नेपथ्य में महाराज के आने की ध्वनि]

सुहासिनी : महाराज आ गये! मुझे आज्ञा दीजिए। महाराज की जय! **[प्रस्थान]**

[उदयन का प्रवेश]

वासवदत्ता : (**खड़ी होकर**) स्वागत, आर्य! विन्ध्यभूमि की विजय पर आपको बधाई।

उदयन : इस विजय की कल्पना तो तभी साकार हो उठी थी, जब अमात्य यौगंधरायण की राजनीति में तुमने अपने को कल्पना की अग्नि में समर्पित कर दिया था। तुम्हारे आत्म-त्याग ने ही वत्स-राज्य को इतना विशाल बना दिया है।

वासवदत्ता : यदि मैं यह निवेदन करूँ, आर्य, कि जिस मात्रा में यह वत्स-राज्य विशाल होता जा रहा है, उसी मात्रा में मैं लघु होती जा रही हूँ?

उदयन : महादेवी! तुम लघु होती जा रही हो? कैसे? जिसकी सुघोषवती वीणा के स्वरों के लिए संसार की सीमाएँ छोटी हो गयी हैं, जिसके नाम वासवदत्ता में इन्द्र का समस्त ऐश्वर्य बिखर गया है, जिसकी कीर्ति-गाथा के सूत्र में उज्जयिनी और वत्स एक हो गये हैं, वह लघु कैसे हो सकती है, महादेवी? सूर्य के उदय की सूचना देने वाली ऊषा तो समस्त आकाश को राग-रंजित कर देती है, और उदय होता हुआ सूर्य एक छोटी-सी परिधि में ही सीमित रहता है।

वासवदत्ता : आर्य कलाकार हैं। वे न जाने कितने चित्रों का निर्माण कर सकते हैं। किन्तु मैं यह अनुभव कर रही हूँ, आर्य, कि अब कलाकार के हृदय ने महादेवियों से नहीं, सारिकाओं से प्रेम करना आरम्भ कर दिया है।

उदयन : सारिकाओं से?

वासवदत्ता : हाँ, महाराज! सारिकाएँ वन में निवास करती हैं, और महादेवियाँ सीमित कक्ष में। कलाकार सीमाओं से प्रेम नहीं करता, इसीलिए वह राजकक्ष से दूर रहकर वनप्रान्त में विचरण करता है। वहाँ नाना प्रकार की सारिकाओं को देखता है। और तब, उन सारिकाओं के समक्ष महादेवी लघु हो जाती है। यह कितनी बड़ी विडम्बना है। लघु महादेवी (**'महा' शब्द पर जोर देकर**)।

उदयन : किसी दूत ने तुमसे मेरे आखेट की वार्त्ता कही है?

वासवदत्ता : महाराज की वार्त्ता तो धरित्री का कण-कण कहता है।

उदयन : व्यर्थ की शंकाओं से हृदय को क्षुब्ध न करो, महादेवी। आखेट में एक दुर्घटना घटित हो गयी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वासवदत्ता : दुर्घटना ! दुर्घटना भी महाराज के लिए सुन्दर घटना हो जाया करती है। आप ही कहें, किस बन्दी को राजपुत्री प्राप्त हुई है ?

उदयन : देवि ! तुम्हारा व्यंग्य पर्याप्त है। इस आखेट की दुर्घटना, दुर्घटना ही है। तुम्हें तो सारा वृत्त ज्ञात ही हो गया होगा, तुम्हारे समक्ष उसे दोहराने की क्या आवश्यकता ?

वासवदत्ता : किन्तु मैं आर्य के ही मुख से सुनना चाहती हूँ।

उदयन : महादेवी ! मेरे शब्दवेधी बाण से एक सारिका धराशायी हो गयी।

वासवदत्ता : यह कोई नई बात नहीं है, आर्य ! न जाने कितनी सारिकाएँ आपके मधुर शब्दों के बाण से धराशायी हो चुकी हैं। **(मुस्कान)**

उदयन : देवि ! इस परिस्थिति में व्यंग्य के लिए स्थान नहीं है। यह घटना ही ऐसी घटित हो गई। अमात्य यौगंधरायण ने शब्दवेधी बाण चलाने को कहा। मेरे कृपाण ने बाणों को विश्राम दे ही दिया था, इसलिए इच्छा हुई कि आखेट में बाणों का ही प्रयोग करूँ। संध्या का समय था। वनप्रान्त में पक्षियों का कलरव स्पष्ट सुन पड़ रहा था। उस स्वर में एक तीव्र स्वर सुन पड़ा......उसी स्वर को लक्ष्य कर मैंने शब्दवेधी बाण छोड़ दिया। कुछ क्षण पश्चात् ही मेरे बाण ने एक बेचारी सारिका के कण्ठ में प्रवेश किया।

वासवदत्ता : आर्य तो किसी पक्षी पर बाण का प्रयोग नहीं करते, उनका लक्ष्य दूसरा ही होता है।

उदयन : निस्संदेह, महादेवी ! मैं शत्रुओं को ही अपना लक्ष्य बनाता हूँ। किन्तु तुम्हारे ऐश्वर्य ने मेरे समीप किसी शत्रु को नहीं रहने दिया। शब्दवेधी बाण चलाने का उन्माद विवेक से समर्थित नहीं हुआ।

वासवदत्ता : उन्माद भी विवेक से समर्थित हुआ है, आर्य ! तो आपके बाण ने सारिका के शब्द का ही अनुसरण किया ?

उदयन : हाँ, महादेवी ! एक क्षण में ही सारिका का अन्त हो गया।

वासवदत्ता : अनर्थ हुआ, आर्य ! उस सारिका की समाधि बननी चाहिए जो आपके बाण का लक्ष्य बन सकी।

उदयन : किन्तु मैं उस सारिका को देख नहीं सका।

वासवदत्ता : देख नहीं सके ? तो आपको ज्ञात कैसे हुआ कि सारिका ही धराशायी हुई है !

उदयन : उस सारिका की स्वामिनी, मंजुघोषा......

वासवदत्ता : ये मंजुघोषाएँ न जाने क्यों आपके मार्ग में आ जाया करती हैं।

उदयन : अपनी सुघोषवती वीणा से ही पूछो, देवि !

वासवदत्ता : वह भी आपकी कीर्ति के स्वरों को ही गुनगुनाया करती है। उसकी साँसों के तार उँगलियों का स्पर्श पाते ही कलरव कर उठते हैं। किन्तु यह मंजुघोषा मेरी सुघोषवती वीणा से भी महान् होगी। उसका परिचय दें, आर्य !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदयन : मैं उसका परिचय स्वयं नहीं जानता, देवि ! केवल इतना ही जानता हूँ कि वह उस मृत सारिका की स्वामिनी है। उसने कटु शब्दों में मेरी निंदा करते हुए मुझ पर अभियोग लगाया है।

वासवदत्ता : आर्य की निंदा करने का साहस एक सामान्य नारी को हो ?

उदयन : नहीं, महादेवी ! मैं उस समय आखेटक के वेश में था। वह नहीं जान सकी कि मैं ही उदयन हूँ और आज वह आखेटक उदयन पर लगाया हुआ अभियोग महाराज उदयन के समक्ष प्रस्तुत करेगी।

वासवदत्ता : अभियोग की विचित्र स्थिति है, आर्य ! महाराज उस आखेटक को किस प्रकार दंड देंगे ?

उदयन : दंड का निर्णय स्वयं महादेवी करेंगी।

वासवदत्ता : यह निर्णय तो अमात्य यौगंधरायण बहुत अच्छा करते।

उदयन : तुम सत्य कहती हो, महादेवी ! किन्तु उनके निर्णय बड़े भयानक होते हैं। वे उस वनप्रान्त को कहीं मगध की श्रेणी में न रख दें।

वासवदत्ता : इस अन्त:पुर में अब अन्य कक्षों के लिए स्थान नहीं है, आर्य ! मेरा सुख और सौभाग्य, मेरे मन की सीमा से अधिक बढ़ता जा रहा है।

उदयन : स्वप्न में भी ऐसी कल्पना नहीं है, देवि ! आज जब तुम्हारे कक्ष में प्रवेश कर रहा था तो द्वार पर मधुर शब्द करती हुई सारिका को देखकर मुझे उस निरपराध सारिका का स्मरण हो आया और करुणा की एक छोटी-सी लहर ने मेरे मन की सारी शान्ति एक क्षण में बहा दी। तुम अपनी सुघोषवती वीणा के संगीत से मेरे अवसाद को दूर कर दो, देवि !

वासवदत्ता : वीणा बजाने का अवकाश कहाँ है, आर्य ! आपकी मंजुघोषा अपना न्याय माँगने के लिए आती ही होगी। मैं भी उस मंजुघोषा को देखना चाहती हूँ जो एक तुच्छ सारिका पर आर्य का विराट् वैभव तौलना चाहती है।

उदयन : नहीं, महादेवी ! उसका अभियोग न्याय-संगत है। निर्दोष प्राण-हानि कभी तुच्छ नहीं होती, वह चाहे सारिका की हो या मनुष्य की। लाओ अपनी सुघोषवती वीणा ! मैं ही उस पर स्वर-संधान करूँगा।

वासवदत्ता : शर-सन्धान के उपरान्त स्वर-सन्धान अनुचित नहीं है। संभव है, इस स्वर-सन्धान के समक्ष उस वनवासिनी के अभियोग का शर-सन्धान कुंठित हो जाय।

उदयन : ऐसी बात नहीं है, देवि !

[एक मिनट तक वीणा पर मालकोश की ध्वनि। अचानक वीणा का एक तार टूट जाता है।]

उदयन : तार टूट गया ! जो कभी नहीं हुआ, वह आज कैसे ?

[सुहासिनी का प्रवेश]

सुहासिनी : महाराज की जय हो ! न्याय-कक्ष से सूचना मिली है कि मंजुघोषा नाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की एक स्त्री महाराज के समक्ष उपस्थित होकर एक अभियोग प्रस्तुत करना चाहती है ।

वासवदत्ता : यह सारिका से सम्बन्धित अभियोग ही है ।

उदयन : जिसका निर्णय तुम करोगी, देवि ! सुहासिनी ! उस स्त्री को इसी कक्ष में आने की आज्ञा दी जाय ।

सुहासिनी : जैसी महाराज की आज्ञा । [**प्रस्थान**]

उदयन : बड़ी कठोर स्त्री है यह । निषाद-स्वर की भाँति इसका तीक्ष्ण स्वर किसी शब्दवेधी बाण-सा सीधा हृदय में प्रवेश करता है ।

वासवदत्ता : कहीं वह हृदय का भाग न बन जाय !

उदयन : हृदय का भाग बनने के लिए देवी वासवदत्ता की वाणी चाहिये । कितना शक्तिशाली है रूप उसका ! विशाल नेत्र और मिली भौंहें, जैसे शक्ति के दो अक्षर जिन पर भौंह की मात्रा लगी हुई है । उठी हुई नासिका, जैसे सौन्दर्य ने अपनी सीमा खींच दी हो । क्रोध से कसे हुए अधरोष्ठ, जैसे प्रत्यंचा में किसी ने ग्रन्थि लगा दी हो ।

वासवदत्ता : (**बीच ही में**) मुझे भय है, आर्य, कि उस प्रत्यंचा से किसी शर का सन्धान न किया गया हो !

उदयन : उसका एक-एक शब्द बाण था जो अभियोग की अग्नि लेकर समीप के वायुमंडल में क्रोध की चिंगारियाँ फेंक रहा था ।

वासवदत्ता : उस स्त्री की रूप-रेखा कहीं आपकी वाणी से साहित्य न बन जाय !

उदयन : इसका भी निर्णय तुम्हीं करना, देवी ! वह स्त्री आती ही होगी । उसका यथार्थ अभियोग जानने के लिए मुझे समीप के कक्ष में चले जाना चाहिये । देखो, सुहासिनी आ रही है । मैं जाता हूँ । [**प्रस्थान**]

[**सुहासिनी का प्रवेश**]

सुहासिनी : महाराज की......महादेवी की जय हो ! महाराज कहाँ हैं ?

वासवदत्ता : वे समीप के कक्ष में हैं । वह स्त्री आयी ? मैं ही उसका निर्णय करूँगी ।

सुहासिनी : वह स्त्री द्वार पर है, महादेवी !

वासवदत्ता : उसे इस कक्ष में भेज दो ।

सुहासिनी : जो आज्ञा । [**प्रस्थान**]

वासवदत्ता : (**अपने-आप**) आर्य का जीवन किसी अभिनय से कम नहीं है और इस अभिनय की विचित्रता यह है कि वह सदैव उनके लिए सुखान्त ही होता है, भले ही उनमें मेरी करुणा सम्मिलित हो ।

[**मंजुघोषा का प्रवेश**]

मंजुघोषा : प्रणाम करती हूँ, महादेवी ! महाराज नहीं हैं ? तब मेरा यहाँ आना व्यर्थ हुआ ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वासवदत्ता : तुम्हारा नाम मंजुघोषा है ? तुम कोई अभियोग उपस्थित करना चाहती थी ?

मंजुघोषा : हाँ, देवि ! किन्तु मैंने द्वार पर सुना कि महादेवी ही महाराज का अधिकार ग्रहण कर रही हैं। ऐसी स्थिति में मुझे आपकी सेवा में उपस्थित ही नहीं होना चाहिये था।

वासवदत्ता : नारी ! शान्ति से बोलना सीखो। सम्भव है, तुम्हारा अभियोग विश्वस्त होने पर मैं भी महाराज से प्रार्थना करूँ कि वे स्वयं इसका निर्णय करें।

मंजुघोषा : सहानुभूति के लिए अनेक धन्यवाद, महादेवी ! किन्तु मुझे इस नागरिक वातावरण में राजनीति की एक विचित्र दुर्गन्धि मिलती जा रही है।

वासवदत्ता : नारी ! क्या विश्वास करने की मंगल-भावना ने तुम्हें सदैव के लिए छोड़ दिया है ? अविश्वास की अग्नि में तुम्हारा रोम-रोम जलता हुआ दीख पड़ता है।

मंजुघोषा : सत्य है, महादेवी ! और यह अविश्वास नागरिकता का अभिशाप है। मेरे वनप्रान्त में रहने वाले व्यक्ति विश्वास पर अपने प्राणों का बलिदान करते हैं। किन्तु इस नगर के लोग अविश्वास को अपनी राजनीति समझते हैं।

वासवदत्ता : इस कथन का प्रमाण देना होगा तुम्हें।

मंजुघोषा : प्रमाण स्पष्ट है, महादेवी ! वह आखेटक जिसने बार-बार मुझे वचन दिया था कि वह इस समय अपना अपराध स्वीकार करने के लिए महाराज के न्याय-कक्ष में उपस्थित रहेगा, मैंने यहाँ बड़ी देर तक उसकी प्रतीक्षा की; किन्तु वह कहीं दृष्टिगत न हुआ। अब मैं अपने अभियोग का आरोप किस व्यक्ति पर करूँ ? मैं कितना विश्वास लेकर आयी थी कि महाराज से न्याय प्राप्त कर सकूँगी; किन्तु महाराज भी नहीं हैं।

वासवदत्ता : ऐसी बात नहीं है, नारी ! महाराज कुछ क्षण बाद इस कक्ष में आ ही रहे हैं और वह आखेटक, यदि उसने वचन दिया है, तो वह भी अवश्य उपस्थित होगा। तुम उसका नाम जानती हो ?

मंजुघोषा : उसका नाम ? (**स्मरण करते हुए**) शंखचूड़ और शेखरक। नहीं, नहीं, ये नाम तो दूतों के थे। महादेवी, उस आखेटक ने नम्रता और विश्वास की बातों का ऐसा जाल बिछा दिया कि मैं उसका नाम पूछना ही भूल गयी। वह अमात्य यौगन्धरायण के साथ था।

वासवदत्ता : अमात्य यौगन्धरायण के साथ ? तो उसकी रूप-रेखा बतला सकती हो ? यदि वह इस नगर में होगा तो मैं उसे अवश्य ही उपस्थित होने का आदेश दूँगी।

मंजुघोषा : मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि वह महाराज की सेवा में नियुक्त आखेटक होगा, तभी तो वह अमात्य यौगन्धरायण के साथ था और वह महाराज की कृपा की बात भी कह रहा था। उसके व्यवहार में मर्यादा थी और उसकी मुख-मुद्रा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में एक विशेष प्रकार का तेज था।

वासवदत्ता : (**मुस्कुराहट से**) किन्तु क्या किसी नारी के समक्ष पुरुष का तेज रह सकता है ? और विशेषकर जब वह पुरुष तुम जैसी नारी के समक्ष अभियोगी के रूप में हो ?

मंजुघोषा : नहीं, महादेवी ! मैंने अनुभव किया कि उसकी स्थिर मुख-मुद्रा, हृदय में प्रवेश करने वाले उसके नेत्र, निर्झर की भाँति प्रवाहित होने वाली उसकी वाणी, उसके तेजस्वी व्यक्तित्व का समर्थन कर रहे थे। उसके बाण से मेरी सारिका विद्ध हो चुकी थी, इसलिए अपनी सारिका की मृत्यु पर मेरे शब्द अँगारे बनकर उसके ऊपर बरस रहे थे। किन्तु वह समुद्र की भाँति गंभीर था। मैं अनुभव कर रही थी कि जैसे मेरे क्रोध के शब्द मेरे कंठ से ही निकल रहे हों, हृदय से नहीं। जैसे, देवि, मेरा क्रोध वर्षा का भरा हुआ बादल हो, जिसके मुख पर तो विद्युत् की रेखा है किन्तु भीतर सहानुभूति के जल का अपार कोष भरा हुआ है।

वासवदत्ता : तब तुम्हारा अभियोग यथार्थ नहीं है, स्त्री ! जिसके प्रति तुम्हारे हृदय में सहानुभूति हो जाती है वह अभियोग का पात्र कैसे बन सकता है ?

मंजुघोषा : नहीं, महादेवी ! न्याय और सहानुभूति एक दूसरे के समर्थक नहीं हैं। यदि ऐसा होता तो कोई नरेश अन्याय करने पर अपनी प्रजा को दंडित नहीं कर सकता। मैं उस आखेटक के व्यक्तित्व से भले ही प्रभावित हो जाऊँ, किन्तु इससे अभियोग का पथ अवरुद्ध नहीं हो सकता।

वासवदत्ता : मैं प्रसन्न हूँ तुम्हारे अभियोग से। पहले मेरे समक्ष अपना अभियोग स्पष्ट करो। मैं तुम्हारे अभियोग को महाराज की सेवा में पहुँचाने में सहायता करूँगी।

मंजुघोषा : कृतज्ञ हूँ, महादेवी ! मैं एक किरात-कन्या हूँ। मेरे माता-पिता ने मेरे शैशव में ही यह संसार छोड़ दिया। मैं अपने मातुल के साथ कौशाम्बी के समीप के वनप्रान्त के एक कोने में कुटीर बनाकर निवास करती हूँ। मेरे मातुल पक्षियों का व्यापार करते हैं। वे समय-समय पर पक्षियों का विक्रय करने के लिए समीपवर्ती जनपदों में चले जाते हैं, और तब मैं अकेली रह जाती हूँ। इन दिनों भी मैं अकेली हूँ।

वासवदत्ता : उस घने वनप्रान्त में तुम्हें अकेले भय नहीं लगता ?

मंजुघोषा : महादेवी ! किरात-कन्या को किसका भय ? अपने मातुल से सीखी बाण और कृपाण की कला ने ही उसे निर्भय बना दिया है।

वासवदत्ता : किरात-कन्या होकर तुमने इतनी सुन्दर भाषा कहाँ सीखी ?

मंजुघोषा : महादेवी ! मेरे मातुल महाराज के इस नगर कौशाम्बी में अनेक दिनों तक निवास कर चुके हैं।

वासवदत्ता : तब तुम्हें हमारी नागरिकता का अधिकार है। आगे का विवरण दो।

मंजुघोषा : आज से पाँच वर्ष पूर्व मैंने एक पक्षि-शावक को एक वृक्ष के कोटर में पड़ा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाया । ग्रीष्म की ऊष्मा से वह शिथिल होकर अपनी अन्तिम साँसें ले रहा था। मैं उसे उठा लायी । बड़े प्रेम से उसका पालन किया और पाँच वर्षों में पक्षि-शावक ने एक सुन्दर सारिका का रूप ग्रहण कर लिया । वह सारिका मधुर संगीत से मेरी उस छोटी-सी कुटी में आनन्द का सागर लहरा देती थी । इतने वर्षों में वह मेरे परिवार का ही अंग बन गयी । मातुल की अनुपस्थिति में वह मेरे एकाकी जीवन की एकमात्र सहचरी थी । कल सन्ध्या समय जब वह पुकार-पुकार कर मुझसे अपना दाना माँग रही थी. उसी समय उस क्रूर आखेटक का तीक्ष्ण बाण उसके कण्ठ में लगा और वह धराशायी हो गयी । करुणा और क्रोध से मैं पागल हो गयी । मैं अपनी सारिका को उसके अन्तिम समय में दाना भी नहीं दे सकी ! **(सिसकी)** मेरी सारिका भूखी ही चली गयी ! **(गहरी सिसकी)** उसके मरण-काल का चीत्कार इस समय भी मेरे कानों में गूँज रहा है, महादेवी ! और निश्चेष्ट होती हुई उसकी करुण दृष्टि मेरे हृदय में चुभ रही है। जैसे ही मैंने उसके कंठ से वह बाण निकाला वैसे ही उसके प्राण उस आकाश में उड़ गये, जहाँ से वे फिर न लौट सके ।

वासवदत्ता : तुम्हारी सारिका के इस करुण अन्त से मुझे भी कष्ट होता है, किरात-कन्या !

मंजुघोषा : महादेवी ! उसकी ऐसी मृत्यु देखकर उस आखेटक के प्रति मेरे क्रोध की सीमा न रही । मैं अपना कृपाण लेकर उन्मादिनी की भाँति वन में उस आखेटक को खोजने लगी । सहसा मेरी दृष्टि अमात्य यौगन्धरायण के साथ उस आखेटक पर पड़ी और मैं उस पर आक्रमण करना चाहती थी, देवि ! किन्तु उसकी शान्त-मुद्रा ने मेरे क्रोध को कुंठित-सा कर दिया ।

वासवदत्ता : किरात-कन्ये ! तुम्हारा अभियोग वास्तव में गम्भीर है । उसका न्याय होना चाहिए । अभियुक्त को दंडित होना ही पड़ेगा । मैं तुम्हारे न्याय के पक्ष में हूँ । तुम्हारा साथ दूँगी ।

मंजुघोषा : किन्तु, महादेवी, अभी तक अभियुक्त नहीं आया ?

वासवदत्ता : **(नेपथ्य की ओर देखकर)** अरे, आर्य आ रहे हैं !

मंजुघोषा : **(विह्वल होकर)** महाराज आ रहे हैं ? महाराज आ रहे हैं ? महाराज की जय !

[उदयन का प्रवेश]

उदयन : स्वस्ति, देवि ! तुम कौन हो ?

वासवदत्ता : आर्य, यह मंजुघोषा नाम की किरात-कन्या है । समीप के वनप्रान्त में एक कुटी बनाकर निवास करती है । मातुल के अतिरिक्त इसके परिवार में कोई नहीं । केवल एक सारिका थी, जिसे किसी क्रूर आखेटक ने अपने शब्दवेधी बाण का लक्ष्य बना दिया । व्यर्थ ही सारिका के प्राण लेने के कारण वह आखेटक दंड का पात्र है और यही अभियोग लेकर यह आपके समक्ष उपस्थित हुई है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदयन : वह आखेटक निश्चय ही दंड का अधिकारी है, उसके लिए किरात-कन्या जो दंड निर्धारित करना चाहती है, करे। मेरी राज-शक्ति उसका समर्थन करेगी।

वासवदत्ता : बोलो, किरात-कन्ये ! तुम किस दंड की व्यवस्था करना चाहती हो ? (**गहरी दृष्टि से देखकर**) तुम आर्य को इतनी गहरी दृष्टि से क्यों देख रही हो ? सावधान, नारी ! न्याय की याचना नेत्रों से नहीं शब्दों से होती है।

उदयन : बोलो, नारी ! तुम उस आखेटक के लिए किस दंड की व्यवस्था करती हो ?

मंजुघोषा : मैं......मैं......महाराज.........!

वासवदत्ता : विद्युत् की वाणी तरल होकर बरसना चाहती है ? जिस उग्रता से तुम अपना अभियोग लाई थी, उसी उग्रता से न्याय भी माँगो, और जब महाराज ने तुम्हें दंड निर्धारित करने का अधिकार दे दिया है तो इतनी विह्वलता किसलिए ?

मंजुघोषा : (**अधिक विह्वलता से**) महाराज ! (**क्षीण शब्दों में**) आखेटक...! आखेटक...!

वासवदत्ता : कहाँ है तुम्हारा आखेटक, किरात-कन्या ?

मंजुघोषा : महादेवी ! (**रुककर**) आखेटक...! आखेटक...!

उदयन : कहाँ है तुम्हारा आखेटक ? तुम विस्मयभरी दृष्टि से मुझे क्यों देख रही हो, किरात-कन्ये ?

मंजुघोषा : महाराज ! क्षमा हो, आपके मस्तक का चिह्न...!

वासवदत्ता : आर्य के मस्तक का चिह्न तो इनके कृपाण-युद्ध का वरदान है। आखेटक के मस्तक का चिह्न किसी किरात-कन्या के प्रहार का चिह्न होगा।

मंजुघोषा : नहीं, महादेवी ! वैसा ही चिह्न...वही चिह्न है जो मैंने आखेटक के मस्तक पर देखा था। (**स्वप्नावस्था में कहती हुई-सी**) तिलक की भाँति दोनों भौंहों के मध्य में। कृपाण-रेखा की भाँति, जो किसी भी छद्मवेश से नहीं छिपाया जा सकता।

उदयन : क्या तुम समझती हो कि मैं ही आखेटक हूँ ? अपने हृदय को संतुलित करो, नारी !

मंजुघोषा : महाराज ! क्षमा हो। (**तीक्ष्ण दृष्टि से देखती हुई**) किरात-कन्या की दृष्टि भूल नहीं कर सकती, अब महाराज मैं अपना अभियोग लौटाती हूँ। मेरा अभियोग मुझे लौटा दीजिये, महाराज ! मैं किसी प्रकार का न्याय नहीं चाहती, किसी प्रकार का न्याय नहीं चाहती। आप के चरणों पर मैं सहस्र सारिकाएँ निछावर कर सकती हूँ। ओह ! न जाने मैंने कितने अपशब्दों का प्रयोग किया, देवि ! मैं आपसे क्षमा की भिक्षा माँगती हूँ। महाराज से मैंने न जाने कितने अपशब्द कहे होंगे ! मेरी सारिका का रक्त आँखों में क्रोध बनकर समा गया था। मैं क्या जानती थी कि उस वनखंड में मेरे समक्ष स्वयं महाराज खड़े हुए हैं ! महादेवी ! मैं कितनी धन्य हूँ कि उस समय महाराज ने मुझे कितना आदर दिया था, और पापीयसी......पापीयसी......

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[कंठ अवरुद्ध हो जाता है और वह उदयन के चरणों पर गिर पड़ती है।]

उदयन : उठो, उठो ! मंजुघोषे ! अपराध मेरा है, किन्तु जिस प्रकार तुम नहीं जानती थी कि तुम अपने महाराज के समक्ष अपशब्दों का प्रयोग कर रही हो, उसी प्रकार मैं भी नहीं जानता था कि मेरा बाण तुम्हारी सारिका के कंठ की ओर जा रहा है; किन्तु मैं दोषी हूँ, दंड की व्यवस्था करो। यह लो मेरा कृपाण, जिस प्रकार मेरे बाण ने तुम्हारी सारिका के कंठ पर प्रहार किया उसी प्रकार मेरे कंठ पर इस कृपाण का प्रहार करो।

मंजुघोषा : नहीं, महाराज ! क्षमा...! क्षमा...! क्षमा...! मैं लौट जाऊँगी, मैं अभियोग लेकर आई थी, अभियुक्ता बनकर जाऊँगी। आज्ञा दीजिये, महाराज !

उदयन : किरात-कन्ये ! तुमने अपने को अभियुक्त मान लिया है। तुम्हें स्मरण होगा, आखेटक उदयन का भी एक अभियोग था। उसका निर्णय भी तो महाराज उदयन को करना है। उस सम्बन्ध में तुम्हें कुछ कहना है ?

मंजुघोषा : मैं कुछ नहीं कहूँगी, महाराज !

उदयन : तो आखेटक उदयन का अभियोग सत्य है, और उसका न्याय इस प्रकार होगा कि आज से अभियुक्ता किरात-कन्या महादेवी वासवदत्ता की प्रमुख सहचरी होकर उदयन के राजकक्ष में निवास करेगी। महादेवी ! इसमें तुम्हारी स्वीकृति है ?

वासवदत्ता : आर्य की राजनीति को स्वीकार करने का सौभाग्य मुझे अनेक बार प्राप्त हो चुका है। यह सौभाग्य भी शिरोधार्य होगा। क्यों मंजुघोषे ! तुम्हें स्वीकार है ?

मंजुघोषा : मैं कृतार्थ हुई, महादेवी !

उदयन : महादेवी की स्वीकृति पर मैं अपनी हस्तिस्कन्ध वीणा में अपने हृदय का उल्लास मुखरित करना चाहता हूँ !

[सुहासिनी का प्रवेश]

सुहासिनी : महाराज की जय !

उदयन : सुहासिनी, मैं अपनी हस्तिस्कन्ध वीणा चाहता हूँ !

सुहासिनी : जो आज्ञा, महाराज ! (**कुछ देर रुककर**) महाराज ! महाराज दर्शक की ओर से संदेश लेकर कंचुकी आप की सेवा में उपस्थित होने के लिए अनुमति चाहता है।

उदयन : महाराज दर्शक का संदेश लेकर आया है ? सुहासिनी ! उसे शीघ्र भेजो।

सुहासिनी : जो आज्ञा। **[प्रस्थान]**

वासवदत्ता : मगध से सन्देश आया है, तब तो वह आवश्यक सन्देश होगा।

उदयन : तुम्हारा कथन सत्य है, महादेवी !

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी : महाराज की जय ! सेवा में यह निवेदन प्रस्तुत करना चाहता हूँ कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रात का रहस्य

स्थिति—बिम्बसार ने सिंहासन त्याग दिया है। वैशाली राजवंश की लिच्छिवि कुमारी बिम्बसार की छोटी रानी है। उसने बुद्धदेव के विद्रोही चचेरे-भाई देवदत्त के परामर्श से अपने पुत्र अजातशत्रु को अपने पति के जीवन-काल में ही सिंहासन पर अधिकार कर लेने की शिक्षा दी। देवदत्त और छलना की नीति ने अजातशत्रु को विद्रोही और उद्दण्ड बना दिया। इसी गृह-कलह और आंतरिक संघर्ष को मिटाने के लिए बिम्बसार ने सिंहासन त्याग दिया और वे वासवी के साथ एक कुटी में निवास करने लगे हैं। राजशक्ति के प्रलोभन से अजातशत्रु अपने पिता को सन्देह की दृष्टि से देखता है और इसीलिए उसने अपने पिता की कुटी पर नियंत्रण लगा दिया है। नियंत्रण के साथ-साथ उसने उनका भोजन भी बन्द कर दिया है।

[इस समय बिम्बसार और वासवी कुटी में हैं। बिम्बसार लेटे हैं और वासवी उनके समीप बैठी है। बिम्बसार को निराश दृष्टि से देखती हुई कहती है]

वासवी : आर्यपुत्र ! भोजन आज भी नहीं आया।

बिम्बसार : (भर्राये स्वर से) आज भी नहीं आया ?

वासवी : नहीं, प्रातःकाल से प्रतीक्षा कर रही हूँ, पर शून्य-दृष्टि द्वार तक जाकर लौट आती है।

बिम्बसार : प्रतीक्षा मत करो, देवी ! अजात का शासन यदि हमारे भूखे रहने से ही सुदृढ़ होता है, तो देवी, हमारी भूख में ही हमारा निर्वाण है। हम भोजन की कामना नहीं करेंगे।

वासवी : न करें, किन्तु मैं कैसे यह सहन करूँ कि आर्यपुत्र, जो कुछ समय पूर्व मगध के सम्राट् थे, आज सामान्य भोजन के भी अधिकारी नहीं समझे गये ! मगध-सम्राट् के भाग्य में आज साधारण अन्न के दाने भी नहीं हैं ! (**सिसकी**) आज चार दिन हो गये और नियन्त्रण में रखे गये मगध-सम्राट् के लिए मिट्टी के पात्र में रखा हुआ रूखा-सूखा भोजन भी नहीं है। यह कैसा शासन है जिसमें पिता की भूख ही पुत्र की राज्यश्री का प्रतीक है ? आज आर्यपुत्र को साधारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरुष की भाँति अपनी भूख बुझाने का भी अधिकार नहीं है ? **(सिसकियाँ)**

बिम्बसार : शान्त, शान्त, वासवी ! इन आँसुओं से मेरे धैर्य की शिला को बहाने का प्रयत्न न करो। बिम्बसार इतना निर्बल नहीं है कि वह बीते हुए राज्य-वैभव की स्मृति में अपने बन्दी-जीवन की वास्तविकता भूल जाय। बन्दी जीवन ऐसा ही होता है। सम्राट् की दृष्टि ही उसके भविष्य की दिशा है, फिर वह सम्राट् चाहे अपना पुत्र ही क्यों न हो ! आज मेरा कुणीक मगध का सम्राट् है। वह चाहता है कि हम बन्दी हों, तो हम बन्दी हैं। वह चाहता है कि हम भूख से मरण को प्राप्त हों, तो हम भूख से मरण को प्राप्त होंगे; किन्तु हम तड़पेंगे नहीं, देवी ! हम प्रलय की आँधी में उड़ेंगे, पर हमारी आँखों से आँसू नहीं गिरेंगे, क्योंकि हम मनुष्य हैं जिसकी सत्ता सर्वोपरि है। सुख और दुःख दोनों हम समान रूप से भोग सकते हैं। भूख से हम मूर्च्छित होंगे, लेकिन हम यह नहीं कहेंगे कि हमें भोजन दो। भोजन देनेवाले की इच्छा ही सत्य है। हमारी इच्छा कुछ महत्त्व नहीं रखती, देवी !

वासवी : आर्यपुत्र ! मैं भी स्वाभिमान रखती हूँ, यह समस्त मगध की प्रजा जानती है और इसीलिए मैं यह सहन नहीं कर सकती कि पुत्र इतना अभिमानी बने कि वह राज्य के लोभ से पिता को सिंहासन से हटाकर बन्दी-गृह में डाल दे और स्वयं सम्राट् बन जाय।

बिम्बसार : वासवी ! तुम महादेवी थीं, किन्तु तुम राजमाता नहीं थीं। राजमाता लिच्छिवि कुमारी से पूछो कि सिंहासन प्राप्त करना प्रत्येक युग का आदर्श है या नहीं ? और फिर सिंहासन-त्याग मैंने स्वयं किया। तथागत की यही इच्छा थी कि मैं सांसारिक वैभवों से विरक्त होकर विश्राम लूँ। फिर गृह-विवाद और आन्तरिक संघर्षों से मगध को बचाना भी तो मेरा धर्म था। मैंने सिंहासन-त्याग किया। और कुणीक बड़ा हुआ, उसे भी तो उसका अधिकार मिलना चाहिए।

वासवी : आपने मगध के लिए इतना त्याग किया; किन्तु क्या कुणीक और कुणीक की माता लिच्छिवि कुमारी ने इस त्याग की सराहना की ?

बिम्बसार : देवी ! त्याग यदि घुटनों के बल बैठकर सराहना की भिक्षा माँगे तो क्या उसे हम त्याग कह सकते हैं ? मेरे त्याग को सराहना की अभिलाषा नहीं रही। वह मगध के प्रति मेरा कर्तव्य था जिसे मैंने पूरा किया। कर्तव्य और प्रशंसा का संगम होना कर्तव्य के लिए अभिनन्दनीय नहीं है।

वासवी : किन्तु, आर्यपुत्र ! आपके कर्तव्य का यह पुरस्कार भी तो नहीं है कि आपकी स्वतन्त्रता का अपहरण हो और आपका निवास-स्थान बन्दीगृह में परिवर्तित कर दिया जावे।

बिम्बसार : यह हमारा दुर्भाग्य है कि कुणीक पर हमारा प्रभाव नहीं रह सका। कुणीक अपनी माता लिच्छिवि कुमारी की छाया में पोषित हुआ और देवदत्त की कूटनीति में उसे गति मिली। तथागत की प्रतिद्वन्द्विता में देवदत्त जिस प्रति-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रात का रहस्य

स्थिति—बिम्बसार ने सिंहासन त्याग दिया है। वैशाली राजवंश की लिच्छिवि कुमारी बिम्बसार की छोटी रानी है। उसने बुद्धदेव के विद्रोही चचेरे-भाई देवदत्त के परामर्श से अपने पुत्र अजातशत्रु को अपने पति के जीवन-काल में ही सिंहासन पर अधिकार कर लेने की शिक्षा दी। देवदत्त और छलना की नीति ने अजातशत्रु को विद्रोही और उद्दण्ड बना दिया। इसी गृह-कलह और आंतरिक संघर्ष को मिटाने के लिए बिम्बसार ने सिंहासन त्याग दिया और वे वासवी के साथ एक कुटी में निवास करने लगे हैं। राजशक्ति के प्रलोभन से अजातशत्रु अपने पिता को सन्देह की दृष्टि से देखता है और इसीलिए उसने अपने पिता की कुटी पर नियंत्रण लगा दिया है। नियंत्रण के साथ-साथ उसने उनका भोजन भी बन्द कर दिया है।

[इस समय बिम्बसार और वासवी कुटी में हैं। बिम्बसार लेटे हैं और वासवी उनके समीप बैठी है। बिम्बसार को निराश दृष्टि से देखती हुई कहती है]

वासवी : आर्यपुत्र ! भोजन आज भी नहीं आया।

बिम्बसार : (भर्राये स्वर से) आज भी नहीं आया ?

वासवी : नहीं, प्रातःकाल से प्रतीक्षा कर रही हूँ, पर शून्य-दृष्टि द्वार तक जाकर लौट आती है।

बिम्बसार : प्रतीक्षा मत करो, देवी ! अजात का शासन यदि हमारे भूखे रहने से ही सुदृढ़ होता है, तो देवी, हमारी भूख में ही हमारा निर्वाण है। हम भोजन की कामना नहीं करेंगे।

वासवी : न करें, किन्तु मैं कैसे यह सहन करूँ कि आर्यपुत्र, जो कुछ समय पूर्व मगध के सम्राट् थे, आज सामान्य भोजन के भी अधिकारी नहीं समझे गये ! मगध-सम्राट् के भाग्य में आज साधारण अन्न के दाने भी नहीं हैं ! **(सिसकी)** आज चार दिन हो गये और नियन्त्रण में रखे गये मगध-सम्राट् के लिए मिट्टी के पात्र में रखा हुआ रूखा-सूखा भोजन भी नहीं है। यह कैसा शासन है जिसमें पिता की भूख ही पुत्र की राज्यश्री का प्रतीक है ? आज आर्यपुत्र को साधारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरुष की भाँति अपनी भूख बुझाने का भी अधिकार नहीं है ? (सिसकियाँ)

बिम्बसार : शान्त, शान्त, वासवी ! इन आँसुओं से मेरे धैर्य की शिला को बहाने का प्रयत्न न करो। बिम्बसार इतना निर्बल नहीं है कि वह बीते हुए राज्य-वैभव की स्मृति में अपने बन्दी-जीवन की वास्तविकता भूल जाय। बन्दी जीवन ऐसा ही होता है। सम्राट् की दृष्टि ही उसके भविष्य की दिशा है, फिर वह सम्राट् चाहे अपना पुत्र ही क्यों न हो ! आज मेरा कुणीक मगध का सम्राट् है। वह चाहता है कि हम बन्दी हों, तो हम बन्दी हैं। वह चाहता है कि हम भूख से मरण को प्राप्त हों, तो हम भूख से मरण को प्राप्त होंगे; किन्तु हम तड़पेंगे नहीं, देवी ! हम प्रलय की आँधी में उड़ेंगे, पर हमारी आँखों से आँसू नहीं गिरेंगे, क्योंकि हम मनुष्य हैं जिसकी सत्ता सर्वोपरि है। सुख और दुःख दोनों हम समान रूप से भोग सकते हैं। भूख से हम मूर्च्छित होंगे, लेकिन हम यह नहीं कहेंगे कि हमें भोजन दो। भोजन देनेवाले की इच्छा ही सत्य है। हमारी इच्छा कुछ महत्त्व नहीं रखती, देवी !

वासवी : आर्यपुत्र ! मैं भी स्वाभिमान रखती हूँ, यह समस्त मगध की प्रजा जानती है और इसीलिए मैं यह सहन नहीं कर सकती कि पुत्र इतना अभिमानी बने कि वह राज्य के लोभ से पिता को सिंहासन से हटाकर बन्दी-गृह में डाल दे और स्वयं सम्राट् बन जाय।

बिम्बसार : वासवी ! तुम महादेवी थीं, किन्तु तुम राजमाता नहीं थीं। राजमाता लिच्छिवि कुमारी से पूछो कि सिंहासन प्राप्त करना प्रत्येक युग का आदर्श है या नहीं ? और फिर सिंहासन-त्याग मैंने स्वयं किया। तथागत की यही इच्छा थी कि मैं सांसारिक वैभवों से विरक्त होकर विश्राम लूँ। फिर गृह-विवाद और आन्तरिक संघर्षों से मगध को बचाना भी तो मेरा धर्म था। मैंने सिंहासन-त्याग किया। और कुणीक बड़ा हुआ, उसे भी तो उसका अधिकार मिलना चाहिए।

वासवी : आपने मगध के लिए इतना त्याग किया; किन्तु क्या कुणीक और कुणीक की माता लिच्छिवि कुमारी ने इस त्याग की सराहना की ?

बिम्बसार : देवी ! त्याग यदि घुटनों के बल बैठकर सराहना की भिक्षा माँगे तो क्या उसे हम त्याग कह सकते हैं ? मेरे त्याग को सराहना की अभिलाषा नहीं रही। वह मगध के प्रति मेरा कर्तव्य था जिसे मैंने पूरा किया। कर्तव्य और प्रशंसा का संगम होना कर्तव्य के लिए अभिनन्दनीय नहीं है।

वासवी : किन्तु, आर्यपुत्र ! आपके कर्तव्य का यह पुरस्कार भी तो नहीं है कि आपकी स्वतन्त्रता का अपहरण हो और आपका निवास-स्थान बन्दीगृह में परिवर्तित कर दिया जावे।

बिम्बसार : यह हमारा दुर्भाग्य है कि कुणीक पर हमारा प्रभाव नहीं रह सका। कुणीक अपनी माता लिच्छिवि कुमारी की छाया में पोषित हुआ और देवदत्त की कूटनीति में उसे गति मिली। तथागत की प्रतिद्वन्द्विता में देवदत्त जिस प्रति-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिंसा से प्रेरित हुआ है वही प्रतिहिंसा कुणीक के हृदय में भी जाग उठी है और तथागत के प्रति मेरी श्रद्धा ही कदाचित् मेरे बन्दी-जीवन का रहस्य है ।

वासवी : हो सकता है, आर्यपुत्र ! किन्तु मैं उस प्रतिहिंसा को क्या कहूँ जिसमें पुत्र अपने पिता के वात्सल्य को भूलकर उसे बन्दी बना दे और मनुष्यता की सारी मर्यादाओं को तोड़ दे ।

बिम्बसार : यह मनुष्यता की बात नहीं है, देवी ! यह सम्राट् की बात है, सम्राट् की ! अहंकार के अभिशाप ही का नाम तो सम्राट् है, जैसे फूलों के चारों ओर काँटों की बेल हो । यह महत्वाकांक्षा की बेल है, अमर-बेल है, जो बड़े-से-बड़े राज्य पर चढ़ जाती है और अपने बोझ से—अपनी सहस्र-सहस्र शाखाओं के बोझ से—राज्य को दबा देती है । राज्य का रस चूसकर लहलहाती है, बोझिल बन जाती है और राज्य को, राज्य को......

[खाँसी आ जाती है ।]

वासवी : विश्राम करें, आर्यपुत्र ! आप बहुत दुर्बल हो गये हैं, यह जल ही ग्रहण कीजिए ।

[पात्र से जल भरकर देती है ।]

बिम्बसार : **(जल पीकर)** यही मेरे लिए अमृत है । इसे पीकर मैं जीवन के अन्तिम क्षण तक जागता रहूँगा । हाँ, तुम शयन करो ! रात्रि का दूसरा पहर बीत रहा है । नक्षत्र ऊपर उठ चुके हैं । **(हँसकर)** ये हमारे भाग्य के नक्षत्र नहीं हैं । मेरे पुत्र के शासन में मगध का भाग्य-नक्षत्र ऊपर उठे, यही मेरी कामना है ।

वासवी : इसी कामना के साथ आप शयन करें ।

बिम्बसार : शयन नहीं कर सकूँगा, देवी ! मेरे मस्तिष्क में प्रलय की आँधी है, जिसमें मेरे जीवन के शेष क्षण सूखे पत्ते की भाँति दिशा-शून्य होकर बिखर रहे हैं, उन्हें रोकने की चेष्टा न करो । उन्हें रोकोगी तो वे चूर-चूर हो जायेंगे और उन्हें चूर-चूर करने से मगध में धूल की मात्रा और भी बढ़ जायगी । मैं नहीं चाहता कि हमारा मगध धूल से अधिक धूमिल बने ।

[पास ही किसी नारी का भयानक चीत्कार । 'हाय, मेरे लाल को बचा लो ! मेरे लाल को बचा लो ! मैं भी मर जाऊँगी, मेरे लाल को बचा लो ! कोई ! कोई तो मेरे लाल को बचा लो !']

वासवी : **(करुण स्वर से)** किसी नारी का करुण चीत्कार है, आर्यपुत्र ! मैं बाहर देखती हूँ, कौन-सी दु:खिनी नारी इतने अन्धकार में इस भाँति भटकती फिर रही है ।

[शीघ्रता से बाहर जाती है ।]

बिम्बसार : **(अपने-आप)** अन्धकार ! मेरे भाग्य में समाया हुआ अन्धकार आज इतने घने रूप में संसार में भी समा रहा है । इस अन्धकार का क्या रहस्य है ? यह अन्धकार मेरे ही भाग्य में रहता तो अच्छा था । मेरे भाग्य ! क्या तुझमें

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर्याप्त स्थान नहीं है कि तू सारे संसार के अन्धकार को समेट ले ? उसे आकाश की शरण में जाने का अवसर क्यों देता है ? मेरी भाँति तू भी शरणागत वत्सल बन, जिससे अन्धकार को और अन्धकार के भीतर किसी नारी को भटकने की आवश्यकता न पड़े ।

[नारी की सिसकियाँ अत्यन्त समीप आ जाती हैं ।]

[वासवी का प्रवेश]

वासवी : आर्यपुत्र ! एक अत्यन्त दुःखिनी नारी है जो अपनी कुटी के उपवन में से होकर जा रही थी । मैं द्वार पर नियुक्त रक्षक की स्वीकृति से उसे बुला लाई हूँ ।

बिम्बसार : किन्तु हम उसके कष्टों का निवारण कैसे कर सकते हैं, देवी ! उसके अपराधी को दण्ड किस प्रकार दे सकेंगे ? आज हम सम्राट् नहीं हैं । कहाँ है वह स्त्री ?

वासवी : वह यहाँ आ गयी है । (**नेपथ्य की ओर देखकर**) आओ बहन !

[अस्त-व्यस्त वेश में एक स्त्री का प्रवेश]

बिम्बसार : (**उठकर, स्त्री से**) भद्रे, तुम कौन हो, तुम्हें क्या दुःख है ?

[स्त्री फूट-फूटकर सिसकियाँ लेने लगती है ।]

वासवी : बोलो बहन, तुम्हें कौन-सा दुःख है ?

स्त्री : (**सिसकियाँ लेती हुई**) मेरे लाल को बचाओ, देवी ! मेरे लाल को बचाओ ! मैं बड़ी अभागिन नारी हूँ, मेरे लाल को बचा लो !

वासवी : (**सहानुभूतिपूर्वक**) तुम्हारे लाल को ? कहाँ है वह ? उसे क्या कष्ट है ?

स्त्री : देवी ! चार दिनों से उसके मुँह में अन्न का दाना भी नहीं गया । वह भूख से छटपटा रहा है । उसके प्राण बचा लो । (**बिम्बसार से**) मेरा लाल भूख की ज्वाला में जल रहा है । वह नन्हा-सा सुकुमार बच्चा है । अधिक दिनों तक भूख की ज्वाला नहीं सह सकेगा ! उसे बचाइये, महाराज !

बिम्बसार : (**सन्तोष देते हुए**) मगध में अन्न की कमी नहीं है, देवी ! तुम कहीं से भी अन्न प्राप्त कर सकती हो, जिसे हम नहीं प्राप्त कर सकते। उससे तुम अपने बच्चे के प्राण बचा सकती हो ।

स्त्री : यह सम्भव नहीं है, महाराज ! राजसत्ता ने मेरा घर-द्वार सब छीन लिया। मैं अनाथ हूँ, महाराज ! मुझे अन्न कहीं नहीं मिल रहा है । मैं द्वार-द्वार जाकर भीख माँग चुकी । किसी ने मुझे एक मुट्ठी भी अनाज नहीं दिया । (**सिसकियाँ**)

बिम्बसार : मगध की प्रजा इतनी हृदयहीन नहीं है, देवी !

स्त्री : हृदयहीन नहीं है, महाराज ! किन्तु सम्राट् ने आज्ञा दे दी है कि जो मुझे एक मुट्ठी भी अन्न देगा, उसे बड़ा कठोर दण्ड दिया जायगा ।

बिम्बसार : क्यों ? उन्होंने इस प्रकार की आज्ञा क्यों दी ?

स्त्री : महाराज ! मैं तथागत का उपदेश सुनने के लिए उनके संघ में चली गयी

था। सम्राट् के गुप्तचरों ने जानेवाले व्यक्तियों की सूचना सम्राट् को दे दी। वहीं आचार्य देवदत्त बैठे थे। उन्होंने कहा कि जो गौतम के संघ में गया है उसका घर-द्वार और सम्पत्ति छीन लो। उसे एक मुट्ठी-भर अन्न न दो। सम्राट् ने मेरे लिए भी इसी दण्ड की घोषणा कर दी। मुझे मरने का भय नहीं है; किन्तु मेरा तीन वर्ष का अनाथ बच्चा बिना अन्न के एक दिन भी जीवित नहीं रह सकेगा। मुझे थोड़ा-सा अन्न चाहिए, महाराज! मेरे लाल के जीवन के लिए मुझे कुछ अन्न दे दीजिए।

बिम्बसार : (**क्षुब्ध होकर**) अन्न! अन्न! अन्न! मगध के सम्राट् ने अन्न को कितना महत्त्व दे दिया है। (**गहरी साँस लेकर**) भद्रे! मैं किस प्रकार कहूँ, मै तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता।

वासवी : बहन, जिस लाल को बचाने के लिए तुम हाहाकार कर रही हो, वह बड़ा होने पर तुम्हें बन्दीगृह में भी तो डाल सकता है?

बिम्बसार : व्यंग्य मत करो, इस समय माँ के सामने उसके पुत्र की प्राण-रक्षा का प्रश्न है।

वासवी : क्षमा करें, आर्यपुत्र! जीवन की विषमता हृदय को स्थिर नहीं होने देती। बहन! तुम भी बुरा न मानना। मैं इस समय जीवन के बहुत बड़े संकट में हूँ। तुम्हारी क्या सहायता करूँ? अन्न को छोड़कर जो कुछ भी हमारे पास है, तुम्हारा है।

स्त्री : और कुछ लेकर क्या करूँगी, देवी! मेरे बच्चे को अन्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए। वह उठ-बैठ भी नहीं सकता। उसकी साँस वेग से चलने लगी है, आँखें ऊपर की ओर खिंच गई हैं। उसके मुँह से 'माँ' और 'भूख' यही दो शब्द निकलते हैं। हाय, मेरा लाल, (**सिसकियाँ**) मुझे छोड़कर जा रहा है! मैं अपने लाल के मुँह में अन्न के दो दाने भी नहीं डाल सकती। देवी! मैं माँ नहीं हूँ, माँ नहीं हूँ, राक्षसी हूँ, पिशाचिनी हूँ। अपने लाल को मारकर ही रहूँगी। अपने लाल का जीवन लेकर ही रहूँगी। (**सिसकियाँ**) मेरा लाल! हाय, मेरा लाल......!

बिम्बसार : देवी! यदि ऐसा ही है तो सम्राट् की निरंकुशता की वेदी पर एक बलि और होने दो। आज मुझे अपने अधिकार का ध्यान हो आता है। जब मेरे हाथ में शासन था, भगवती अन्नपूर्णा प्रत्येक नागरिक की माता थीं। जिस भोजन से हमने सहस्रों बार मगध की प्रजा को संतुष्ट किया, वही भोजन आज हमारे पास नहीं है। इससे अधिक मुझे क्या कष्ट हो सकता है, भद्रे!

स्त्री : (**सिसकियाँ रोककर**) महाराज! मुझे क्षमा कीजिए। मैंने आपको कष्ट दिया। मैं अपने लाल को तड़प-तड़पकर ही मर जाने दूँगी।

वासवी : नहीं, बहन! तुम्हारा लाल तड़प-तड़पकर नहीं मरेगा। मैं तुम्हारे लिए—तुम्हारे लाल के लिए—भिक्षा माँगूँगी। जो कार्य मैंने जीवन में कभी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं किया, वह तुम्हारे लाल के लिए करूँगी। मैं आर्यपुत्र के भोजन के लिए भिक्षा नहीं माँग सकी, पर तुम्हारे लाल के लिए भिक्षा माँगूँगी।

बिम्बसार : वासवी ! तुम मानवी नहीं देवी हो। अपने पति के आत्म-सम्मान के लिए तुमने भिक्षा नहीं माँगी। इस स्त्री के लाल के लिए भिक्षा माँगो; किन्तु क्या मगध की राज-सत्ता तुम्हें भिक्षा माँगने देगी ? क्या तुम इस आश्रम में भी स्वतंत्र रखी गई हो ? देवी वासवी ! अन्न न सही, इसे और ही कुछ दे दो।

वासवी : आर्यपुत्र ! अब हमारे पास शेष क्या है ? मेरे हाथों में यही एक स्वर्ण-कंकण है। **(स्त्री से)** देवी ! यह स्वर्ण-कंकण लो और किसी को देकर अपने लाल के लिए अन्न प्राप्त करो।

स्त्री : देवी ! मैं यह स्वर्ण-कंकण कैसे लूँ ? इसे कहाँ ले जाऊँगी ? इसे देखकर मगध के किसी भी व्यक्ति को पता लग जायगा कि यह महादेवी वासवी का स्वर्ण-कंकण है। राजसत्ता भी सतर्क है, और फल यह होगा कि दूसरे ही क्षण राजसत्ता आपको निमंत्रित करेगी कि वह आपको दण्ड दे। **(बिम्बसार से)** मैं अपने लाल की रक्षा में महाराज को दण्ड का भागी नहीं बनाऊँगी।

बिम्बसार : इसकी चिन्ता न करो, भद्रे ! पहले अपने लाल के प्राणों की रक्षा करो। हम राजदण्ड सहन कर लेंगे। हमारी वर्तमान स्थिति से भयानक राजदण्ड की यंत्रणा न होगी।

स्त्री : सत्य है, देव ! किन्तु महारानी......!

बिम्बसार : **(बीच में ही)** वे मगध की महारानी नहीं हैं, भद्रे ! यह भयानक शब्द न कहो। मैं मगध के वृद्ध नागरिक के रूप में यह आदेश देता हूँ कि अपने लाल की जीवन-रक्षा के लिए यह स्वर्ण-कंकण स्वीकार करो। इसे बेचकर अन्न प्राप्त करो। जाओ, अब इस कष्ट को हम अधिक सहन नहीं कर सकेंगे। आज सागर सूख गया है, उसमें जल का एक कण भी शेष नहीं है। हम तुम्हें खारे जल की एक बूँद भी नहीं दे सके। आज हमारी सहानुभूति अमावस के उस चन्द्र की भाँति है जिसमें प्रकाश की एक कला भी शेष नहीं रह गई है।

स्त्री : **(द्रवित होकर)** महाराज, आपकी यह दशा......।

वासवी : लो, यह स्वर्ण-कंकण। इससे अपने लाल की प्राण-रक्षा करो। इसमें जड़े हुए रत्नों का प्रकाश तुम्हारे लाल के जीवन का प्रकाश बने।

स्त्री : मैं कृतार्थ हुई, देवी ! **(बिम्बसार से)** मैं कृतार्थ हुई, महाराज ! प्रणाम ! **(वासवी से)** देवी ! प्रणाम !

वासवी : चलो, मैं तुम्हें द्वार तक पहुँचा दूँ, जिससे तुम्हें रक्षकों से मुक्ति मिले।

[स्त्री के साथ वासवी का प्रस्थान]

बिम्बसार : चली गई। बेचारी स्त्री ! माता बनकर और भी कितनी करुण हो जाती है। अपने पुत्र के जीवन की आशंका से कितनी व्यथित है वह। देवी वासवी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहती हैं कि इसमें जड़े हुए रत्नों का प्रकाश तुम्हारे लाल के जीवन का प्रकाश बने। जीवन का प्रकाश ! मेरा लाल भी एक रत्न था। कुणीक ! अजातशत्रु ! जिसमें जीवन का प्रकाश था ; किन्तु मैं नहीं जानता था कि वह रत्न वज्र की भाँति कठोर होगा ! उसमें कान्ति होगी किन्तु सरलता नहीं, सौन्दर्य होगा किन्तु सौभाग्य नहीं। मेरा ही रत्न मेरी दरिद्रता का अग्रदूत होगा, यह मैं नहीं जानता था। दरिद्रता जो आज मगध में पुरस्कार की भाँति वितरित की जा रही है। दरिद्रता ! अन्न का अभाव ! फूल से भी कोमल लाल अन्न के अभाव में तड़पकर प्राण त्याग रहे हैं। (**उग्रता से**) बिम्बसार ! तू विद्रोह कर। यह मानवता का सबसे बड़ा अभिशाप है। आज भूख से एक शिशु की हत्या हो रही है, कल शत-शत मानवता के कुसुम इसी ज्वाला में झुलस-झुलसकर नष्ट होंगे। विद्रोह कर ! विद्रोह कर ! जीवित रहने का अधिकार सभी प्राणियों को समान रूप से है। मनुष्य के जीवन के लिए तू विद्रोह कर ! (**शान्त होकर सोचते हुए**) पर तथागत ! तुम कहते हो कि सभी प्राणियों पर समदृष्टि रखो, यदि विश्व में किसी अस्त्र का प्रयोग हो सकता है तो वह करुणा ही है। करुणा से ही विश्व-मैत्री सम्भव है। तथागत ! फिर मैं क्या करूँ ? मैं भूल रहा हूँ ! मैं भूल रहा हूँ ! मुझे प्रकाश दो, तथागत ! मुझे प्रकाश दो ! मैं अन्धकार में खो रहा हूँ...रात के रहस्य में......!

[**वासवी का प्रवेश**]

वासवी : आर्यपुत्र ! रात्रि के अन्धकार में वह स्त्री विलीन हो गयी। मैंने उसका नाम जानने की चेष्टा की; किन्तु वह नाम बतलाये बिना ही चली गई। मुझे इसमें कुछ रहस्य ज्ञात होता है, आर्यपुत्र !

बिम्बसार : चिन्ता न करो देवी ! यह सृष्टि ही रहस्यमय है। तारों को देखो, कितने उज्ज्वल दिखाई देते हैं; किन्तु वे अपना कितना सत्य हम पर प्रकट करते हैं ? विस्तृत आकाश में उदित होकर रात-भर चमकते हैं और प्रातःकाल अपना रहस्य अपने साथ लिए हुए अस्त हो जाते हैं। सारी सृष्टि प्रवंचनामयी है। यदि उस स्त्री का लाल भूख से मरता भी न हो तो शिशु को बचाने की हमारी भावना ही अभिनन्दनीय है। तुमने अपना कर्तव्य किया। उससे अधिक सन्तोष और क्या हो सकता है ?

वासवी : किन्तु आर्यपुत्र ! इस सन्तोष में भी न जाने कहाँ का दुर्भाग्य झाँक रहा है, और हम यह भी नहीं जानते कि उस दुर्भाग्य की सीमा कितनी है।

बिम्बसार : मैं जानता हूँ, देवी, कि उस दुर्भाग्य की सीमा कितनी है क्योंकि वह दुर्भाग्य अपने पुत्र के द्वारा दी गई सम्पत्ति है। मेरे पुत्र ने—मेरे ही हृदय के टुकड़े ने—मुझे विपत्ति का यह कोष दिया है, देवी !

वासवी : आर्यपुत्र......!

बिम्बसार : विपत्ति का यह कोष। मेरे शासन-काल में ये विपत्तियाँ नहीं थीं। अब

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुणीक के संकेत से उभरकर मेरे द्वार पर आ गयी हैं और बदला लेने की प्रतिहिंसा में मेरे जीवन में विष के बीज बो रही हैं। मगध की साधारण प्रजा भी—नारी भी—उन विष के बीजों पर कपट का जल सींच सकती है।

वासवी : सत्य, आर्यपुत्र ! द्वार पर पहुँचते ही उस स्त्री ने रक्षकों को कुछ संकेत किया। मैंने धुंधले प्रकाश में भी देख लिया कि उस स्त्री ने एक रहस्यमय ढंग से हाथ उठाया और तभी रक्षकों के ओठों पर एक हल्की-सी हँसी चमक उठी। वह स्त्री छद्मवेशिनी ज्ञात होती है। उसने कोई जाल तो नहीं रचा ?

बिम्बसार : छोड़ो इन बातों को, देवी ! इस सम्बन्ध में सोचना व्यर्थ है, विशेषकर जब हम भोजन न मिलने से प्रतिदिन मृत्यु के द्वार पर पहुँच रहे हैं। पर मुझे आश्चर्य है, देवी, कि तुम इतनी सुकुमार होकर भी किस प्रकार भूख से युद्ध कर रही हो ? इतने कष्ट पाने पर भी तुम्हें अपने सम्बन्ध में चिंता नहीं है ?

वासवी : आर्यपुत्र ! आप इस सम्बन्ध में कुछ न सोचें, आपकी चिंता में भूलकर मुझे अपनी चिंता के लिए अवकाश ही नहीं रह जाता। मैं तो यही सोच लेती हूँ कि यदि हमारे भाग्य में क्षुधा ही से प्राणान्त होना लिखा है तो वह हम प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करेंगे।

बिम्बसार : मुझे यह सुनकर सन्तोष है, देवी !

वासवी : अब आप शान्ति से शयन करें।

[एकाएक खड़खड़ाहट के साथ समुद्रदत्त और एक सैनिक का प्रवेश]

समुद्रदत्त : महाराज और महारानी की सेवा में प्रणाम !

बिम्बसार : यह सम्बोधन हमें नहीं चाहिए। कौन है जो इन दुर्दिनों में हमारा परिहास कर रहा है ?

समुद्रदत्त : मैं हूँ, आचार्य देवदत्त का सहायक समुद्रदत्त। **(सैनिक से)** सैनिक उग्रजित्, तुम द्वार पर ही रहो ! आवश्यकता होने पर तुम बुलाये जाओगे।

उग्रजित् : जो आज्ञा। **[प्रस्थान]**

बिम्बसार : आचार्य देवदत्त के सहायक समुद्रदत्त को इस कुटी में आने की आवश्यकता क्यों पड़ी ?

समुद्रदत्त : आचार्य देवदत्त की आज्ञा, श्रीमन् !

बिम्बसार : बिम्बसार के जीवन को अब भी आज्ञाओं के अनुसार चलना है ? क्या उन आज्ञाओं का अन्त कभी न होगा ? इस निकृष्ट दशा में डालने के उपरान्त अब किस आज्ञा का अंकुश बिम्बसार के मस्तक पर है ?

समुद्रदत्त : क्षमा करें, श्रीमान् एक अभियोग के भागी हैं।

वासवी : **(चौंककर)** अभियोग ? कैसा अभियोग ?

समुद्रदत्त : हाँ, देवी ! एक दारुण अभियोग है।

4729

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिम्बसार : राजसिंहासन से दूर होकर एक कुटी में निवास करते हुए, प्रातःकाल के एक तारे की भाँति निष्प्रभ होते हुए, बिम्बसार किस अभियोग का भागी हो सकता है ?

वासवी : जिस सम्राट् ने अपने जीवन-भर अभियोगों का निर्णय कर अपराधियों को दण्ड दिया है, वह अभियोग का भागी किस प्रकार होगा ?

समुद्रदत्त : देवी ! इस अभियोग में आप भी सम्मिलित हैं।

वासवी : मैं भी सम्मिलित हूँ ? हो सकता है । यदि आर्यपुत्र अभियोग के भागी हैं तो वामाँग भी भागी होगा ।

समुद्रदत्त : **(बिम्बसार से)** क्षमा करें, श्रीमन् ! मेरे पास अधिक समय नहीं है । इस समय अभियोग सिद्ध करने का उत्तरदायित्व मुझ पर है । अभियोग यह है कि आपने राजाज्ञा की अवहेलना की है ।

बिम्बसार : राजाज्ञा की अवहेलना ? स्पष्ट करो, समुद्रदत्त ! मैंने कौन-सी राजाज्ञा की अवहेलना की है ?

वासवी : यदि बिना भोजन के जीवित रहना राजाज्ञा की अवहेलना है तो हम अवश्य ही अपराधी हैं, समुद्रदत्त !

समुद्रदत्त : क्षमा करें, देवी ! राजनीति में व्यंग्य के लिए स्थान नहीं है । अभी एक स्त्री आप की कुटी में आई थी ?

वासवी : हाँ, बेचारी अशान्त और दुःखिनी थी । उसका लाल भूख से तड़प-तड़पकर मरने को था ।

समुद्रदत्त : आपकी सेवा में मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि वह स्त्री राजसत्ता से दण्डित है। आचार्य देवदत्त का आदेश है कि उसे भिक्षा में एक मुट्ठी अन्न भी कोई नहीं दे सकता । यदि उसकी कोई सहायता करेगा तो राजाज्ञा की अवहेलना करेगा और राजसत्ता उसे अपराधी मानकर दण्ड देगी, चाहे वह मगध का सम्राट् ही क्यों न हो ।

बिम्बसार : इसकी सूचना मुझे है । उस स्त्री ने ही हमें इस राजाज्ञा की सूचना दी थी ।

समुद्रदत्त : तब भी देवी वासवी ने उसकी सहायता करने के लिए उसे अपने हाथों का स्वर्ण-कंकण दिया । आपकी कुटी के बाहर वह स्वर्ण-कंकण के साथ पाई गई ।

वासवी : क्या आप कुटी के बाहर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे ?

समुद्रदत्त : देवी ! अपराधियों के पीछे राजसत्ता की दृष्टि सदैव ही रहती है । किसी भी क्षण हम अपराधियों के कार्यों का लेखा दे सकते हैं ।

वासवी : यह ठीक है, परन्तु मुझे इसमें कुटिलता की गन्ध मिल रही है । जान-बूझकर हमें अभियोग में फँसाने की चेष्टा ज्ञात होती है । वह स्त्री रात्रि के अन्धकार में हमारे उपवन में से होकर निकले, क्रन्दन कर हमारी करुणा को उत्तेजित करे, हम उसकी सहायता करें, और वह स्त्री रक्षकों को रहस्यमय

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संकेत कर इसकी सूचना समुद्रदत्त को दे और हम इस दंड के भागी बन जाएँ। यह देवदत्त की क्षुद्रता है। क्या कुटिलता ही मगध राष्ट्र की राजनीति है ?

समुद्रदत्त : यह राजद्रोह है, देवी ! और राजद्रोह का दण्ड प्राणदण्ड है।

बिम्बसार : चुप रहो, समुद्रदत्त ! मैंने सिंहासन छोड़ दिया है, किन्तु उसका यह तात्पर्य नहीं है कि राज्य के साधारण सेवक भी हमसे स्वेच्छापूर्वक व्यवहार कर सकें। तुम अपना कर्तव्य कर सकते हो किन्तु हममें से किसी का भी अपमान नहीं कर सकते। अधिक-से-अधिक अभियोग स्पष्ट कर हमें दण्ड की सूचना दे सकते हो।

समुद्रदत्त : आचार्य देवदत्त का आदेश है कि राजाज्ञा के विरुद्ध उस नारी को सहायता करने के कारण श्रीमान् बिम्बसार और देवी वासवी राजद्रोह के अपराधी हैं।

बिम्बसार : और राजद्रोह का दण्ड प्राणदण्ड है।

समुद्रदत्त : हाँ, महाराज !

बिम्बसार : 'महाराज' शब्द का सम्बोधन मत करो। यदि हमने राजद्रोह किया है तो तुम हमें प्राणदण्ड दे सकते हो।

समुद्रदत्त : आचार्य देवदत्त की ऐसी ही आज्ञा हुई है।

वासवी : अभी-अभी यह नारी कुटी के बाहर गयी है। इतने थोड़े समय में हमारे अभियोग की सूचना देवदत्त के पास पहुँच गयी और उन्होंने दण्ड की आज्ञा भी दे दी ? यह सचमुच एक विचित्र घटना है।

समुद्रदत्त : **(राजाज्ञा-पत्र निकालकर)** आचार्य देवदत्त की दण्ड-घोषणा का राज-पत्र है।

बिम्बसार : **(देखकर विचारते हुए)** हूँ, अब मेरे मन में विश्वास हो गया कि यह एक पूर्व-निश्चित अभिसन्धि ही है। बुद्धदेव की प्रतिष्ठा देवदत्त को सहन नहीं हो सकती। और जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक बुद्धदेव की अप्रतिष्ठा कभी नहीं होगी। इसलिए बुद्धदेव को गिराने के लिए मेरी मृत्यु की आवश्यकता है। क्यों समुद्रदत्त ! वह नारी देवदत्त के द्वारा ही भेजी गयी थी ?

समुद्रदत्त : मैं इस प्रश्न का उत्तर देने लिए बाध्य नहीं हूँ, श्रीमन् !

बिम्बसार : ठीक है, वह नारी देवदत्त के द्वारा ही भेजी गयी थी। **(वासवी से)** देवी ! तुम्हारा अनुमान सत्य है। अपराध की कल्पना पहले ही कर ली गयी थी। नारी से अभिनय कराया गया। वह संघ में गयी। उसकी सम्पत्ति का अपहरण किया गया। राज्य की घोषणा हुई कि उसकी सहायता कोई न करे। उसका बच्चा चार दिनों से भूखा बना। यह मेरे चार दिनों के उपवास का व्यंग्य था।

वासवी : सत्य है, आर्यपुत्र !

बिम्बसार : उसकी करुणा से हम द्रवित हो जाएँ, उसकी सहायता करें और इस प्रकार राजदंड के भागी बनें। देवदत्त ने यह विचार कर राजदण्ड का आज्ञा-पत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहले से ही समुद्रदत्त को दे दिया और नारी ने अन्धकार में विलीन होकर प्रतीक्षा करते हुए समुद्रदत्त को अपनी कुटिल योजना की सफलता की सूचना भी दे दी। बोलो, समुद्रदत्त ! यह ठीक है ?

समुद्रदत्त : (हतप्रभ होकर) आप स्वयं सम्राट् रह चुके हैं, महाराज ! आप सत्य अनुमान कर सकते हैं, किन्तु मैं तो आज्ञाकारी सेवक हूँ। मुझे राजाज्ञा का पालन करना ही होगा।

बिम्बसार : तो राजाज्ञा का पालन करो। देवदत्त के अनुसार हमने राज्य के प्रति अपराध किया है। उस अपराध का दण्ड है—प्राणदण्ड। तुम वधिक को अपने साथ लाये हो ?

समुद्रदत्त : हाँ, महाराज ! भद्रजित् मेरे साथ आया है, वह द्वार पर है।

बिम्बसार : तो उसे बुलाओ और मेरे वध की आज्ञा दो। बिना भोजन के मैं यों ही मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहा हूँ। यह प्राणदण्ड मेरी भूख की यंत्रणाओं को सदैव के लिए समाप्त कर देगा। कहाँ है भद्रजित् ? उसे यहाँ आने की आज्ञा दो।

वासवी : (आगे बढ़कर) पहले प्राणदण्ड मुझे मिलना चाहिए, क्योंकि मैंने ही अपना स्वर्ण-कंकण उतारकर उस नारी को दिया था।

बिम्बसार : देवी, स्वर्ण-कंकण उतारकर देने का आदेश तो मेरा था।

वासवी : नहीं, आर्यपुत्र ! आदेश में अभियोग की पूर्ति नहीं है, क्रिया-निर्वाह में अभियोग की पूर्ति है और फिर मैं अपनी आँखों से यह जघण्य कार्य होते नहीं देख सकूँगी। समुद्रदत्त ! अपराध मेरा है, मुझे प्राणदण्ड पहले मिलना चाहिए।

बिम्बसार : (समुद्रदत्त से) समुद्रदत्त ! इस दण्ड की सूचना राज्य-परिषद् को है ?

समुद्रदत्त : आचार्य देवदत्त के निर्णय की मान्यता सर्वप्रथम है। राज्य-परिषद् के सभ्यों को वे अपने कार्य के औचित्य से संतुष्ट कर सकते हैं।

बिम्बसार : और मगध-सम्राट् अजातशत्रु को हमारे प्राणदण्ड की सूचना है ?

समुद्रदत्त : मगध-सम्राट् जो भी कार्य करते हैं, आचार्य देवदत्त के निर्णयानुसार ही करते हैं। अतः इस सम्बन्ध में मगध-सम्राट् की सहमति का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

बिम्बसार : मैं एक बार मगध-सम्राट् को देख सकता हूँ, समुद्रदत्त !

समुद्रदत्त : श्रीमन्, क्षमा करें। यह असंभव है। आचार्य देवदत्त के आज्ञा-पत्र में इसकी कोई स्वीकृति नहीं। अन्तिम इच्छा की पूर्ति कर देने की भी स्वीकृति नहीं है।

वासवी : देवदत्त मानव नहीं, दानव है।

बिम्बसार : क्रोध न करो, देवी ! हमें राजसत्ता की प्रत्येक आज्ञा मान्य है। **(समुद्रदत्त से)** समुद्रदत्त, कोई चिन्ता की बात नहीं। बुलाओ बधिक उग्रजित् को। हम मगध-सम्राट् को नहीं देख सकेंगे, कोई हानि नहीं। मुझे प्राणदण्ड देने

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के बाद मेरा यह प्रश्न मगध-सम्राट् के पास भिजवा देना कि पिता की वात्सल्य-धारा का उत्तर रक्तधारा से देकर तुमने किस आदर्श की पूर्ति की है ? अच्छा, अब मैं मरने के लिए प्रस्तुत हूँ। समुद्रदत्त ! तुम अपना कार्य पूरा करो। **(वासवी से)** वासवी ! देवी ! विदा।

वासवी : (चीत्कार करते हुए) यह नहीं हो सकता ! यह नहीं हो सकता ! मरने का अधिकार सर्वप्रथम मेरा है।

समुद्रदत्त : (गम्भीरता से) आप चिन्तित न हों, देवी ! आचार्य देवदत्त ने इस बात की व्यवस्था भी कर दी है कि आवश्यकता पड़ने पर आप दोनों को एक साथ ही दण्ड दिया जा सकता है। **(पुकारकर)** उग्रजित् !

[उग्रजित् का प्रवेश]

उग्रजित् : आज्ञा, श्रीमन् !

समुद्रदत्त : भद्रजित् को कृपाण सहित यहाँ आने की सूचना सुनाओ !

उग्रजित् : जो आज्ञा, श्रीमन् !

वासवी : मैं बहुत कृतज्ञ हूँ, समुद्रदत्त !

समुद्रदत्त : इसमें कृतज्ञ होने की बात नहीं है, देवी ! यह तो राजाज्ञा है। हाँ, आज्ञा देने के पूर्व मैं आचार्य देवदत्त की आज्ञा से आप दोनों को एक आनन्द-संवाद सुना देना चाहता हूँ, जिससे आप अपने जीवन के अन्तिम क्षण में प्रसन्न हो सकें और आनन्द से मर सकें। वह आनन्द-संवाद यह है कि......

वासवी : (बीच ही में टोककर) आर्यपुत्र की कुशलता को छोड़कर संसार में मेरे लिए कोई भी आनन्द-संवाद नहीं हो सकता।

समुद्रदत्त : हो सकता है, देवी ! यह आपके लिए ही नहीं, समस्त मगध-साम्राज्य के लिए आनन्द का संवाद है।

बिम्बसार : तब मैं यह आनन्द-संवाद अवश्य सुनूँगा जिसमें समस्त मगध-साम्राज्य आनन्द का अनुभव कर सकता है। सुनाओ वह आनन्द-संवाद, समुद्रदत्त !

समुद्रदत्त : वह आनन्द-संवाद यह है, वासवी देवी ! आप भी सुनने की कृपा करें !

वासवी : जिसमें आर्यपुत्र की स्वीकृति है वह मुझे सदैव स्वीकार है। सुनाइये, वह आनन्द-संवाद !

समुद्रदत्त : धन्यवाद ! वह आनन्द-संवाद यह है कि......

[उग्रजित् का प्रवेश]

उग्रजित् : श्रीमन्, भद्रजित् कृपाण सहित सेवा में उपस्थित है।

समुद्रदत्त : ठीक है ! उससे कहो कि कुछ क्षण द्वार पर ही रहे। मैं अभी ही उसे भीतर आने का आदेश दूँगा।

उग्रजित् : जो आज्ञा। **[प्रस्थान]**

समुद्रदत्त : अच्छा, तो मैं आप दोनों को आनन्द-संवाद सुनाता हूँ। वह आनन्द-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संवाद यह है कि अजातशत्रु को प्रसेनजित् कौशल-नरेश की कन्या वाजिरा कुमारी से एक पुत्र......

बिम्बसार : **(विह्वल होकर बीच ही में शीघ्रता से)** पुत्र ! पुत्र ! कुणीक को पुत्र प्राप्त हुआ है ! **(उद्विग्न होकर वासवी को सम्बोधित कर)** वासवी, देवी ! कुणीक के यहाँ पुत्र हुआ है। मैं...मैं...उस पुत्र को देखूँगा। अपने पुत्र को देखूँगा।......मगध के भावी नरेश को देखूँगा...। समुद्रदत्त ! मुझे ले चलो...! मुझे ले चलो...! राजभवन में मुझे ले चलो ! मैं कुणीक के पुत्र को देखूँगा...। नन्हें-से राजकुमार को देखूँगा...। उसे एक चुम्बन...स्नेह-चुम्बन दूँगा। वासवी ! देवी !... उसे एक स्नेह...चुम्बन दूँगा। फिर मुझे... फिर मुझे प्राणदण्ड दे देना। उसी क्षण...उसी क्षण प्राणदण्ड दे देना... पहिले मुझे मेरा छोटा राजकुमार दिखला दो...। मैं उसे देखूँगा...अवश्य देखूँगा...। इसी क्षण देखूँगा...। ओह...इतना सुख...इतना आनन्द...मैं कैसे सँभालूँ ! **(पुकारकर)** वासवी ! शीघ्र चलो। देवी ! शीघ्र चलो...शीघ्र चलो, नहीं तो हम पीछे रह जायँगे, पीछे रह जायँगे...। ओह, मेरा सिर घूम रहा है...मैं गिर पड़ूँगा, वासवी !...मैं गिर...वासवी......देवी......!

[बिम्बसार पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं।]

वासवी : **(शीघ्रता से समीप आकर)** आर्यपुत्र......आर्यपुत्र !

[नेपथ्य में तीव्र घोष—'सम्राट् की जय'......'राजकुमार की जय' ......'मगध के भावी सम्राट् की जय'......'नवीन राजकुमार की जय'......'जय—जय—जय'।]

समुद्रदत्त : **(घबराहट से)** सम्राट् इस समय यहाँ कैसे...यहाँ कैसे आ सकते हैं ? मैं जाकर देखता हूँ। **[शीघ्रता से प्रस्थान]**

[नेपथ्य में 'सम्राट् की जय' का घोष फिर एक बार होता है। 'जय' की ध्वनि समाप्त होते ही द्वार से आते हुए अजातशत्रु का स्वर सुनाई देता है : 'पिता'......'पिता'......'पिता'......! शब्द क्रमशः पास आता है। अजातशत्रु का शीघ्रता से प्रवेश]

अजातशत्रु : **(उद्विग्न और करुण स्वर से)** पिता...! पिता...! पिता जी ! क्षमा...क्षमा ! मैं क्षमा का भिक्षुक हूँ। मैं पितृ-द्रोही हूँ। मैंने जघन्य पाप किया है। मैंने अपने स्वर्ग को नरक में डाल दिया। मुझे राज्य नहीं चाहिए, राज्य नहीं चाहिए। पिता ! पिता ! मुझे केवल आपके चरणों की छाया चाहिए। **(वासवी से)** माँ ! माँ ! पिता जी उत्तर क्यों नहीं देते ? क्या वे मुझसे इतने रुष्ट हैं कि मुझसे बोलना भी उन्हें स्वीकार नहीं ? उनका पुत्र कुणीक सेवा में उपस्थित है।

वासवी : **(सिसकियाँ लेती हुई)** नहीं, कुणीक ! तुम्हारे पुत्र-जन्म के संवाद से

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुम्हारे पिता को इतना ग्रानन्द हुग्रा कि वे ग्रानन्दातिरेक से मूर्च्छित हो गये।

ग्रजातशत्रु : **(विह्वल होकर)** 'ग्रोह, मैं कितना पापी हूँ, पिता ! जो पिता पुत्र के प्रत्येक ग्रानन्द को ग्रपना ग्रानन्द समझता है, उसी पिता को पुत्र ने नियंत्रण में रखा। उसे बिना भोजन के तड़पाया। ग्राह, माता ! मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हें ग्रौर पिता को इतने कष्ट दिये हैं कि यदि तुमने ग्रौर पिता ने मुझे क्षमा नहीं किया तो उनका प्रायश्चित्त सौ जन्मों में भी नहीं हो सकता। पृथ्वी पर साक्षात् देवी ग्रौर देवता की भाँति मैंने माता ग्रौर पिता का मूल्य नहीं समझा। मैं कितना ग्रधम हूँ......कितना नीच हूँ !

वासवी : नहीं, तुम मगधराज हो, कुणीक !

अजातशत्रु : माँ ! मुझे शाप दो। मैंने मगधराज बनकर ग्रपने सच्चे राज्य का तिरस्कार किया है। मेरी माता ने ग्रौर देवदत्त ने ग्रपने स्वार्थों के लिए मेरा बलिदान किया। मुझ पर दया करो, माँ ! मुझे क्षमा करो। मैंने पिता के स्नेह का मूल्य नहीं समझा।

वासवी : कुणीक ! जब तुम स्वयं पिता हुए तब तुमने पिता के स्नेह का मूल्य समझा।

अजातशत्रु : मुझे लज्जित न करो, माँ ! मेरी ग्राँखें लज्जा से ऊपर भी नहीं उठ सकतीं। मैं भ्रम में पोषित हुग्रा। मेरा मार्ग टेढ़ा था। मुझे उचित शिक्षा नहीं दी गयी। मैंने ग्रपने को विश्व-भर में महान् समझा। मैं उद्दण्ड हो गया। ग्रब मुझे ग्रनुभव हुग्रा कि जिस राजमहल में मैं रहा वह तो ईंट-पत्थरों का था। मेरा सच्चा राजमहल तो पिता के चरणों में है। मैंने तुमको ग्रौर पिता को जो दारुण यंत्रणाएँ दी हैं वे सब एक साथ मिलकर मेरे हृदय में दंशन कर रही हैं। माँ ! मुझे क्षमा करो। पिता ! मुझे क्षमा करो। **(वासवी से)** माँ, पिता जी बोलते क्यों नहीं ?

वासवी : **(बिम्बसार से)** ग्रार्यपुत्र ! कुणीक ग्रापके चरणों में क्षमायाचना कर रहे हैं। उन्हें क्षमा कीजिए।

अजातशत्रु : पिता जी ! ग्रापका पुत्र कुणीक ग्रापके चरण छूकर शपथ......**(चरण-स्पर्श करता है। सहसा चीखकर)** पिता जी ! ग्राप कहाँ हैं ! कहाँ हैं ! पिता ! पिता !

वासवी : **(उद्विग्नता से सिसकी लेकर)** ग्रार्यपुत्र ! ग्रार्यपुत्र !

[मूर्च्छित हो जाती है।]

अजातशत्रु : माँ ! तुम मूर्च्छित हो गईं ! ग्रोह, पापी कुणीक ! तू पितृहन्ता है। तू इतने विलम्ब से ग्राया कि पिता बिना क्षमा किये ही चले गये। क्या इस रात का यही रहस्य है, जिसने ग्रपने ग्रन्धकार में मेरे जीवन के वास्तविक सत्य को ढँक लिया था ? ग्रोह, पिता ! ग्राप कितने महान् थे। ग्रपनी यंत्रणाग्रों से निरन्तर युद्ध किया, भूख की ज्वाला में ग्रपने रोम-रोम को जलाया ग्रौर ग्रपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्नेह को सुरक्षित रखते हुए वीर पुरुष की भाँति इस संसार से चले गये। मेरे सुख से सुखी हुए किन्तु उस सुख की सूचना भी नहीं दी। इस सब का दोष इस अभागे कुणीक पर है। इस कुत्सित अजातशत्रु पर है। इस दम्भी मगधराज पर है, जिसने विष को अमृत समझा और पाप को पुण्य समझकर माथे पर लिया। धिक्कार है मुझे! अभागे कुणीक! अब तुझे जीवन-भर शान्ति नहीं मिलेगी। तू आत्म-प्रतारणा की अग्नि में तिल-तिल कर जल...जल...! (**एक गहरी सिसकी**)

[नेपथ्य में जाता हुआ भिक्षु-वर्ग गम्भीर स्वर में सम्मिलित ध्वनि कर रहा है।]

बुद्धं शरणं गच्छामि!
धम्मं शरणं गच्छामि!
संघं शरणं गच्छामि!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 3 :

मर्यादा की वेदी पर

पात्र-परिचय

भैरवी—मस्सगा दुर्ग की वीर नारी
सेल्यूकस—सिकन्दर का सेनापति
एनिसाक्रिटीज़—सिकन्दर का सहचर
आम्भि—तक्षशिला का राजकुमार
देवपुत्र सिकन्दर—ग्रीक विजेता
मीरोईस—पौरव का मित्र
पौरव—पंचनद-नरेश
सैनिक आदि

काल—ई० पू० 326
स्थान—वितस्ता तट का युद्धक्षेत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मर्यादा की वेदी पर

स्थिति : युद्ध-वाद्य बज रहा है। हाथियों की चिंघाड़ों और घोड़ों की टापों का शब्द हो रहा है। दूर से 'मारो, मारो, वितस्ता में डुबा दो ! मारो !' शब्द होता है ! 'मारो !' शब्द कहनेवाले को एक बरछा लगता है। 'मार' जोर से कहता है और 'रो' कहते-कहते उसकी आवाज़ क्रमशः नीचे उतर आती है। 'धम्म' से वह गिर पड़ता है। दूसरी आवाज़ ढाल पर पड़नेवाले भाले की है। 'खन्' की आवाज़ होती है और भाला 'भद्' से ज़मीन पर गिरता है। मेघों की गड़गड़ाहट जैसा शब्द। तलवारों से द्वन्द्व-युद्ध होने की ध्वनि। 'सप्-सप्' करती हुई तलवारें वायु चीरती हुई दो योद्धाओं के बीच में चल रही हैं। थोड़ी देर बाद 'आह' कहती हुई कराहती ध्वनि।

एक वीर (भैरवी) : **(उग्रता से साँस लेता हुआ)** जा ! जा ! तेरे लिए मौत का दरवाज़ा खुला है। **(कराहने की ध्वनि। फिर ढाल पर पड़नेवाले भाले की ध्वनि होती है।)** उधर से वीर आ रहा है। **(घोड़े की टापों की ध्वनि)** सैनिक ! घोड़े से उतरकर युद्ध कर। मैं भूमि पर हूँ।

सेल्यूकस : सामने आ ! **(कूदकर उतरता है और दोनों में तलवारों से युद्ध होता है। 'सप्-सप्' की ध्वनि फिर होती है। चौंककर)** ओह, तू कौन ! यह **बालों** की लट बाहर निकल आई। तू स्त्री है ?

भैरवी : युद्धभूमि में स्त्री-पुरुष का प्रश्न नहीं उठता। ले बचा अपने को ! **(तलवार का प्रहार, जो ढाल पर गिरता है।)**

सेल्यूकस : **(पुकारकर)** एनिसाक्रिटीज़ ! यह स्त्री है, एनिसाक्रिटीज़ !

भैरवी : दस सैनिकों को बुला ले ! मैं बदला लूँगी। जब तक...जब तक...मैं सौ सैनिकों को मृत्यु के द्वार तक नहीं पहूँचाऊँगी तब तक......।

[एनिसाक्रिटीज़ का प्रवेश]

एनिसाक्रिटीज़ : सेल्यूकस ! तुमने मुझे पुकारा ? देवपुत्र की अश्वारोहिणी सेना पौरव के पुत्र और उसकी रथी सेना को मारकर आगे बढ़ गई, आगे बढ़ गई।

सेल्यूकस : एनिसाक्रिटीज़ ! यह स्त्री है। इसे बन्दी करो।

एनिसाक्रिटीज़ : सैनिको ! इस स्त्री को घेर लो और बन्दी बना लो।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[सैनिक उसे घेर लेते है और बन्दी बना लेते हैं ।]

भैरवी : युद्ध करो, युद्ध करो ! कायरों ! सामने युद्ध करो । बन्दी बनाना कायरों का काम है । मेरी तलवार तुम नहीं छीन सकते, नहीं छीन सकते !

एनिसाक्रिटीज़ : यह स्त्री ! यह कौन-सी स्त्री है ? देवपुत्र सिकन्दर की सेना से युद्ध करने का साहस इस स्त्री को हुआ है !

भैरवी : हाँ, स्त्री को, भैरवी को ! और तुम युद्ध नहीं कर सकते । छिः ! घेरकर बन्दी बनाकर तलवार छीनने में तुम्हें लज्जा नहीं आई ! कायर ! नराधम !

एनिसाक्रिटीज़ : सैनिको ! इस स्त्री को शिविर में ले जाओ ।

भैरवी : मैं युद्ध करूँगी, मैं युद्ध करूँगी । मुझे छोड़ दो ।

[**'मैं युद्ध करूँगी', की आवाज़ क्षीण होती जाती है ।**]

एनिसाक्रिटीज़ : अच्छा, सेल्यूकस ! तो मैं जाता हूँ । (**रुककर**) देवपुत्र बहुत आगे निकल गये । इस स्त्री को देवपुत्र के सामने उपस्थित किया जाय । पर यह कौन स्त्री है, सेल्यूकस ?

सेल्यूकस : मैं स्वयं नहीं जानता । युद्ध में मुझे सेना के पिछले भाग को संगटित करने की आज्ञा देवपुत्र ने दी थी । मैं सैनिकों की व्यवस्था कर ही रहा था कि यह स्त्री बाईं ओर के सैनिकों को चीरती हुई आई । एक वीर को मारकर इसने अपनी तलवार मेरी दिशा में चलाई । मैंने उसकी तलवार को जैसे ही रोका, वैसे ही वार के रुक जाने से उसकी शक्ति उसी की ओर लौट गई और उस झटके में उसके बालों की लट बाहर निकल आई । तब मैंने समझा कि यह स्त्री है ।

एनिसाक्रिटीज़ : बड़ी साहसी है । हमने देवपुत्र के साथ इतने देशों में युद्ध किया, हिन्दुस्तान को छोड़कर कहीं ऐसी स्त्री नहीं मिली ।

सेल्यूकस : देवपुत्र कहाँ हैं ?

एनिसाक्रिटीज़ : वे पुरु से लड़ने के लिए अपनी अश्व-सेना लेकर आगे बढ़ गये हैं । मुझे आदेश दिया है कि मैं वितस्ता के किनारे की पूरी रक्षा करूँ ।

सेल्यूकस : हाँ, रक्षा करो; लेकिन और देशों की तरह यह देश नहीं है । यहाँ के लोग अपने प्राणों को हथेली पर लेकर लड़ते हैं ।

एनिसाक्रिटीज़ : देवपुत्र का आदेश है कि सारा एशिया उनका है । सारे एशिया के निवासी उनके अपने आदमी हैं, जिनकी रक्षा का भार देवपुत्र पर है । इसलिए वे सैनिकों को क्षमा भी कर सकते हैं । भले ही वे अपनी जान हथेली पर लेकर लड़ें । यह स्त्री भी उनके सामने उपस्थित की जायगी ।

सेल्यूकस : (**देखकर**) अच्छा, राजकुमार आम्भि भी इस ओर आ रहे हैं । उनसे इस स्त्री के विषय में पूछा जाय ।

एनिसाक्रिटीज़ : राजकुमार आम्भि ! तक्षशिला का राजकुमार ! (**हँसता है ।**)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेल्यूकस : तुम हँसे क्यों, एनिसाक्रिटीज़ !

एनिसाक्रिटीज़ : हिन्दुस्तान में ऐसे आदमी भी होते हैं। इनसे तो वाख्त्री का दारयवहु अच्छा, जो देवपुत्र को यदि जीत नहीं सका तो उनके अधीन भी तो नहीं बना। हिन्दूकुश का शशिगुप्त भी अच्छा, जो हारने के बाद ही हमारी तरफ से लड़ा। लेकिन आम्भि ! **(हँसता है।)** आम्भि ! जब देवपुत्र युद्ध में थे तभी इसका दूत वहाँ हमारे चरण छूने के लिए पहुँच गया। हारने के बाद चरण छूता तो हमें भी खुशी होती, लड़ने के बाद मित्रता होती, लेकिन इसने हमें लड़ने का मौका ही नहीं दिया। इससे तो वह स्त्री अच्छी, जो हाथ में तलवार लेकर हमसे लड़ने आई। अगर आम्भि जैसे तीन-चार ही लोग हमें मिल गये तो हिन्दुस्तान हमारा है।

सेल्यूकस : हमें तो अपना बल बढ़ाना है, चाहे वह मित्रता से हो या शत्रुता से। देखो, वह आ गया।

आम्भि : **(प्रवेश करके)** सेल्यूकस और एनिसाक्रिटीज़, मैं प्रणाम करता हूँ !

सेल्यूकस : महाराज आम्भि ! हम लोग सैनिक हैं। महाराज के प्रणाम से हमें संकोच होता है।

एनिसाक्रिटीज़ : फिर युद्ध-भूमि में प्रणाम। मुझे तो ऐसा मालूम होता है, जैसे भाला हाथ में न रहकर वितस्ता में गिर जाय।

आम्भि : **(निर्लज्जता की हँसी हँसता हुआ)** भाला हाथ में न रहकर वितस्ता में गिर जाय ! लेकिन अब भाले के प्रयोग की आवश्यकता भी न होगी। देवपुत्र सिकन्दर ने रात की वर्षा में जिस कौशल के साथ वितस्ता पार की है, उससे यह भूमि रणभूमि नहीं रंगभूमि हो सकती है। भाला यदि वितस्ता में गिर भी जाय तो उससे संगीत की एक ध्वनि ही निकलेगी। और इस ध्वनि के निकलने का अवसर अब आ गया है।

एनिसाक्रिटीज़ : पर महाराज ! देवपुत्र इस ध्वनि को पसन्द नहीं करते। यदि करते तो वे परसीपोलिस का राजमहल छोड़कर बर्फ़ और कुहरों में आग न लगाते। तूफ़ानी नदियों और नुकीली चट्टानों में से निकलनेवाले पहाड़ी लड़ाकों के बीच अपने भाले को न तौलते।

आम्भि : हाँ, उन्होंने अपने भाले को तौला खूब ! उनकी सेना पौरव की राज्य-सीमा पर ऐसी टूट पड़ी है जैसे पहाड़ी नदी किनारे की मिट्टी को तोड़ देती है। अब पुरु को मालूम होगा कि आम्भि का अपमान क्या होता है और उसका बदला कैसे दिया जाता है।

सेल्यूकस : ये बातें युद्धभूमि में नहीं होतीं, महाराज !

आम्भि : युद्धभूमि ! देवपुत्र का आक्रमण तो बहुत आगे बढ़ गया। अब तो यह शान्तिभूमि बन गई है।

सेल्यूकस : हाँ, महाराज ! एक विचित्र बात अभी हुई। एक सैनिक बड़ी तेजी से लड़ता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ आया। जब मैंने उसका वार रोका तो उसके झटके में उसका सिर हिल गया और...और......

आम्भि : और...और क्या ?

सेल्यूकस : उसके सिर के बाल दीख पड़े। सुन्दर बाल। काले, चमकीले, लम्बे जैसे काली घटाओं की छाया पड़ने से वितस्ता की लहरें स्याह दीख पड़ी थीं।

आम्भि : वह स्त्री थी !

एनिसाक्रिटीज़ : आप चौंक क्यों पड़े, महाराज ! पुरुषों की अपेक्षा यहाँ की स्त्रियाँ रण-क्षेत्र ज्यादा पसन्द करती हैं।

आम्भि : यह तुम्हारा व्यंग्य है, एनिसाक्रिटीज़ !

एनिसाक्रिटीज़ : महाराज बात खूब समझते हैं। उस स्त्री की बात भी बहुत अच्छी तरह समझ लेंगे। सेनापति सेल्यूकस ! कहो तो उस स्त्री को बुलवाऊँ ?

सेल्यूकस : हाँ, हाँ, बुलवाओ। मैं तो यह चाहता ही था।

एनिसाक्रिटीज़ : (पुकारकर) सैनिक ! उस बन्दी स्त्री को शीघ्र यहाँ लाओ।

आम्भि : शायद वह पुरु की कोई गुप्तचर हो, जो हमारा भेद लेने के लिए आई हो ?

एनिसाक्रिटीज़ : हमारा, यानी देवपुत्र सिकन्दर का ?

आम्भि : हाँ, हाँ, यही मेरा तात्पर्य है। हम भी तो देवपुत्र सिकन्दर के साथी हैं।

सेल्यूकस : लेकिन गुप्तचर अपने को युद्ध की आग में नहीं झोंक सकता। वह रोग की तरह धीरे-धीरे आता है या मित्र बनकर कोमलता का बाना बनाकर आता है, जैसे मखमली म्यान में तलवार छिपकर कमर में झूलती है।

एनिसाक्रिटीज़ : तो क्या हम समझें कि महाराज आम्भि भी गुप्त शत्रु हैं जो मित्र बनकर आये हैं ?

आम्भि : सावधान, एनिसाक्रिटीज़ ! मैं देवपुत्र का सच्चा मित्र हूँ। पंचनद-नरेश पौरव की उद्दंडता का दंड देना हम दोनों का धर्म है। यदि मैं देवपुत्र का सच्चा मित्र न होता तो देवपुत्र अपनी सारी सेना के साथ तक्षशिला में हमारे अतिथि न होते और मैं सवा-सौ मन चाँदी, सवा-मन सोना, हीरे, मोती, पन्ने, नीलम और लाल की थैलियाँ भेंट न करता। और वह अद्भुत विहार-नौका ! ओह ! श्वेत राजहंसी ! मैं देवपुत्र के लिए बनवाकर न भेजता।

एनिसाक्रिटीज़ : आप देवपुत्र को ऐश्वर्य से मोहित नहीं कर सकते, महाराज ! उन्होंने शूषा, एकबताना और परसीपोलिस के महलों में नर्तकी ताया के कहने से आग लगा दी थी। और परसीपोलिस के महल में क्या था, आप जानते हैं ? मुंजान के गोमेद और सिन्ध का स्वर्ण, ताम्रपर्णी के मोती और अफ्रीका के रत्न, रोम के दास और ग्रीस की नर्तकियाँ, बाख्त्री की केसर और स्पेन की अँगूरी शराब ! इस सब को देवपुत्र की मशाल की लाल लपटें निगल गईं। आपका वैभव, क्षमा करें महाराज, इसके सामने क्या है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आम्भि : और उद्भाण्डपुर में सिन्धु पर मैंने जो सेतु बनवाया जिससे देवपुत्र की सेना इस देश में आ सकी, वह क्या कम महत्त्व का है ! मैंने अपने देश का सिंहद्वार देवपुत्र के लिए खोल दिया ; संसार की कौन-सी सम्पदा इसकी तुलना कर सकती है ?

एनिसाक्रिटीज़ : सचमुच, जो हम नहीं कर सकते वह महाराज, आपने किया। आप शत्रु का सत्कार करने में बहुत कुशल हैं। इतिहास में, महाराज, आपके समान वीर पुरुष शायद ही हो। **(देखकर)** वह स्त्री आ गई, महाराज ! यही वह स्त्री है जो तलवार लेकर युद्ध कर रही थी। सैनिको ! उस स्त्री को पास लाओ !

[सैनिक स्त्री को उपस्थित करते हैं। स्त्री का स्वर क्रमशः तीव्र सुन पड़ता है।]

भैरवी : मेरे हाथ में तलवार दो ! मेरे हाथ में तलवार दो !

सेल्यूकस : यह तलवार चलाने में बहुत कुशल है, महाराज !

आम्भि : होगी, किन्तु प्रणाम करने में कुशल नहीं है।

सेल्यूकस : वीर नारी ! गांधारराज आम्भीक को प्रणाम करो !

भैरवी : **(दाँत पीसते हुए)** गांधारराज ! क्षत्रिय कुल-कलंक ! जन्मभूमि से विश्वास-घात करनेवाला आम्भि, जिसने तलवार चलाये बिना ही सारी सेना सिकन्दर को सौंप दी। कायर और निर्लज्ज आम्भि !

आम्भि : चुप रह, नारी ! नहीं तो तेरी जीभ काटकर फेंक दी जायगी।

भैरवी : और तेरी जीभ, सिकन्दर के पैरों की धूल चाटेगी ! सैनिको ! मुझे एक तलवार दो। मैं पहले आम्भि से युद्ध करूँगी, नीच नराधम आम्भि से !

आम्भि : ओह, असह्य ! नारी, तू अपनी मृत्यु पास बुला रही है।

एनिसाक्रिटीज़ : महाराज ! स्त्री से प्रणाम नहीं तो युद्ध ही स्वीकार कीजिए ! चलो, सेनापति सेल्यूकस ! हमें सेना के पिछले भाग की व्यवस्था करनी है, जो देवपुत्र का सब से बड़ा आदेश है।

सेल्यूकस : चलो, एनिसाक्रिटीज़ ! **(चलने को उद्यत होते हैं।)**

आम्भि : इस स्त्री के दंड की व्यवस्था होनी चाहिए।

एनिसाक्रिटीज़ : आप तो देवपुत्र के मित्र हैं। आप ही दंड की व्यवस्था करें। चलो, सेल्यूकस ! **[दोनों का प्रस्थान]**

आम्भि : **(तीव्र स्वर में)** सैनिक !

भैरवी : सैनिक नहीं, भैरवी। मुझसे बात करो ! मेरा नाम भैरवी है।

आम्भि : मेरे राज्य में रहकर मुझसे इस प्रकार की बातें करने का साहस ! दुष्टा नारी, तू कौन है ?

भैरवी : मैं कौन ! अपने विश्वासघात से पूछ। मेरे मस्सगा नामी दुर्ग से पूछ। उन सात हजार सैनिकों से पूछ जिन्होंने मरते-मरते अपने दुर्ग की रक्षा की। और

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनके मरने पर उन नारियों से पूछ जिन्होंने वीर पुरुषों का स्थान लेकर दुर्ग की रक्षा की है। मैं दुर्ग की रक्षा में मर नहीं सकी। जिस तलवार ने मुझे मरने नहीं दिया उस तलवार से पूछो कि मैं कौन हूँ?

आम्भि : मैं देखता हूँ तलवार से अधिक वेग तेरी जिह्वा में है, सर्पिणी !

भैरवी : उसके दंशन से सावधान रह, कायर ! तू मरकर उस सिकन्दर के चरणों में लौट जा जिसने अपने देवताओं को साक्षी बनाकर दुर्ग के नागरिकों को अभय-दान दिया था। कहा था कि तुम लोग मस्सगा दुर्ग से बाहर चले जाओ, हम तुम पर आक्रमण नहीं करेंगे। किन्तु नागरिकों के बाहर निकलते ही सिकन्दर ने उन पर आक्रमण किया और विश्वास में खोये हुए उन निरीह नागरिकों का रक्त बहाने में उसे लज्जा नहीं आई !

आम्भि : चुप रह, नारी ! देवपुत्र की पवित्रता पर कलंक लगाने में तुझे लज्जा नहीं है ?

भैरवी : लज्जा ! मैंने विदेशियों के हाथों अपना देश नहीं बेचा। कायर ! दासता को मित्रता का नाम देने में तुझे लज्जा आनी चाहिए। यदि क्षत्रित्व का नाम तू भूल नहीं गया है, तो दे मेरे हाथों में तलवार और मेरे हाथों से कटकर अपना कलंक धो दे।

आम्भि : बस, बस ! दुर्द्धर्षिणी नारी ! एक शब्द भी कहा तो मैं इस तलवार से तेरा मस्तक काट दूँगा।

भैरवी : यही वीरता तुझे शोभा देगी। शस्त्रहीन नारी का मस्तक रक्त नहीं, आग उगलेगा, जिससे दासता से पाया हुआ तेरा वैभव जल-जलकर भस्म हो जायगा। सिकन्दर ने भी निस्सहाय नागरिकों को मारा था। उसका दास अपने स्वामी का ही आचरण करेगा। तू भी तलवार उठा और मेरा मस्तक काट दे।

आम्भि : अब तुझे अधिक देर तक जीवित नहीं रखूँगा। सैनिक ! इसके हाथों में तलवार दे और इसे छोड़ दे ! देखूँ, इसकी जिह्वा की भाँति इसकी तलवार में भी शक्ति है या नहीं ! नारी के रक्त से अपने हाथ......

भैरवी : ......कलंकित कर ! विदेशियों की दासता से सिर तो कलंकित हो ही गया है, अब हाथ भी कलंकित कर। पर मैं कलंकित होने से तुझे बचा दूँगी। मेरी तलवार ही तेरे रक्त का पान करेगी।

[**तलवार गिरने की आवाज**]

भैरवी : मैं कृतज्ञ हूँ, सैनिक ! यह तलवार अब मेरे हाथ में है। मुझे छोड़ दो !

[**एनिसाक्रिटीज का प्रवेश**]

एनिसाक्रिटीज : नहीं, सैनिक ! यह स्त्री विचाराधीन है। यह देवपुत्र के समक्ष उपस्थित की जायगी। इसे ले जाओ !

[**सैनिक स्त्री को ले जाते हैं।**]

भैरवी : (**बलपूर्वक ले जाये जाते हुए**) नहीं ! मैं आम्भि से युद्ध करूँगी। **इसको**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दशद्रोह का दंड दूँगी, अवश्य दूँगी, अवश्य दूँगी !

[धीरे-धीरे उसके शब्द दूरी में डूब जाते हैं ।]

एनिसाक्रिटीज़ : स्त्री का यह साहस ! महाराजा आम्भि से युद्ध करने की बात कहती है । पहले हमारे सैनिकों से युद्ध करे, तब महाराजा आम्भि की तलवार से कटने का सौभाग्य प्राप्त करे । महाराजा आम्भि ! आपने पूछा, यह स्त्री कौन थी ?

आम्भि : मस्सगा दुर्ग की बची हुई एक स्त्री थी, जो अपने पागलपन में देवपुत्र की निन्दा कर रही थी । मैं इस निन्दा को सहन नहीं कर सकता । यदि आप न आते तो मैं उस स्त्री का सिर काट देता, एनिसाक्रिटीज़ !

एनिसाक्रिटीज़ : आप देश के सच्चे मित्र हैं, आम्भि महाराज ! पर आपको सिर काटने की मेहनत न करनी पड़ती । किसी भी सैनिक को आज्ञा दे दी जाती; वह उसे एक क्षण में मृत्यु के द्वार तक पहुँचा देता । फिर युद्ध तो बराबरी वालों से होता है । कहाँ आप महाराज, और कहाँ वह एक तुच्छ नारी ! **(व्यंग्य से)** हुँअ्, आपने उसे इतना बढ़ने ही क्यों दिया ?

आम्भि : वह मुझ ही को युद्ध के लिए ललकार रही थी । क्षत्रिय किसी चुनौती को सहन नहीं कर सकता ।

एनिसाक्रिटीज़ : यही गुण हमारे देवपुत्र में है । वे ज़रा-सी चुनौती पर अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं । पौरव के दूत ने देवपुत्र से निवेदन किया कि महाराज पौरव......?

आम्भि : **(बीच ही में)** पौरव को 'महाराज' कहना मेरा अपमान करना है ।

एनिसाक्रिटीज़ : मुझसे भूल हुई, महाराज आम्भि ! नीच पौरव के दूत ने देवपुत्र से निवेदन किया कि वितस्ता नदी के तट पर रणक्षेत्र में हम स्वयं देवपुत्र को तलवार से उत्तर देंगे । देवपुत्र ने इस अभिमान को तोड़ने के लिए ही यह आक्रमण किया है ।

आम्भि : देवपुत्र सचमुच 'देवपुत्र' हैं । वे युद्ध में बहुत आगे बढ़ गये हैं । शत्रु की युद्ध-नीति बतलाने के लिए मुझे उनके समीप रहना आवश्यक है । मैं अभी जाता हूँ । **[प्रस्थान]**

एनिसाक्रिटीज़ : यह है आम्भि, जिसने लोभ में आकर अपने देश के साथ विश्वास-घात किया । किन्तु हमें इससे क्या ! हमें तो हिन्दुस्तान पर विजय चाहिए । विजय ! विजय ! **(पुकारकर)** सैनिक !

[सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : आदेश, श्रीमन् !

एनिसाक्रिटीज़ : पोरस के पुत्र की सेना के जितने रथ पानी के बरस जाने से कीचड़ में फँस गये हैं, उन्हें दूसरे सैनिकों की सहायता से हटाकर मैदान साफ कर दो । यह काम शीघ्र ही हो ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सैनिक : जैसी आज्ञा !

एनिसाक्रिटीज : (**स्वगत**) युद्ध का कोलाहल दूर हो गया है। मालूम होता है, देवपुत्र शत्रु को पीछे हटाते हुए बहुत दूर निकल गये हैं। हमारी विजय निश्चित ज्ञात होती है। ग्रेनिकस और आरबेला के युद्ध में हमें जैसी सरलता से विजय मिली, वैसी ही विजय हमें यहाँ भी मिल सकेगी। सैनिक ! युद्ध का क्या समाचार है ?

सैनिक : श्रीमन् ! पौरव ने व्यूह-रचना बड़ी चतुराई से की। हरावल में हाथियों की पंक्ति खड़ी की और प्रत्येक हाथी के बीच में पदचर सेना की टुकड़ियाँ दीवार की तरह खड़ी कीं। बगल में घुड़सवार सेना सजाई और उनके सामने रथों की कतार लगा दी। परन्तु देवपुत्र ने अपनी घुड़सवार सेना लेकर पौरव की सेना के बगल में हमला किया।

एनिसाक्रिटीज : देवपुत्र बड़े रण-कुशल आचार्य हैं। फिर ?

सैनिक : थोड़ी-थोड़ी देर में घुड़सवारों की लम्बी कतार पौरव की सेना की बगल में लहरों की तरह बढ़-बढ़कर आक्रमण करती रही। पानी बरस जाने से पौरव के रथों के चक्के भूमि में धँस गये। और जिस ढंग से रथों को आगे बढ़ना चाहिए था, उस ढंग से वे नहीं बढ़ पा रहे थे। पैदल सेना के पैर भी भूमि पर फिसल जाते थे।

एनिसाक्रिटीज : तब तो वे भूमि चूमने लगे होंगे ?

सैनिक : धनुष चलानेवाले धनुष का एक सिरा भूमि में टिकाकर बाण-वर्षा करते थे, लेकिन पानी बरस जाने के कारण उनके धनुष के सिरे भूमि पर नहीं टिकते थे।

एनिसाक्रिटीज : तब तो यह समझना चाहिए कि जल-देवता पोसिडन ने भी देवपुत्र की सहायता की। जब दोनों ही देवता हैं तो आपस में सहायता करनी ही चाहिए। धन्य है !

सैनिक : देवपुत्र का आक्रमण बड़े उग्र ढंग से हुआ। उनके वीरों ने अपने घोड़ों के चक्र से ऐसी तेजी से शत्रु की सेना को घेरा कि हाथियों की पंक्ति सिमिटकर रह गयी। हमारे तीरों से महावत ज़मीन पर गिरने लगे और बिना महावतों के हाथी अपने आक्रमण की दिशा भूल गये।

एनिसाक्रिटीज : तब तो हाथियों ने अपने दल के सैनिकों को ही कुचला होगा ?

सैनिक : यही हुआ, श्रीमन् ! हाथियों ने बाणों की वर्षा से घबराकर अपने ही दल के वीरों को बुरी तरह कुचला। हमारे सैनिक एक बड़े चक्र में बैठकर आक्रमण कर रहे थे। इसलिए वे चाहे जिस स्थान से अपना लक्ष्य साध सकते थे। हाथी जब उनकी ओर दौड़ते थे तो वे हट जाते थे और जब हाथी लौटते तो वे उनका पीछा करते हुए उन्हें तीरों से बेध डालते थे। इसीलिए हाथियों ने लौटकर अपने ही पक्ष के सैनिकों को कुचला।

एनिसाक्रिटीज : देवपुत्र की रण-नीति की प्रशंसा नहीं हो सकती !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सैनिक : हाथियों के लौटते ही हमारे घुड़सवार चारों ओर से बढ़कर सेना को घेर लेते थे और हमारे वीर सैनिक शत्रुओं को बुरी तरह से काटकर फेंक देते थे।

एनिसाक्रिटीज़ : सच है, हमारी सेना में योरुप, अफ्रीका और एशिया तीनों महाद्वीपों के रणकुशल सैनिक हैं। पीछे से ऋतेरस ने भी तो सहायता पहुँचाई होगी, जिसे मैंने देवपुत्र का संकेत पाकर सेना सहित भेज दिया था ?

सैनिक : सत्य है, श्रीमन् ! देवपुत्र का संकेत पाकर ऋतेरस ने वितस्ता पारकर अपने उग्र सैनिकों से नया हमला करके थके हुए सैनिकों का स्थान ले लिया और शत्रुओं को अलग-थलग करके उन्हें एक-एक कर मौत के घाट उतार दिया।

एनिसाक्रिटीज़ : शाबाश, ऋतेरस !

सैनिक : ऋतेरस ने एक काम और किया, श्रीमन् ! उसने रणभूमि के प्रत्येक कोने से आक्रमण किया और हरावल और चंद्रावल को बारी-बारी से छिन्न-भिन्न किया। इसके बाद उसने देवपुत्र का संकेत पाकर अपनी सेना के प्रत्येक वीर को आज्ञा दी कि वे फरसा लेकर हाथियों के सूँड काट डालें।

एनिसाक्रिटीज़ : ओहो, तब तो हाथियों की शकल अजीब-सी हो गई होगी ?

सैनिक : श्रीमन्, वे भेड़ों की तरह इधर-उधर भागने लगे। चिंघाड़ते हुए उन्होंने बेतरतीब होकर भागना शुरू किया और अपनी सेना के बचे हुए वीरों को रौंद डाला और चारों ओर भारी भगदड़ मच गयी।

एनिसाक्रिटीज़ : और पौरव का क्या हुआ ?

सैनिक : पौरव का समाचार मुझे नहीं मिल सका, श्रीमन् !

एनिसाक्रिटीज़ : वह समाचार भी शीघ्र मिल जायगा। सेना में भगदड़ मचने पर अकेला पौरव क्या कर सकता है। उसकी हार निश्चित है।

कई स्वर : **(नेपथ्य में)** देवपुत्र की जय ! देवपुत्र सिकन्दर की जय ! जगद्विजयी सिकन्दर की जय !

एनिसाक्रिटीज़ : ओह ! **(प्रसन्नातिरेक से)** हमारी विजय हुई, हमारी विजय हुई। सैनिक ! हमारी विजय हुई। यह लो ढाल, यह लो भाला, यह तुम्हारा पुरस्कार है, सैनिक ! तुम्हें मैंने अपना अंग-रक्षक बनाया। ओह, देवपुत्र यहीं आ रहे हैं, यहीं आ रहे हैं ! तुम जाओ, सैनिक !

[सैनिक का प्रणाम कर प्रस्थान]

कई स्वर : **(समीप ही)** देवपुत्र की जय ! देवपुत्र की जय !

एनिसाक्रिटीज़ : देवपुत्र की जय !

[देवपुत्र सिकन्दर का प्रवेश]

सिकन्दर : पूर्व और पश्चिम का युद्ध ! संसार-विजय का स्वप्न आज के युद्ध में मैंने इस तलवार की चमकती हुई धार में देखा। वितस्ता की लहरों ने मेरे उत्साह को तौलकर अपने मस्तक पर रखा, मस्तक पर ! भगवान् ज्यूस, मैं

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुम्हें प्रणाम करता हूँ। पौरव पराजित हुआ।

सम्मिलित स्वर : देवपुत्र की जय, जय, जय !

सिकन्दर : आज की विजय हमारे वीरों की विजय है। उन वीरों की विजय है जो प्रत्येक देश में हमारी विजय की माला में रत्नों की तरह गुँथते चले गये हैं और आज हमारी विजय की माला इतनी बड़ी हो गई है कि वह मकदूनिया के कंठ से हिन्दोस्तान के हृदय तक झूलती है, हिन्दोस्तान के हृदय तक ! ऐसा क्यों है, एनिसाक्रिटीज़, जानते हो ?

एनिसाक्रिटीज़ : इसलिए कि आप संसार के एक महान् पुरुष हैं।

सिकन्दर : नहीं, एनिसाक्रिटीज़, ऐसा नहीं है। वह माला हिन्दोस्तान के हृदय तक इसलिए झूलती है कि इस देश के वीरों ने शक्ति की पूजा तो की किन्तु वे अपने देश की पूजा नहीं कर सके। एक-एक नगर, एक-एक वीर फौलाद का टुकड़ा है ; लेकिन अलग-अलग टुकड़े एक शृंखला नहीं बना सके। ये एक-दूसरे के हृदय से नहीं जुड़ सके। इसीलिए शक्ति का देवता पौरव आज इतनी बड़ी सेना का स्वामी होकर भी मकदूनिया का सेवक हो सकता है।

एनिसाक्रिटीज़ : यह सच है, देवपुत्र !

सिकन्दर : ओफ़ ! आज कितना भीषण युद्ध था। काले पहाड़ों की भाँति हाथियों की सेना सारे रणक्षेत्र को दबाये बैठी थी। रथी सेना का वेग सिन्धु-नद की तरह भयानक था। जय या मृत्यु की कगारों को छूती हुई एक बड़ी सेना युद्ध-घोषणा कर रही थी। उसके धनुषों से तीर नहीं वज्र बरस रहे थे। तलवारें सर्पिणी की तरह फुफकार रही थीं। और मैंने युद्ध की उस आग में अपने वीरों को तूफान की तरह बढ़ा दिया।

एनिसाक्रिटीज़ : बड़ा भयानक दृश्य होगा ?

सिकन्दर : भयानक दृश्य था। वीरों की धमनियों से रक्त के नाले बहकर वितस्ता से मिलने लगे ; किन्तु विजय हमारी ही रही। संख्या में अधिक होते हुए भी वे वीर अपना संगठन नहीं कर सकते थे। बीस हजार पैदल, तीन हजार घुड़सवार, एक हजार रथ और तेरह सौ हाथी हमारे ग्यारह हजार सैनिकों को नहीं जीत सके।

एनिसाक्रिटीज़ : यह आपका संचालन-कौशल है, देवपुत्र ! और पौरव का क्या हुआ ?

सिकन्दर : पौरव ! वह वीर धन्य है ! सेना का सर्वनाश हो जाने पर भी उसने मैदान नहीं छोड़ा। वह वीरों को बढ़ावा देता और कायरों को भागने से रोकता रहा। ऐसा वीर पुरुष, इतने देशों के साथ युद्ध करते हुए, मुझे नहीं दीख पड़ा। पौरव ! तुम किसी भी देश के गौरवशाली राजा हो सकते हो !

एनिसाक्रिटीज़ : जो व्यक्ति देवपुत्र से प्रशंसा पा सकता है, वह सचमुच ही वीर है।

सिकन्दर : वीर ! उसी को हम वीर कह सकते हैं जो कायर को भी वीर बना दे,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गिरते हुए योद्धाओं को फौलाद की दीवार में बदल दे। जो तलवारों में बिजली भर दे और भालों में भाग्य की कठिनता। पौरव ऐसा ही वीर है। साढ़े छः फुट ऊँचा, अंग में वज्र की दृढ़ता, जैसे वह हिमालय का पुत्र हो। आक्रमण में सिंह की तरह भयानक। गति में जैसे जलप्रपात, जो आगे बढ़कर शत्रु पर गिरना जानता है। और हुँकार करने में बरसात का बादल जो एक छोर से दूसरे छोर तक गर्जन करता हुआ सारी दिशाओं को हिला दे। उसकी ओर आक्रमण करने-वाले मेरे साठ सैनिक ठिठककर रह गये, जैसे मडूसा ने उन पर दृष्टि डालकर पत्थर का बना दिया हो।

एनिसाक्रिटीज : वास्तव में वह भयानक वीर है। फिर उसकी हार कैसे हुई, देवपुत्र !

सिकन्दर : पौरव रणक्षेत्र में जो कुछ कर सकता था, उसने किया। वह सेनापति ही नहीं था, सिपाही था। उसकी आँखों के सामने उसके घुड़सवार हमारे भालों से भूमि पर गिर रहे थे। उसके कुछ हाथी वीरों का रास्ता रोककर काली पहाड़ियों की तरह रणभूमि में पड़े हुए थे। और कुछ हाथी महावतों के बिना बरसाती नालों की तरह इधर-उधर गिरते-पड़ते चिंघाड़ रहे थे। पैदल सेना हमारे तीरों से तितर-बितर हो रही थी; परन्तु वह सूर्य की तरह हाथी के पहाड़ के ऊपर दृढ़ता से बैठा हुआ ललकार रहा था। वह ईरान के सम्राट् दारयवहु की तरह रणक्षेत्र छोड़कर भागा नहीं; लेकिन वह उस समय तक लड़ता रहा जब तक उसने एक भी गुल्म को संगठित रूप से युद्ध करते हुए देखा। जब उसके दाहिने कंधे पर गहरा घाव लगा तो उसने नदी की लहर की तरह अपने हाथी को रण-क्षेत्र में तिरछा घुमा लिया। उसका सारा शरीर चुस्त जिरहबख्तर से कसा हुआ था। केवल हाथ को घुमाने के लिए कंधा खुला हुआ था, वहीं उसे घाव लगा। वह वीरों को ललकारता हुआ घूमा। ओह ! कितना वीरतापूर्ण उसका युद्ध था।

एनिसाक्रिटीज : आपने मुझे वितस्ता के किनारे की रक्षा का भार सौंपा था, नहीं तो मैं भी उस वीर के दर्शन करता।

सिकन्दर : मैं ऐसे वीर को मारना नहीं चाहता, मित्र बनाना चाहता हूँ। इसलिए मैंने जोर से घोषणा की कि पौरव की रक्षा हो ! जैसे ही रणक्षेत्र में विजय हमारे हाथ में आयी और पौरव का हाथी अपने स्वामी की रक्षा करने के लिए घूमा वैसे ही मैंने आम्भि को आदेश दिया कि वह घोड़े पर चढ़कर पौरव का पीछा करे और उससे प्रार्थना करे कि वह हाथी से उतरकर मेरे पास आने का कष्ट करे। आम्भि मेरे आदेश का पालन करके शीघ्र ही आता होगा।

एनिसाक्रिटीज : सच है, देवपुत्र ! सेना के तितर-बितर होने पर पौरव के मन में विजय की आशा तो रह ही नहीं सकती। वह हाथी पर अपनी रक्षा के लिए भाग भी नहीं सकता था, अतः उसने आपका आदेश मान ही लिया होगा।

सिकन्दर : ऐसी मुझे भी आशा है।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[सैनिक का प्रवेश । वह प्रणाम करता है ।]

सैनिक : देवपुत्र ! ग्राम्भि ग्रापकी सेवा में उपस्थित होने की ग्राज्ञा चाहते हैं ।

सिकन्दर : उन्हें इसी समय भेजो !

सैनिक : जो ग्रादेश ! [प्रस्थान]

एनिसाक्रिटीज : देखें, ग्राम्भि क्या समाचार लाते हैं ! कितना ग्रच्छा हो, यदि पौरव भी उनके पीछे ग्राता हो ।

सिकन्दर : पौरव वीर है, वह जो कुछ भी करे उसमें मुझे सन्तोष होगा ।

[ग्राम्भि का प्रवेश]

सिकन्दर : ग्राम्भि ! पौरव ने तुम्हारी बात मानी ?

ग्राम्भि : नहीं, देवपुत्र ! मैंने उसके हाथी के पास तक ग्रपना घोड़ा पहुँचाया ग्रौर पुकारकर कहा कि पौरव ! तुम्हारे पास देवपुत्र ने मित्रता का संदेश भेजा है । तुम हाथी से उतरकर उनकी सेवा में चलो । मैंने भी तुमसे शत्रुता छोड़ दी है । पौरव ! तुम मेरी बात सुनो । देवपुत्र जितने बड़े शत्रु हैं, उतने ही बड़े मित्र भी हैं ।

एनिसाक्रिटीज : तुमने ग्रपनी बात बड़े ग्रच्छे ढंग से कही, ग्राम्भि महाराज !

ग्राम्भि : किन्तु, देवपुत्र, मैं उनका पुराना शत्रु था । उन्होंने घूमकर मेरी ग्रोर देखा । ग्रपना हाथी सामने बढ़ाया ग्रौर बायें हाथ से एक भाला उठाकर मेरी ग्रोर इस तरह चलाया कि यदि मैं तेजी से पीछे की ग्रोर घोड़ा न दौड़ा देता तो मेरा जीवन ही समाप्त हो गया होता ।

एनिसाक्रिटीज : तुम्हारा घोड़ा भागने में बहुत तेज है, ग्राम्भि ! ग्रौर साथ ही तुम भी तेजी से भागकर ग्राक्रमरण निष्फल कर सकते हो । साधुवाद !

सिकन्दर : तो वह नहीं लौटा, पर ऐसे वीर को मैं ग्रपना शत्रू नहीं रहने दूंगा । एनिसाक्रिटीज़ तुम जाग्रो ग्रौर मीरोईस को पौरव के पास भेजकर मेरा संदेश कहलाग्रो । पौरव को लौटकर ग्राना ही चाहिए । मीरोईस ग्रौर पौरव पुराने मित्र हैं । जाग्रो, शीघ्रता करो !

एनिसाक्रिटीज : जो ग्राज्ञा ! [प्रस्थान]

सिकन्दर : मैं पौरव को चाहता हूँ, ग्राम्भि ! यदि ऐसा वीर हमारे साथ होगा तो मैं एशिया की विजय का स्वप्न पूरा कर सकूँगा । तब हमारा राज्य कितना विशाल होगा ! हमारी विजय इतिहास के कंठ में माला की तरह सजी रहेगी ग्रौर उस माला में सारा हिन्दोस्तान हिमालय की गाँठ देकर एक बड़े रत्न की भाँति सजा रहेगा ।

ग्राम्भि : ऐसा ही होगा, देवपुत्र !

सिकन्दर : जानते हो ऐसा क्यों होगा, ग्राम्भि ?

ग्राम्भि : इसलिए कि मैं ग्रापकी सेवा करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहूँगा ।

सिकन्दर : (हलकी हँसी हँसकर) नहीं, नहीं, ग्राम्भि ! ऐसा नहीं है । तुम मेरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेवा अवश्य करोगे किन्तु तुम्हारी सेवा वितस्ता की लहर नहीं है जो मुझे अपने मस्तक पर रख ले। तुम्हारी सेवा उद्भाण्ड का वह सेतु है जो सिन्धु की छाती पर खड़ा होकर मुझे और मेरी सेना को मार्ग तो देता है पर वह एक स्थान पर ही जड़ होकर स्थिर है, सब काल के लिए। वह तिल-भर भी अपने स्थान से हिल नहीं सकता। उसी तरह तुम तभी तक मेरी सहायता कर सकते हो जब तक कि तुम्हारे विपक्षी पौरव का अभिमान धूल में नहीं मिल जाता।

आम्भि : आप मुझ पर अविश्वास न करें, देवपुत्र !

सिकन्दर : (**हँसकर**) अविश्वास ! विश्वास जब स्वार्थ के पैरों पर चलता है तो वह अविश्वास बन जाता है। और अविश्वास जब आदर्श खोजने लगता है तो वह राजनीति का रूप धारण करता है। गांधार-नरेश ! तुम मेरे मित्र हो ; किन्तु विश्वास को स्तुति की भाँति कहना अविश्वास की भावनाओं को जगाना है।

[**एनिसाक्रिटीज़ का प्रवेश**]

एनिसाक्रिटीज़ : देवपुत्र ! आपकी राजनीति अचूक है। वीर पौरव मीरोईस के साथ आपकी सेवा में आ रहे हैं।

सिकन्दर : (**प्रसन्नता से उद्विग्न होकर**) साधुवाद ! साधुवाद ! पुरस्कार में यह लो मेरी तलवार। (**तलवार फेंक देता है।**) मेरे साथ के वीरों ने हिन्दूकुश पार करते हुए जितनी विपत्तियाँ झेली हैं, आज उसका पूरा पुरस्कार उन्हें मिला। मेरे वीरों ने आज तक युद्धभूमि में जितना रक्त बहाया है, उस रक्त की एक-एक बूंद आज विजय के मुकुट में माणिक रत्न बनकर सुसज्जित हो गयी है। मेरे वीरो, आज तुमने यूनान को एशिया के मस्तक पर रख दिया है, और यूनान का मस्तक आज हिमालय से भी ऊँचा है, हिमालम से भी ऊँचा ! एनिसाक्रिटीज़, हिमालय से भी ऊँचा है।

एनिसाक्रिटीज़ : सत्य है देवपुत्र, बिल्कुल सत्य है।

सिकन्दर : आम्भि, तुम प्रसन्न हुए ?

आम्भि : देवपुत्र, आज मेरी विजय दोनों ओर है। एक ओर तो मेरे मित्र और स्वामी देवपुत्र की विजय है और दूसरी ओर मुझ पर भाला चलाने वाला पौरव बन्दी है।

सिकन्दर : (**चीखकर**) कौन कहता है कि वह बन्दी है ? आम्भि ! तुम हमारे मित्र को अपमानित नहीं कर सकते। पौरव के सम्मान पर किसी प्रकार का प्रश्न-चिह्न लगाना मेरे सम्मान पर प्रश्न-चिह्न लगाना है। तुम वीर नहीं हो, तभी तो दूसरे वीर की उचित सराहना नहीं कर सकते। अभी तक तुम्हारे मन में ईर्ष्या और अविश्वास है, इसीलिए मैंने कहा था कि विश्वास जब स्वार्थ के पैरों पर चलता है तो वह अविश्वास बन जाता है और तुम अभी तक पूरे अविश्वासी बने हो।

आम्भि : आपके पथ-प्रदर्शन में मेरा अविश्वास विश्वास में बदल जायगा, देवपुत्र !

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[मीरोईस का प्रवेश]

मीरोईस : देवपुत्र ! महापुरुष पौरव आपकी सेवा में उपस्थित हैं।

सिकन्दर : सम्मान सहित लाओ ! इसी समय लाओ ! मैं ऐसे वीर को प्रणाम करना चाहता हूँ।

मीरोईस : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

सिकन्दर : मैं अपने मित्र का स्वागत करना चाहता हूँ। जो वीरता पौरव ने दिखलाई है, उसके लिए बड़े-से-बड़ा राज-सम्मान भी कम होगा। इस विजय के अवसर पर सारे बन्दी मुक्त किये जायँ। मैं शिविर में जाकर पौरव के लिए तलवार और रत्नहार की भेंट लाऊँगा।

आम्भि : मुझे आज्ञा दीजिए, देवपुत्र !

सिकन्दर : नहीं, मैं स्वयं जाऊँगा। वीर का स्वागत अपने हाथों से करने में मुझे प्रसन्नता होगी। [**सिकन्दर का प्रस्थान**]

एनिसाक्रिटीज : देवपुत्र वीर का स्वागत करना जानते हैं, महाराज आम्भि ! महाराज पौरव आ गये।

[महाराज पौरव का प्रवेश। यद्यपि उनकी दाहिनी भुजा में घाव है फिर भी वे गर्व से मस्तक ऊपर उठाकर चल रहे हैं। साढ़े छः फुट ऊँचे होने के कारण उनके साथ चलने वाले दो सैनिक बहुत छोटे मालूम होते हैं।]

एनिसाक्रिटीज : महाराज पौरव को एनिसाक्रिटीज प्रणाम करता है !

पौरव : इस देश को प्रणाम करो, वितस्ता को प्रणाम करो, जिसने तुम्हें विजय दी है। यूनानी युवक ! रणक्षेत्र में वीरता की पूजा होती है, कुटिल नीति की नहीं। कुटिल योजना से ही तुमने विजय प्राप्त की है। इस विजय की मैं सराहना नहीं कर सकता। सिकन्दर, देवपुत्र सिकन्दर क्या यहाँ नहीं हैं ?

एनिसाक्रिटीज : वे अपने शिविर से शीघ्र ही आने वाले हैं। आप-जैसे परमवीर का वे सम्मान करना चाहते हैं।

पौरव : पराजित होने पर सम्मान ? यह मेरी वीरता के प्रति व्यंग्य तो नहीं है ! (**पीछे फिरकर**) सैनिक ! दूर हटो ! तुम्हें मेरे इतने समीप आने की आवश्यकता नहीं। मेरे नियन्त्रण को बन्धन न बनाओ। मैं भागूँगा नहीं, शस्त्र का प्रयोग नहीं करूँगा, मैं तुम लोगों को वचन दे चुका हूँ। आर्यावर्त्त के वीर झूठ नहीं बोलते और मैं वीर पुरुष हूँ।

सैनिक : क्षमा करें, महाराज ! आपसे बढ़कर वीर पुरुष हमने नहीं देखा।

पौरव : आम्भि को नहीं देखा ?

आम्भि : अब भी मेरा अपमान करने का साहस तुममें है ?

पौरव : देशद्रोही ! विश्वासघाती ! उद्भाण्ड पर सेतु बनवाकर तूने देश को जिस शृंखला में बाँधा है, उसकी कड़ियाँ मेरे हाथों में देख ! आज पौरव पराजित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ है, कल देश का एक-एक वीर पराजित होगा। और तू इसे अपनी विजय समझेगा! तू युद्ध में मर नहीं सकता था? जीवित रहकर तुझे जीवन का कौन-सा गौरव मिल सका? क्या शव की तरह तू सिकन्दर के कंधों पर नहीं चढ़ा है?

आम्भि : पौरव अपनी जीभ रोक!

पौरव : वह ज्वालामुखी की लपट है, वह तभी रुकेगी जब तुझे जलाकर भस्म कर देगी। दुष्ट! नराधम! मुझसे तू क्रुद्ध था तो मुझे युद्ध में ललकारता, वीरता से युद्ध करता, तब या तो मैं जीवित रहता या तू; किन्तु वह जीवन मनुष्य का जीवन होता, पशु का नहीं, जिसे तू विदेशियों के चरणों में लुंठित कर रहा है। अपने देश की मर्यादा पर कुठाराघात करनेवाले आम्भि...! **(क्रोध से काँपता है।)**

एनिसाक्रिटीज : महाराज! आप शांत हों। आपके शरीर से रक्त अधिक निकल गया है। आपके लिए शीतल जल लाऊँ?

पौरव : नहीं, मुझे जल की आवश्यकता नहीं है। इस बन्दी वेश में मैं दूसरे के हाथ से दिया हुआ जल विष समझता हूँ।

[सिकन्दर का प्रवेश]

सिकन्दर : वीर पौरव! सिकन्दर तुम्हें प्रणाम करता है। तुम्हारी वीरता को प्रणाम करता है।

पौरव : इस प्रणाम का मैं अधिकारी नहीं हूँ।

सिकन्दर : वीर पौरव! तुम मेरे प्रणाम के अधिकारी हो, मेरी मित्रता के अधिकारी हो। पराजित होने पर भी तुम्हारे मुख पर विवशता नहीं है; घायल होने पर भी तुम्हारे शरीर में शिथिलता नहीं है। तुम एक वीर की भाँति लड़े और एक वीर की भाँति पराजित हुए। किन्तु, पौरव! तुम्हारी पराजय मेरे ऊपर विजय है। बोलो, मैं तुम्हारे साथ किस तरह का व्यवहार करूँ?

पौरव : सिकन्दर! मेरे साथ वैसा ही व्यवहार हो जैसा किसी राजा के साथ किया जाता है।

सिकन्दर : धन्य! धन्य! तुमने अपने योग्य ही कथन किया है। ऐसा ही होगा। तुम्हारे साथ राजाओं के समान ही व्यवहार किया जायगा। वीर के साथ व्यवहार करना राजसम्मान की शोभा है। यह तो मैं अपनी ओर से करूँगा ही, किन्तु तुम अपनी ओर से जो कुछ भी चाहो, वह मुझसे ले सकते हो।

पौरव : देवपुत्र! जो कुछ भी मैंने कहा है, वह पर्याप्त है। वीर पुरुष दो बातें कभी नहीं बोलते। मेरी बात का जो अर्थ आप लगाना चाहें वह लगा सकते हैं। इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं कहना चाहता।

सिकन्दर : वीर पौरव! तुम्हारा कहना बिलकुल सच है। राजा की मर्यादा वही जानता है जो युद्ध करता है। मैं तुम्हारी वीरता को सम्मानित करना चाहता हूँ। आज से तुम्हें मैं अपना मित्र मानता हूँ। आर्यवीर! तुम धन्य हो। यह

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भेंट स्वीकार करो, यह तलवार और यह रत्नहार !

[**सिकन्दर भेंट में तलवार और रत्नहार प्रस्तुत करता है ।**]

पौरव—मैं तुम्हारी मैत्री का स्वागत करता हूँ ।

सिकन्दर—धन्यवाद ! मैं तुम्हारा राज्य तुम्हें लौटाता हूँ । तुम मेरे हिन्दोस्तान के राज्य के प्रतिनायक रहोगे । सब लोग कहो, आम्भीक, तुम भी कहो, महाराज पौरव की जय ! [**सब का सम्मिलित जय-घोष**]

[**भैरवी का प्रवेश**]

भैरवी : (**उत्तेजित होकर**) नहीं, नहीं यह जय नहीं है, नहीं है । यह हमारे देश की हार है । सच्चे वीर-हृदय पौरव को मित्रता के नाम से अपनी विजय का एक साधन बनाया गया है । पौरव ! फेंक दो यह तलवार, यह रत्नहार । यह हमारे देश को जीतने का इन्द्रजाल है ।

पौरव : कौन ?

भैरवी : मैं हूँ, भैरवी । इस विजय के उत्सव में मैं मुक्त की गयी हूँ; किन्तु यह बन्धन की भूमिका है । पौरव ! यह बन्धन की भूमिका है । मैं मस्सगा की नारी हूँ । मैंने स्वतंत्रता के होमकुंड में हजारों वीरों और नारियों को आत्म-समर्पण करते देखा है । यह हमारे देश की मर्यादा नहीं है, पौरव ! यह धोखा है । यह प्रवंचना है । यह तलवार तोड़ दो । यह माला अपने पैरों से कुचल दो ।

आम्भि : सैनिक ! इस नारी को फिर से बन्दी बनाओ ।

भैरवी : नहीं, नहीं ! मुझे कोई बन्दी नहीं बना सकता । मैं अकेली ही अपने देश के लिए युद्ध करूँगी । आम्भि और पौरव सिकन्दर के आक्रमण को आगे बढ़ाने के लिए रथ के दो चक्र होंगे । मैं शिला बनकर इसे रोकूँगी, अवश्य रोकूँगी, पौरव ! पौरव ! यह हमारे देश की मर्यादा नहीं है । शत्रु से मिलकर देश को कुचलना हमारे देश की मर्यादा नही है ।

आम्भि : मैं स्वयं तुझे बन्दी करूँगा, नारी ! सैनिको, तुम भी मेरे साथ आओ !

भैरवी : आम्भि ! अपनी जन्मभूमि को और कलंकित न कर । मैं इतने सैनिकों से जीत नहीं सकूँगी, पर बन्दिनी भी नहीं बनूँगी । देश को बन्दी होता मैं नहीं देख सकती । तो फिर यह रही मेरी तलवार ! आज अपना रक्त ही देश की मर्यादा की वेदी पर चढ़ाऊँगी । जय आर्यवृत्त ! जय जननी जन्मभूमि !

[**तलवार से अपना मस्तक काट देती है ।**]

पौरव : (**चीखकर**) भैरवी ! भैरवी !

सिकन्दर : (**विस्मय से**) भैरवी ! भैरवी !

[**ध्वनि शून्य में गूंजकर रह जाती है ।**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 4 :

कौमुदी महोत्सव

●

पात्र-परिचय

सम्राट् चन्द्रगुप्त—कुसुमपुर के मौर्य सम्राट्
चाणक्य—सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामंत्री
वसुगुप्त—कुसुमपुर के समाहर्त्ता
यशोवर्मन—कुसुमपुर के अन्तपाल
पुष्पदन्त—कुसुमपुर के कार्यान्तिक
अलका—राजनर्तकी
सैनिक और दौवारिक

●

समय—ई० पू० 322

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कौमुदी महोत्सव

[बाहर चारों ओर कोलाहल हो रहा है। बीच-बीच में तुरही का नाद हो उठता है। शंख और घंटों की आवाज भी सुन पड़ती है। धीरे-धीरे वह ध्वनि क्षीण होती है। राजकक्ष में समाहर्त्ता वसुगुप्त और अन्तपाल यशोवर्मन बातें कर रहे हैं।]

वसुगुप्त : आज कुसुमपुर की जनता का कोलाहल कितना उभरा हुआ है! ढाल के मध्य भाग की भाँति वह किसी भी तलवार का वार रोकने के लिए आगे बढ़ आया है। कुसुमपुर का उत्साह एक ढाल की तरह है, जिस पर विद्रोह की तलवार भी कुंठित हो जायगी। अब तो अन्तपाल यशोवर्मन का सन्देह दूर हो गया होगा?

यशोवर्मन : वसुगुप्त! सन्देह पानी का बुलबुला नहीं है जो एक क्षण में भंग हो जाता है। सन्देह तो धूमकेतु की रेखा है जो आकाश में एक छोर से दूसरे छोर तक फैली रहती है। और धूमकेतु जानते हो किस बात का प्रतीक है—भय का, आशंका का, अमंगल का।

वसुगुप्त : किन्तु भय, आशंका और अमंगल तो नहीं हैं। नन्दवंश का विनाश होते ही ये ढाक के तीन पात की तरह अलग हो गये।

यशोवर्मन : अलग-अलग भले ही हो गये हों, पर हैं तो।

वसुगुप्त : अब रहे भी नहीं। जब शक, यवन, पारस और वाह्लीक राजाओं के साथ महाराज चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर में प्रवेश किया तो सारी प्रजा ने उनका स्वागत किया। क्या इस कोलाहल में तुमने प्रजाजनों के उत्साह की सरिता उमड़ते हुए नहीं देखी?

यशोवर्मन : देखी, किन्तु इस उत्साह के बीच ऐसे कंठ भी हो सकते हैं जिनमें व्यंग्य और परिहास की ध्वनि हो। नन्द के प्रति राजभक्ति अभी निष्प्राण नहीं हुई है। हरी घास में कुश और कंटक भी होंगे।

वसुगुप्त : तो वे निर्मूल कर दिए जावेंगे।

यशोवर्मन : किन्तु आपको क्या ज्ञात नहीं है कि महाराज नन्द के मंत्री राक्षस की नीति छद्मवेश धारण कर चलती है? नन्द नहीं हैं किन्तु नन्द के मंत्री तो हैं जो छिपकर कुसुमपुर से बाहर चले गये हैं।

वसुगुप्त : तो हमारे पास भी पहिचानने वाली आँखें हैं। **(जन-रव फिर बढ़ता है।)**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखो, यह जन-रव बढ़ रहा है ! वातायन बन्द कर दो !

यशोवर्मन : हाँ, बात ही नहीं सुन पड़ती । **[वातायन बन्द करते हैं ।]**

वसुगुप्त : तो सम्राट् चन्द्रगुप्त ने जब कुसुमपुर में प्रवेश किया तो पहला कार्य तो यहाँ की शासन-व्यवस्था ठीक करना है।

यशोवर्मन : आचार्य चाणक्य के मस्तिष्क में राजनीति के न जाने कितने व्यूह प्रतिदिन बनकर बिगड़ते हैं, उनसे अधिक राजनीति की व्यवस्था कौन कर सकता है ?

वसुगुप्त : तो क्या सम्राट् चन्द्रगुप्त का मस्तिष्क केवल बाहु-बल का केन्द्र ही है ?

यशोवर्मन : हाँ, आचार्य चाणक्य की नीति और सम्राट् चन्द्रगुप्त के बाहु-बल ने ही तो नन्दवंश को समाप्त किया है। नन्दवंश की विलासिता-संध्या सम्राट् चन्द्रगुप्त की यश-चन्द्रिका के सामने अधिक देर तक नहीं रुक सकी ।

[नेपथ्य में 'सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय' का घोष]

वसुगुप्त : **(उत्सुकता से)** सम्राट् आ गये ? तो क्या जनता का इतना कोलाहल उन्हीं के स्वागत के लिये था ? वातायन खोलकर देखो, यशोवर्मन !

यशोवर्मन : मैं देखता हूँ । **(वातायन खोलते हैं । जन-रव फिर तीव्रता से सुनाई पड़ता है)** हाँ, जनता उत्सुकता से पुष्पों के हार उछाल रही है । महाराज ने अंतरंग प्रकोष्ठ के सिंह-द्वार से प्रवेश कर लिया है ; उनका वेश इस समय दर्शनीय है । विस्तीर्ण ललाट, उठी हुई नासिका और बड़े-बड़े अरुण नेत्र । वे नागरिकों से कुछ कह भी रहे हैं । कहते समय उनकी वाणी में वीरत्व उसी प्रकार गुँजायमान होता है जैसे दिशाओं में दूर से आती हुई प्रतिध्वनि सिमिट कर अंतिम स्वर में गूँजती है । उनकी भौंहों में स्वाभाविक रूप से बल पड़े हुए हैं जैसे दृष्टि के ऊपर आकांक्षाएँ वक्र होकर दुहरी हो गई हैं । घुँघराले मुक्त केशों पर मुकुट है, जिसकी कलगी सिर के हिलने मात्र से लज्जाशील नारी की दृष्टि की भाँति झुक जाती है । भुजदण्डों में शक्ति का संचय है । ज्ञात होता है जैसे वे राज्य के मेरुदण्ड हैं । सैनिकों जैसा वेश, हृदय पर मोतियों की माला, कमर में मखमली म्यान के भीतर खड्ग । बड़ा उत्साहपूर्ण वेश-विन्यास है उनका !

वसुगुप्त : **(प्रसन्नता से)** सचमुच, सम्राट् वीर-रस के प्रतीक हैं। वह दौवारिक आया।

[दौवारिक का प्रवेश]

दौवारिक : महाराज की जय ! सम्राट् का आगमन हो रहा है।

वसुगुप्त : हम लोग भी उनके स्वागत के लिए उत्सुक हैं । तुम जाओ, बाहरी द्वार पर सम्राट् पर पुष्प-वर्षा हो !

दौवारिक : जो आज्ञा । **[प्रस्थान]**

यशोवर्मन : सम्राट् ने तक्षशिला में ग्रीक सैन्य-संचालन का जो कौशल देखा है, उस कौशल के बल पर तो वे समस्त भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित कर सकते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। उन्होंने विदेशी राजनीति को स्वीकार कर किसी भविष्य कार्यक्रम की नींव डाली है, यह बहुत कम लोग जानते हैं।

वसुगुप्त : राजनीति के साथ नारी ! यही तुम्हारे कहने का तात्पर्य है ? [**दबी हुई सम्मिलित हँसी**]

[सम्राट् की जय-ध्वनि के बाद सम्राट् चन्द्रगुप्त का कार्यान्तिक पुष्पदन्त के साथ प्रवेश]

वसुगुप्त और यशोवर्मन : (**सम्मिलित स्वर में**) सम्राट् की जय !

चन्द्रगुप्त : समाहर्त्ता वसुगुप्त ! कुसुमपुरी का वैभव मैंने देखा। मुझे ऐसा ज्ञात होता है जैसे युद्ध की भैरवी ने कषाय वस्त्र धारण कर लिए हैं और वह सन्यासिनी हो गई है। नगर की शोभा मलीन है जैसे तलवार की झंकार वायु में विलीन हो गई है। नागरिकों का यह उल्लास शृगालों का कोलाहल जैसा ज्ञात होता है जिसे हमें मनुष्यत्व देना है। नागरिकों से कहला दो कि अब वे अपने घर जावें।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट्। [**प्रस्थान**]

[धीरे-धीरे जन-रव शान्त हो जाता है।]

चन्द्रगुप्त : और अन्तपाल यशोवर्मन ! जो तेज मैंने ग्रीक सैनिक के सेवकों में देखा था वह कुसुमपुर के प्रतिष्ठित नागरिकों तक में नहीं है। यहाँ के व्यक्तियों में स्पष्ट बात कहने का साहस नहीं है। एक छल है, एक विडंबना है जो सोन नदी की भाँति कुसुमपुर को घेरे हुए है। उसे बंधन-मुक्त करो, यशोवर्मन !

यशोवर्मन : मुझे विश्वास है, सम्राट् ! आचार्य चाणक्य की नीति से कुसुमपुर एक कुसुम के समान सुन्दर और आपकी कीर्ति की भाँति निर्मल हो जायगा।

[वसुगुप्त का प्रवेश]

चन्द्रगुप्त : संभव है। आचार्य चाणक्य की नीति ने कुसुमपुर की राजनीति में ऐसे चक्रव्यूह की रचना की है, जिसमें अराजकता का पथ मृत्यु-दीवार पर जाकर समाप्त होता है। और उस मृत्यु-दीवार की नींव में जानते हो क्या है ? समस्त नन्दवंश चिर-निद्रा में शयन कर रहा है।

वसुगुप्त : और उस नन्दवंश की आँखों में विलासिता का मद अंतिम क्षणों तक रहा है।

चन्द्रगुप्त : मुझे इस बात का दुःख है; किन्तु राजनीति कृपाण की धार का मार्ग है। जो व्यक्ति विलासिता का बोझ अपने सिर पर रखकर चलता है, वह उस कृपाण को निमंत्रण देता है कि वह उसके शरीर के दो टुकड़े कर दे। मैं आचार्य चाणक्य के चक्रव्यूह की मृत्यु-दीवार को जीवन का प्रकाश-स्तम्भ बनाना चाहता हूँ।

वसुगुप्त : सम्राट् के बाहु-बल में और आचार्य चाणक्य की नीति में यह क्षमता है।

चन्द्रगुप्त : आचार्य चाणक्य की सहायता से जो कुछ भी अभी तक हुआ है, उनके प्रति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नागरिकों को असंतोष तो नहीं होना चाहिए। तक्षशिला के अनुभव से मैं कुसुमपुर की सभी बाधाएँ दूर करना चाहता हूँ। शासन का मापदण्ड प्रजा का सन्तोष और सुख होना चाहिए।

यशोवर्मन : सम्राट् का कथन सत्य है।

चन्द्रगुप्त : इसीलिए मैं एक महोत्सव का आयोजन करना चहता हूँ—कौमुदी महोत्सव। शरद् ऋतु की आज पूर्णिमा है। इसलिए समाहर्त्ता वसुगुप्त के प्रस्ताव के अनुसार मैंने मध्याह्न में इस निर्णय की घोषणा कर दी है। प्रकृति की इस चन्द्रमयी निर्मलता में जनता के हृदय की समस्त पाप-वासनाएँ धुल जावें। कौमुदी महोत्सव इस भाँति कुसुमपुर का महान् राजनीतिक पर्व है।

वसुगुप्त : सम्राट् ! कुसुमपुर के सिंह-द्वार ने अभी तक शृगालों का स्वागत किया है। आपके प्रवेश ने सिंह-द्वार का नाम सार्थक किया।

चन्द्रगुप्त : तुम प्रसन्न कर देने वाली वात कह सकते हो, वसुगुप्त ! इसीलिए मैंने तुम्हें कुसुमपुर का नागरिक होने पर भी 'कर' एकत्रित करनेवाले समाहर्त्ता का नवीन पद दिया है। तुम मधुर बातें कहकर अच्छी तरह 'कर' एकत्रित कर सकते हो।

वसुगुप्त : यह सम्राट् की कृपा है।

चन्द्रगुप्त : फिर प्रजा का सन्तोष ही मेरे सुख का अग्रदूत है। (**कार्यान्तिक पुष्पदन्त को सम्बोधित करते हुए**) कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! कौमुदी महोत्सव के लिए कुसुमपुर के नागरिकों में उत्सुकता है ?

पुष्पदन्त : सम्राट् ! जिस समय से कौमुदी महोत्सव का संवाद नागरिकों के समीप पहुँचा है उस समय से प्रत्येक नागरिक ने शूद्र महापद्मनन्द की क्रूरता के उपसंहार में आपकी उदारता का 'भरत वाक्य' जोड़ दिया है। सम्राट् ने आचार्य चाणक्य की सहायता से शस्त्र, शास्त्र और पृथ्वी का उद्धार किया है। आपका कुसुमपुर में प्रवेश शस्त्र-विजय का सूचक है, जिसमें शास्त्र का संतोष और पृथ्वी का कल्याण है।

यशोवर्मन : प्रजा-वर्ग में से कुछ व्यक्ति नन्दवंश के समर्थक हो सकते हैं और नन्दवंश के विनाश से उनका क्षुब्ध होना स्वाभाविक है, इसलिए कौमुदी महोत्सव के सम्बन्ध में सम्राट् की घोषणा असंतोष को सुख और ऐश्वर्य से भरकर उसमें राजभक्ति की तरंग उठा सकती है। कौमुदी महोत्सव में कुसुमपुर के निवासी अपनी नगरी की शोभा देखकर अपने वैर-विरोध को भूल सकते हैं। नगरी का ऐश्वर्य देखकर उनके विचारों की दिशा में परिवर्तन हो सकता है। किन्तु हमें यह उत्सव सतर्कता से देखना चाहिए।

वसुगुप्त : सतर्कता से देखने की ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं है। नगरी का ऐश्वर्य जननी का ऐश्वर्य है। जननी का ऐश्वर्य देखकर किस पुत्र को प्रसन्नता न होगी ! अपरिचित व्यक्ति की ओर से आई हुई कल्याण-कामना भी जब रुचिकर ज्ञात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होती है तो सम्राट् ! आप जैसे उदारमना सम्राट् की ओर से की गई कल्याण-कामना नागरिकों के हृदय में सम्राट् के प्रति भक्ति और श्रद्धा की मंदाकिनी प्रवाहित किए बिना नहीं रहेगी।

चन्द्रगुप्त : ऐसा ही हो ! **(कार्यान्तिक पुष्पदन्त से)** क्यों कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! कौमुदी महोत्सव का क्या प्रबन्ध किया गया है ?

पुष्पदन्त : सम्राट् ! कौमुदी महोत्सव के अवसर पर कुसुमपुर को सजाने में नायक ने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। सोन और गंगा के संगम पर एक शत नौकाओं को सम्राट् के शुभ नाम के आकार में सजाकर उन पर चालीस हाथ ऊपर आकाश-दीपों की व्यवस्था की गई है, जिससे शरद-चन्द्रिका के हास के साथ सम्राट् का नाम भी दीपों का आलोक-मण्डल बनाता हुआ नागरिकों के हृदयों में प्रवेश कर जावे।

चन्द्रगुप्त : यह मनोवैज्ञानिक चातुर्य है। और ?

पुष्पदन्त : नगर के काष्ठ-प्राचीर के चौंसठ द्वारों पर मंगल-कलशों की तरंगें सुसज्जित होंगी। दूर से ऐसा ज्ञात होगा कि कुसुमपुर प्रकाश का एक सरोवर है जिसमें चारों ओर से दीप-किरणों की चौंसठ तरंगें प्रवाहित हो रही हैं।

चन्द्रगुप्त : यह सौन्दर्य-रचना सराहनीय है !

पुष्पदन्त : सम्राट् ! प्राचीर पर जो पाँच सौ सत्तर अलिन्द हैं उनमें नगर की उतनी ही बालाएँ मणिजटित आभूषणों से अपने को सुसज्जित कर प्रकाश के आलोक में नृत्य करेंगी। उनके नृत्य में जब उनके रत्न प्रकाश की किरणों से आलोकित होंगे तो ज्ञात होगा जैसे किरणों के कमलों में प्रकाश-बिन्दुओं के भ्रमर क्रीड़ा कर रहे हैं।

चन्द्रगुप्त : यह तो बहुत सुन्दर होगा !

पुष्पदन्त : और सम्राट् ! प्राचीर के चारों ओर जो सोन नदी की नहर है उसमें सहस्रों दीप-दान होंगे। ज्ञात होगा जैसे नगर के चारों ओर दीपों की आकाश-गंगा बहती जा रही है।

वसुगुप्त : सम्राट् ! नायक पुरस्कार का अधिकारी है।

चन्द्रगुप्त : निस्संदेह, और कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! तुम इस बात की घोषणा कर दो कि इस महोत्सव में जितने भी पण व्यय किये जायँ वे राजकोष से व्यय न होकर मेरे 'चन्द्रकोष' से व्यय किये जायँ। यद्यपि इस उत्सव से प्रजा-वर्ग का मनोरंजन होगा तथापि इसका व्यय-भार मैं वहन करूँगा।

वसुगुप्त : यह सम्राट् की उदारता है। शूद्र राजा महापद्म तो प्रजा से सहस्र-सहस्र पण लेकर उन्हें अपने विलास में व्यय करते थे और प्रजाजनों को उसी अवसर पर प्राणदण्ड का पुरस्कार मिलता था। अपने को एक राष्ट्र घोषित करते हुए भी वे प्रजाजनों के हृदयों में अणु-मात्र भी स्थान नहीं बना सके थे। यही अवस्था उनके पुत्र धननन्द के समय में थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रगुप्त : वसुगुप्त ! अपने समारोह को इन अरुचिकर चर्चाओं से क्षत-विक्षत मत होने दो ।

वसुगुप्त : मुझसे भूल हुई, सम्राट् ! मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ ।

चन्द्रगुप्त : और कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! प्रजा-भवनों का शृंगार कैसा होगा ?

पुष्पदन्त : सम्राट् ! प्रजा-भवनों की श्रेणी में विविध रंग के प्रकाश-तोरणों की व्यवस्था है । ऐसा ज्ञात होगा जैसे रात्रि में भी सम्राट् की राजधानी में सप्त रंगों के इन्द्रधनुष विविध नृत्य-मुद्राओं में सजे हैं ।

वसुगुप्त : और इस अवसर पर सम्राट् के समक्ष नन्दवंश की राजनर्तकी के नृत्य की व्यवस्था भी तो होनी चाहिए ?

यशोवर्मन : यह समय तो नगरी की शोभा देखने का होगा, नर्तकी की शोभा देखने का नहीं ।

वसुगुप्त : नगरी की शोभा देखने के अनन्तर सम्राट् विश्राम भी तो चाहेंगे ! विश्राम के क्षणों को निद्रालु बनाने के लिए राजनर्तकी के नृत्य की आवश्यकता भी होगी ।

चन्द्रगुप्त : कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! जाओ, और नायक से कौमुदी महोत्सव की व्यवस्था शीघ्र करने के लिए कहो । मेरे 'चन्द्रकोष' से उसे पाँच सहस्र पण के पुरस्कार की सूचना भी दो, कौमुदी महोत्सव के प्रारम्भ का संकेत मुझे तूर्य-नाद से मिलना चाहिए ।

पुष्पदन्त : जो आज्ञा, सम्राट् ! [**प्रस्थान**]

चन्द्रगुप्त : नायक वास्तव में पुरस्कार का अधिकारी है । कुसुमपुर में ऐसी सौन्दर्य-रचना संभवत: पहली बार होगी ! क्यों वसुगुप्त ?

वसुगुप्त : निस्संदेह, सम्राट् ! कुसुमपुर में रहते मेरा इतना जीवन व्यतीत हुआ; किन्तु महाराज नन्द ने विलासिता की थाह पाकर भी कभी अपनी नगरी का ऐसा शृंगार नहीं किया । यह श्रेय आपके ही शासन को होगा कि कुसुमपुर सचमुच सौन्दर्य का कुसुम बन सका ।

चन्द्रगुप्त : वसुगुप्त ! तुम्हारी प्रशंसा अतिशयोक्तियों से भरी होती है । इतनी प्रशंसा सुनकर मुझे कभी-कभी सन्देह होने लगता है ।

वसुगुप्त : किस सम्बन्ध में, सम्राट् ?

चन्द्रगुप्त : जो तुम कहते हो, उसकी यथार्थता में ।

वसुगुप्त : सम्राट् परीक्षा करके देख लें । सत्य को सत्य कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है, सम्राट् ! और फिर सम्राट् भी तो स्पष्टवक्ता हैं । सम्राट् स्वयं इस बात को समझते होंगे ?

चन्द्रगुप्त : चन्द्रगुप्त रण-नीति के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझना चाहता, वसुगुप्त ! समाहर्त्ता के नवीन पद पर तुम्हारी नियुक्ति के सम्बन्ध में भी महामंत्री चाणक्य ही समझें । इस सम्बन्ध में उनसे पूछने का मुझे अवकाश ही नहीं मिला ।

यशोवर्मन : आचार्य चाणक्य से पूछना बहुत आवश्यक था, सम्राट् !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वसुगुप्त : यशोवर्मन ! तुम्हें मेरा अपमान करने का कोई अधिकार नहीं । तुम मुझे द्वन्द्व-युद्ध के लिए प्रेरित करते हो !

यशोवर्मन : सम्राट् के सेवक और आचार्य महामंत्री चाणक्य के शिष्य होने के नाते मैं द्वन्द्व-युद्ध के लिए प्रस्तुत हूँ, वसुगुप्त ! सम्राट् ! मैं द्वन्द्व की आज्ञा चाहता हूँ।

चन्द्रगुप्त : यशोवर्मन ! यह राजकक्ष है, समरांगण नहीं । कौमुदी महोत्सव को रक्त का अभिषेक नहीं चाहिए । तुम्हें भी इतने शीघ्र क्षुब्ध नहीं होना चाहिए ।

वसुगुप्त : सम्राट् ! मैं क्षमा चाहता हूँ । किन्तु सत्य की रक्षा हो ।

चन्द्रगुप्त : अवश्य होगी । और आज कौमुदी महोत्सव में तो सौन्दर्य की भी रक्षा होगी । हाँ, तुम राजनर्तकी के सम्बन्ध में क्या कह रहे थे ?

वसुगुप्त : सेवक यही निवेदन कर रहा था, सम्राट्, कि सम्राट् के विश्राम-क्षणों को निद्रालु बनाने के लिए राजनर्तकी के नृत्य की आवश्यकता हो !

चन्द्रगुप्त : हाँ, होनी चाहिए ।

वसुगुप्त : तो सम्राट् ! मैंने उसकी सज्जा के लिए विशेष प्रबन्ध करा दिया है । वह राज-प्रासाद के उत्तर-कक्ष में वेश-भूषा से सुसज्जित है ।

चन्द्रगुप्त : मेरी इच्छाओं के पूर्व ही कार्य की आयोजना करनेवाले वसुगुप्त ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । कौमुदी महोत्सव में सदैव मेरे साथ रहोगे ।

वसुगुप्त : यह मेरा सौभाग्य है, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : इस अवसर पर मुझे तक्षशिला का स्मरण हो आता है, उस तक्षशिला में जहाँ अट्ठारह विषयों की शिक्षा दी जाती थी । सहस्रों विद्यार्थी थे । वहाँ मेरे एक मित्र थे । तुमने भी उनका नाम सुना होगा । प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ कात्यायन ।

वसुगुप्त : वे तो व्याकरण-निर्माता पाणिनि के अभ्यास-सिद्ध शिष्य प्रसिद्ध हैं, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : हाँ । मैं आयुर्वेद, धनुर्वेद और शल्य सीखता था और कात्यायन वेद और व्याकरण । पाणिनि के व्याकरण सूत्र भाषा और साहित्य के पूर्व ही चलते थे । उसी प्रकार तुम्हारे कार्य भी मेरी इच्छा के पूर्व ही हो जाते हैं ।

वसुगुप्त : आप मुझे आदर देते हैं, प्रभु !

चन्द्रगुप्त : वहीं आचार्य चाणक्य से मैत्री हुई । नीति-निष्णात आचार्य चाणक्य के समान बुद्धि और अन्तर्दृष्टि में आज समस्त आर्यावर्त्त में एक भी व्यक्ति नहीं है । यह मेरा सौभाग्य है कि वे मेरे आचार्य और महामंत्री हैं ।

यशोवर्मन : सम्राट् ! आचार्य चाणक्य की नीति अमर होने की क्षमता रखती है । राजनीति के साथ आयुर्वेद आदि में भी आचार्य चाणक्य निपुण हैं । चीन के एक राजकुमार अपनी नेत्र-पीड़ा की चिकित्सा कराने के लिए तक्षशिला आये थे । आचार्य चाणक्य ने एक सप्ताह की चिकित्सा में ही उन्हें स्पष्ट दृष्टि प्रदान की ।

चन्द्रगुप्त : यह मैं जानता हूँ । उनकी राजनीति पर मुग्ध होकर तक्षशिला शासक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आम्भीक उन्हें तक्षशिला में ही रखना चाहता था। किन्तु उन्होंने वहाँ रहना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया था कि हम दोनों एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करेंगे।

यशोवर्मन : और सम्राट्! उनका कथन अंत में कितना सत्य निकला!

चन्द्रगुप्त : सत्य क्यों न होता, मानवी हृदय को पहिचानने की अंतर्दृष्टि उनमें इतनी अधिक है कि वे एक ही क्षण में उसका सम्पूर्ण कार्यक्रम स्पष्टतः बतला सकते हैं। वे कार्य करने की शैली जानते हैं। अपूर्व शक्ति, अपूर्व साहस और अपूर्व बुद्धि का विचित्र समन्वय उनमें हुआ है।

यशोवर्मन : वे नर-रत्न हैं, सम्राट्! आपके सहयोग से वे राज्य को निष्कंटक बना देंगे।

चन्द्रगुप्त : मैं भी ऐसा ही अनुमान करता हूँ, किन्तु कौमुदी महोत्सव के सम्बन्ध में भी मैं आचार्य चाणक्य से परामर्श नहीं कर सका। संग्राम की उलझनों ने अवकाश ही नहीं दिया; किन्तु इसकी सूचना तो उन्हें अवश्य मिल चुकी होगी!

वसुगुप्त : वे आपकी इच्छा का समर्थन ही करेंगे। कौमुदी महोत्सव की उपयोगिता और सामयिकता तो वे अपनी अन्तर्दृष्टि से अवश्य ही देख चुके होंगे। तो अब समय अधिक हो रहा है। सम्राट्, राजनर्तकी के नृत्य के सम्बन्ध में क्या निर्णय करते हैं?

चन्द्रगुप्त : उसका क्या नाम है?

वसुगुप्त : 'अलका', सम्राट्। वह अनिंद्य सुन्दरी और अद्वितीय नृत्य-कला की साम्राज्ञी है।

चन्द्रगुप्त : मैं पहले उसे देखना चाहूँगा।

वसुगुप्त : अवश्य, सम्राट्! वह राज-प्रासाद के उत्तर-कक्ष में वेश-भूषा से सुसज्जित है। आज्ञा हो तो उसे सम्राट् की सेवा में निरीक्षणार्थ उपस्थित करूँ?

चन्द्रगुप्त : ऐसा ही हो।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, मैं उसे अभी सम्राट् की सेवा में उपस्थित करता हूँ। [**वसुगुप्त का प्रसन्नता के साथ प्रस्थान**]

चन्द्रगुप्त : अन्तपाल यशोवर्मन! आज राजनर्तकी अलका का नृत्य देखकर मैं कुसुम-पुर की उत्कृष्ट नृत्य-कला का परिचय पा सकूँगा।

यशोवर्मन : मैं सम्राट् की सेवा में एक निवेदन करना चाहता हूँ?

चन्द्रगुप्त : निवेदन करो।

यशोवर्मन : विलासी नंद-वंश की राजनीति में यह राजनर्तकी अलका है।

चन्द्रगुप्त : यह राजनर्तकी अलका?

यशोवर्मन : हाँ, सम्राट्! राजनर्तकी के जीवन का यह सबसे बड़ा अभिशाप है कि वह नंद-वंश के विनाश का कारण बनी। और इस तरह वह निर्दोष नहीं कही जा सकती।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रगुप्त : निर्दोष ? वह सब प्रकार से दोषी कही जानी चाहिए। गौतम ने अहिल्या को शाप क्यों दिया ? क्या अहिल्या ने अपने सदाचार से अपने सौन्दर्य की रक्षा नहीं की थी, फिर क्यों उसने इन्द्र को नहीं पहिचाना ? शची का सौभाग्य अप्सराओं को बाँटनेवाले इन्द्र की लालसा का भी परिचय चाहिए। वैसे ही क्या अलका महाराज नन्द को नहीं पहिचान सकी ? क्या महाराज नन्द की आँखों में उसके अंगराग की अरुण रेखाएँ विद्युत् बनकर नहीं चमक उठीं ? यशोवर्मन ! तुम जानते हो आकाश की उल्का प्रकाश से ओतप्रोत रहती है; किन्तु जब वह उदित होती है तो समस्त संसार में अमंगल की आशंका क्यों होती है ?

यशोवर्मन : जब सम्राट् ऐसा सोचते हैं तो उसके नृत्य की अनुमति क्यों दे रहे हैं ?

चन्द्रगुप्त : केवल कौमुदी महोत्सव को शोभा-संपन्न करने के लिए और कुसुमपुर की जनता के मन में यह संतोष उत्पन्न करने के लिए कि सम्राट् चन्द्रगुप्त ने महाराज नन्द के आश्रितों के साथ सहानुभूति का व्यवहार किया। तुम जानते हो, यशोवर्मन ! महाराज नन्द के लिए जो विष था, उसे मैं अमृत में परिणत करना चाहता हूँ।

यशोवर्मन : सम्राट् तक्षशिला के स्नातक हैं। सम्राट् जानते हैं कि राजनीति में राजनर्तकी का क्या स्थान है।

चन्द्रगुप्त : वही स्थान जो कृपाण की धार को ढकने के लिए म्यान का होता है। राजनीति रूपी कठोर कृपाण का आतंक छिपाने के लिए राजनर्तकी रूपी आवरण आवश्यक है; किन्तु वह आवरण कृपाण की धार को कुंठित नहीं करता। राजनीति की परुषता प्रजा की दृष्टि से ओझल रहना आवश्यक है।

यशोवर्मन : सत्य है, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : किन्तु महाराज नन्द की राजनीति राजनर्तकी से कुंठित हो गई। तलवार ही म्यान बनकर रह गई, मैं राजनर्तकी को म्यान बनाकर रखना चाहता हूँ। (**रुककर**) क्या कारण है मुझे कौमुदी महोत्सव के प्रारंभ की सूचना तूर्य द्वारा नहीं सुन पड़ी ?

[वसुगुप्त का प्रवेश]

वसुगुप्त : सम्राट् ! राजनर्तकी सेवा में उपस्थित है।

चन्द्रगुप्त : उपस्थित करो ! वह मेरे कक्ष के वातावरण को संगीत और नृत्य से मुखरित करे।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट् ! **[प्रस्थान]**

चन्द्रगुप्त : अन्तपाल यशोवर्मन ! नृत्य और संगीत कौमुदी महोत्सव की वह प्रस्तावना है जिसमें उमंग की रूपरेखा मंगल के रंग में सुसज्जित होती है। नृत्य में ऐसी मनोहर भावनाएँ हैं जिनमें सुख का रहस्य जागता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[**वसुगुप्त के साथ राजनर्तकी ग्रलका का प्रवेश**]

ग्रलका : सम्राट् की सेवा में ग्रलका का प्रणाम स्वीकार हो ! [**ग्रत्यन्त सुकुमार भाव से प्रणाम करती है।**]

चन्द्रगुप्त : (**हाथ उठाकर**) कुसुमपुर की श्री और शोभा की ग्रधिवासिनी बनो। (**यशोवर्मन से**) यशोवर्मन ! तुम जा सकते हो।

यशोवर्मन : जो ग्राज्ञा, सम्राट् ! मेरा निवेदन है कि इस नृत्य-समारोह में ग्राचार्य चाणक्य भी सम्मिलित हों।

चन्द्रगुप्त : (**हँसकर**) ग्राचार्य चाणक्य ? राजनीति को कविता से मिलाना चाहते हो ? मुझे कोई ग्रापत्ति नहीं। यदि चाहो तो उन्हें यहाँ भेज सकते हो। वे भी राजनीति के कुचक्रों से थक गये होंगे, उन्हें भी विश्राम की ग्रावश्यकता होगी। राजनीति का मस्तिष्क ग्राज नृत्य की कविता से हृदय की सहानुभूति प्राप्त करे।

वसुगुप्त : जो ग्राज्ञा, सम्राट् ! [**प्रस्थान**]

चन्द्रगुप्त : राजनीति ग्रौर कविता ! (**राजनर्तकी से**) क्यों राजनर्तकी ! तुम राजनीति की ताल पर नृत्य कर सकती हो ?

ग्रलका : सम्राट् ! ग्रभी तक तो राजनीति ही मेरे नृत्य की ताल थी। किन्तु मैंने इसकी ग्रोर कभी ध्यान दिया ही नहीं। राजनर्तकी का राजनीति से क्या सम्बन्ध, सम्राट् ! वह तो राज्य की ग्रनुचरी-मात्र है।

चन्द्रगुप्त : (**हँसकर**) इन्हीं छद्मवेशी शब्दों से ग्रनुचरी स्वामिनी बन जाती है, राजनर्तकी ! महाराज नन्द तुम पर मोहित थे या तुम महाराज नन्द पर मोहित थीं ?

ग्रलका : सम्राट्, मुझे क्षमा करें। सच्ची नारी मोहित नहीं होना चाहती, वह ग्रात्म-समर्पण करना चाहती है। जो नारी मोहित होती है, वह ग्रपने रूप का व्यापार करती है, हृदय का समर्पण नहीं।

चन्द्रगुप्त : तुम किस व्यापार में विश्वास करती हो—रूप के व्यापार में या हृदय के व्यापार में ?

ग्रलका : हृदय का व्यापार नहीं होता, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : तो हृदय का समर्पण सही।

ग्रलका : उस समर्पण की कोई भाषा नहीं होती, सम्राट् ! जिस समर्पण में भाषा होती है, वह व्यापार बन जाता है, ग्रौर हृदय का व्यापार कभी नहीं होता।

चन्द्रगुप्त : पर महाराज नन्द तो हृदय का व्यापार करते थे। ग्रौर उस व्यापार में वे ग्रपना सारा साम्राज्य हार गये। क्या यह बात सत्य नहीं है ?

ग्रलका : सत्य है, सम्राट् ! किन्तु पुरुष तो व्यापारी है, वह ग्रपने व्यापार में सब कुछ लुटा सकता है।

चन्द्रगुप्त : के पुरुषों प्रति तुम्हारी बहुत हीन दृष्टि है, राजनर्तकी !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलका : उसी प्रकार जैसे पुरुषों की नारियों के प्रति हीन दृष्टि है, सम्राट् ! वे नारी को विलासिता की सामग्री बनाकर छोड़ देते हैं।

चन्द्रगुप्त : किन्तु कोई नारी बलपूर्वक विलासिता की सामग्री नहीं बनाई जा सकती। वह अपनी विजय के लिए विलासिता की सामग्री बनती है और दोष पुरुषों को देती है।

अलका : सम्राट् राजनीति के आचार्य हैं और सेविका राजनीति के पैरों से कुचली हुई धूल है, सम्राट् ! मैं क्या निवेदन कर सकती हूँ !

चन्द्रगुप्त : किन्तु राजनर्तकी ! धूल भी सिर पर चढ़ सकती है।

अलका : हाँ, सम्राट् ! जब वह पैरों से ठुकराई जाती है। किन्तु सेविका का यह अधिकार नहीं।

चन्द्रगुप्त : अधिकार नहीं, राजनर्तकी ! यह तो उसकी गति है। गति में अधिकार का आडम्बर नहीं होता, उसमें शक्ति की विद्युत् होती है। और तुममें वह शक्ति की विद्युत् है जिसने आकाश का हृदय चीरते हुए तड़पकर नन्द जैसे विशाल शाल वृक्ष को धराशायी कर दिया।

अलका : तब तो मुझे विद्युत् की भाँति ही पृथ्वी में विलीन हो जाना चाहिए, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : किन्तु राजनर्तकी महासती सीता नहीं बन सकती जो भूमि में विलीन हो जावे। राजनर्तकी को राज्य का श्रृंगार करना पड़ता है।

अलका : यह मेरे जीवन का अभिशाप है, सम्राट् ! ऐसे फूलों का क्या सौन्दर्य जो किसी शव पर बिखेर दिए जाते हैं। आज आपके चरणों पर गिरकर मैं अपने जीवन से मुक्त हो जाऊँगी।

चन्द्रगुप्त : निराशा की बातें मत करो, राजनर्तकी ! तुम जानती हो आज कौमुदी महोत्सव है। कुसुमपुर की जनता मेरे साथ आनन्द-विभोर हो जाना चाहती है। तुम्हें मधुर गायन से वातावरण को गुंजित करना है।

अलका : सम्राट् की जो आज्ञा। किन्तु आज से मैं राजनर्तकी का पद त्याग दूँगी और आपके चरणों की धूल में शयन कर अमर हो जाऊँगी।

चन्द्रगुप्त : राजनर्तकी ! तुम्हारा यह वार्त्तालाप महाराज नन्द से नहीं हो रहा, सैनिक चन्द्रगुप्त से हो रहा है। मुझे अपने चरणों की धूल वीरों की परम्परा के लिए छोड़नी है, राजनर्तकियों की परम्परा के लिए नहीं; किन्तु मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। कुसुमपुर के नागरिकों को नृत्य-शिक्षा दो और उसका मंगलाचरण आज कौमुदी महोत्सव में तुम्हारे नृत्य से हो। नृत्य प्रारम्भ करो, जिससे कुसुमपुर का वायुमंडल तुम्हारे नूपुरों के स्वरों का वाहक बनकर कौमुदी महोत्सव का निमंत्रण प्रत्येक दिशा में पहुँचा दे।

वसुगुप्त : अलका ! तुम्हें कुसुमपुर के आदर्श नृत्य का परिचय सम्राट् को देना है। इस समय तुम्हें ऐसा नृत्य करना है कि सम्राट् नृत्य-विभोर होकर अपने जीवन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के समस्त विषाद को भूल जायँ।

चन्द्रगुप्त : मुझे तो कोई विषाद नहीं है, वसुगुप्त।

वसुगुप्त : सम्राट् को विषाद ही क्या हो सकता है ! सम्राट् तो सैनिक हैं। सैनिकों को विषाद कैसा ! मैं तो यही कहना चाहता था कि कुसुमपुर के नागरिकों के हित-चिन्तन में लगा हुआ आपका मन जो थका हुआ है......

चन्द्रगुप्त : ठीक है। राजनर्तकी ! नृत्य प्रारम्भ हो।

अलका : जो आज्ञा सम्राट् की !

[प्रणाम कर नृत्य प्रारम्भ करती है। कुछ देर नृत्य करने के बाद मधुर कंठ से गीत गाती है]

आज मधुमय कुसुमों के द्वार—
द्वार पर है अलि का गुंजन !
सजीली थी मधुवन की गली,
समीरन धीरे-धीरे चली,
फूल के पास खिल गई कली,
और नभ से संध्या ने उतर,
लगाया आँखों में अंजन !
आज मधुमय कुसुमों के द्वार—
द्वार पर है अलि का गुंजन !

[थोड़ी देर तक नृत्य होता रहता है। अन्त में सम्राट् के मुख से प्रशंसा के शब्द निकलते हैं]

चन्द्रगुप्त : बहुत सुन्दर, राजनर्तकी अलका ! तुम जितनी सुन्दर हो, उतना ही सुन्दर तुम्हारा नृत्य है। यह लो अपना पुरस्कार !

[चन्द्रगुप्त अपने गले से मोतियों की माला उतारते हैं। सहसा आचार्य चाणक्य का प्रवेश]

चाणक्य : पुरस्कार नहीं दिया जावेगा, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : **(आश्चर्य से रुककर)** महामंत्री चाणक्य !

चाणक्य : सम्राट् ! आग बुझ जाने पर भी आग की राख गरम रहती है, उसे तुम हाथ में नहीं उठा सकते। तुम इतने थोड़े समय में कैसे मान बैठे कि कुसुमपुर की आग इतनी शीतल भस्म हो गई है कि उसमें कुसुमों की क्यारियाँ सजाई जायँ ?

चन्द्रगुप्त : महामन्त्री ! चन्द्रगुप्त ने कुसुमों की क्यारियों में नहीं, समरांगण में अपने जीवन का वैभव देखा है। उसने नूपुरों की झंकार में नहीं, तलवारों की झंकार में अपने जीवन का संगीत गाया है। आपने यह कैसे समझ लिया कि चन्द्रगुप्त के क्षणिक मनोविनोद में उसका समरांगण कुसुम की क्यारी बन गया ? आपको यह समझना चाहिए कि यह क्षणिक विश्राम भविष्य के युद्ध की भूमिका है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाणक्य : और सम्राट् चन्द्रगुप्त, यदि इस क्षणिक विश्राम में ही जीवन का अन्त हो गया तो ? तुम्हारे भविष्य के वैभव का समरांगण ही कहीं तुम्हारे शव का श्मशान बन गया तो इस विश्राम के क्षण को तुम क्या कहोगे ?

चन्द्रगुप्त : आर्य ! विश्राम के क्षणों की सीमा क्या और कितनी है, यह जानने के लिए चन्द्रगुप्त के पास पर्याप्त विवेक......

चाणक्य : **(बीच ही में)**......नहीं है। यही समझकर मैं अपने साथ सैनिक लाया हूँ। **(पुकारकर)** सैनिको ! राजनर्तकी और समाहर्त्ता को अपने नियंत्रण में लो।

[सैनिक नेपथ्य से निकलकर आगे बढ़ते हैं।]

वसुगुप्त : सम्राट् ! राजमर्यादा भंग हो रही है, रक्षा कीजिए !

चन्द्रगुप्त : महामंत्री ! वसुगुप्त अपने नवीन समाहर्त्ता हैं।

चाणक्य : किन्तु इस समय वे बन्दी हैं। सैनिको, दोनों को नियंत्रण में लो। यदि कोई विरोध हो, तो बल प्रयोग हो !

वसुगुप्त : **(करुण स्वर में)** मैं निर्दोष हूँ, मैं निर्दोष हूँ, सम्राट् ! महामंत्री ! मैं निर्दोष हूँ।

अलका : **(अत्यन्त करुण स्वर में)** मेरा स्पर्श कोई न करे। मैं नारी हूँ। नारी की मर्यादा सुरक्षित हो, सम्राट् ! नारी की मर्यादा सुरक्षित हो। मैं स्वयं नियंत्रण में होती हूँ। हाय, नारी नियंत्रण में, सदैव नियंत्रण में, जीवन-भर नियंत्रण में ! **[विह्वल हो जाती है।]**

चन्द्रगुप्त : **(आगे बढ़कर)** आर्य चाणक्य !...

चाणक्य : कुछ मत कहो इस समय, सम्राट् चन्द्रगुप्त ! चाणक्य अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह समझता है। सैनिको ! दोनों को नियंत्रण में लेकर दूसरे कक्ष में जाओ।

सैनिक : जो आज्ञा ! **[दोनों को बन्दी कर सैनिकों का प्रस्थान]**

चन्द्रगुप्त : यह राजमर्यादा की सबसे बड़ी अवहेलना है, महामन्त्री ! जिस राजमर्यादा की पूजा हमने रक्त चढ़ाकर की है, उसी राजमर्यादा को तुच्छ सैनिक अपने पैरों की धूल से कलंकित करें ! यह कैसी राजनीति है ? आज कौमुदी महोत्सव के अवसर पर......

चाणक्य : कौमुदी महोत्सव ?

चन्द्रगुप्त : हाँ, कौमुदी महोत्सव। क्या आपने मेरी घोषणा नहीं सुनी ?

चाणक्य : वह सुनने योग्य नहीं थी।

चन्द्रगुप्त : आप राजमर्यादा का इतना अपमान कैसे कर रहे हैं, महामन्त्री ! कौमुदी महोत्सव की घोषणा कुसुमपुर में मेरी प्रथम राजघोषणा है।

चाणक्य : वह राजघोषणा प्रारम्भ होने से पूर्व ही समाप्त हो गई।

चन्द्रगुप्त : **(आश्चर्य से)** समाप्त हो गई ! किसने यह साहस किया ?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाणक्य : मैंने, आर्य चाणक्य ने ।

चन्द्रगुप्त : इसीलिए मुझे घोषणा का तूर्य नहीं सुन पड़ा । तो आपने कौमुदी महोत्सव की घोषणा नहीं होने दी ?

चाणक्य : नहीं, मैंने ही घोषणा नहीं होने दी ।

चन्द्रगुप्त : मैं कारण जानना चाहता हूँ ।

चाणक्य : मैं कारण नहीं बतला सकता ।

चन्द्रगुप्त : सम्राट् कौन है, चन्द्रगुप्त या चाणक्य ?

चाणक्य : चन्द्रगुप्त ।

चन्द्रगुप्त : फिर सम्राट् चन्द्रगुप्त की आज्ञा की अवहेलना क्यों हो रही है ?

चाणक्य : इसलिए कि वह आज्ञा किसी मचले बालक की हठ की तरह है ।

चन्द्रगुप्त : फिर भी उसकी रक्षा चाहिए ।

चाणक्य : नहीं, बालक आग पकड़ना चाहता है । उसे आग पकड़ने की सुविधा नहीं दी जा सकेगी ।

चन्द्रगुप्त : यह तुम्हारा गर्व है, महामन्त्री !

चाणक्य : यह तुम्हारा अज्ञान है, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : (**क्रुद्ध होकर**) महामन्त्री ! कुसुमपुर की विजय में तुम्हारा हाथ रहा है, तो क्या इतनी छोटी-सी विजय ने ही तुम्हारे गर्व की चिनगारी को फूँक मार कर लपट में परिवर्तित कर दिया ? यह गर्व उस चिता की ज्वाला है जिसमें तुम्हारी राजनीति जलकर भस्म हो सकती है !

चाणक्य : मुझे इसकी चिन्ता नहीं है, सम्राट् ! गर्व मेरे अन्तःकरण का अधिकार है । वह राज्य से अनुशासित नहीं है । किन्तु मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि चाणक्य के गर्व की चिनगारी स्वर्ग के राज्य को प्राप्त करके भी लपट नहीं बनेगी । हाँ, अपमान के हलके झोंके से ही यह दावाग्नि बनकर तुम्हारे वैभव के नन्दन वन को क्षण-भर में भस्म कर सकती है । क्या तुम नन्दवंश के विनाश की पुनरावृत्ति देखना चाहते हो ?

चन्द्रगुप्त : आर्य चाणक्य ! सैनिक चन्द्रगुप्त विलासी नन्द नहीं है जो पतन के गर्त के मुख पर खड़ा होकर हलकी-सी राजनीति के धक्के की प्रतीक्षा करे । मौर्य चन्द्रगुप्त हिमाद्रि की तरह सुदृढ़ है, जिसे महामन्त्री चाणक्य की कुटिल राजनीति रूपी आँधियों के झोंके एक कण-भर भी विचलित नहीं कर सकते ।

चाणक्य : मौर्य चन्द्रगुप्त ! क्षत्रियत्व क्या इतना पतित हो गया कि वह ब्राह्मणत्व पर पदाघात करे ? क्या तुम जानते हो कि मौर्य हिमाद्रि की भाँति सुदृढ़ कैसे हो पाया ? उसकी सुदृढ़ता को धारण करनेवाली पृथ्वी इसी ब्राह्मण की राजनीति है । यदि यह शक्ति एक क्षण के लिए अलग हो जाय तो हिमाद्रि इतने वेग से नीचे गिरेगा कि वह अपने साथ समीपवर्ती वृक्षों को भी लेकर समुद्र-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तल में चला जायगा और तब समुद्र की तरंगें इसी ब्राह्मण के चरणों में लौटने के लिए आवेंगी और यह ब्राह्मण उस ओर देखेगा भी नहीं।

चन्द्रगुप्त : आर्य चाणक्य ! संसार में जितने प्रतापशाली राज्य हुए हैं क्या वे सब महामन्त्री चाणक्य की राजनीति के बल पर ही हुए हैं और जहाँ महामन्त्री चाणक्य नहीं हैं, वहाँ किसी राज्य की स्थापना भी नहीं है ? क्या सारे राज्यों की शक्ति महामन्त्री चाणक्य की शक्ति से ही भिक्षा माँगकर संसार में चली है और क्या चन्द्रगुप्त इतना हीन है कि उस शक्ति के बल पर ही विजय प्राप्त करता है ? तब जाने दो ऐसी शक्ति को। उसे मैं आज ही दूर करता हूँ। महामन्त्री चाणक्य ! तुम महामन्त्री पद से मुक्त किये गये।

चाणक्य : मौर्य ! लो अपना शस्त्र (**फेंक देते हैं**)। यह कलंक इसी समय दूर करता हूँ। राजमन्त्री राक्षस की राजनीति के कुचक्र में आनेवाले चन्द्रगुप्त ! क्या मैं अपनी शिखा खोलकर विनाश की फिर प्रतिज्ञा करूँ ? जिस ब्राह्मण की शिखा सर्पिणी ने नन्दवंश को एक ही दंशन में समाप्त कर दिया, क्या मौर्य भी उस सर्पिणी पर हाथ रखना चाहता है ? जिस चन्द्रगुप्त को अपना आत्मीय समझ कर कुसुमपुर के सिंहासन पर आरूढ़ कराया, उसी चन्द्रगुप्त के विनाश से क्या श्मशान को सुसज्जित करूँ ? वाह रे ब्राह्मण ! ब्रह्म-ज्ञान में जीवित रहनेवाला आज राज्य के कुचक्रों से लांछित हो रहा है। आज अपने सृष्टि-सागर का विष मैं पी ही रहा हूँ, किन्तु चन्द्रगुप्त ! मुझमें कालकूट को भी पी जानेवाले नीलकंठ की शक्ति है। समझते हो ?

चन्द्रगुप्त : समझता हूँ, चाणक्य ! (**शस्त्र उठाते हुए**) यह शस्त्र अब मेरे अधिकार में है। आज से मैं समस्त राजनीति अपने बाहु-बल में केन्द्रित कर कुसुमपुर का शासन करूँगा और विद्रोह के सर्पों को जलाने के लिए महायज्ञ करूँगा।

चाणक्य : करो, इसी समय से करो वह महायज्ञ और उसमें तुम भी विनष्ट हो जाओ ! आज कौमुदी महोत्सव करो और अपने नवीन समाहर्त्ता और राजनर्तकी के रूप में अपनी मृत्यु को निमन्त्रण दो।

चन्द्रगुप्त : मेरे आनन्दोत्सव से ईर्ष्या करने वाले चाणक्य ! तुम यही कहो। ब्राह्मण को इन ऐश्वर्यों से द्वेष होना स्वाभाविक है।

चाणक्य : आत्मचिन्तन में जो ऐश्वर्य है, क्षत्रिय, वह इन तुच्छ भड़कीले वैभवों में नहीं है और वह वैभव जो अपने साथ मृत्यु लिए हुए है ! शत्रु के गुप्तचरों और विषकन्याओं पर विश्वास करनेवाला सम्राट् एक ही पदक्षेप में मृत्यु का आलिंगन उसी भाँति करता है जैसे एक ही उछाल में पतिंगा दीप-शिखा के भीतर जलती हुई मृत्यु में भस्म हो जाता है। तुम भी भस्म हो जाओ और अपने वैभव का जला हुआ काला धुआँ अपने पीछे छोड़ जाओ !

चन्द्रगुप्त : अपनी राजनीति में अविश्वासी बने हुए, चाणक्य ! तुम प्रत्येक व्यक्ति को गुप्तचर और प्रत्येक नारी को विषकन्या समझ सकते हो। राज्य-सीमा की रेखा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर रेंगती हुई तुम्हारी आँखों की पुतलियाँ काले कीड़े की तरह केवल निरीह जीवों की हिंसा करना ही जानती हैं। महामन्त्री की विशेषता......

चाणक्य : महामन्त्री मत कहो, मौर्य ! मैं अब तुम्हारा महामन्त्री नहीं हूँ। मैं भी तुम्हें सम्राट् नहीं कह रहा हूँ। मैं केवल एक ब्राह्मण हूँ। वह ब्राह्मण जिसकी शिखा बहुत दिनों तक खुली रही और वह तभी बाँधी गई जब उसने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नन्दवंश का विनाश कर दिया। अब उसके सामने केवल दो ही मार्ग हैं। या तो वह पुनः अपनी शिखा खोलकर मौर्यवंश के विनाश की प्रतिज्ञा करे या क्षितिज की भाँति अपनी बाहुओं को फैलाकर नक्षत्रों के नेत्रों से विश्वंभरा पृथ्वी को अपनी करुणा और शान्ति से सींचे। तब समस्त सृष्टि में उसका राज्य होगा, पशु-पक्षी उसके सहचर होंगे और वायु के झकोरों में झूमकर साम गान करता हुआ तुम्हें क्षमा करेगा।

चन्द्रगुप्त : यह तपोवन नहीं है, आर्य ! और चन्द्रगुप्त क्षमा का न तो पात्र है, न अभिलाषी। अब तपोवन के होमकुण्ड में हिंसा करो या कुश-कंटक चरनेवाले हरिणों को क्षमा करो; किन्तु जाने के पूर्व अपने नवीन समाहर्त्ता वसुगुप्त तथा राजनर्तकी अलका पर लगाये हुए लांछन का निराकरण करना होगा। और यदि यह लांछन असत्य निकला तो राज्य का दण्ड-विधान अपराधी को पहचानता है। यह मेरा अन्तिम आदेश है।

चाणक्य : अपने नवीन महामन्त्री को प्रथम आदेश दो, मौर्य ! मैं तुम्हारे समक्ष सत्य के उद्घाटन के लिए बाध्य नहीं हूँ।

चन्द्रगुप्त : जो ब्राह्मण सत्य के उद्घाटन को अपना धर्म न समझे, उसे मैं किस संज्ञा से सम्बोधित करूँ ?

चाणक्य : सत्य का उद्घाटन मैं अपनी इच्छा से कर सकता हूँ। किन्तु इस उद्घाटन के अनन्तर मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकूँगा। यह वातावरण अभिशाप बनकर मेरे रोम-रोम में तीव्र प्रतिहिंसा की ज़्वाला उत्पन्न कर रहा है।

चन्द्रगुप्त : सर्वप्रथम प्रमाण उपस्थित किया जाय !

चाणक्य : **(पुकारकर)** सैनिक !

[सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : आज्ञा, महाराज !

चाणक्य : समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्तकी अलका को उपस्थित करो।

सैनिक : जो आज्ञा। **[प्रस्थान]**

चाणक्य : चन्द्रगुप्त ! प्रजा के संस्कार जल्दी नहीं छूटते। इस समय भी महाराज नन्द से सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति कुसुमपुर में विद्रोह की लपटों के स्फुलिंग बने हुए हैं। राजमन्त्री राक्षस कुसुमपुर के नागरिकों में अविश्वास के बीजों पर अपनी नीति का जल सींच रहा है। कुसुमपुर के समस्त कार्यों में षड्यन्त्र का जाल जयकार के छद्मवेश में चारों ओर घूम रहा है और तुम कौमुदी महोत्सव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में असावधान होकर विषकन्या का स्पर्श करना चाहते हो ? चन्द्रगुप्त ! मैं अपने निस्पृह नेत्रों से सब कुछ देख रहा हूँ और तुम देखकर भी कौमुदी महोत्सव की शीतलता में हलाहल पान करने जा रहे हो ! मैं फिर यही कहना चाहता हूँ...... (**सैनिक का वसुगुप्त और अलका के साथ प्रवेश**) अच्छा ! समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्तकी अलका। सैनिक ! तुम जाकर द्वार पर अपना स्थान ग्रहण करो। (**सैनिकों का प्रणाम कर प्रस्थान। वसुगुप्त को सम्बोधित करते हुए**) समाहर्त्ता वसुगुप्त ! मुझे दुःख है कि मैंने तुम्हें सैनिकों के नियंत्रण में रखा। मैं जानता हूँ कि तुम सम्राट् चन्द्रगुप्त के विश्वासपात्र नवीन समाहर्त्ता हो।

वसुगुप्त : मैं समाहर्त्ता नहीं हूँ, महामन्त्री ! यदि समाहर्त्ता होता तो सम्राट् समाहर्त्ता का अपमान इस भाँति नहीं देख सकते थे।

अलका : (**करुण स्वर में**) और नारी का अपमान आज तक कुसुमपुर के राजकक्ष में नहीं हुआ, मैं अपमानित हुई हूँ, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : (**दृढ़ता से**) निस्सन्देह ! मैं दोनों के अपमान का प्रतिकार करूँगा।

चाणक्य : (**वसुगुप्त से**) सम्राट् से तुमने आश्वासन पा लिया है, समाहर्त्ता। और (**राजनर्तकी से**) राजनर्तकी ! तुम्हें भी सम्राट् के बाहुओं की शीतल छाया प्राप्त हो चुकी है; किन्तु (**वसुगुप्त से**) मैं जानना चाहता हूँ, समाहर्त्ता ! राजनर्तकी से तुम्हारा परिचय कितना पुराना है ?

वसुगुप्त : मैं राजनर्तकी का नाम भी नहीं जानता, महामन्त्री ! मुझे तो कौमुदी महोत्सव की घोषणा के कुछ क्षण पूर्व राजनर्तकी का परिचय मिला।

चाणक्य : तुम कुसुमपुर के निवासी हो, समाहर्त्ता !

वसुगुप्त : कुसुमपुर के एक ग्राम अमरावती का निवासी हूँ। मैं वहाँ का अन्तपाल था।

चाणक्य : तो तुम कुसुमपुर में कब से निवास करते हो ?

वसुगुप्त : मैंने कहा न, महामन्त्री ! मैं कुसुमपुर का नहीं, अमरावती का निवासी हूँ।

चाणक्य : सम्राट् चन्द्रगुप्त ने तुम्हें कुसुमपुर में पाया या अमरावती में ? उन्होंने तुम्हें अपना समाहर्त्ता बनाने में तो कुसुमपुर की नागरिकता को ही ध्यान में रखा होगा ?

वसुगुप्त : मैं कुसुमपुर में निवास नहीं करता, महामन्त्री ! मैं अमरावती से कुसुमपुर आया अवश्य करता हूँ।

चाणक्य : वर्ष में कितनी बार आया करते हो ?

वसुगुप्त : मैं कह नहीं सकता।

चाणक्य : (**कठोर स्वर में**) प्रश्न की अवहेलना नहीं हो सकती। ठीक उत्तर दो।

वसुगुप्त : महाराज नन्द के प्रमुख उत्सवों में आया करता था।

चाणक्य : गत वर्ष वसंतोत्सव में सम्मिलित हुए थे ? अमरावती के अन्तपाल !

वसुगुप्त : हाँ, महामन्त्री !

चाणक्य : वसन्तोत्सव में राजनर्तकी अलका ने नृत्य किया था। तुमने उसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखा था ?

वसुगुप्त : हाँ, महामन्त्री ।

चाणक्य : तब तुम अलका के नाम से परिचित हो ?

वसुगुप्त : हाँ, महामन्त्री ।

चाणक्य : अभी तुमने कहा कि मैं अलका का नाम भी नहीं जानता और कहा कि कौमुदी महोत्सव के एक क्षण पूर्व राजनर्तकी का परिचय मिला ?

वसुगुप्त : मैं राजनीति की बातें प्रकट नहीं करता ।

चाणक्य : (हँसकर) बड़े राजनीतिज्ञ हो । अच्छा, राजनीति की बातें मत कहो । सीधा उत्तर दो, तुम राजमन्त्री राक्षस के गुप्तचर कब हुए ?

वसुगुप्त : महामन्त्री ! मैं दुष्ट राक्षस को जानता भी नहीं हूँ ।

चाणक्य : उसी तरह जिस तरह तुम राजनर्तकी को नहीं जानते थे ?

बसुगुप्त : (**चन्द्रगुप्त से**) सम्राट् ! मेरे सम्मान की रक्षा कीजिए ।

चन्द्रगुप्त : मैं रक्षा करूँगा । पहले महामन्त्री आचार्य चाणक्य के प्रश्नों के उत्तर दे दो ।

वसुगुप्त : मैं उत्तर देने में असमर्थ हूँ, सम्राट् ! कौमुदी महोत्सव के इस अवसर पर मैंने अधिक आसव पान कर लिया है । इसी कारण मेरे उत्तर ठीक नहीं हैं ।

चाणक्य : कोई हानि नहीं, समाहर्त्ता ! मैं तुम्हें और भी आसव पान करने के लिए दूँगा, जिससे तुम्हारे लिए यह कौमुदी महोत्सव और भी मंगलमय हो ।

वसुगुप्त : मैं अधिक आसव पान करना राजधर्म के प्रतिकूल समझता हूँ, महामंत्री !

चाणक्य : अभी तुमने कहा कि अधिक आसव पान करने के कारण मैं ठीक उत्तर नहीं दे सकता । अब कहते हो, मैं अधिक आसव पान करना राजधर्म के प्रतिकूल समझता हूँ ।

वसुगुप्त : मैं राजनीति के रहस्य आपके समक्ष खोलने में असमर्थ हूँ ।

चाणक्य : बार-बार राजनीति ! प्रत्येक प्रश्न में राजनीति ! राज्य का समाहर्त्ता राज्य के महामंत्री से राजनीति के रहस्य नहीं कहना चाहता ? और आसव पान करने में भी तुम्हारी राजनीति है ! हाँ, तुम्हारी नहीं, मेरी है । समाहर्त्ता ! यदि तुम नहीं चाहते तो मैं तुमसे राजनीति के रहस्य खोलने के लिए नहीं कहूँगा । कविता की बातें कहूँगा । कविता की बातें कर सकते हो ? उत्तर दो ! जो आसव वन्य कुसुमों की सुगन्धि लिए हुए है, वह इतना मादक क्यों होता है ?

वसुगुप्त : मैं नहीं जानता, महामंत्री !

चाणक्य : तुम नहीं जानते, मैं जानता हूँ । जो आसव वन्य कुसुमों की सुगंधि लिए हुए है वह इतना मादक इसलिए है कि उसे सुन्दरियाँ अपने हाथ से पान कराती हैं, ऐसी सुन्दरियाँ जिनके नेत्रों में आसव है । वे तुम्हारे आसव को देखते हुए अपने नेत्रों का आसव उसमें ढालकर उसे और भी मादक बना देती हैं ।

वसुगुप्त : आप तो राजनीति और कविता दोनों में पारंगत हैं, महामन्त्री !

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाणक्य : चाणक्य की सूखी शिराओं में कविता कहाँ ! किन्तु तुम्हारी इच्छानुसार मैं राजनीति के रहस्यों के बदले तुम्हें कविता देना चाहता हूँ। एक बात और पूछूँ ? सुन्दरियों के नेत्रों में अधिक मादकता है या अधरों में ?

वसुगुप्त : इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है, महामंत्री !

चाणक्य : राजनीति के रहस्यों से भी कठिन, समाहर्त्ता ! जिसमें तुम पारंगत हो। अमरावती के अन्तपाल और महाराज नन्द के वसंतोत्सव में सम्मिलित होने वाले वसुगुप्त के लिए यह प्रश्न कठिन नहीं है। महाराज नन्द के वसंतोत्सव में 'अनंग-क्रीड़ा' का आयोजन हुआ था ?

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री !

चाणक्य : और तुम उसमें सम्मिलित हुए थे। तब तो तुम जानते ही होगे की सुंदरियों के नेत्रों से अधिक अधरों में मादकता होती है। होती है, समाहर्त्ता ? (**तीव्र स्वर में**) उत्तर दो।

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री !

चाणक्य : तो जो आसव सुन्दरियाँ अपने अधरों से लगा कर देती हैं उसमें और भी अधिक मादकता होती है ? (**तीव्र स्वर में**) उत्तर दो।

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री !

चाणक्य : अब मुझे तुमसे कोई प्रश्न नहीं पूछना। तुमसे इतने प्रश्न पूछकर मैंने तुम्हें जो कष्ट दिया है, उसके लिए मैं तुम्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ। और वह पुरस्कार यह है कि तुम राजनर्तकी अलका के अधरों से स्पर्श किए गये मादक आसव का एक घूँट......

अलका : (**विह्वल होकर**) क्षमा कीजिए, महामंत्री ! मैं आसव का स्पर्श नहीं करूँगी। आज तक न मैंने आसव पान किया है और न पान कराया है। मैं क्षमा की भीख माँगती हूँ, महामंत्री !

चाणक्य : कौमुदी महोत्सव में पुरस्कार मिलता है, देवी ! भीख नहीं। (**पुकारकर**) सैनिक ! (**सैनिक का प्रवेश**) आसव का एक चषक उपस्थित करो।

सैनिक : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

अलका : (**बिलखकर**) महामंत्री ! मेरा जीवन अभिशाप से परिपूर्ण है। मैं राजनर्तकी बनकर नारी भी नहीं रह पाई। मैं संसार की सबसे बड़ी विडंबना हूँ, मैं पाप की कालिमा हूँ, मैं रौरव की ज्वाला हूँ। मैं...मैं......

चाणक्य : नहीं, देवी ! तुम महाराज नन्द की राजनर्तकी हो। अनिंद्य सुन्दरी, कलापूर्ण नृत्य की सम्राज्ञी ! हाँ, मुझे दुःख है कि तुम्हारा जीवन .....(**सैनिक चषक लेकर आता है**) क्या ले आये चषक ? हाँ, मैं अपने साथ ही तो लाया था आसव और चषक। लो, तुम इसका पान करो, राजनर्तकी !

अलका : महामंत्री ! मुझे आसव पान न कराओ, मुझे विष दे दो, भयानक हलाहल दे दो, उससे शान्ति मिलेगी। मेरी जिह्वा पर सर्प-दंशन चाहिए, सर्प-दंशन, सर्प-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दंशन, महामंत्री !

चाणक्य : सर्प-दंशन तुम्हें नहीं चाहिए, राजनर्तकी ! किसी और को चाहिए। (**सैनिक से**) सैनिक ! बलपूर्वक यह आसव राजनर्तकी को पान कराओ ! (**सैनिक राजनर्तकी को बलपूर्वक आसव पान कराता है। अनिच्छापूर्ण लड़खड़ाती हुई साँस में मदिरा पान करने की आवाज़**) बस, रहने दो। (**सैनिक राजनर्तकी के अधरों से चषक हटाता है**) अब यह आसव राजनर्तकी के अधरों को छूकर और भी मादक बन गया। अब कौमुदी महोत्सव के समाहर्त्ता वसुगुप्त को उनका पुरस्कार चाहिए। सैनिक ! यह शेष आसव समाहर्त्ता वसुगुप्त पान करेंगे।

वसुगुप्त : सम्राट् ! मेरी रक्षा कीजिए। मैं यह आसव पान नहीं करूँगा, नहीं करूँगा।

चाणक्य : सैनिक ! वसुगुप्त को शेष आसव बलपूर्वक पान कराओ।

[**सैनिक बलपूर्वक आसव पान कराते हैं। घुटते हुए कंठ की आवाज़**]

वसुगुप्त : (**लड़खड़ाते शब्दों में**) ओह ! घोर...हलाहल...आग...की...ज्वाला ! सर्प-दंशन...सर्प...दंशन ..महामंत्री, चाणक्य ! तुम...राज...मंत्री...राक्षस...पर...विजयी...हुए। कौमुदी महो...त्...सव...नहीं...हो...सका...। अलका ...मुझे...क्षमा। कौमुदी...महो...त्...सव...कौ...मु...दी...म...हो...त्...स...व !

[**प्राण छूट जाते हैं।**]

चन्द्रगुप्त : ओह, विषकन्या ! राजनर्तकी विषकन्या है ! अधरों से स्पर्श किया गया आसव......हलाहल......बन गया ! समाहर्त्ता......

चाणक्य : समाहर्त्ता अब इस संसार में नहीं है, चन्द्रगुप्त ! अब अलका......

अलका : सम्राट् ! क्षमा कीजिए। महामंत्री ! प्राणों की भिक्षा दीजिए। मैं निर्दोष हूँ, मैं निर्दोष हूँ, सम्राट् ! मैं आपके चरण चूमकर......

[**चरणों पर गिरने के लिए आगे बढ़ती है।**]

चाणक्य : पीछे हटो ! पीछे हटो, चन्द्रगुप्त ! (**चन्द्रगुप्त पीछे हटते हैं**) यह तुम्हारे पैरों में अपने दाँत चुभाकर तुम्हें मृत्यु-मुख में ढकेल देगी। यह इसका अन्तिम प्रयोग है। नारी रूप में भयानक सर्पिणी विषकन्या ! राजमंत्री राक्षस ने कौमुदी महोत्सव का प्रस्ताव वसुगुप्त से कराकर असावधान चन्द्रगुप्त को विषकन्या के प्रयोग से नष्ट करने की चाल सोची थी। सैनिको ! राजनर्तकी को बन्दी करो। इसका प्रयोग शत्रु पर ही किया जायगा। (**सैनिक राजनर्तकी को बन्दी करते हैं**) समाहर्त्ता वसुगुप्त राक्षस का गुप्तचर था और राजनर्तकी अलका विषकन्या। इस सत्य का उद्‌घाटन मैंने अपनी इच्छा से किया है और इस उद्‌घाटन के अनन्तर मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकूँगा। मेरा मार्ग छोड़ दो। हटो ! तपोवन मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। चन्द्रगुप्त ! अपने विश्वासपात्र समाहर्त्ता वसुगुप्त का अंतिम संस्कार और कौमुदी महोत्सव का आयोजन दोनों साथ-साथ करो और

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपना राज्य सम्हालो ! [**प्रस्थान**]

चन्द्रगुप्त : (विह्वल स्वरों में) आर्य चाणक्य ! महामंत्री चाणक्य ! चन्द्रगुप्त को तुम्हारी आवश्यकता है । महामंत्री चाणक्य के बिना यह राज्य नष्ट हो जायगा, चन्द्रगुप्त नष्ट हो जायगा । महामंत्री चाणक्य ! कौमुदी महोत्सव नहीं होगा । **(चाणक्य के पीछे शीघ्रता से जाते हैं । उनकी ध्वनि क्रमशः क्षीण होती सुनाई पड़ती है)** कौमुदी महोत्सव नहीं होगा !...कौमुदी महोत्सव नहीं होगा !!...... कौमुदी महोत्सव नहीं होगा !!!

[**धीरे-धीरे परदा गिरता है ।**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 5 :

सोन का वरदान

•

पात्र-परिचय

सम्राट् अशोक—स्वर्गीय सम्राट् बिन्दुसार के पुत्र और मगध के सम्राट्

कुमार सुसीम
कुमार सुगाम
कुमार सुहास
कुमार सुबेल
—सम्राट् बिन्दुसार के पुत्र और सम्राट् अशोक के बड़े भाई

कुमार सुदत्त—सम्राट् अशोक का छोटा भाई

खल्लाहक—सम्राट् अशोक के अमात्य

चंडगिरिक—सम्राट् अशोक का अंगरक्षक

•

काल—ई० पू० 274

स्थान—सोन नदी का तट, पाटलिपुत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोन का वरदान

[दृश्य—सोन नदी की समतल भूमि। मध्य में एक झुका हुआ पेड़ जिसका तना आसन की भाँति बैठने का काम दे सकता है। दाहिनी ओर बिखरी हुई शाखाओं वाला दूसरा पेड़ है, जिसकी दो शाखाओं में इतना अन्तर है कि उनके बीच में चन्द्र का बिम्ब दीख सकता है। स्थान-स्थान पर छोटी-मोटी झुरमुटें हैं जो कभी-कभी पैरों में उलझ जाती हैं। भूमि उपजाऊ होने के कारण हरीतिमा से परिपूर्ण है। गहरी संध्या का समय है। आज कृष्ण-पक्ष की तृतीया है। अभी तक चन्द्रोदय नहीं हुआ है; किन्तु समीप काष्ठ-प्राचीर पर लगा हुआ दीप-स्तम्भ इस स्थान पर हलका-सा आलोक फेंक रहा है। पूर्व दिशा में चन्द्रोदय के पूर्व की आभा दीख पड़ने लगी है। वातावरण सुनसान है। कभी-भी सीताध्यक्ष (कृषि विभाग के अध्यक्ष) का सेवक 'सा......व......धा......न' की आवाज़ देता है, जो वायु में गूँजती हुई क्रमशः धीमी हो जाती है। यह एकान्त जैसे युद्ध के पूर्व का आतंक लिये हुए है। परदा उठने पर सुगाम और सुदत्त बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए दीख पड़ते हैं। वे कभी-कभी दायें और बायें भी झुककर देखते हैं कि इस स्थान पर अन्य कोई तो नहीं है। सुगाम और सुदत्त राजकुमार हैं। सुगाम के वस्त्र नीले और सुदत्त के पीले चीनांशुक के बने हुए हैं। दोनों के हाथ में कृपाण है। सुगाम पूर्व की ओर गहरी दृष्टि से देखते हुए सुदत्त से बात आरम्भ करते हैं]

सुगाम : अभी चन्द्रोदय नहीं हुआ ?

सुदत्त : **(आकाश की ओर देखते हुए)** अभी तक चन्द्र के दर्शन नहीं हुए।

सुगाम : तो हमें चन्द्रोदय की प्रतीक्षा करनी है। उसी समय इस सोन नदी के तट पर पाटलिपुत्र को उसका योग्य शासक मिलेगा। उत्साही, कृतज्ञ, वीर जो राजश्री को अपने वश में रख सके; जिसमें दैवी-बुद्धि और दैवी-शक्ति हो।

सुदत्त : **(वृक्ष का सहारा लेते हुए ठण्डी साँस भरकर)** आह! ये सब लक्षण हमारे पिता सम्राट् बिन्दुसार में थे। कौन जानता था कि भाग्याकाश का ऐसा तेजस्वी नक्षत्र इतने शीघ्र अस्त हो जायेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुगाम : **(टहलने से रुककर)** करुणा का अवकाश नहीं है, सुदत्त ! उसके लिए हमारी माताओं की आँखों में सागर से भी अधिक जल है। उस सागर में राज्य की नौका नहीं डूब सकती। हमें आज पाटलिपुत्र के योग्य शासक का निर्णय करना ही है। मैं सभी भाइयों की सहमति प्राप्त कर चुका हूँ। केवल तुम्हीं शेष रह गये हो।

सुदत्त : **(व्यंग्य से)** और मेरे अतिरिक्त भी कुछ शेष रह गया है ?

सुगाम : तुम्हारे अतिरिक्त ? तुम्हारे अतिरिक्त...कुछ नहीं। **(कुछ सोचकर)** हाँ, मंत्रिमंडल सम्भवत: हमारे पक्ष में नहीं है; किन्तु इसकी हमें चिन्ता नहीं। कृष्ण-पक्ष चन्द्र की कलाएँ छीन सकता है, चन्द्र को मिटा नहीं सकता।

सुदत्त : जीवन की तृष्णा जिसमें है, वह मिटकर भी नहीं मिटता। तो इस कृष्ण-पक्ष के क्रोड़ से चन्द्र का उदय होगा ?

सुगाम : अवश्य, यह तो प्रकृति का सत्य है।

सुदत्त : तो यह प्रकृति का सत्य किस व्यक्ति पर घटित होगा ?

सुगाम : यह व्यक्ति होगा, मगध का सम्राट्।

सुदत्त : स्पष्ट कहो, सुगाम ! मगध का सम्राट् कौन होगा ?

सुगाम : यही तो सोन की लहरें निर्णय करेंगी।

सुदत्त : मनुष्य का भाग्य ये लहरें बनायेंगी, जो एक कंकड़ी के गिरने से हिचकी ले उठती हैं ? सुगाम ! स्पष्ट कहो, तुम सम्राट् होना चाहते हो ?

सुगाम : **(कृपाण टेककर)** मैं ?

सुदत्त : हाँ, तुम ! सुगाम ! हो सकते हो। सम्राट् बिन्दुसार के साहसी सुपुत्र ! मेरे ज्येष्ठ भ्राता ! और...और नाम भी बुरा नहीं रहेगा...एकराट् विजिगीषु राजर्षि श्री सुगाम।

सुगाम : मैं व्यंग्य नहीं सुनना चाहता, सुदत्त ! यदि मैं सम्राट् होना चाहूँ तो कोई शक्ति मुझे नहीं रोक सकती। वर्षाकाल में बादल आकाश में स्वयं ही आते हैं और जल की वर्षा करते हैं। आकाश बादलों से भिक्षा नहीं माँगता। उसी प्रकार मैं भी राजश्री की भिक्षा नहीं माँगूँगा। राजश्री स्वयं मेरे पास आयेगी; किन्तु एक बात पूछूँ...**(सहसा)** तुम सम्राट् होना चाहते हो ?

सुदत्त : मैं ? **(जोर से अट्टहास कर)** मैं ?

सुगाम : इतने जोर से मत हँसो, सुदत्त !...यह सुनसान कहीं चौंक न उठे। यह एकान्त कहीं मंत्रिमंडल के पक्ष में न हो ! यह एक विश्वस्त प्रश्न है कि तुम सम्राट् नहीं होना चाहते।

सुदत्त : **(फिर हँसकर)** मैं ? इसी सोन नदी के किनारे हम दोनों का द्वन्द्व-युद्ध हो और मगध के योग्य शासक का निर्णय, इसी इच्छा से तुम मुझे यहाँ लाये हो। किन्तु, सुगाम ! मैं...मैं द्वन्द्व-युद्ध नहीं करूँगा। अपनी माताओं की अश्रु-धारा में किसी भाई की रक्त-धारा नहीं मिलाऊँगा। मैं सम्राट्-पद के लिए द्वन्द्व-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युद्ध नहीं करूंगा। पाटलिपुत्र विपत्तियों में डूब रहा है। मैं उस पर अपने कृपाण का बोझ नहीं रखूंगा। हाँ...तुम सम्राट् बनो, पाटलिपुत्र के योग्य शासक। मैं जीवन-भर अपनी माताओं की सेवा करूँगा।

सुगाम : (**लम्बी साँस लेकर**) साधु ! सुदत्त ! तो तुम सम्राट्-पद के लिए उत्सुक नहीं हो ?

सुदत्त : उत्सुक कौन नहीं होगा। किन्तु मैं नहीं हूँ।

सुगाम : तो यदि इस समय मैं सम्राट् न बनूं और किसी अन्य भाई को बनाना चाहूँ तो तुम उसे सम्राट मानोगे ?

सुदत्त : किसे सम्राट् बनाओगे ?

सुगाम : मैं पहले तुम्हारी सहमति चाहता हूँ।

सुदत्त : सोचकर बताऊँगा।

सुगाम : (**तीव्रता से**) मैं तुम्हारा विश्वास चाहता हूँ, सुदत्त ! हाँ या नहीं ! तीर लक्ष्य पर सीधा जाता है, वह आकाश में विहार नहीं करता। तुम्हारा उत्तर सीधा होना चाहिये।

सुदत्त : और यदि एक टेढ़ा प्रश्न मैं पूछूँ तो उत्तर दोगे ? पाटलिपुत्र का सम्राट् कौन होगा...स्पष्ट उत्तर दो, सुगाम !

सुगाम : यह सोचकर बताऊँगा।

सुदत्त : मेरी तरह तुम भी सोचकर बताओगे ? मैं बिना सोचे बतला सकता हूँ... मगध का भावी सम्राट् होना चाहता है—सुगाम !

सुगाम : (**मुस्कराकर**) तुम अन्तर्यामी ज्ञात होते हो, सुदत्त ! सभी भाइयों का मत मेरे पक्ष में है; किन्तु इस समय मुझे पाटलिपुत्र की राजनीति की रक्षा करनी है। भावी सम्राट् को कुछ त्याग भी तो करना चाहिए। हमारी राजनीति कुछ समय के लिए एक दूसरा सम्राट् चाहेगी।

सुदत्त : नहीं, मैं तो सुगाम को ही सम्राट् मानूँगा। मुझे उसका नाम बहुत प्रिय है। सम्राट् सुगाम, न जाने कितने अच्छे ग्राम इस नाम में ही निवास करते हैं।

सुगाम : साधु ! किन्तु कुछ दिन धैर्य रखो। प्यारे भाई सुदत्त ! मेरी प्रार्थना है कि कुछ दिनों के लिए एक अन्य भाई को सम्राट् स्वीकार करो।

सुदत्त : किसे ?

सुगाम : जो इस समय सबसे अधिक वीर है।

सुदत्त : अशोक ?

सुगाम : तुम काँप क्यों उठे, सुदत्त !

सुदत्त : अशोक के नाम से क्यों काँपूंगा। वह भी तो हमारा भाई है। उसने उज्जयिनी का शासन कितनी योग्यता से सम्हाला है ! जब वह बोलता है तो ज्ञात होता है जैसे आकाश उसका साथ दे रहा है।

सुगाम : तुम बहुत दुर्बल-हृदय हो, सुदत्त ! इसीलिए तुम्हें सुदृढ़ करने और तुम्हारा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वास पाने के लिए मैं तुम्हें यहाँ लाया हूँ। देखो ! (**एक-एक शब्द पर रुक-रुक कर दृढ़ता से**) इसी स्थान पर आज हम सब अशोक का वध करेंगे। [**आतंक मुद्रा**]

सुदत्त : वध करेंगे। क्यों ? उसका अपराध ?

सुगाम : उसने अपने सब से ज्येष्ठ भ्राता सुसीम का अपमान किया है।

सुदत्त : किस प्रकार अपमान किया ? कुछ अपशब्द कहे या तुम्हारी तरह कुछ राजनैतिक वाक्यों का प्रयोग किया ?

सुगाम : राजनैतिक वाक्य तो नहीं कहे ; किन्तु बड़े भाई के रहते अपने को सम्राट् घोषित कर दिया।

सुदत्त : सम्राट् घोषित कर दिया ? [**काँपता है**]

सुगाम : तुम फिर काँप उठे। तुम अशोक से डरते हो ?

सुदत्त : डरता तो नहीं हूँ ; किन्तु उसके साहस की प्रशंसा करता हूँ।

सुगाम : सुनो, सुदत्त ! अब तुम्हें सुसीम की प्रशंसा करनी होगी। स्वर्गीय पिता के वात्सल्य के सबसे बड़े अधिकारी ! वे कुछ समय के लिए पाटलिपुत्र के सम्राट् होंगे। तुम्हें हमारे साथ उनका साथ देना होगा। दोगे ? वचन दो।

सुदत्त : (**सोचता हुआ**) अपने सबसे बड़े भाई, सुसीम ? पर वे तो तक्षशिला का विद्रोह शान्त करने गये हैं। सम्राट् ने उन्हें वहाँ भेजा था।

सुगाम : वे विद्रोह शान्त कर वहाँ से लौट भी आये। आज प्रातः सूर्य के साथ उन्होंने पाटलिपुत्र में प्रवेश किया। विद्रोह तो उन्होंने एक दिन में शान्त कर दिया। उन्हें देखते ही नागरिकों के सिर श्रद्धा से झुक गये। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—कुमार ! हमें सम्राट् से या आपसे असंतोष नहीं है। कार्यान्तिक और अन्तपाल हमें कष्ट देते हैं। युवराज सुसीम ने कार्यान्तिक और अन्तपाल को कारागार में डाल दिया और उसी क्षण विद्रोह शान्त हो गया। कितनी दैवी शक्ति है उनमें ! आचार्य चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में सम्राट् को दैवी-शक्ति सम्पन्न माना है। इसी दैवी शक्ति के कारण वे सच्चे अर्थ में सम्राट् होंगे।

सुदत्त : (**सिर हिलाते हुए**) हाँ, सम्राट् तो हो सकते हैं ; किन्तु मंत्रिमंडल उनसे रुष्ट है। एक बार उन्होंने अमात्य खल्लाहक का अपमान कर दिया था।

सुगाम : खल्लाहक जन्म से ही खल है तो बेचारे सुसीम क्या करें ? खलों को अनुशासन में रखना सज्जनों का धर्म है।

सुदत्त : फिर भी अमात्य (**संकेत करते हुए**) उस द्वीप-स्तम्भ की तरह है जिसका आधार पाकर राजश्री प्रकाश फैलाती है।

सुगाम : हाँ, स्तम्भ ही है; जो जड़ता का प्रतीक है।

सुदत्त : फिर भी अमात्य समान धरातल से ऊँचा है।

सुगाम : सौ अमात्य भी जुड़ जायँ तो वे आकाश से ऊँचे नहीं हो सकते, सुदत्त ! जिसमें तारों का संगठित प्रकाश है। हम सब भाइयों की संगठित शक्ति का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामना क्या अमात्य-मंडल कर सकता है ? अमात्य-मंडल अमात्य-मंडल ही है और भाइयों की शक्ति ऐसा आलोक-मंडल है, जो मनुष्य की शक्ति से धूमिल नहीं हो सकता। दीपकों का समूह भी कहीं तारों की समता कर सकता है ? और सुनो, सुदत्त ! मंत्रिमंडल का संगठन तो सम्राट् करता है। हम लोगों की सहायता से सुसीम सम्राट् बनकर एक नये मंत्रिमंडल का संगठन करेंगे और सबसे बड़ी बात यह होगी कि......

सुदत्त : सबसे बड़ी बात क्या होगी ?

सुगाम : सबसे बड़ी बात यह होगी कि...उस मंत्रिमंडल में होंगे हम और तुम...

सुदत्त : तुम और हम ? यह तो बड़ी अच्छी बात होगी। दो नेत्रों की तरह हम और तुम सम्राट् सुसीम का मार्ग-दर्शन करेंगे। सुसीम की मुझ पर कृपा भी है। एक बार मुझसे हँसकर कहने लगे—सुदत्त ! तुम्हारे नाम के अनुरूप मैं तुम्हें कुछ देना चाहता हूँ।

सुगाम : तो अब वह समय आ गया है, सुदत्त ! वे तुम्हें अपने नवीन मंत्री का पद प्रदान करेंगे। बोलो, हमारा साथ दोगे ?

सुदत्त : इसी प्रकार का लालच सुगाम, तुमने अन्य भाइयों को दिया होगा ; तभी वे सब तुमसे सहमत हैं। सुसीम के नाम से सम्भवतः तुम पाटलिपुत्र का शासन करोगे।

सुगाम : **(तीव्र स्वर में चिल्लाकर)** सुदत्त !

सुदत्त : **(डरकर)** शब्दों पर मुझे अधिकार नहीं है, सुगाम ! कुछ कहना चाहता हूँ, कुछ मुँह से निकल जाता है। मुझे कुछ डर लगता है। **(सोचकर)** अच्छा, साथ दूँगा तुम्हारा; मुझे चाहे अमात्य-पद मिले या न मिले। बोलो, कैसे साथ देना होगा ?

सुगाम : आज कृष्ण-पक्ष की तृतीया है। **(पूर्व आकाश की ओर देखकर)** चन्द्र के उदय होने में कुछ ही विलम्ब होगा। मुझे मध्याह्न में गुप्तचरों से सूचना मिली थी कि आज चन्द्रोदय होने पर अशोक अमात्य खल्लाहक के साथ कुछ विशेष मंत्रणा करने के लिए इसी स्थान पर आवेंगे। उसी समय हम सब मिलकर उन पर आक्रमण करेंगे और या तो उनका वध करेंगे या उन्हें कारागार में डाल देंगे।

सुदत्त : हम सब मिलकर एक पर आक्रमण करेंगे, यह कौन-सी राजनीति है ?

सुगाम : यह सिंहासन प्राप्त करने की राजनीति है।

सुदत्त : **(मुस्कराकर)** तो फिर यह राजनीति नहीं व्याजनीति है।

सुगाम : **(तीव्रता से)** सुदत्त ! यह परिहास का समय नहीं है। चन्द्रोदय होना ही चाहता है।

सुदत्त : अच्छी बात है। चकोर की भाँति देखूँगा **(पूर्व की ओर देखते हुए)** चन्द्रोदय कब होता है।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुगाम : उसी समय कुमार सुसीम अपने साथियों सहित अपने सम्राट् होने की घोषणा करेंगे। तुम्हें उनके जयकार में सम्मिलित होना पड़ेगा।

सुदत्त : मुझे तो जयकार में सम्मिलित होना है। चाहे वह तुम्हारा हो, चाहे अशोक का, चाहे सुसीम का।

सुगाम : **(तीव्र दृष्टि से)** यह जयकार सुसीम का होगा।

सुदत्त : तो सुसीम के जयकार में भाग लूँगा। अभी बोलो, 'कुमार सुसीम की जय'! मैं उसमें अपना कंठ-स्वर मिलाऊँगा।

[बाहर से किसी के आने का शब्द]

कोई आ रहा है, सुगाम! तुम मुझे यहाँ क्यों ले आये? मैं सन्ध्या समय अपरिचितों को युद्ध का अवसर नहीं देता। तुम जानते हो, सुगाम! करुणा के क्षणों में मुझे वीरता अच्छी नहीं लगती।

सुगाम : इस ओर चले आओ, सुदत्त! **[दोनों दाहिनी ओर के पेड़ के समीप जाते हैं।]**

[अशोक के अंगरक्षक चंडगिरिक का प्रवेश। उसके हाथ में कृपाण है।]

चंडगिरिक : **(सैनिक ढंग से)** कौन है यहाँ?

[कोई उत्तर नहीं मिलता।]

चंडगिरिक : **(पुनः तीव्रता से)** शस्त्र या शास्त्र की परीक्षा देने वाला कौन है यहाँ!

सुगाम : **(आगे बढ़कर)** तुम्हारे प्रणाम के अधिकारी कुमार सुगाम और कुमार सुदत्त।

चंडगिरिक : प्रणाम करता हूँ, कुमार!

सुदत्त : तुम सम्भवतः मुझे प्रणाम भी करोगे।

चंडगिरिक : दो नेत्रों के लिए एक ही दृष्टि होती है, कुमार! किन्तु इस समय सोन नदी के तट पर कुमारों को किस कार्य के निमित्त कष्ट उठाना पड़ा?

सुगाम : प्रश्नकर्ता अपना परिचय प्रस्तुत करे!

चंडगिरिक : चंडगिरिक, श्रीमन्! सम्राट् अशोक का अंगरक्षक।

सुगाम : उज्जयिनी का करमोलि अशोक कहो...सम्राट् अशोक नहीं।

चंडगिरिक : श्रीमन्, आज प्रातः निश्चय हो चुका है कि स्वर्गीय सम्राट् बिन्दुसार के स्थान पर......

सुगाम : वाक्य पूर्ण न हो, चंडगिरिक! स्वर्गीय सम्राट् के ज्येष्ठ पुत्र युवराज सुसीम पाटलिपुत्र में प्रवेश कर चुके हैं; उनके रहते किसी को अधिकार नहीं है कि वह एकराट् बिन्दुसार का सिंहासन कलुषित करे। सम्राट् होने के वास्तविक अधिकारी युवराज सुसीम हैं।

चंडगिरिक : जो निर्णय अमात्य-मंडल से हुआ है, वह सर्वमान्य है, श्रीमन्।

सुगाम : सम्राट् के निधन के साथ अमात्य-मंडल भी समाप्त हो जाना चाहिये। पूर्णिमा के चन्द्र के साथ तारे भी अस्त हो जाते हैं। मैं इस अमात्य-मंडल के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किसी भी अमात्य को महत्त्व नहीं देता।

चंडगिरिक : इसका उत्तर कोई अमात्य ही दे सकता है, अंगरक्षक नहीं। मैं यही निवेदन करना चाहता हूँ कि इस स्थान की अपेक्षा श्रीमान् के लिए राजमहल अधिक उपयुक्त स्थान होगा।

सुदत्त : सुगाम ! माताएँ भी हम लोगों की प्रतीक्षा कर रही होंगी। और मुझे इसी स्थान पर अशोक और सम्राट् सुसीम की एक साथ प्रतीक्षा करनी है। चंडगिरिक ! तुम अपने को बंदी समझो। इस अशिष्टता के लिए कल न्यायाधिकरण में तुम पर विचार होगा।

चंडगिरिक : श्रीमन् ! न्यायाधिकरण पर एकमात्र अधिकार सम्राट् अशोक का है।

सुगाम : चुप रह, सम्राट् अशोक को रटने वाला दादुर ! तू दुर्विनीत भी है। द्वन्द्व के लिए प्रस्तुत हो। **(नेपथ्य से)** चंडगिरिक तुम अपने स्थान पर रहो ?

चंडगिरिक : श्रीमन् !

[अमात्य खल्लाहक का प्रवेश]

खल्लाहक : किससे बातें कर रहे हो ? **(सामने सुगाम को देखकर)** राजकुमार सुगाम और राजकुमार सुदत्त ?

सुगाम : अमात्य ! चंडगिरिक ने राजमर्यादा भंग की है। मैं उससे द्वंद्व चाहता हूँ।

खल्लाहक : यह राजकुमार की मर्यादा के अनुकूल नहीं है, कुमार ! वह एक अंगरक्षक से द्वंद्व करे ! **(चंडगिरिक से)** चंडगिरिक ! कुमारों की मर्यादा अक्षुण्ण रहे।

चंडगिरिक : मर्यादा की सुरक्षा में ही सेवक का अस्तित्व है, श्रीमन् !

सुगाम : और वह अस्तित्व क्षण-मात्र में मिटा दिया जा सकता है, अमात्य ! चंडगिरिक का यह साहस कि वह हमसे कहे कि इस स्थान की अपेक्षा राजमहल आपके लिए अधिक उपयुक्त स्थान होगा ! कुमार सुदत्त इसके साक्षी हैं।

सुदत्त : साक्षी क्या ! चंडगिरिक प्रणाम करना भी नहीं जानता।

खल्लाहक : कुमार ! चंडगिरिक का अपराध क्षमा हो ! वह अंगरक्षक है। उसका कर्तव्य है कि जिस स्थान पर उसकी नियुक्ति हो, वह निरापद रहे।

सुदत्त : हमारे यहाँ रहने से स्थान निरापद नहीं समझा जायेगा ?

खल्लाहक : सम्राट् अशोक......

सुगाम : **(बीच में ही तीव्रता से)** सम्राट् अशोक ! सम्राट् अशोक ! किस विधान से उज्जयिनी का करमोलि अशोक मगध का सम्राट् अशोक हो सकता है ? यह एक भयानक षड्यंत्र है।

खल्लाहक : शान्त, राजकुमार ! आपके द्वारा राजमर्यादा भंग न हो। सम्राट् अशोक स्वर्गीय सम्राट् बिन्दुसार के वैसे ही पुत्र हैं जैसे आप या सुसीम।

सुगाम : तो मैं या सुसीम सम्राट् क्यों नहीं हो सकते ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खल्लाहक : हो सकते हैं; किन्तु ग्रमात्य-मंडल का निर्णय ऐसा नहीं है ।

सुगाम : वह ग्रमात्य-मंडल तो ऐसा निर्णय करेगा ही जिसके नायक ग्राप हैं । ऐसा ग्रमात्य-मंडल नष्ट कर दिया जायगा ।

खल्लाहक : राज्य का विधान एक खिलौना नहीं है, कुमार ! जिसे एक बालक ग्रपने क्रोध में नष्ट कर दे । इस वाक्य का उत्तर......

सुगाम : (**बीच ही में**) उत्तर ? ग्रभी सुसीम से मिल जायेगा । (**सुदत्त से**) चलो, सुदत्त !

सुदत्त : हाँ ! राजकुमार सुसीम ही इसका उत्तर देंगे ग्रौर उनके कंठ में हम लोगों का स्वर भी होगा ग्रौर जैसा राजकुमार सुगाम ने कहा, उस स्वर में सुसीम का जय-जयकार भी होगा । हाँ ! चलो सुगाम !

सुगाम : ग्रमात्य खल्लाहक ! थोड़ी देर ग्रमात्य-पद को सन्ध्या में बादल की भाँति राग-रंजित कर लो । चन्द्रोदय होने पर तुम्हारे रंगों का कहीं पता भी नहीं चलेगा ।

[**सुदत्त के साथ शीघ्रता से प्रस्थान**]

खल्लाहक : (**सुगाम ग्रौर सुदत्त के जाने की दिशा में देखते हुए**) विद्रोह की जड़ें दूर तक फैल गई हैं । ज्ञात होता है कुमार सुगाम ने इसके लिए संगठन भी कर रखा है । मैं समझता हूँ इसका पता सम्राट् ग्रशोक को होगा ।

चंडगिरिक : इसका पता सम्राट् को है, श्रीमन् !

खल्लाहक : इस विषय में उन्होंने कुछ कहा ?

चंडगिरिक : कहा, मुझे चिन्ता नहीं है । विद्रोह की ग्रग्नि को दीपों में सजाकर मैंने दीपावली का उत्सव मनाया है ।

खल्लाहक : (**मुस्कराकर**) साहस के ग्रवतार हैं हमारे सम्राट् । इसीलिए ग्रामात्य-मंडल ने एक स्वर से निर्णय दिया है कि मगध के सिंहासन पर उनका ही ग्रभि-षेक हो । कल इसकी घोषणा होगी । सब भाइयों में वे ही सबसे ग्रधिक शक्ति-शाली ग्रौर साहसी हैं ।

चंडगिरिक : (**सिर झुकाकर**) हाँ, श्रीमन् !

खल्लाहक : किन्तु इस विद्रोह का शमन करना ग्रावश्यक होगा । कुमार सुगाम ग्रवश्य ही इस विद्रोह का दावानल दूर-दूर तक पहुँचावेंगे ग्रौर कुमार सुसीम को नेता बनाकर कुछ ग्रनिष्ट करने की बातें सोच रहे होंगे ।

चंडगिरिक : इन्हीं कुमारों से सेवक ने सुना कि राजकुमार सुसीम ग्रन्य कुमारों के साथ सम्राट् पर ग्राक्रमण करेंगे ग्रौर......

[**सम्राट् ग्रशोक का प्रवेश । माँस-पेशियों से गठा हुग्रा शरीर । मुख पर तेज और नेत्रों में ग्राकर्षण । स्वर में स्पष्टता ग्रौर वज्र जैसी दृढ़ता । सम्राट् ग्रशोक ग्रंकुश की कसी हुई धोती पहने हुए हैं, जिसके कमर के समीप-भाग में हंस-मिथुन के चिह्न हैं । कन्धों को**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ढकती हुई तथा बायीं बाहु पर होती हुई रेशमी चादर है जिसमें रत्नों के फुँदने लगे हुए हैं। चीनांशुक के बने हुए डोरी वाले कमरबन्द, जिनके सिरे छाती के समीप रत्न-संकट से कसे हुए हैं। शीर्ष-पट के साथ एक मयूरपक्ष के रंग का उष्णीष जिसके दोनों ओर एक-एक मोती की माला बँधी हुई है। पैर में तिपटल मंजीठ रंग के उपाहन। हाथ में कृपाण]

अशोक : (**प्रवेश करते ही**) चंडगिरिक ! तुम यहाँ से जा सकते हो।

खल्लाटक : (**घूसकर**) सम्राट् की जय !

चंडगिरिक : (**झुककर**) सम्राट् की जय !

अशोक : आदेश दुहराये नहीं जाते, चंडगिरिक !

चंडगिरिक : (**झुककर**) श्रीमन् ! [**शीघ्रता से प्रस्थान**]

खल्लाटक : किन्तु चंडगिरिक की यहाँ आवश्यकता होगी, सम्राट् !

अशोक : मेरी रक्षा के लिए ? (**कुछ हँसते हुए**) क्योंकि आपके अमात्य-मंडल ने निर्णय किया है कि अशोक मगध के सम्राट् हों और सम्राट् के लिए अंगरक्षक हो। किन्तु मैं समझता हूँ, अमात्य ! वह सम्राट् भी क्या है, जिसे अंगरक्षक की आवश्यकता हो। (**अमात्य खल्लाटक की मुद्रा गंभीर है। उसकी ओर तिरछी दृष्टि से देखते हुए**) बहुत गंभीर हो गये, अमात्य ! सम्राट् तो वही है, जो सम्यक् रूप से विराज सके। संतोष से प्रजा उसकी श्री की सराहना कर सके। उसके लिए अंगरक्षक की क्या आवश्यकता है। अंगरक्षक की नियुक्ति तो प्रजा के प्रति अविश्वास है। प्रजा ऐसे राजा को क्या क्षमा कर सकती है ?

खल्लाटक : किन्तु इस समय परिस्थिति भयानक है। आपको भी यहाँ नहीं रहना चाहिये। परिस्थिति अत्यन्त भयानक है, सम्राट् !

अशोक : (**हँसकर**) भयानक ! परिस्थिति भी कभी भयानक होती है, अमात्य ? मनुष्य की दुर्बलता का दूसरा नाम परिस्थिति है। जब मनुष्य विवश होकर कुछ नहीं कर सकता, तो वह सरलता से कह देता है, परिस्थिति अनुकूल नहीं है... भयानक है। मनुष्य ही परिस्थितियों का निर्माण करता है और निर्माण कर चुकने पर जब वह असफल हो जाता है, तो भाग्य को दोष देता है। अपने हाथ से अपनी ही शक्तियों की हत्या करता है और कहता है कि मैं अकेला हूँ।

खल्लाटक : आपके साहस की मैं प्रशंसा करता हूँ, सम्राट् ! किन्तु मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

अशोक : अमात्य की वाणी विधान की वाणी है। मैं सुनूँगा।

खल्लाटक : आप जानते हैं, सम्राट् ! अमात्य-मंडल ने जो निर्णय किया है, वह अन्य कुमारों को स्वीकार नहीं है। वे ज्येष्ठ कुमार सुसीम को सम्राट् बनाना चाहते हैं। इस गृह-विद्रोह के सम्बन्ध में ही परामर्श देने के लिए मैंने आपको इस एकान्त में निमंत्रित किया था। राजमहल के तो कोने-कोने में अनन्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिह्वाएँ, अनन्त नेत्र और अनन्त कान हैं। यह एकान्त ही मूक, अन्ध और बधिर है। किन्तु अब आपको यहाँ भी नहीं रहना चाहिए। यह एकान्त भी मुझे एक कच्छप की भाँति लग रहा है जो अपने विद्रोह का सिर अपने भीतर समेट-कर बैठा हुआ है।

अशोक : मुझे उससे भय नहीं है, अमात्य ! कच्छप भले ही कठोर हो; किन्तु वह भय से आक्रान्त भी है। भय ही उसे सिर समेटने के लिए बाध्य करता है। वह चोरी से माँस नोचता है, विषधर की तरह आक्रमण नहीं करता। मुझे ऐसे कच्छपों से भय नहीं है; मैं उनके मर्मस्थल को वेधना चाहता हूँ। हाँ ! तुम मुझे कुछ परामर्श देना चाहते थे पाटलिपुत्र की राजनीति के सम्बन्ध में...?

खल्लाहक : तो आपको सूचना है कि अन्य राजकुमार असंतुष्ट हैं ?

अशोक : हाँ, मुझे इस बात की सूचना है कि अन्य राजकुमारों को अमात्य-मंडल के निर्णय से असंतोष है। इस सम्बन्ध में आपका और अमात्य-मंडल का क्या निर्णय है ?

खल्लाहक : अमात्य-मंडल इस सम्बन्ध में आपसे परामर्श के लिए उत्सुक है। जहाँ तक मेरा व्यक्तिगत निर्णय है, सम्राट् ! यह बिलकुल स्पष्ट है और वह पाटलि-पुत्र के हित में है। आज मुझे मगध की सेवा करते हुए बीस वर्ष से अधिक हो गये। स्वर्गीय सम्राट् की राजनैतिक मंत्रणाओं का आसन मेरे परामर्श-निर्मित सिंहों के कन्धों पर था। आचार्य चाणक्य के अर्थशास्त्र ने तो हमारा मार्ग प्रशस्त किया ही है, किन्तु अनेक परिस्थितियाँ ऐसी आई हैं जहाँ हमने राजनीति को सरस्वती की गुप्त धारा बनाकर विपक्षियों में भी संग्राम करा दिया है। किन्तु यह अंतर्विद्रोह विपक्षियों की हिंसा से भी भयानक है।

अशोक : आपकी राजनीति पर हमें विश्वास है।

खल्लाहक : सम्राट् ! आज मगध में गृह-विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी है। स्वर्गीय सम्राट् इस बात को स्वीकार करते थे कि सब भाइयों में आप सबसे अधिक शक्तिशाली हैं; किन्तु वे ज्येष्ठ कुमार सुसीम को समीप रहने के कारण अधिक चाहते थे। आप उज्जयिनी में ग्यारह वर्षों से थे। आपने अनेक विद्रोह शान्त किये; किन्तु कुमार सुसीम ने आपके शौर्य की सूचना सम्राट् तक पहुँचने भी नहीं दी। कुमार सुसीम सम्राट् का स्नेह पाकर धृष्ट और दुर्विनीत हो गये। कुमार सुगाम भी उन्हीं की भाँति निरंकुश बन गये। जब तक्षशिला में विद्रोह हुआ तो सम्राट् आपको उज्जयिनी से तक्षशिला भेजना चाहते थे; किन्तु अमात्य-मंडल जानता था कि वह विद्रोह राज्य-कर्मचारियों के प्रति है, सम्राट् के विरुद्ध नहीं। इसलिए आपके भेजे जाने की आवश्यकता नहीं समझी गई और कुमार सुसीम को राज्य से दूर करने के लिए तक्षशिला भेज दिया गया।

अशोक : सुसीम शांति स्थापित कर आज प्रातः तक्षशिला से पाटलिपुत्र लौट भी आये ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खल्लाहक : हाँ ! आज प्रातः वे लौट आये। उन्हें स्वर्गीय सम्राट् के निधन की सूचना मिल चुकी थी, इससे उन्हें आशंका थी कि अमात्य-मंडल उनके स्थान पर कहीं कुमार अशोक को सम्राट् न बना दे।

अशोक : (**मुस्कराकर**) और आपके अमात्य-मंडल ने अशोक को ही सम्राट् बनाया।

खल्लाहक : इसीलिए कुमार सुसीम अन्य कुमारों के साथ मिलकर पाटलिपुत्र को विद्रोह की अग्नि में भस्म कर देना चाहते हैं।

अशोक : विद्रोह में तो यही होगा। किन्तु इससे रक्षा का उपाय ?

खल्लाहक : मेरी दृष्टि में एक ही है।

अशोक : सुनना चाहता हूँ।

खल्लाहक : यदि इसे राजवंश की मर्यादा के विपरीत न समझा जाय तो......

अशोक : तो......?

खल्लाहक : उन पर शीघ्रातिशीघ्र नियंत्रण लगा दिया जाय।

अशोक : सैनिक नियंत्रण ?

खल्लाहक : हाँ, सम्राट् ! अन्यथा बढ़ती हुई आग की लपटों की भाँति वे राज-मर्यादा की फूलती हुई बेलों को झुलसाते रहेंगे।

अशोक : इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है ?

खल्लाहक : वे सब प्रतिहिंसा के विष-दन्तों में मृत्यु का अभिशाप लिए हुए हैं। वे आप पर आक्रमण करना चाहते हैं। उन्हें इस बात की सूचना है कि आप इस समय यहाँ पर हैं। इसीलिए मैंने निवेदन किया कि अब आप इस समय यहाँ से शीघ्र ही लौट चलें। जब आपकी रक्षा के लिए अंगरक्षक और एक सैनिक गुल्म की नितान्त आवश्यकता है, तब आपने अपने अंगरक्षक को यहाँ से जाने का आदेश दे दिया।

अशोक : (**सोचते हुए**) वे यहाँ मुझ पर आक्रमण करेंगे ?

खल्लाहक : निस्संदेह ! कुमार सुगाम और कुमार सुदत्त यही अभिसंधि लेकर यहाँ से गये हैं। वे आपके आने के पूर्व यहाँ थे। वे सब मिलकर किसी भी क्षण आप पर आक्रमण कर सकते हैं। चन्द्रोदय होने ही वाला है। वे इसी की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। यही उनके आक्रमण की वेला है।

अशोक : अंधकार में वे अपना आक्रमण अधिक सफलता के साथ कर सकते हैं। विद्रोह का कृपाण तो अंधकार की म्यान में रहता है।

खल्लाहक : इसीलिए, सम्राट्, परामर्श का समय चन्द्रोदय के पश्चात् ही रखा गया था।

अशोक : तो चन्द्रोदय ही उनके आक्रमण की वेला है ?

खल्लाहक : हाँ, सम्राट् !

अशोक : तो फिर अमात्य, तुम भी यहाँ से जाओ।

खल्लाहक : मैं भी यहाँ से चला जाऊँ ? मगध के सम्राट् को इस एकान्त में छोड़कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चला जाऊँ, जिससे विद्रोहियों का मार्ग और भी सुगम हो जाय ? मेरे लिए यह संभव नहीं होगा, सम्राट् ! यह राज-धर्म और सेवा-धर्म दोनों ही के प्रतिकूल है।

अशोक : तो राज-धर्म भी कैसा है कि उसने अपने सम्राट् की परीक्षा लिए बिना ही उसे सम्राट् बना दिया ? नदी की गहराई परखी ही नहीं और उसमें अपनी विशाल नौका छोड़ दी ? अमात्य-मंडल को सम्राट् की परीक्षा भी तो लेनी चाहिये थी ?

खल्लाहक : उज्जयिनी में सम्राट् की परीक्षा अनेक बार ली जा चुकी है।

अशोक : उज्जयिनी पाटलिपुत्र नहीं है, अमात्य ! उज्जयिनी केवल पश्चिम-चक्र की राजधानी है और पाटलिपुत्र समस्त मगध राज्य का केन्द्र है। यहाँ की परीक्षा वास्तविक परीक्षा है।

खल्लाहक : फिर भी, सम्राट्, आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे यहाँ से जाने का आदेश न दें। विद्रोह में पाटलिपुत्र भस्म होने जा रहा है।

अशोक : मैं अमात्य को आदेश न देकर उनसे आग्रह करना चाहता हूँ कि वे मुझे एकान्त में कुछ विचार करने का अवसर प्रदान करें।

खल्लाहक : जैसी आज्ञा ! **[प्रस्थान]**

अशोक : **(टहलते हुए सोचते हैं)** विद्रोह ! विद्रोह की अग्नि में पाटलिपुत्र भस्म होने जा रहा है ! सम्राट् बिन्दुसार का पाटलिपुत्र ! सम्राट् चन्द्रगुप्त का......! **(टहलते हुए पेड़ के समीप आते हैं। वे पूर्व के आकाश में देखते हैं)** यह चन्द्र ! तो चन्द्रोदय हो गया ! आक्रमण की यही वेला है। कैसा आक्रमण होगा ! किसी ने आक्रमण कर चन्द्र की तीन कलाएँ भी काट ली हैं। **(एक दिशा में चौंककर देखते हैं)** कौन है ? **(कोई उत्तर नहीं मिलता)** पाटलिपुत्र में चोर की तरह छिपने वाला कौन है ?

सुगाम : **(सामने आकर तलवार टेककर खड़ा होता है)** मैं चोर नहीं हूँ, अशोक !

अशोक : **(आत्मीयता के स्वरों में)** सुगाम ! तुम हो ? फिर चोर की तरह क्यों छिप रहे हो ? तुम मेरे भाई हो, स्वर्गीय सम्राट् बिन्दुसार के पुत्र, मगध राज्य के संरक्षक !

सुगाम : व्यंग्य-बाण मत चलाओ। शक्ति हो तो तुम तलवार का प्रयोग क सकते हो।

अशोक : शक्ति भी है और तलवार भी है; किन्तु प्रयोग का अवसर मैं नहीं देखता। हाँ, तुम प्रयोग करो। देखो, चन्द्रोदय हो गया। तुम्हारे आक्रमण की वेला यही तो है। देखूँ, तुम किस प्रकार आक्रमण करते हो ?

सुगाम : मैं आक्रमण तो करूँगा ही, अशोक ! पहले यह जानना चाहता हूँ कि अमात्य खल्लाहक और अंगरक्षक चंडगिरिक कहाँ हैं ?

अशोक : दो भाइयों के बीच में कोई बाहरी व्यक्ति नहीं होना चाहिये, सुगाम ! इसीलिए दोनों को ही यहाँ रहने की अनुमति मैंने नहीं दी। अब यहाँ केवल मैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हूँ और तुम हो। हम दोनों का जीवन जीवन है, कोई प्रदर्शनी नहीं जो बाहरी व्यक्ति देखें।

सुगाम : अशोक ! तुम जानते थे कि मैं यहाँ आने वाला हूँ ?

अशोक : निस्संदेह ! मैं अपने अन्य भाइयों की भी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। वे सब कहाँ हैं ?

सुगाम : कहीं दूर नहीं होंगे; किन्तु तुम जानते हो, इसका परिणाम क्या होगा ?

अशोक : भाइयों के मिलने का परिणाम बुरा नहीं होता, यह मैं जानता हूँ।

सुगाम : तुम साहसी हो, अशोक ! इसलिए मुझे तुम पर दया आती है। मैं नहीं चाहता कि भाइयों की क्रोधाग्नि में तुम भस्म हो जाओ।

अशोक : मैं भस्म हो जाऊँ ? असम्भव। क्रोधाग्नि में क्रोध करने वाला व्यक्ति ही भस्म होता है, सुगाम ! मैं अपने भाइयों को क्रोधाग्नि में भस्म होने से रोकूँगा।

सुगाम : यह तुम्हारा साहस-मात्र है। अशोक ! तुम्हारे लिए उचित होगा कि तुम मगध के सिंहासन से हट जाओ।

अशोक : अशोक आज तक अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटा है, सुगाम ! यदि अमात्य-मंडल एक मत से मेरे सम्राट् होने का निर्णय न करता तो मैं दूसरे दिन ही उज्जयिनी के लिए प्रस्थान करता। पिता-श्री के निधन के पश्चात् मगध राज्य की सुरक्षा का प्रश्न मेरा पहला कर्तव्य है, जिसका पालन मैं जीवन के अन्तिम क्षणों तक करूँगा।

सुगाम : तुम्हारा यह झूठा अभिमान है। मैं तुम्हें सचेत करना चाहता हूँ, अशोक ! तुम युवराज सुसीम के मार्ग से हट जाओ।

अशोक : मुझे सुसीम के मार्ग का मोह नहीं है। मुझे अपना मार्ग प्रिय है; और यदि मैं अपने सत्य में स्थित हूँ तो प्रत्येक मार्ग मेरे लिए राजमार्ग है; भूमि का प्रत्येक खंड मेरे लिए सिंहासन है और सिंहासन उच्च नहीं है, सुगाम ! सिंहासन पर बैठने की योग्यता उच्च है। सुसीम सिंहासन को ही उच्च समझते हैं। यह मार्ग मेरा नहीं है।

सुगाम : फिर भी तुम्हारा मार्ग सुसीम के मार्ग को अवरुद्ध करता है। तुम इस मार्ग से हट जाओ, नहीं तो......

अशोक : नहीं तो......?

सुगाम : समस्त भाइयों की सम्मिलित शक्ति तुम्हें बलपूर्वक मार्ग से हटा देगी।

अशोक : मैं ऐसी शक्ति के दर्शन करना चाहता हूँ। जीवन-भर मैंने शक्ति की ही उपासना की है। आज उसका सम्मिलित रूप देखकर मैं अपने को धन्य समझूँगा। कहाँ है वह सम्मिलित शक्ति ? उस सम्मिलित शक्ति का प्रयोग मैं भी देखना चाहता हूँ, सुगाम !

सुगाम : वीरवर अशोक ! मैं नहीं चाहता कि स्वर्गीय पिता-श्री का शुभ्र वंश भाइयों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के रक्त से कलंकित हो। यदि तुम सुसीम के पक्ष में नहीं हो तो किसी अन्य भाई को सिंहासन पर बैठने का अवसर दे सकते हो। तुमने अपनी वीरता की ध्वजा समस्त पश्चिम-चक्र में फहराई है। तुम ऐसा कर सकते हो कि...यदि सुसीम योग्य नहीं है, अर्थात् उसे सिंहासन के योग्य नहीं समझते तो...तो मैंने ...अर्थात् मैंने...मार्ग, आदर्श पर चलने का प्रयत्न...प्रयत्न नहीं...साधना की है...। मैं...अर्थात् मैं......

अशोक : देखो, सुगाम! अपने व्यक्तित्व पर बल दो......किसी दूसरे का अनुकरण आत्महत्या है।

सुगाम : (**तीव्रता से**) तो अब तुम्हारी हत्या की जायगी, अशोक! मैं तुम्हें सावधान करने आया था। तुम्हारे प्रति भाइयों का क्रोध अन्तिम सीमा पर पहुँच गया है।

अशोक : मनुष्य की शक्ति अन्तिम सीमाओं में शोभा नहीं पाती। अन्तिम सीमाओं को संतुलित करने में शोभा पाती है।

सुगाम : यह तुम्हारा अन्तिम निर्णय है?

अशोक : मेरे धैर्य की परीक्षा न लो, सुगाम! क्या तुम समझते हो कि मगध का सिंहासन किसी वणिक की तुला है, जो शब्दों के भार से किसी ओर भी झुक सकती है? यह सिंहासन मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त का है, सम्राट् बिन्दुसार का है, जिनका साहस और प्रताप उसमें रत्नों की भाँति जड़ा हुआ है, और इन रत्नों में देश का ही नहीं, विदेश का भी इतिहास प्रतिबिम्बित हुआ है।

[नेपथ्य में कोलाहल होता है।]

अशोक : यह कैसा कोलाहल?

सुगाम : (**व्यंग्य से**) इसी कोलाहल में तुम्हारा इतिहास प्रतिबिम्बित होगा!

[**नेपथ्य में एक स्वर**—अशोक का वध करो!
दूसरा स्वर—पाटलिपुत्र का कलंक दूर हो!
तीसरा स्वर—अशोक को बन्दी करो!]

अशोक : (**तीव्रता से कोलाहल की दिशा में देखकर**) मैं प्रस्तुत हूँ।

[नेपथ्य में फिर हलचल होती है।]

सुगाम : (**उच्च स्वर से**) सम्राट् की जय!

['जय' का नाद गूँजते ही नेपथ्य से सुसीम अन्य चार भाइयों सहित तलवार की नोक सामने कर झपटते हैं।]

सुसीम : (**तीव्रता से तलवार उठाकर**) प्रतिहिंसा मेरे प्राणों में है। मृत्यु मेरे हाथों में है......आक्रमण करो!

[हलचल होती है।]

अशोक : (**गर्जन के स्वर में**) सावधान! सम्राट् बिन्दुसार के वंश के हिंसक पशु! वहीं खड़े रहो!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[सब स्तंभित होकर रुक जाते हैं ।]

अशोक : (वैसे ही गर्जन के स्वर में) यदि एक भी व्यक्ति आगे बढ़ा तो वह खौलते हुए तेल के कड़ाह में झोंक दिया जायगा ।

[सब ठिठके हुए खड़े रहते हैं । केवल कुमार सुसीम आगे बढ़ते हैं ।]

सुसीम : किसका साहस है कि वह हमें खौलते हुए तेल के कड़ाह में झोंक दे ?

अशोक : पाटलिपुत्र का एक-एक व्यक्ति यह साहस रखता है । और खौलते हुए तेल की एक-एक बूंद माँस में डूबकर हड्डियों को गलाने की शक्ति रखती है । तुम आगे बढ़ोगे ?

सुसीम : मैं ही नहीं...मेरे भाई भी आगे बढ़ेंगे ।

अशोक : तुम्हारे ये भाई जिन्हें तुमने विद्रोह के लिए भड़काया है, जिन देवता जैसे राजकुमारों को तुमने भेड़ियों का बाना पहनाया है ? पिता की मृत्यु पर टूटते हुए इनके आँसुओं से तुम अपना राज्याभिषेक कराना चाहते हो ? बोलो, सुसीम ! स्वार्थ की वेदी पर भाइयों की बलि देना हिंसा की पराकाष्ठा है या नहीं ?

सुसीम : हिंसक तुम हो ।

अशोक : भाइयों को अपने साथ-साथ तुम लाये हो, जिससे वे मेरी तलवार से कटें और तुम मुझसे सन्धि कर सिंहासन पर बैठो । तुम्हारा स्वार्थ ये भाई जानते हैं । इसलिए ये भाई देखने में तुम्हारे साथ हैं, पर वास्तव में साथ नहीं हैं । राज्य में विद्रोह स्वार्थ के पैरों पर खड़ा होता है । इन पैरों की दिशा जानते हो किस ओर है ? सुदत्त ! सुहास ! सुबेल ! तुम लोगों के पैर काँप रहे हैं । तुम्हारे हाथों की तलवारें झुक रही हैं । राजनीति में विद्रोह वह हिम-खंड है जो अविश्वास की आँच में गलकर वह जाता है । तुम्हारे माथे पर जो पसीना है, सुदत्त ! वह उसी का रूप है । उसे जल्द पोंछो ।

[सुदत्त बाएँ हाथ से माथे का पसीना पोंछता है ।]

सुसीम : (सुदत्त से सरोष) पसीना क्यों पोंछते हो ?

सुदत्त : (हकलाते स्वर में) अविश्वास......अविश्वास से गल......गल कर बह रहा है ।

सुगाम : (चीखकर) अविश्वास ? कैसा अविश्वास ?

अशोक : (तीव्रता से) वह अविश्वास, जो तलवारों में काँपता है । वह अविश्वास, जो तलवार को कसकर पकड़ता है ; किन्तु मुट्ठी ढीली की ढीली रह जाती है । वह अविश्वास, जो साहस कर बोलना चाहता है ; किन्तु भूमि में गड़े लोहे पर की गई चोट की भाँति गले में कुंठित हो जाता है । स्पष्ट कंठ से कहो, सुसीम ! क्या कहना चाहते हो ? तुम्हारी वाणी अविश्वास से बोझिल हो रही है ।

सुसीम : मेरी वाणी बोझिल नहीं । मैं पूछता हूँ, मुझे खौलते हुए तेल में झोंकने की शक्ति किसमें है ?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक : मुझमें। उस शक्ति की परीक्षा लेना चाहते हो ? तुम्हारे भाइयों के पैर लड़खड़ा रहे हैं। तुम्हारी वाणी में पहले जैसा तीखापन नहीं है। कौन परीक्षा लेगा ? समझो, सुसीम ! सागर की एक बूँद सागर के जल के समान ही है ; किन्तु उसमें प्रलय का संघात उत्पन्न नहीं हो सकता। यदि तुम्हारे साथ के भाइयों ने मगध का भविष्य नहीं पहचाना तो मुझे बलपूर्वक पहचानने के लिए बाध्य करना होगा।

सुसीम : हमें कोई बाध्य नहीं कर सकता।

सुगाम : राजकुमारों को कोई बाध्य नहीं कर सकता। काल भी उनके सामने आये, तो वे उसे अपने पैरों से कुचल देंगे। भाइयो ! अशोक तुम्हारे सामने है। उस पर आक्रमण करो ! वध करो !

[कुमारों में एक दूसरे का मुख देखकर फिर आक्रमण करने की हलचल होती है।]

अशोक : (तीव्रता से) शान्त ! तुम लोग एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते। यह रणभूमि नहीं है। यह पाटलिपुत्र की पवित्र धरणी है। गङ्गा और सोन ने इसका अभिषेक किया है। युद्ध करना है तो पाटलिपुत्र के बाहर की भूमि रक्त से रंजित की जायगी। यह पवित्र धरणी यज्ञ-भूमि है, रणभूमि नहीं।

सुसीम : किन्तु तुम, अशोक तुम, इसे अपने दुस्साहस से रणभूमि में परिणत करना चाहते हो !

अशोक : आक्रमण करने का आदेश किसने दिया—मैंने या तुमने ? यह भी तक्ष-शिला का विद्रोह है ? यह भी उत्तर-चक्र का विप्लव है ? यह पाटलिपुत्र के भविष्य का निर्णय है। यह हमारी पितृभूमि—हमारे मध्य-चक्र की परम्परा का निर्णय है। सुसीम ! अधिकार को विद्रोह का खिलौना मत बनाओ। मैं आवेश के चक्रव्यूह में अधिकार को लांछित नहीं होने दूँगा। मैं जानता हूँ, आवेश में भरे हुए व्यक्तियों का समूह पशुओं के पैरों से चलता है। आवेश दूर हो !

सुगाम : तो सुसीम मगध के सम्राट् होंगे। पिता का उत्तराधिकार उन्हीं को प्राप्त होगा।

अशोक : और तुम्हें प्राप्त क्यों नहीं हो सकता ? तुम भी मगध-सम्राट् के पुत्र हो, पिता के उत्तराधिकारी हो। सुगाम ! तुम भी मगध के सम्राट् हो सकते हो।

सुगाम : वह तुमने स्वीकार कब किया ?

अशोक : वह भी कभी स्वीकार हो सकता है। किन्तु इसके लिये तुम विद्रोह करोगे ? किसके साथ विद्रोह करोगे ? अमात्य-मंडल की शक्ति प्रजा की शक्ति है। प्रजा की शक्ति ईश्वर की शक्ति है। ईश्वर की शक्ति से कौन युद्ध करेगा ? याद रखो, सुगाम ! प्रजा की शक्ति मेरे साथ है, फिर किसमें साहस है कि ईश्वर की शक्ति के समक्ष खड़ा रह सके ! और इन टूटी हुई तलवारों के साथ तुम मुझसे युद्ध करोगे ? सुगाम ! तुमने इन कुमारों के हाथों में टूट जाने वाली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तलवारें क्यों दे रखी हैं ?

[कुमार अपनी तलवारों पर दृष्टि डालते हैं ।]

सुगाम : ये राजकुमारों की अपनी तलवारें हैं।

अशोक : तो इन तलवारों का पानी उतर गया है । जब विद्रोह के लिए तलवार उठती है तो उसका पानी उतर जाता है। (**तलवारों को लक्ष्य कर**) यह देखो ! ये तलवारें आपस में ही टकरा रही हैं । सुहास और सुबेल ! तुम लोगों की तलवारें आपस में ही टकराकर कुंठित हो रही हैं । पीछे हटो !

[दोनों यंत्रवत् पीछे हट जाते हैं ।]

सुदत्त : मेरी तलवार तो नहीं टकरा रही है ।

अशोक : तुम भविष्य को पहचानते हो । सुदत्त और सुगाम ! तुम भी भविष्य को पहचानते हो ; क्योंकि तुम मुझे सावधान करने आये थे और अपने लिए मगध का सिंहासन......

सुसीम : (**आश्चर्य से सुगाम की ओर देखते हुए**) अपने लिए मगध का सिंहासन चाहते थे ?

सुगाम : अपने लिए अर्थात् तुम्हारे लिए ।

सुदत्त : मुझसे तो किसी अमात्य-पद की बात कर रहे थे ।

सुहास : हाँ, और यही मुझसे भी कहा था ।

सुबेल : और मुझे तो अमात्य के नाम से पुकारने भी लगे थे !

अशोक : शान्त ! शान्त ! परस्पर भेद की बातें करने से लाभ कुछ नहीं होगा । परस्पर अविश्वास का समय कहाँ ? पाटलिपुत्र का प्रत्येक राजकुमार सत्य को पहचानता है, वह धोखे में नहीं आ सकता । मैं तुम सबसे अपने मन की बातें कहना चाहता था ; किन्तु पूज्य पिता की चिता की जलती हुई भस्म आज भी पाटलिपुत्र को दग्ध कर रही है । पूज्य माताओं की आँखों से बही हुई आँसुओं की धारा इस सोन नदी के प्रवाह से किसी भी प्रकार कम नहीं ।

सुदत्त : मैंने भी यही कहा था, अशोक !...मैंने भी यही कहा था ।

सुसीम : (**दृढ़ता से**) मेरे सामने यह प्रश्न नहीं है, अशोक ! मैं अपना अधिकार चाहता हूँ, अधिकार चाहता हूँ ! मैं ज्येष्ठ हूँ ।

अशोक : फिर मेरे प्रणाम के अधिकारी होकर मेरे आक्रमण के अधिकारी क्यों होना चाहते थे ? सुसीम ! तुम नहीं जानते कि तुम कितने महान् हो ! तुम में कितनी शक्ति और क्षमता है ! तुमने तक्षशिला का विद्रोह एक दिन में समाप्त कर दिया । तुम सम्राट् बिन्दुसार के ज्येष्ठ पुत्र ! मगध साम्राज्य के सुदृढ़ स्तम्भ ! यदि तुम अपने विवेक को संतुलित रखते तो यह राजश्री तुम्हारे चरणों में लौटती और तुम पदाघात करते हुए कहते, 'दूर हो पिशाची ! तू मेरी शरण में आने के योग्य नहीं है ।' किन्तु आज पिता का मरण तुम्हारे राज्य-वैभव का सोपान बन रहा है । माताओं की अश्रु-धारा में तुम अपने भाई की रक्त-धारा

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलाना चाहते हो ?

सुदत्त : मैंने तुमसे यही कहा था, सुगाम ! मैंने भी यही कहा था, अशोक ! मैं निश्चय तुम्हारे पक्ष में हूँ। मेरा प्रणाम स्वीकार करो। [**प्रणाम करके अशोक के समीप आकर खड़ा हो जाता है।**]

सुबेल : और मैंने भी अशोक का विरोध कब किया ? मैं भी तुम्हारे पक्ष में हूँ। मैं प्रणाम करता हूँ। [**प्रणाम करता है और अशोक के समीप दूसरी ओर खड़ा हो जाता है।**]

सुहास : अशोक सत्य के पथ पर है। मैं भी प्रणाम करता हूँ। [**प्रणाम करके अशोक के पक्ष में आकर सुदत्त के समीप खड़ा हो जाता है।**]

अशोक : पाटलिपुत्र की राजनीति कृतज्ञता का स्वर पहचानती है। मैं तुम सब लोगों का कृतज्ञ हूँ, सुदत्त, सुबेल और सुहास ! तुम लोग विविध शासन-चक्रों के कुमार बनने की योग्यता रखते हो। तुम लोग जाओ। माताओं को तुम्हारे शीतल शब्दों की आवश्यकता होगी।

सुदत्त : मैं भी यही सोचता हूँ, अशोक ! (**सुबेल और सुहास से**) चलो सुबेल ! चलो सुहास ! (**सुसीम से**) अच्छा सुसीम ! हम लोग जा रहे हैं।

सुबेल और सुहास : चलो ! [**अशोक को प्रणाम करके जाते हैं।**]

सुसीम : (**अशोक से**) तो इस प्रकार तुमने भेद-नीति से काम लिया !

अशोक : (**शान्ति से**) भेद-नीति का प्रयोग वहाँ हो, जहाँ संगठन हो और जहाँ लोगों को भ्रम में डालकर काम लिया जा सकता हो। इस नीति की आवश्यकता मुझे नहीं है, सुसीम ! मेरी नीति तो आत्मविश्वास की है। आत्मविश्वास जीवन के सत्य को पहचानने का बीज-मन्त्र है। और जीवन का सत्य किसी एक व्यक्ति का धन नहीं है, वह मानव-मात्र का अखण्ड वैभव है। तुम उदार नहीं हो सके। उदारता के अभाव में तुम्हारा वैभव शरदकालीन बादल बन गया, जो देखने में तो उज्ज्वल है, किन्तु उसमें जल की एक बूँद भी नहीं है। तुम नहीं समझ सके कि तुम्हारी आँखों की परिधि ही अन्तिम परिधि नहीं है...क्षितिज के पार भी एक परिधि है, जिसमें पृथ्वी और आकाश जैसे अलग तत्त्वों में भी सन्धि हो सकती है।

सुगाम : अशोक ! तुम महान् हो।

अशोक : महान् तो मानव है, सुगाम ! यदि कोई व्यक्ति सच्चा मानव बन सके ! मानव ही सृष्टि का केन्द्र है। जहाँ वह है, वहाँ सारी प्रकृति है...मानव ही राष्ट्र है। और मानव ही युग है। वह अनन्त प्रगति है, उसमें अनन्त शक्ति का स्रोत है यद्यपि वह नहीं जानता कि इस शक्ति का स्रोत कहाँ है।

सुसीम : (**सिर पकड़कर**) ओह ! सब समाप्त हो गया।

सुगाम : मेरे लिए कहीं कोई स्थान नहीं रह गया।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[**अमात्य खल्लाहक का प्रवेश**]

खल्लाहक : सम्राट् की जय !

अशोक : (**मुस्कराकर**) अमात्य ! तुम और अंगरक्षक गुप्त स्थान में बैठे-बैठे थक गये होंगे ; किन्तु मुझे अपनी वाणी और दृष्टि पर विश्वास था।

खल्लाहक : सम्राट् ! सैनिक गुल्म भी समीप ही था। वह प्रतीक्षा में था कि कुमार आक्रमण करें।

अशोक : किन्तु कुमारों ने आक्रमण नहीं किया। कितने कृपालु हैं ये कुमार !

सुसीम : इस समय जाता हूँ, अशोक ! फिर कभी......

अशोक : नहीं ! अभी तुम नहीं जा सकोगे, कुमार सुसीम और सुगाम ! मेरा अनुरोध है कि तुम आत्महत्या नहीं करोगे। इस वंश में किसी ने आत्महत्या नहीं की है। तुमसे शासन-चक्र के सम्बन्ध में कुछ परामर्श करूँगा। यह स्मरण रखना कि आवश्यकता से अधिक बुद्धिमत्ता मूर्खता की जननी है।

सुसीम : क्या मुझे खौलते हुए तेल के कड़ाह में डालोगे ? मुझे कोई चिन्ता नहीं।

अशोक : (**अमात्य से**) मैं अंगरक्षक की उपस्थिति चाहता हूँ।

खल्लाहक : सम्राट् की जैसी इच्छा। मैं भी यही चाहता था। [**प्रस्थान**]

अशोक : कुमार सुसीम ! राज्यश्री एक महापर्व मनाती है। उसमें महत्त्वाकांक्षा की भरी नदी में स्नान होता है। गुप्त अभिसंधियों का मंत्र-पाठ होता है। प्रशस्तियों के स्तोत्र पढ़े जाते और ऐश्वर्य के पुष्प बिखेरे जाते हैं। पाटलिपुत्र की राज्यश्री में यह कुछ नहीं होगा। उसमें प्राचीन राज्यपुरुषों की अर्चना में केवल प्रेम की पुष्पांजलि अर्पित होगी और प्राणों के दीप जलेंगे। यह राजनीति है...यही राज्यश्री है। (**नेपथ्य में देखकर**) कौन ? चंडगिरिक !

चंडगिरिक : आज्ञा, सम्राट् ! [**सिर झुकाता है।**]

अशोक : राजकुमार सुसीम और राजकुमार सुगाम को आदर सहित राजमहलों में पहुँचा दो !

सुसीम : हम लोग जिस भाँति आये हैं, उसी भाँति चले जावेंगे।

अशोक : नहीं, कुमार सुसीम ! सम्राट् बिन्दुसार के राजवंश की मर्यादा सुरक्षित रहेगी। (**चंडगिरिक से**) और चंडगिरिक ! साथ में सैनिक गुल्म भी रहेगा।

चंडगिरिक : जैसी आज्ञा, सम्राट् ! (**कुमारों से**) कुमारों से प्रार्थना है कि वे राजमहलों की ओर प्रस्थान करें।

सुसीम : (**सुगाम से**) चलो, सुगाम !

सुगाम : अशोक ! तुम्हारे कहने से मैं आत्महत्या नहीं करूँगा।

अशोक : साधु, सुगाम ! [**सुसीम और सुगाम का शीघ्रता से प्रस्थान**]

[**खल्लाहक का प्रवेश**]

खल्लाहक : सम्राट् की कोई विशेष आज्ञा ?

अशोक : (**सोचते हुए**) कृष्ण-पक्ष की रात्रि में जितने अधिक तारे रहते हैं, उतना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही अधिक अंधकार भी रहता है।

खल्लाहक : सत्य है, सम्राट्! किन्तु आज चन्द्रोदय होने पर पाटलिपुत्र को सच्चा सम्राट् मिला।

अशोक : यह उस पवित्र सोन (**नेपथ्य में संकेत करते हुए**) का वरदान है—सोन का, जिसने सम्राट् चन्द्रगुप्त के पाटलिपुत्र का निर्माण किया। उसी पवित्र सोन का वरदान है!

[अशोक के मुख-मंडल से तेज किरणें फूटती-सी ज्ञात होती हैं।]

[धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 6 :

चारुमित्रा

●

पात्र-परिचय

सम्राट् अशोक—मगध सम्राट्
तिष्यरक्षिता—सम्राज्ञी
चारुमित्रा—सम्राट् की अंगरक्षिका
स्त्री—शिशु की माता
स्वयंप्रभा—तिष्यरक्षिता की सहचरी
उपगुप्त—बौद्ध-सन्यासी
राजुक, प्रहरी आदि

●

काल—ई० पू० 261
स्थान—कलिंग में गोदावरी के तट पर सम्राट् अशोक का युद्ध-शिविर।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चारुमित्रा

[सम्राट् अशोक ने अपने शासन के तेरहवें वर्ष में कलिंग पर चढ़ाई कर दी है। उसका कारण यह है कि कलिंग-नरेश, सम्राट् अशोक की सत्ता स्वीकार करने में अपना अपमान समझता है। उसने भारत के बाहर भी अपने उपनिवेश स्थापित कर रखे हैं। उज्जयिनी के कुमारामात्य सुगाम ने अपने असफल विद्रोह की प्रतिक्रिया में कलिंग-नरेश की सहायता करना उचित समझा है। सम्राट् अशोक को यह सहन नहीं हो सकता। उन्होंने उज्जैन और तक्षशिला में आत्माभिमान की जो दीक्षा प्राप्त की है, वह कलिंग-नरेश के स्वातन्त्र्य प्रेम से समझौता नहीं कर सकती। और जब अशोक ने सम्राट् चन्द्रगुप्त के वंश में जन्म लिया है, तो वे कैसे अपने अधिकार से आँखें मूँद सकते हैं? इस समय उनका राज्य उत्तर हिन्दूकुश से लेकर दक्षिण में पेनार नदी तक है और पश्चिम में अरब सागर से लेकर बंगाल की खाड़ी तक। सिर्फ कलिंग एक मतवाले नाग की तरह सिर उठाये हुए विषम दृष्टि से अशोक की ओर देखता है। अशोक उस नाग का सिर कुचलना चाहते हैं। उन्होंने दो वर्ष पहले कलिंग पर चढ़ाई कर दी है। उनकी सैन्य शक्ति अपार है। पैदल, अश्वारोही, रथ और हाथियों को उन्होंने कलिंग की सीमा पर अड़ा दिया है। वे आगे बढ़ते चले जा रहे हैं। सम्राट् अशोक स्वयं सैन्य-संचालन करते हैं। उनका शिविर उनकी सेनाओं के साथ है। वे युद्ध के अतिरिक्त किसी भी विषय पर बात नहीं करना चाहते।

उनका शिविर इस समय गोदावरी तट पर है। दूर पानी के बहने और शिलाओं से टक्कर खाने की ध्वनि है। शिविर के चारों ओर लताओं और गुल्मों का जाल है। समस्त वातावरण में शान्ति और सौन्दर्य है, जो कभी किसी सैनिक की ललकार से या पक्षी के तीखे स्वर से भंग होता है, लेकिन शान्त हो जाता है, जैसे एकाकी मार्ग में चलती हुई कोई स्त्री ठोकर खाने से चीख उठे, लेकिन फिर अपने मार्ग पर चलने लगे। शिविर के पर्दों पर शस्त्र त्रिकोण में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लम्बी रेखाओं के रूप से सजे हुए हैं। जगह-जगह युद्ध के वस्त्र टंगे हुए हैं। इस समय संध्या गहरी होती जा रही है। सम्राट् अशोक युद्ध से नहीं लौटे। उनकी रानी देवी अपने कक्ष में बैठी हुई चित्र बना रही हैं। शिविर के कक्ष में ऐश्वर्य बरस रहा है। स्तम्भों में स्वर्णलताएँ लिपटी हैं और उन पर रत्नों के फूल हैं, जो प्रकाश में ज्योति-मंडल बन जाते हैं। नीलम और मोतियों की झालरों से कक्ष की दीवारों पर समुद्र की फेनिल लहरों का आभास उत्पन्न किया गया है। पीछे एक महराब है, जिसके दोनों ओर प्रस्तर-निर्मित एक-एक हाथी घुटने टेके हुए है। चारों ओर दीपस्तम्भ हैं, जिनमें दीपक जल रहे हैं और उन्हीं स्तम्भों में फूल के आकार के पात्र से सुगन्ध-धूम निकल रहा है। कक्ष के बीच में एक ऊँचा और सजा हुआ आसन है। उससे हटकर कोने की ओर चार छोटी-छोटी आसन्दिकाएँ हैं। उन आसनों में से एक पर देवी बैठी हैं। उनके सामने चित्रफलक पर एक अधबनी तस्वीर है, जिसमें प्रकृति का सौन्दर्य अपनी पूर्णता के लिए देवी की तूलिका में से उतर रहा है। कक्ष में निस्तब्धता है। देवी चित्र बनाने में लीन हैं। रुककर एक स्थान पर खड़ी रहकर वह भिन्न-भिन्न कोणों से चित्र की ओर देख रही हैं। दो क्षणों तक चित्र देखने के बाद वे अपनी तूलिका से दीप-स्तम्भ पर शब्द करती हैं। एक परिचारिका प्रवेश कर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करती है।]

महादेवी : चारु ! देख यह चित्र कितना अच्छा बन रहा है।

चारुमित्रा : बहुत अच्छा, महादेवी !

महादेवी : चारु ! मैंने चाहा कि इसी जगह की प्रकृति का चित्र बना लूँ। यहाँ रहते-रहते ये पेड़, ये झुरमुट, ये फूल मुझे बहुत अच्छे लगने लगे हैं। लता खिलती है तो मालूम होता है जैसे उसके सुहाग के दिन आये हैं। और गोदावरी तो ऐसे बहती है जैसे किसी के छूने पर उसे रोमांच हो आया है। तुझे भी तो यह जगह अच्छी लगी होगी ?

चारुमित्रा : हाँ, महादेवी ! मुझे बहुत अच्छी लगती है।

महादेवी : तब तो युद्ध समाप्त हो जाने दे। फिर तेरा विवाह इसी जगह रचाऊँगी। इन्हीं पेड़ों के नीचे मंडप होगा और इन्हीं फूलों से तेरी माँग भरूँगी।

चारुमित्रा : महादेवी आपका चित्र बहुत अच्छा बना है।

महादेवी : तू अपने विवाह की बात इस तरह उड़ा देना चाहती है ? इसी चित्र में तेरे विवाह का भी चित्र होगा। कुमारामात्य सुगाम के साथ विवाह करेगी ? आह, कितने साहसी हैं ! वे तेरे लिए छद्मवेश भी धारण कर सकते हैं।

चारुमित्रा : क्षमा करें, महादेवी ! कुमारामात्य सुगाम के लिए कोई सुगामिनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुमारी ही हो सकती है, चारुमित्रा नहीं !

महादेवी : तो चारुमित्रा के लिए किसी मित्र की आवश्यकता होगी, जिसका चित्र मुझे अपनी तूलिका से खींचना चाहिए। [हँसी]

चारुमित्रा : महादेवी ! आप अपनी तूलिका को कष्ट न दें। आपकी कला हम लोगों के लिए बहुत ऊँची है।

महादेवी : तू बहुत मीठी बातें करती है, चारु ! किन्तु मेरी कला जीवन के प्रत्येक चित्र को अपना अंग समझती है। यही दृश्य देख ! कितना साधारण है, पर मुझे तो बहुत प्रिय है।

चारुमित्रा : यह तो यहीं पास के कुंज का चित्र है।

महादेवी : हाँ, चारु ! मैं कल वहाँ गई थी, आर्यपुत्र के साथ। वे जाने कैसे हो गये हैं ! सब समय युद्ध की बातें करते हैं। तेरे कलिंग देश पर जब से उन्होंने चढ़ाई कर दी है, तब से तो सारा राज्य-कार्य महामात्य खल्लाटक पर ही छोड़ रखा है। आज दो वर्ष पूरे होने जा रहे हैं, पर कलिंग पर उनका क्रोध वैसा ही बना हुआ है।

चारुमित्रा : यह मेरे देश का दुर्भाग्य है।

महादेवी : मैं चाहती हूँ, चारु, यह लड़ाई शीघ्र ही समाप्त हो जाय। सच मान, यह युद्ध मुझे अच्छा नहीं लगता। हमारे सुख और शान्ति के जीवन में जहाँ हँसी का फूल खिलना चाहिए, वहाँ आह और कराह काँटे की तरह चुभ जाती हैं।

चारुमित्रा : महादेवी ! लड़ाई में यही आह और कराह तो तलवार का संगीत बनती हैं।

महादेवी : अच्छा चारु ! यह बता, तूने कभी लड़ाई लड़ी है ?

चारुमित्रा : नहीं, महादेवी !

महादेवी : तू जानती ही नहीं लड़ाई किसे कहते हैं ? जीवन भी तो एक लड़ाई है। पुरुष की स्त्री से लड़ाई, स्त्री की पुरुष से लड़ाई। स्त्री-पुरुष की पुरुष-स्त्री से लड़ाई। तूने कभी लड़ाई लड़ी ही नहीं ?

चारुमित्रा : नहीं महादेवी !

महादेवी : विवाह होने से पहले इसका अभ्यास अवश्य कर ले।

चारुमित्रा : हाँ, महादेवी !

महादेवी : और चारु ! मैं भी आर्यपुत्र से लड़ना चाहती हूँ। वे यह युद्ध बन्द कर दें। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। कितने वीरों का नित्य रक्त बहता है ! आज जिन वीरों से देश की उन्नति होती, वही व्यर्थ मर रहे हैं। जो वीर मिट्टी छूकर सोना बनाते, वही आज मिट्टी हो रहे हैं।

चारुमित्रा : सच है, महादेवी !

महादेवी : किन्तु कलिंग के लोग लड़ना भी अच्छी तरह से जानते हैं, नहीं तो मगध की सेना के सामने कौन टिक सकता ! दो वर्ष से तो यह लड़ाई चल रही है।

चारुमित्रा : अभी बहुत वर्षों तक चलेगी, महादेवी !

महादेवी : (आवेश से) क्या ? क्या ? चारु ! तू आर्यपुत्र की शक्ति का अपमान करती है ?

चारुमित्रा : महादेवी ! क्षमा कीजिये । इसमें सम्राट् की शक्ति का अपमान नहीं है । मेरे कलिंग के निवासी वीर हैं । वे माता की तरह अपनी भूमि का आदर करते हैं । जब तक एक भी वीर है, तब तक तो कलिंग की जय का घोष वायु को सहन करना ही होगा ।

महादेवी : तू विद्रोह की बात करती है, चारु !

चारुमित्रा : महादेवी ! मैं विद्रोह की बातें नहीं करती, मैं अपने देश के गौरव की बातें कर रही हूँ ।

महादेवी : तब तो तू अपने सम्राट् के साथ विश्वासघात भी कर सकती है ?

चारुमित्रा : महादेवी ! मैंने सम्राट् की सेवा उस समय से की है, जब उनका राज्याभिषेक भी नहीं हुआ था । आपके चरणों की छाया में ही बड़ी हुई हूँ । जब मैं सम्राट् की सेवा में कलिंग से आई थी, तब तो युद्ध की बात ही नहीं थी । आज मेरा देश कलिंग संकट में है, तो महादेवी, मुझे उसके सम्बन्ध में कुछ कहने की आज्ञा भी नहीं मिलेगी !

महादेवी : चारु ! तुझे पूरी आज्ञा है; किन्तु मैं आर्यपुत्र का अपमान सहन नहीं कर सकती ।

चारुमित्रा : संसार में उनका अपमान करने की क्षमता किसी में नहीं है, महादेवी ! और मैं भी उनकी आजन्म सेविका हूँ ।

महादेवी : किन्तु जब से कलिंग युद्ध प्रारम्भ हुआ है, तब से मैं सम्राज्ञी होकर भी तुझसे डरती हूँ ।

चारुमित्रा : महादेवी, आप मुझे आत्महत्या की ओर प्रेरित करती हैं ।

महादेवी : (हँसकर) मैं तुझसे हँसी कर रही थी, चारु ! तू भी कभी हमसे विश्वास-घात कर सकती है ?...चारु ! मुझे प्यास लग रही है ।

चारुमित्रा : जो आज्ञा ।

[कोने के पात्र से जल भरकर देती है ।]

महादेवी : (दो घूँट पीकर) तेरे हाथ के जल-पात्र में ही मेरे विश्वास की तरलता है, चारु ! तू इस पात्र में विष डाल सकती थी; किन्तु तुझ पर मेरा विश्वास है । तू कलिंग-निवासिनी होकर भी मेरी प्रजा है, जिसने अपने जीवन के प्रभात से ही मगध-सेवा का पुनीत व्रत धारण किया है । यद्यपि आर्यपुत्र का क्रोध कलिंग के प्रति बढ़ता ही जा रहा है; फिर भी, चारु, यह युद्ध मुझे नहीं चाहिए । कितने दिनों से इस शिविर में रहते हुए जैसे मेरा सुख सपना-सा बनता जा रहा है ! रात्रि में युद्ध की समाप्ति पर उनके दर्शन कर लेती हूँ, तो ऐसा ज्ञात होता है जैसे कोई वृद्धा युवती बन गई हो । आज कहूँगी कि वे कलिंग का युद्ध बन्द कर दें । वीरों को स्वतंत्र साँस लेने देना भी तो दया की क्रूरता पर विजय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। मुझे तो इस विजय पर ही संतोष है।

चारुमित्रा : आप देवी हैं।

महादेवी : फिर बतला क्या उपाय करूँ, चारु ! आर्यपुत्र तक्षशिला में रहकर बड़े साहसी बन गये हैं। कहते हैं, पूज्य पितामह, जिन्होंने निकेटर सेल्यूकस की प्रचण्ड सेना का नाश कर दिया था, जिन्होंने अलक्षेन्द्र के राज्य की दिशा बदल दी थी, तक्षशिला के ही तो विद्यार्थी थे। पितामह के योग्य पौत्र बनने का आदर्श जो है उनके सामने।

चारुमित्रा : हाँ, महादेवी !

महादेवी : अच्छा, चारु ! आज आर्यपुत्र से एक बात पूछूँगी कि आपके पूज्य पितामह ने तो सेल्यूकस पर विजय पाकर उसकी सुन्दरी कन्या पर विजय पाई थी। क्या आपकी विजय में किसी......

चारुमित्रा : महादेवी क्षमा करें। कलिंग देश वीरों का देश है, कन्याओं का नहीं।

महादेवी : क्या कलिंग-देश में कन्याएँ होती ही नहीं ? चारु ! तू तो अपने देश की प्रशंसा करते-करते ऊबती नहीं। महाराज की प्रशंसा क्यों नहीं करती, जिन्होंने कलिंग से युद्ध होने पर भी कलिंग देश की सेविका को अपने देश से नहीं निकाला।

चारुमित्रा : महादेवी ! प्रियदर्शी नरेश अशोक सम्राट् हैं। मेरे यहाँ रहने से उनका क्या बिगड़ता-बनता है।

महादेवी : आचार्य चाणक्य ने शत्रु के विषय में क्या कहा है, जानती है ? कहा है, शत्रु कभी छोटा नहीं होता।

चारुमित्रा : महादेवी ! मैं अपने पद से अलग होने की आज्ञा चाहती हूँ।

महादेवी : **(हँसकर)** बस, बुरा मान गई। बात-बात पर आज्ञा चाहती है। अरे, तू सेविका होकर भी मेरे वात्सल्य की अधिकारिणी है। अच्छा, देख ! मेरा चित्र और ध्यान से देख।

चारुमित्रा : **(ध्यान से देखते हुए)** महादेवी, आपने तो टूटे हुए वृक्ष बनाये हैं और उनमें लाल रंग भर दिया है।

महादेवी : बतला, इसमें क्या रहस्य है ?

चारुमित्रा : मैं चित्रकला नहीं जानती, महादेवी !

महादेवी : अरे, यह तो साधारण समझ की बात है। यह चित्र मैं आर्यपुत्र को दिखलाना चाहती हूँ। उनसे कहूँगी, 'देखिये, आपने कलिंग के वीरों को तो रक्त से नहला ही दिया है। अब आपकी तलवार इन बेचारे वृक्षों पर भी पड़ी है और उनकी शाखाओं और टहनियों से रक्त निकल रहा है।'

चारुमित्रा : महादेवी ! आपकी बात की थाह नहीं ली जा सकती।

महादेवी : चारु !

चारुमित्रा : महादेवी !

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महादेवी : आर्यपुत्र अभी नहीं आये ?

चारुमित्रा : नहीं महादेवी !

महादेवी : देख ! यह गोदावरी का सुसाम्य तट, ये पानी की लहरें जैसे सौंदर्य की मालाएँ हों, जो आप से आप गुँथकर बड़ी होती हैं और तट पर किसी का हृदय न पाकर टूट जाती हैं ।

चारुमित्रा : हाँ, महादेवी !

महादेवी : और ये जो पक्षी उड़ते चले जा रहे हैं, जैसे प्रेम की ग्रन्थियाँ हैं जिन्होंने आकाश में उड़ना सीख लिया है । अच्छा सुन, यह समस्त वातावरण तेरा नाच देखना चाहता है । नाच सकेगी ?

चारुमित्रा : जो आज्ञा, महादेवी !

महादेवी : उज्जयिनी में सीखी हुई तेरी नृत्य-कला आज इस शिविर में साकार हो । जा, जल्दी पैरों में संगीत भर ला ।

[चारु जाती है । महादेवी थोड़ी देर प्रकृति की ओर देखती हैं, फिर अपने चित्र के पास आकर तूलिका उठाती हैं और उसमें रंग भरने लगती हैं । धीरे-धीरे गाती जाती हैं]

अली पहचान गया कलि को ।
अपने स्वर से स्वर्ग बनाया, इस सुमनाञ्जलि को ।
मन्द पवन धीरे बहा, उर में भर अनुराग,
कलित कुंज में केतकी, मौन रही है जाग ।
खिलने का संवाद कौन देता कुसुमावलि को ।
अली पहिचान गया कलि को ।

[चारु नूपुर पहिनकर आती है और महादेवी के सामने खड़ी होती है]

चारुमित्रा : आज्ञा है !

महादेवी : मेरी, और उस कली की भी, जो तेरे नृत्य के साथ खिलना चाहती है ।

[चारु प्रणाम कर नृत्य करती है । कुछ समय तक नृत्य होता है । महादेवी तन्मय होकर देखती हैं, कभी-कभी बीच में प्रशंसा करती जाती हैं । अकस्मात् 'सम्राट् अशोक की जय' का घोष । नृत्य रुक जाता है । महादेवी चारु को देखती है और चारु महादेवी को ।]

[नेपथ्य में......सम्राट् अशोक की जय ! सम्राट् अशोक की जय !!]

[शीघ्रता से एक परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका : महादेवी ! सम्राट् शिविर में लौट रहे हैं । **[प्रस्थान]**

चारुमित्रा : महादेवी, अब क्या होगा ?

महादेवी : **(सान्त्वना के स्वरों में)** कुछ नहीं । तू नूपुर उतार दे ।

चारुमित्रा : **(सिर हिलाकर)** जो आज्ञा !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[बैठकर नूपुर उतारने लगती है। एक पैर का नूपुर उतर जाता है, लेकिन दूसरे पैर का नूपुर उतारने में उलझ जाता है और प्रयत्न करने पर भी नहीं उतरता। इतने में ही जय-घोष के साथ सम्राट् अशोक का प्रवेश। महादेवी और चारु प्रणाम करती हैं। अशोक अभय मुद्रा में हाथ ऊपर उठाते हैं।]

अशोक : विजय, देवी ! आज युद्ध में फिर विजय ! ओह, तुम्हारी मंगलकामनाओं में कितनी शक्ति है ! विजय, विजय, विजय !

[हाथ उठाते हैं।]

महादेवी : आर्यपुत्र की विजय हो !

चारुमित्रा : सम्राट् की विजय हो !

अशोक : देवि ! शत्रुओं की संख्या बहुत अधिक थी। हाथी और घोड़े जैसे दुर्भाग्य की तरह अड़े हुए थे ; किन्तु तुम्हारी मंगलकामना ने मुझे और मेरे वीरों को ऐसी शक्ति दी कि शत्रु सूखे पत्तों की तरह बिखरकर चूर-चूर हो गये। मेरी शक्ति के पीछे, देवि ! तुम्हारी मंगलकामना है। चारुमित्रा ! देवी पर पुष्प-वर्षा हो।

[चारुमित्रा आगे बढ़ने के लिए पैर उठाती है कि उसके पैर का नूपुर शब्द कर उठता है।]

अशोक : **(चारुमित्रा के पैरों पर दृष्टि गड़ाकर)** अरे, यह क्या ? नृत्य ! संग्रामभूमि में रंगभूमि ! **(प्रश्नसूचक मुद्रा में)** चारु ?

चारुमित्रा : सम्राट् ! क्षमा चाहती हूँ।

अशोक : मेरी युद्धभूमि में केवल भैरवी का नृत्य हो सकता है, चारुमित्रा का नहीं।

चारुमित्रा : सम्राट्......

अशोक : और उस भैरवी नृत्य में तलवारों का संगीत होगा, नूपुरों का नहीं।

चारुमित्रा : सम्राट्......

अशोक : आश्चर्य है कि मेरी अंगरक्षिका चारुमित्रा आज नर्तकी बनी हुई है ! यह नृत्य किस कूटनीति की भूमिका है ?

चारुमित्रा : सम्राट्......

अशोक : मेरे युद्ध के उत्साह में कोमलता भरने वाली चारुमित्रा ! तुझे क्या पुरस्कार चाहिए—रत्नों का हार, मोती की माला ?

चारुमित्रा : मुझे दण्ड दीजिये, सम्राट् !

अशोक : मेरे युद्ध के उत्साह में कोमलता भरने वाली, चारुमित्रा ! तुझे दण्ड ही मिलेगा। तू इस नीति से मुझे युद्ध करने से रोकना चाहती है ? स्त्री ! कलिंग से उत्पन्न शरीर, कलिंग का ही साथ देगा। विश्वासघातिनी, चारुमित्रा ! **(पुकारकर)** राजुक !

[राजुक का प्रवेश]

अशोक : राजुक ! चारुमित्रा जलते हुए अंगारों पर नाचना चाहती है। आग तैयार हो।

राजुक : जो आज्ञा ! [**प्रणाम कर प्रस्थान**]

अशोक : चारुमित्रा ! दूसरे पैर में भी नूपुर पहन ले। एक पैर की पूरी ध्वनि नहीं निकलेगी। दूसरा पैर नूपुरों की प्रतीक्षा में है।

[**चारुमित्रा दूसरे पैर में भी नूपुर पहनने के लिए झुकती है।**]

महादेवी : आर्यपुत्र !

अशोक : देवि !

महादेवी : आर्यपुत्र ! चारु का दोष नहीं है।

अशोक : देवि ! चारु का दोष नहीं है, यह कैसी बातें कहती हो ? कलिंग के शरीर में कलिंग की आत्मा का मगध के साथ क्या व्यवहार हो सकता है ? चारु जानती है कि मेरे क्रोध में उसका देश जल रहा है। वह मेरे क्रोध की ज्वाला शान्त करने के लिये अपने संगीत और नृत्य का प्रयोग करना चाहती है। मुझे नहीं सुना सकती तो तुम्हें सुनाकर तुम्हारे द्वारा मुझमें कोमलता का संचार करना चाहती है। मैं देख रहा हूँ, तुम्हारे स्वभाव को भी उसने दया से भर दिया है।

महादेवी : आर्यपुत्र ! दया करना तो स्त्री का स्वाभाविक धर्म है। चारु मुझे क्या दया से भर सकती है ? किन्तु, आर्यपुत्र ! चारु निरपराध है। एकाकी क्षणों को काटने का यह मेरा साधारण उपाय था। मैंने ही चारु को आज्ञा दी थी कि वह नृत्य करे।

अशोक : तुमने आज्ञा दी थी ?

महादेवी : हाँ, आर्यपुत्र ! युद्ध के भयानक क्षणों में स्त्री के एकाकी हृदय को कौन-सा सहारा है ? संगीत, नृत्य, चित्रकला, यही तो।

अशोक : तो चारु अपनी ओर से नृत्य करने नहीं आई ?

महादेवी : नहीं, आर्यपुत्र ! उसे क्षमा कीजिए।

अशोक : अशोक ने किसी को भी अपराध करने पर क्षमा नहीं किया ; किन्तु इस समय क्षमा करता हूँ। (**चारु की ओर देखकर**) चारु ! तुझे क्षमा करता हूँ। अच्छा हो कि तेरा नृत्य भैरवी नृत्य बनकर मगध की विजय के लिए हो। और यदि ऐसा न कर सके तो फिर यह नृत्य अपने कलिंग के कटते हुए वीरों के रुंडों और मुंडों के लिए रहने दे। (**पुकारकर**) राजुक !

[**राजुक का प्रवेश**]

अशोक : आग तैयार हो गई ?

राजुक : हाँ, सम्राट् !

अशोक : उस आग से उन कायरों को शीतल करो, जो आज युद्ध-भूमि से पीछे हटे हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजुक : जो आज्ञा ! [**जाने लगता है।**]

अशोक : और सुनो ! यह मत सुनना कि संचालन-कौशल से सावधानी के साथ पीछे हटे हैं। युद्ध-भूमि के अतिरिक्त प्रत्येक भूमि वीरों के लिए कलंक-भूमि है।

राजुक : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

अशोक : इस शिविर के वातावरण को तेरे नृत्य की ध्वनि नहीं चाहिए, उसे वीरों का हुंकार चाहिये। मेरी अंगरक्षिका का कवच नूपुरों में परिणत नहीं होगा। अपने हाथों को तलवार दे, पैरों का नूपुर नहीं, चारु ! इन संगीत-भरे पैरों को विश्राम की आवश्यकता है, जो नृत्य की गति से थक गये हैं।

[**चारु सिर झुकाकर जाती है।**]

अशोक : देवि ! कलिंग से युद्ध करते समय ज्ञात होता था, जैसे पाटलिपुत्र की शक्ति से एक प्रलय उत्पन्न हुआ है, जो कलिंग को रक्त के समुद्र में डुबाना चाहता है। तक्षशिला, गान्धार और उज्जयिनी के बड़े-बड़े वीर मेरी घूमती हुई दृष्टि की दिशा में ही अपनी तलवार घुमाते थे। सेना की एक-एक टुकड़ी पानी की लहर की तरह बढ़ती थी और धीरे-धीरे बड़ी होकर शत्रुओं की तलवार से टकराती थी। वे तलवार भी नहीं घुमा सकते थे। उस समय मुझे ऐसा ज्ञात होता था कि मेरी ललकार भी तलवार थी, जिसके सामने घूमा हुआ शस्त्र भी लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाता था।

महादेवी : आर्यपुत्र ! इतना रक्तपात......

अशोक : मैंने अपनी सेना का अर्धव्यूह बनाकर आक्रमण किया था। शत्रु सोचते थे, जैसे सहस्रों धूमकेतु एक विशेष आकार में कसे हुए मृत्यु का दाह लेकर आ रहे हैं। न जाने कितने शत्रु हाथियों के पैरों से पिस गये। सैकड़ों घोड़ों के पैरों में उलझकर रक्त से लथपथ हो गये। ज्ञात होता था, रक्त का महानद महानदी से मिलने के लिए जा रहा है।

महादेवी : आर्यपुत्र ! इतना भयानक युद्ध !

अशोक : मुझ पर भी एक वीर ने तलवार चलाई। मैंने महानाग वासुकि की भाँति अपना सिर बचा लिया। उसकी तलवार वायुमंडल में शून्यचक्र बनकर रह गई। अपने निष्फल हुए आक्रमण के वेग से वह घूम गया। उसके घूमते ही मैंने तलवार की नोक उसके पार्श्व में भोंक दी। उसकी ललकार आह में बदलकर रक्त में डूब गई। वह टूटे हुए वृक्ष की तरह भूमि पर गिर पड़ा।

महादेवी : आर्यपुत्र ! आपका युद्ध-कौशल भयानक है।

अशोक : और महादेवी ! आज के युद्ध में कुमारामात्य सुगाम भी कलिंग की कसौटी पर कसी हुई मगध की तलवार लेकर मुझसे युद्ध करने आये। मैंने देखा, आकाश में निकले हुए धूमकेतु की भाँति वे अपने अमंगल को ही गति का रूप देकर मेरी तलवार से टकराना चाहते हैं। उन्होंने अपने मगध-सम्राट् होने की घोषणा फिर से की। हम दोनों की तलवारें इतने वेग से लड़ीं कि उनसे निकली हुई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिनगारियों ने भी तलवारों का रूप ले लिया। मैंने दूसरे ही क्षण देखा कि कुमारामात्य सुगाम की तलवार खंड-खंड हो गयी। उन्होंने जैसे ही दूसरी तलवार निकाली, वैसे ही उनका अश्व धराशायी हुआ और वे सैनिकों के समुद्र में अदृश्य हो गये।

महादेवी : क्या आर्य सुगाम युद्ध में मारे गये ?

अशोक : यह तो नहीं कहा जा सकता; किन्तु वे दुबारा मुझसे युद्ध करने नहीं आये। फिर मैंने भी अश्व छोड़ दिया और में उन्हीं के मृतक अश्व की पीठ से पैर टेककर लड़ता रहा। शत्रुओं के नायक वीरभद्र की तलवार जैसे ही आगे बढ़ने के लिए अर्द्धचक्र बना रही थी, वैसे ही मैंने झुककर कक्ष भाग से कंधे पर ऐसा प्रहार किया कि अपने वेग में, भुजा समेत उड़कर उसकी तलवार एक हाथी की पीठ में घुस गई। हाथी शत्रु पक्ष को कुचलता हुआ भाग खड़ा हुआ। उसी समय सेना के पैर उखड़ गये और आज की विजय ने, देवि! हमारे गले में माला पहना दी।

महादेवी : बहुत भयानक युद्ध है, आर्यपुत्र! अब सहन नहीं हो सकता।

अशोक : देवि! तुम बड़ी कोमल-हृदया हो। यह युद्ध तुम्हारे लिए नहीं है। इसीलिए मैं चाहता था कि तुम पाटलिपुत्र में ही रहो। किन्तु तुम्हारा अनुराग मुझे विवश कर सका कि तुम्हें साथ ले आया।

महादेवी : आर्यपुत्र! यदि मैं एक अनुरोध और करूँ ?

अशोक : क्या ?

महादेवी : यह युद्ध रोक दीजिये।

अशोक : यह क्या कह रही हो, देवि! युद्ध का रुक जाना पाटलिपुत्र की उन्नति का रुक जाना है। किसी भी साम्राज्य की सीमा तलवार से खींची जाती है और सीमा को स्थायी रखने के लिए उस रेखा में रक्त का रंग भरा जाता है। **(कक्ष में दृष्टि डालते हैं। चित्रफलक पर दृष्टि डालकर)** अच्छा, यह तुमने बड़ा सुन्दर चित्र बनाया है!

महादेवी : आर्यपुत्र! क्या इस चित्र का इतना सौभाग्य है कि आपकी प्रशंसा का वरदान इसे मिल सकता है ?

अशोक : बहुत ही सुन्दर है। यह तो उस कुंज का है, जहाँ बैठकर मैंने युद्ध का कार्यक्रम बनाया था।

महादेवी : हाँ, आर्यपुत्र! मैं भी साथ थी।

अशोक : तो ये वृक्ष टूटे हुए क्यों दिखाए गये हैं ?

महादेवी : आर्यपुत्र! युद्ध की गति में आपकी तलवार शत्रुओं पर पड़ने के साथ ही इन वृक्षों पर भी पड़ी है। ये बेचारे भी कट गये हैं और इनसे रक्त निकल रहा है।

अशोक : तो रक्त के स्थान पर लाल रंग की क्या आवश्यकता ? सच्चा रक्त भरो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनमें । वह तो बहुत मिल सकता है । मैंने कितने ही रक्त की शारीरिक सीमाएँ नष्ट कर उन्हें पृथ्वी पर बहने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी है । वहीं से रक्त लो ।

महादेवी : आर्यपुत्र ! मेरा हृदय काँप रहा है इस युद्ध की भयानकता से । आप क्यों इतने वीरों के रक्त से राज्यश्री को अग्नि का रूप देना चाहते हैं ?

अशोक : देवि ! अग्नि में तपकर ही स्वर्ण पवित्र होता है । आज मेरी तलवार में शक्ति है । उसका अधिक से अधिक उपयोग होने दो ।

महादेवी : जैसी आर्यपुत्र की इच्छा ! किन्तु मुझे बहुत दुःख है इस क्रूरता पर । [**सिर झुका लेती हैं।**]

अशोक : (**मानते हुए**) तुम दुःखी हो, देवि ! नहीं, दुःखी होने की क्या बात ? तुम तो दया की देवी हो, तुम्हें तो किसी के दुःख से भी दुःख होने लगता है । मैं यथाशक्ति तुम्हारे सद्भावों की रक्षा तो करता हूँ । देखो, देवि ! आज तुम्हारी दया की ढाल ने मेरे दण्ड के कृपाण को कुंठित कर दिया......!

महादेवी : चारु निरपराध थी, आर्यपुत्र !

अशोक : रणभूमि की दृष्टि से या रंगभूमि की दृष्टि से ?

महादेवी : आर्यपुत्र ! वह सेविका है, आपके चरणों की छाया में ही बड़ी हुई है ।

अशोक : किन्तु आवश्यकता से अधिक बढ़ने पर उसे काटने-छाँटने की आवश्यकता होगी, देवि ! मैं अपने शिविर में शत्रु-पक्ष के किसी व्यक्ति को अब रहने की आज्ञा नहीं दे सकता ।

महादेवी : किन्तु वह शत्रु-पक्ष की कहाँ है, आर्यपुत्र ! वह तो उस समय से आपकी सेविका है, जब आप उज्जयिनी में कुमारामात्य थे । उस समय तो कलिंग से किसी प्रकार का भी शत्रु-भाव नहीं था । नृत्य सीखते-सीखते वह आपके अंतःपुर की अंगरक्षिका बनी, उस पर आपका भी कितना अधिक विश्वास था ! उसके एक निरीह कार्य से उसे दण्ड का भागी न बनाइये, आर्यपुत्र ! उस पर कृपा कीजिए ।

अशोक : किन्तु कृपा की दृष्टि राजनीति की दृष्टि नहीं होती, देवि ! आज युद्ध से लौटते समय मैंने चारु के सम्बन्ध में विचार किया था ।

महादेवी : युद्ध से लौटते समय ?

अशोक : हाँ, युद्ध से लौटते समय कलिंग के कुछ व्यक्ति मुझे प्रणाम कर रहे थे । मुझे उनके प्रणाम में चारु का प्रणाम दीख पड़ा । यदि इस समय चारु नृत्य न भी करती तो उसके प्रति मेरा अविश्वास तो होता ही, और किसी न किसी प्रकार से मैं उसे दण्डित करता ।

महादेवी : किन्तु वह बेचारी......!

अशोक : राजनीति देवी नहीं है, जो दया से तरल हो जाय । किन्तु आज तुम्हारे कहने से मैंने राजनीति को स्त्री का हृदय बना दिया ।

महादेवी : आर्यपुत्र की कृपा । विश्राम कीजिए ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक : देवि, मुझे विश्राम ? पितामह चन्द्रगुप्त ने चौबीस वर्ष के शासन में कितना विश्राम किया ? तक्षशिला से मगध तक पृथ्वी का प्रत्येक कण उनकी आहट सुनकर काँपता था। बहुत से छोटे-छोटे राज्यों को एक संघ में गूँथकर उन्होंने अपनी राजश्री को विजयमाला पहनाई। सेल्युकस निकेटर से उन्होंने गांधार और सीमाप्रान्त लेकर जम्बूद्वीप के मुकुट में कुछ रत्न और जड़ दिये थे। मैं उन्हीं की सन्तान हूँ, देवि ! विश्राम के लम्बे क्षणों में राज्य-सीमा संकुचित हो जाती है।

महादेवी : ठीक है, आर्यपुत्र ! पर कलिंग युद्ध ने आपको बहुत उत्तेजित कर दिया है।

अशोक : कलिंग नरेश अपने को सम्राट् मानता है। वह भी कुमारामात्य सुगाम की भाँति पाटलिपुत्र का आधिपत्य नहीं मानता। सुमात्रा और जावा में उसने अपने उपनिवेश स्थापित कर रखे हैं। जलयानों में विहार करता है और समझता है कि वह जम्बूद्वीप का सम्राट् है। देवि, वह मेरे शासन के मार्ग को एक स्तूप बन-कर रोकना चाहता है। मैं आचार्य उपगुप्त के उपदेशों की भाँति उसे भी ठोकर मार देना चाहता हूँ।

महादेवी : आर्यपुत्र ! आचार्य उपगुप्त में और कलिंग में समानता नहीं हो सकती।

अशोक : क्यों नहीं ? आचार्य उपगुप्त बौद्ध धर्म के सबसे बड़े आचार्य हैं, कलिंग विद्रोहियों का सबसे बड़ा नेता है। मैं बौद्ध धर्म और कलिंग दोनों का नाश करूँगा। आचार्य उपगुप्त ने कुमार सुगाम को संघाराम में शरण दी थी। मैं ऐसे धर्म का नाश करूँगा, जो विद्रोह को प्रश्रय दे।

महादेवी : क्षमा, दया, करुणा, आर्यपुत्र ! आचार्य उपगुप्त कल यहाँ आये थे। उन्होंने कलिंग के भीषण रक्तपात को देखकर कहा था कि बुद्धि का अक्षय कोष मनुष्य, थोड़ी-सी भूमि के लिए, मनुष्यत्व को मिट्टी में मिला देना चाहता है। कलिंग के सम्बन्ध में कहा था कि अहंकार का फल यही हुआ है और होगा।

अशोक : यह व्यंग्य मुझ पर किया गया है, देवि !

महादेवी : आर्यपुत्र ! उनके कथन में सत्यता है। क्या अहंकार का नाश नहीं होना चाहिए ?

अशोक : अहंकार और राज्य-धर्म में अन्तर है। राज्य-धर्म पाटलिपुत्र का अधिकार है और अहंकार कलिंग की वृत्ति है। उसे अपनी सेना का अहंकार है। उसके पास साठ सहस्र पदातिक, सात सौ हाथी और एक सहस्र अश्वारोही हैं। समझता है कि वह इन्द्र का वंशज है। मैं अपनी सेना के हाथों उसके अहंकार के पौधों को उखाड़ फेंकूँगा, देवि !

महादेवी : कितनों का रक्त बहेगा, महाराज ?

अशोक : उसमें जम्बूद्वीप को नहलाकर पवित्र करना चाहता हूँ, देवि !

[नेपथ्य में भयानक तुमुल। किसी स्त्री का क्रन्दन-स्वर, 'अशोक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का नाश हो ! अशोक का सर्वनाश हो !' प्रहरी का स्वर, 'पुष्य ! मार डालो इसे भी']

अशोक : यह कैसा कोलाहल ! अशोक का तिरस्कार करने वाला कृपाण की धार में डूब जाता है।

महादेवी : (**कान बन्द कर क्रन्दन स्वर में**) नहीं, आर्यपुत्र ! (**अशोक के वक्षस्थल में छिप जाती हैं**) नहीं !

अशोक : (**जोर से आवाज देते हैं, फिर महादेवी की पीठ पर हाथ फेरकर**) शान्त हो ! शान्त हो ! मैं अभी देखता हूँ। (**अशोक महादेवी को सँभालकर आसन पर बिठलाता है; शिविर की खिड़की से देखता हुआ**) पुष्य ! इस स्त्री को मेरे शिविर में भेजो।

[महादेवी अपने हाथों से नेत्र बंद किये हुए हैं। अशोक महादेवी के हाथों को आँखों से हटा अपने हाथों में लेते हैं।]

अशोक : देवि ! मैं अभी देखता हूँ, कौन है जो अपने चीत्कार की चिनगारी से मगध के सम्मान में आग लगाना चाहता है।

महादेवी : आर्यपुत्र ! मैं आपका अमंगल नहीं सुन सकती। (**आकाश की ओर देखते हुए**) आर्यपुत्र का मंगल हो ! आर्यपुत्र का मंगल हो ! आर्यपुत्र का मंगल हो !

अशोक : कोई स्त्री है, गोद में एक बच्चे को लिये हुए है।

महादेवी : मैं पूछूँगी, वह कौन है ; क्यों ऐसी अशुभ बात मुँह से निकालती है ?

अशोक : अवश्य, तुम्हीं पूछो। मैं वस्त्र बदलने जाता हूँ। [**प्रस्थान**]

[प्रहरी एक स्त्री को लेकर आता है। महादवी के संकेत से प्रहरी हट जाता है। वह स्त्री लगभग पच्चीस वर्ष की होगी। उसके बाल और वस्त्र अस्त-व्यस्त हैं। वह अपने बच्चे को गोद में लिए है। उसकी मुद्रा पागल स्त्री की तरह है।]

महादेवी : आओ, स्त्री ! तुम कौन हो ?

स्त्री : (**विस्फरित नेत्रों से एक बार ही फूटकर**) ओह, रानी ! अशोक का सर्वनाश हो ! अशोक का सर्वनाश हो ! मुझे भी मार डालो ! मुझे मार डालो ! तुम्हारी तलवार दीनों और अनाथों का रक्त पीना चाहती है। उसकी प्यास तभी बुझ सकती है, जब वह कलिंग के छोटे-छोटे शिशुओं का रक्त पीकर सदैव के लिए सन्तुष्ट हो जाय। अपने शरीर का भी सारा रक्त मैं उसे चढ़ा दूँगी, जिससे शिशुओं के जीवन की रक्षा हो। यह अशोक......

महादेवी : ठहरो, ठहरो ! तुम आर्यपुत्र के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकती। चुप रहो ! तुम क्या चाहती हो ?

स्त्री : मैं क्या चाहती हूँ ? मेरे बच्चे के खण्ड-खण्ड कर डालो। यह अभी मरा नहीं है। (**पुत्र की ओर देखकर**) लाल ! अभी तुम मरे नहीं हो। ये लोग तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे, तब तुम मरोगे। तब तक कुछ बोलो। बोलो, मेरे लाल !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(अपने बच्चे को हाथों ही में झकझोरती है) अगर मैं जानती कि इस अवस्था में तुम्हें सैनिकों की तलवारों से कटना पड़ेगा तो मैं कुछ बड़े होते ही तुम्हारे हाथों में तलवार दे देती और कहती, 'लाल ! तुम्हें मगध के क्रूर सम्राट् से युद्ध करना पड़ेगा। तुम अभी से युद्ध की शिक्षा लो।' तुम भी तो मेरे छोटे राजकुमार हो ! मेरे राजकुमार ! मेरी गोद के राजकुमार ! किन्तु मैं तुम्हारे हाथों में तलवार नहीं दे सकी, नहीं दे सकी, मेरे लाल ! और आज सैनिकों ने तुम्हें बिना युद्ध के मेरी गोद में सदैव के लिए सुला दिया। कायर ! नीच ! नारकी !

महादेवी : **(जिज्ञासा के स्वरों में)** क्या कह रही हो ?

[अशोक का प्रवेश। वे दूर चुपचाप इस तरह खड़े हो जाते हैं कि महादेवी के पीछे हैं और महादेवी की दृष्टि उन पर नहीं पड़ती।]

स्त्री : **(अपने बच्चे को देखकर)** तेरा रक्त इतना मीठा है, मेरे बच्चे ! राजा तक उसे पीना चाहता है। और अधिक रक्त हो तो अपने नन्हें हृदय को सामने रख दे। ये सब मिलकर पी लें।

महादेवी : क्या तुम्हारा बच्चा मर गया है ? कैसे ?

स्त्री : अशोक राक्षस ले गया मेरे बच्चे को। राज्य नहीं चाहता था मेरा लाल ! किन्तु मेरे लाल को अशोक ले गया ! इसे......

अशोक : **(आगे बढ़कर)** यह क्या कह रही हो तुम ? ठीक तरह से बतलाओ। तुम्हारा न्याय होगा। यह बच्चा कैसे मरा ?

स्त्री : मुझे न्याय नहीं चाहिये, नहीं चाहिये। पाटलिपुत्र से न्याय उठ गया। इसके पिता को सैनिकों ने घेरकर मारा और जब मैं इसे बचाने लगी तो इसके फूल से हृदय में भाला घुसेड़ दिया उन राक्षसों ने। मेरे बच्चे को राज्य नहीं चाहिये था। मेरा छोटा राजा तुम्हारा राज्य नहीं चाहता था। तब भी इसे......तब भी इसे......

अशोक : ठहरो, मैं उन दुष्टों को दण्ड दूंगा। वीरों के लिए उनका भाला है, शिशुओं के लिए नहीं।

महादेवी : आर्यपुत्र ! न्याय होना चाहिये बेचारी स्त्री का।

अशोक : होगा और अवश्य होगा।

स्त्री : मैं अब न्याय लेकर क्या करूँगी और न्याय भी क्या मिलेगा। जिस राजा का रक्त शिशुओं के रक्त से पुष्ट होता है, उससे न्याय मिलेगा ? कैसा न्याय ! इसके पिता नहीं रहे, यह भी नहीं रहा। अब अपने किस सुख के लिए मैं न्याय के बन्दनवार सजाऊँगी ? जो बन्दनवार मेरे लाल के रक्त से रँगा हुआ है, उससे कौन-सा मंगल सजाऊँगी ? मुझे नहीं चाहिए, सम्राट् ! मुझे कुछ नहीं चाहिए। तुमने क्या सोचकर मेरे लाल को चन्दन की चिता पर चढ़ा दिया। वह तो धूल में खेलता हुआ ही मुझे अच्छा लगता था। मेरे लाल ! जब तुम धूल में खेलकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आते थे और अपने हाथों से मेरा आँचल मैला कर देते थे तो मैं उन मैले वस्त्रों में भी अपने को राजमाता समझती थी। तुम अब नहीं खेलोगे...तुम्हें तो अब चन्दन की चिता पर चढ़ना है। जाओ, मेरे लाल ! अब आग की लपटों से खेलना। देखना कि उन लपटों में अधिक ज्वाला है या मेरे हृदय में ! मेरे हृदय में, मेरे लाल ! हृदय में !

अशोक : (**ध्यान से शिशु की ओर देखते हुए**) यह रक्त ! इतना अधिक रक्त !

स्त्री : लाओ, मैं तुम्हें राजतिलक कर दूँ। अपने बच्चे के रक्त का तिलक लगाकर... (**चिल्लाकर**) सम्राट् अशोक......! चक्रवर्ती अशोक ! [**भयानक अट्टहास**]

अशोक : मैं अभी न्याय करूँगा। (**पुकारते हुए**) पुष्य......!

[**प्रहरी का प्रवेश**]

अशोक : इस स्त्री को विश्राम-शिविर में ले जाकर अपराधियों की पहचान कराओ, मैं अभी आता हूँ। जाओ ! (**जाने को उद्यत होता है**) और उन अपराधियों को बन्दी कर मेरे सामने उपस्थित करना। समझे ! मैं इसका न्याय करूँगा।

स्त्री : यदि न्याय कर सकते हो, तो यह न्याय करो कि मेरा शिशु जी उठे। जिला सकते हो उसे ? अपने शरीर का रक्त देकर इसके रक्त की कमी पूरी कर सकते हो, मगध के सम्राट् ? पाटलिपुत्र के न्यायकर्त्ता ! मेरे पुत्र के यदि प्राण ले सकते हो तो क्या लौटा नहीं सकते ? यदि नहीं, तो मेरे भी प्राण ले लो। तुम्हारा यही न्याय होगा। अत्याचारी ! क्रूर ! अशोक ! शिशुओं और स्त्रियों के रक्त से अपने न्याय को बड़ा समझते हो ? मेरे लाल को मुझसे छीनकर...

अशोक : सावधान नारी ! युद्ध में मरे हुए व्यक्तियों पर आँसू नहीं चढ़ाये जाते। पुष्य ! ले जाओ इसे।

प्रहरी : जो आज्ञा। (**स्त्री से**) चलो। [**पुष्य स्त्री को बलपूर्वक ले जाता है।**]

स्त्री : (**जाते हुए**) अपने पुत्र के रक्त को देखकर यदि तुम आँसू रोक सके तब समझूँगी कि तुम मनुष्य नहीं, राक्षस हो, राक्षस, जिसने मेरे लाल का रक्त पी लिया ! मेरा बच्चा ! मेरा लाल !

[**धीरे-धीरे शब्द क्षीण हो जाता है। कुछ देर तक स्तब्धता रहती है। अशोक विचारमग्न हैं।**]

महादेवी : आर्यपुत्र ! मूर्च्छा-सी आ रही है।

अशोक : देवि ! विश्राम करो। मैं अभी न्याय करूँगा।

महादेवी : आर्यपुत्र ! यह रक्तपात अब बन्द हो।

अशोक : एक छोटी-सी घटना राज्य की बढ़ती हुई बेल को काट दे ? यह घटना तुम्हारा चित्र नहीं है, देवि ! जिसमें तूलिका के एक हलके झटके से राज्य की बेल कट जाय। देवि ! युद्ध में तो यह सब होता ही है।

महादेवी : मैं क्या करूँ, आर्यपुत्र !

अशोक : विश्राम करो। मैं विश्राम शिविरों में अभी जाता हूँ। सेना के विश्राम की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्या व्यवस्था है, घायलों की क्या सुश्रुषा हो रही है, यह मुझे देखना है। (पुकारकर) राजुक !

[राजुक का प्रवेश]

अशोक : महामात्रों से कहो कि अश्व तैयार हों। उन्हें मेरे साथ नैश-निरीक्षण के लिए चलना होगा।

राजुक : जो आज्ञा, सम्राट् ! [प्रस्थान]

अशोक : देवि ! पिता-श्री सम्राट् बिन्दुसार ने राज्य की सीमा नहीं बढ़ाई। वे कदाचित् यह उत्तरदायित्व मेरे लिए छोड़ गये हैं। सम्राट् चन्द्रगुप्त के परिश्रम की परम्परा कुछ वर्षों तक तो चले।

महादेवी : कब तक, आर्यपुत्र ?

अशोक : जब तक कि पाटलिपुत्र का प्रवासी नागरिक, कलिंग के जनपद में निवासी होकर न रहने लगे।

[राजुक का प्रवेश]

राजुक : सम्राट् ! महामात्र और अश्व तैयार हैं।

अशोक : अच्छा, जाओ ! मैं अभी आता हूँ। (**महादेवी से**) देवि ! आज उस स्त्री का न्याय भी करूँगा और निरीक्षण भी। सैनिकों के पुरस्कार और दण्ड की व्यवस्था एक साथ ही होगी। देवि ! मंगलकामना करो कि मगध चिर-जीवी हो !

महादेवी : आर्यपुत्र ! मेरे दुःख में भी मगध चिरजीवी हो।

[अशोक का प्रस्थान]

महादेवी : वायु के प्रवाह की भाँति सदैव अस्थिर ! अभी आये और अभी गये ! मैं क्या करूँ ? (**चित्र की ओर दृष्टि डालती हैं**) यह चित्र ! (**क्रोध से फाड़-कर फेंक देती हैं। पुकारकर**) स्वयंप्रभा !

स्वयंप्रभा : महादेवी, यह क्या ? यह चित्र किसने फाड़ दिया ? ओह...इतना सुन्दर चित्र !

महादेवी : मैंने...मैंने इसे नष्ट कर दिया।

स्वयंप्रभा : मैं इसे जोड़ सकती हूँ।

महादेवी : नहीं। इसे उठाकर बाहर फेंक दे।

[स्वयंप्रभा फटे हुए चित्र के टुकड़े एकत्र करती है।]

महादेवी : स्वयंप्रभा ! आर्यपुत्र गये ?

स्वयंप्रभा : हाँ, महादेवी ! पाँच महामात्रों के साथ अभी-अभी गये हैं।

महादेवी : चले गये ! तू क्या कर रही थी ?

स्वयंप्रभा : महादेवी ! आपके सुन्दर गीतों की स्वर-लिपि लिख रही थी।

महादेवी : उनको नष्ट कर दे। आर्यपुत्र यह सब कुछ नहीं चाहते।

स्वयंप्रभा : महादेवी ! बड़े सुन्दर गीत हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महादेवी : इस विषय में बात मत कर, जा। [**स्वयंप्रभा जाना चाहती है।**]
महादेवी : चारु कहाँ है ?
स्वयंप्रभा : महादेवी ! अभी तो यहीं थी। कदाचित् शिविर-कक्ष में हो।
महादेवी : रो रही थी ?
स्वयंप्रभा : महादेवी ! उदास तो बहुत थी। ज्ञात होता है कि उसके आँसू सूख गये हैं ; किन्तु हृदय रो रहा है।
महादेवी : तूने उससे बातें कीं ?
स्वयंप्रभा : महादेवी ! आपके गीतों की स्वर-लिपि पूछी। वह कुछ भी नहीं कह सकी।
महादेवी : बेचारी चारु ! आज चारु पर महाराज बहुत अप्रसन्न हुए।
स्वयंप्रभा : महादेवी ! उससे कभी कोई अपराध तो हुआ नहीं।
महादेवी : कहते थे कि वह कलिंग की है, शत्रु-पक्ष की।
स्वयंप्रभा : महादेवी ! आज तक महाराज की सेवा उसने जितनी श्रद्धा और भक्ति से की है उतनी पाटलिपुत्र की किसी सेविका ने नहीं की। वह तो सम्राट् के अंतःपुर की अंगरक्षिका है।
महादेवी : हाँ, मैं भी यही समझती हूँ।
स्वयंप्रभा : और मैं तो उसे अच्छी तरह जानती हूँ, महादेवी ! वह उज्जयिनी से मेरी अंतरंग-सखी है। सम्राट् की इच्छा ही उसके कार्य का नाम है। वह कैसे विश्वासघातिनी हो सकती है ?
महादेवी : कहते थे, राजनीति की दृष्टि दया की दृष्टि नहीं है।
स्वयंप्रभा : महादेवी ! राजनीति भी कोई राजनीति है, यदि उससे सच्ची सेवा और सच्चे प्रेम में सन्देह उत्पन्न हो जाय ?
महादेवी : यही सन्देह तो कदाचित् उनके जीवन की सफलता है। उन्होंने शत्रु की छोटी से छोटी अभिसन्धि को अपनी शक्ति से छिन्न-भिन्न कर दिया है। आज मेरी प्रार्थना पर ही उन्होंने चारु को क्षमा किया।
स्वयंप्रभा : महादेवी ! आपकी करुणा ने सम्राट् की शक्ति के साथ रहकर राज्य को संतुलित किया है।
महादेवी : स्वयंप्रभा आज मेरी करुणा सीमा तक पहुँच गई।
स्वयंप्रभा : कैसे, महादेवी ?
महादेवी : एक स्त्री के छोटे से बच्चे को सैनिकों ने मार डाला।
स्वयंप्रभा : हाँ, महादेवी ! मैंने भी सुना।
महादेवी : आर्यपुत्र न्याय करने गये हैं। देखें, क्या न्याय करते हैं। मैं तो आज बहुत अशान्त हूँ।
स्वयंप्रभा : महादेवी, विश्राम कीजिये......

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[नेपथ्य में......बुद्धं शरणं गच्छामि,
धम्मं शरणं गच्छामि,
संघं शरणं गच्छामि।]

स्वयंप्रभा : आचार्य उपगुप्त का कंठ-स्वर है, महादेवी !

महादेवी : (स्वस्थ होकर) जाकर उन्हें यहाँ ले आ। मैं बहुत विह्वल हो रही हूँ।

स्वयंप्रभा : जो आज्ञा, महादेवी ! [स्वयंप्रभा जाती है।]

महादेवी : (अपने आप मंद कंठ स्वर से) महात्मा उपगुप्त......

[सम्हलकर उठती हैं और स्वयं आसन ठीक करती हैं। प्रतीक्षा-दृष्टि से द्वार की ओर देखती हैं। स्वयंप्रभा के साथ महास्थविर उपगुप्त का प्रवेश। महास्थविर उपगुप्त बौद्धभिक्ष के वेश में हैं। पीत वस्त्र धारण किए हुए हाथ में भिक्षा-पात्र]

महादेवी : प्रणाम करती हूँ, भंते !

उपगुप्त : (अभय हस्त उठाकर) सुखी रहो, देवि ! क्या सम्राट् नहीं हैं ?

महादेवी : भंते, वीर पुरुष घर पर नहीं रहते। रणक्षेत्र ही उनका घर है।

उपगुप्त : देवि ! रणक्षेत्र हृदय को शान्ति नहीं दे सकता। तथागत ने कहा है— अहंकार और एषणा का नाश करो। यह युद्ध अधिकार-लिप्सा है, इसका अंत नहीं है, देवि !

महादेवी : भंते ! आपका उपदेश आर्यपुत्र के कानों तक पहुँचा ?

उपगुप्त : देवि ! सम्राट् नीति-कुशल हैं। मेरी बातें सुनते हैं। मुस्कराकर कहते हैं—'आप थक गये होंगे, भंते ! विश्राम-गृह आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।'

महादेवी : भंते ! यह युद्ध बंद होना चाहिये। मैं इस अत्याचार को सहन नहीं कर सकती।

उपगुप्त : देवि ! इस अत्याचार को कौन सहन कर सकता है ? एक लक्ष वीर तो रणक्षेत्र में हत हुए। तीन लक्ष आहत हुए हैं जो एक लक्ष के पथ का अनुसरण करना चाहते हैं। देवि ! रक्त की नदियाँ बह निकली हैं जो महानदी की समानता करने को अग्रसर हैं। कलिंग राज्य के घर फूल की पँखुड़ियों की तरह गिर रहे हैं। देवि ! तुम कुछ नहीं कर सकतीं ?

महादेवी : भंते ! आज मैं सम्राज्ञी न होकर एक साधारण स्त्री होती तो किसी प्रकार आत्म-बलिदान कर सम्राट् के मन की दिशा बदल देती। पत्नी होकर पति के मार्ग की बाधिका बनने का साहस मुझमें नहीं होता। राजवंश की मर्यादा कैसे नष्ट करूँ ? भंते ! मैं सम्राज्ञी होकर साधारण स्त्री भी नहीं रही।

उपगुप्त : तो कहता हूँ, देवि ! शांत हो। जब तक मनुष्य आर्य सत्य से परिचित नहीं होता, उसे दुःख उठाना ही पड़ता है। तथागत ने कहा, 'भिक्खुओं ! मैं सब बंधनों से, लौकिक और अलौकिक से मुक्त हो गया। अनेक के लाभ के लिए विचरण करो, अनेक के हित के लिए विचरण करो, संसार के प्रति करुणा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए विचरण करो, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के लिए विचरण करो।' देवि ! मुझे विश्वास है, सम्राट् अशोक इस धर्म-शिक्षा को मानकर संसार का कल्याण करेंगे।

महादेवी : भंते ! मुझे तो विश्वास नहीं होता।

उपगुप्त : समय की प्रतीक्षा करो। महाराज में परिवर्तन होगा। जब किसी व्यक्ति में शक्ति की क्षमता होती है तो बुरे मार्ग से अच्छे मार्ग पर और अच्छे मार्ग से बुरे मार्ग पर जाने में विलम्ब नहीं लगता। महाराज में शक्ति की क्षमता है और वे बुरे मार्ग पर हैं। किसी भयानक भावना से उनके हृदय का दिशा-परिवर्तन संभव है। वे विजय के आकांक्षी हैं, विजय प्राप्त करें; किन्तु हिंसा से नहीं, अहिंसा से। वे शासन करना चाहते हैं, करें; किन्तु क्रोध से नहीं, करुणा से। विनाश करें; किन्तु जाति का नहीं, अपनी तृष्णा का। वे ज्ञान-प्राप्ति में प्रयत्नशील हों, राज्य-प्राप्ति में नहीं। ज्ञान अमर है, राज्य क्षण-भंगुर है।

महादेवी : महाभिक्षु ! आपका उपदेश सुनकर हृदय को शांति मिलती है।

उपगुप्त : शांति लाभ करो, देवि ! यही पथ निर्वाण का है। अच्छा, देवि ! अब मैं जाऊँगा। **[उठ खड़े होते हैं।]**

महादेवी : भंते ! आशीर्वाद दीजिये कि राज्य में शांति हो।

उपगुप्त : ऐसा ही हो !

महादेवी : भंते ! भिक्षा स्वीकार कीजिए। मैं अपने हाथ से लाऊँगी।

[महादेवी बाहर जाती हैं।]

स्वयंप्रभा : भंते ! आपसे एक प्रार्थना करना चाहती हूँ !

उपगुप्त : कैसी ?

स्वयंप्रभा : भंते ! आप चारु को तो जानते हैं ?

उपगुप्त : हाँ, हाँ। सम्राट् की सेवा में सतत रहने वाली !

स्वयंप्रभा : आज वह बहुत दुःखी है।

उपगुप्त : क्यों ?

स्वयंप्रभा : सम्राट् का उस पर से विश्वास उठ गया है।

उपगुप्त : इसलिए कि वह कलिंग-बालिका है ?

स्वयंप्रभा : हाँ !

उपगुप्त : तो उसके लिए उचित तो यही है कि वह महाराज की सेवा और भी संलग्नता के साथ करे। संदेह को सेवा से नष्ट कर दे। वह इस समय कहाँ होगी ?

स्वयंप्रभा : सम्राट् के बाहरी शिविर में।

उपगुप्त : अच्छा, मैं उससे मिलता जाऊँगा। उसे संतोष और शांति देकर फिर मैं संघाराम जाऊँगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वयंप्रभा : भंते ! बड़ी कृपा होगी आपकी।

उपगुप्त : यह तो तथागत की आज्ञा है।

[महादेवी भिक्षा लेकर आती हैं।]

महादेवी : मुझे अपने हाथों से आपकी सेवा में मधुकरी लाने में विशेष हर्ष होता है, भंते !

उपगुप्त : तुम सुखी रहो, देवि !

[महादेवी उपगुप्त को मधुकरी देती हैं।]

उपगुप्त : अच्छा, अब जाऊँगा।

महादेवी : भंते, प्रणाम !

उपगुप्त : सुखी रहो।

महादेवी : स्वयं ! महाभिक्षु को शिविर-द्वार तक पहुँचा दो।

स्वयंप्रभा : जो आज्ञा। **[स्वयंप्रभा का उपगुप्त के साथ प्रस्थान]**

महादेवी : **(सोचते हुए)** महादेवी ! तेरी दशा एक कीड़े की तरह है, जो ऐसी लकड़ी में रहता है जिसके दोनों ओर आग लग रही है। तू कहाँ रहेगी ?

[स्वयंप्रभा का प्रवेश]

स्वयंप्रभा : महादेवी ! भंते जाते समय आपके लिए स्वस्ति-वचन कह गये हैं।

महादेवी : तथागत को प्रणाम ! स्वयंप्रभा ! या तो मैं संघाराम चली जाऊँगी या वन-वासिनी हो जाऊँगी।

स्वयंप्रभा : महादेवी ! आप शान्त हों।

महादेवी : नहीं, स्वयंप्रभा ! अब मुझे इस राज्यश्री से घृणा हो रही है। उसके सजाने के लिए कितने मनुष्यों की बलि देनी पड़ रही है। रात-दिन युद्ध की बातें सुनते-सुनते जैसे श्रवण-शक्ति विद्रोह कर रही है। अब मैं और कुछ सुनना नहीं चाहती। देख, इतनी अच्छी वनश्री है। यहाँ के पेड़ और पर्वत कैसे सुख में दीख पड़ रहे हैं ! ये तो किसी से लड़ने नहीं जाते, किसी का रक्त नहीं बहाते; किन्तु इन पर हरियाली छाई रहती है, फूल खिलते रहते हैं, निर्झर इनके चरणों को धोते रहते हैं। इन्हें किस बात की कमी है। यह मनुष्य ही न जाने किस सुख के लिए दूसरे का सुख नष्ट करने में जुटा रहता है, रक्त की नदियाँ बहाता है।

स्वयंप्रभा : महादेवी ! जीवन का सत्य यही है।

महादेवी : और स्वयंप्रभा ! अगर मैं स्त्री न होकर इसी पास के पेड़ की एक कली होती, तो आनन्द के साथ वसंत के किसी प्रातःकाल में खिलकर सारे संसार को एक बार हँसती हुई आँखों से देख लेती और संध्या होने पर सूर्य के पीछे-पीछे मैं चली जाती। स्त्री होकर और सम्राज्ञी होकर मैं सुखी नहीं हूँ, स्वयंप्रभा ! जीवन के सत्य से बहुत दूर जो जा पड़ी हूँ।

स्वयंप्रभा : महादेवी ! आपका हृदय शान्त हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महादेवी : स्वयंप्रभा ! कैसे शान्त हो ? शान्ति का उपाय करने के बदले मैं अशान्ति की लहरों में बही जा रही हूँ। पास में कोई कूल-किनारा नहीं है। ज्ञात होता है, युद्ध की समाप्ति होते-होते मेरा जीवन भी समाप्त हो जायगा।

स्वयंप्रभा : महादेवी ! दुःखी न हों। ऐसी बातें न करें।

महादेवी : मैं आर्यपुत्र के सामने बहुत साहस कर कुछ बातें कहना चाहती हूँ। या तो मैं कह नहीं सकती या उनकी दृष्टि मुझे कहने नहीं देती। साहस कर दो-एक शब्दों में यदि कुछ कहती भी हूँ, तो आर्यपुत्र की वीरता की लहर में मेरे शब्द बुद्बुद् की भाँति बह जाते हैं।

स्वयंप्रभा : महादेवी ! आप जो कुछ भी कह सकती हैं, सम्राट् के सामने उतना कहने की शक्ति संसार के किसी व्यक्ति में नहीं है।

महादेवी : किन्तु उसका परिणाम कुछ नहीं, स्वयंप्रभा ! चारु को यहाँ आने की सूचना देगी ?

[नेपथ्य में 'सम्राट् अशोक की जय-जय !']

महादेवी : स्वयंप्रभा ! रहने दे। किसी को मत बुला। आर्यपुत्र आ रहे हैं।

[चिंतित मुद्रा में अशोक का प्रवेश। महादेवी प्रणाम करती हैं। स्वयंप्रभा अधिक झुककर प्रणाम करती है।]

अशोक : देवि ! न्याय नहीं हो सका।

महादेवी : आर्यपुत्र ! उस स्त्री का न्याय ?

अशोक : हाँ, देवि ! वह स्त्री उसी शिविर में आत्म-हत्या करके मर गई।

महादेवी : मर गई ? (**करुण स्वर में**) आह, बेचारी स्त्री !

अशोक : मैंने पुष्य को आज्ञा दी थी कि वह उस स्त्री को विश्राम-शिविर में ले जाकर खड़ी कर दे। शिविर का प्रत्येक सैनिक उसके सामने आये और वह स्त्री उस सैनिक को पहचाने, जिसने उसके शिशु की छाती में भाला घुसेड़ दिया था। मुझे ज्ञात हुआ कि १२३ सैनिक घरों में घुसे थे। उन्हीं १२३ सैनिकों के भाग्य का निर्णय था; किन्तु उस स्त्री ने १७ सैनिकों के आने पर एक बार अपने बच्चे को चूमा, हृदय से चिपटा लिया और अठारहवें सैनिक की कमर से छुरी निकालकर स्वयं अपने हृदय में भोंक ली। पुष्य उसे रोक नहीं सका और वह रक्त की नदी में तड़पने लगी। देवि ! उसने मेरे न्याय पर विश्वास नहीं किया। उसने मेरी राज्यसत्ता से बढ़कर अपने बच्चे को समझा !

महादेवी : आर्यपुत्र ! माता का हृदय संसार के किसी वैभव से नहीं तुल सकता। वह सबसे बड़ा है।

अशोक : किन्तु माता के हृदय में विशालता भी तो होती है।

महादेवी : पहले वह अपने बच्चे के लिए होती है, आर्यपुत्र ! आप अनुमान कर लीजिए कि इस युद्ध में जितने वीरों की मृत्यु हुई है, उनकी माताओं के हृदय की क्या दशा होगी !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक : मैं देख रहा हूँ, देवि ! आज एक शिशु की जननी ने मेरे सारे साम्राज्य को तुच्छ सिद्ध कर दिया ।

महादेवी : आर्यपुत्र जम्बूद्वीप के सबसे बड़े वीर हैं ।

अशोक : देवि ! आज विश्राम-शिविर में जाने पर ज्ञात हुआ कि एक लक्ष से अधिक सैनिक अभी तक युद्ध में मारे जा चुके हैं, जिनमें बहुत अधिक संख्या कलिंग के सैनिकों की है । तीन लक्ष सैनिक आहत हुए हैं । उनकी माताओं के हृदय की क्या अवस्था होगी !

महादेवी : (**आश्चर्य और दुःख के स्वर में**) आर्यपुत्र ! चार लक्ष वीर इस संग्राम की बलि हुए हैं ।

अशोक : जब कलिंग-नरेश को ज्ञात हुआ कि चार लाख वीर संग्राम की बलि हुए हैं, तब उसने यह संधि-पत्र भेजा है । (**संधि-पत्र खोलते हुए**) आज पाटलिपुत्र की विजय हुई । किन्तु देवि ! उस स्त्री की आत्महत्या ने मेरा ध्यान संग्राम में मरे हुए वीरों की माताओं की ओर आकर्षित कर दिया है और मेरी विजय में जैसे उल्लास के बदले अभिशाप तड़प रहा है ।

[बाहर कोलाहल होता है । "चारु", "चारु", "क्या हुआ ?", "अभी प्राण शेष हैं ?", "कहाँ चोट लगी है ?", "यह कैसे हुआ ?", "शान्त ! शान्त !" की ध्वनि आती है ।]

अशोक : (**चौंककर**) यह कैसा शब्द ! (**पुकारकर**) राजुक !

[राजुक का प्रवेश]

राजुक : सम्राट् ! चारुमित्रा का मूर्च्छित शरीर बाहर है ।

अशोक : (**पुनः चौंककर**) चारुमित्रा का मूर्च्छित शरीर ?

महादेवी : आह ! चारु ! [**सिर झुकाकर बैठ जाती हैं ।**]

राजुक : हाँ, उन्हें तलवार का गहरा घाव लगा है । आचार्य उपगुप्त उनके साथ हैं ।

अशोक : शीघ्र भीतर लाओ ।

[चारुमित्रा का शरीर लेकर दो प्रहरी आते हैं । साथ में उपगुप्त भी हैं ।]

अशोक : महाभिक्षु को अशोक का प्रणाम ! भंते ! यह क्या ? (**प्रहरियों से**) यह शरीर नीचे रख दो । ओह, चारुमित्रा ! [**प्रहरी शरीर रख देते हैं ।**]

महादेवी : ओह ! मेरी चारु ! मेरी चारु !!

उपगुप्त : देवि, शान्त हों । सम्राट् ! यह चारुमित्रा की स्वामिभक्ति का प्रमाण है ।

अशोक : स्वामिभक्ति ! कैसी स्वामिभक्ति ? अभी जीवित है चारु ?

उपगुप्त : महाराज ! अभी जीवित तो है, पर वह अचेतावस्था में हैं ।

महादेवी : भंते ! क्या हुआ ? क्या हुआ ?

उपगुप्त : देवि ! शान्त हो । चारुमित्रा ने आज संसार के सामने यह घोषित कर दिया कि एक नारी में कितनी शक्ति है, कितनी क्षमता है !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक : किस प्रकार, भंते ?

उपगुप्त : मैंने सुना था, आपने चारुमित्रा पर अविश्वास किया था ?

अशोक : हाँ, वह कलिंग की अधिवासिनी थी। अविश्वास होना स्वाभाविक था।

उपगुप्त : किन्तु, सम्राट् ! उसने बाल्यावस्था से आपकी सेवा की थी इसलिए उसमें सेवा के संस्कार प्रकट थे और देश-भक्ति के संस्कार प्रच्छन्न। और इन्हीं प्रकट संस्कारों ने प्रच्छन्न भावनाओं को धूमिल किया है और आज उसी सेवा से उसने कलिंग को अमर बना दिया।

अशोक : मैं उत्सुक हूँ, भंते ! चारु के सम्बन्ध में सुनने के लिए।

उपगुप्त : सम्राट् ! जम्बूद्वीप जानता है कि आपने रक्त की नदी बहाकर कलिंग-युद्ध में कितने वीरों को रणक्षेत्र में सुला दिया है। आपने रक्त की नदी से कलिंग की भूमि को लाल कर दिया है। और अब तो आपकी विजय निश्चित है।

अशोक : मैंने विजय प्राप्त कर ली, महाभिक्षु ! यह संधि-पत्र है।

उपगुप्त : सम्राट् ! इस संधि-पत्र से अधिक मूल्यवान चारु का बलिदान है।

अशोक : (**आश्चर्य से**) बलिदान !

महादेवी : मेरी चारु ने अपना बलिदान कर दिया ?

उपगुप्त : हाँ, देवि ! सम्राट् के अविश्वास से उसे हार्दिक दुःख हुआ था। आज वह सम्राट् के बाहरी शिविर में सम्राट् से आज्ञा लेकर चली जाती और महानदी की लहरों में विश्राम करती; किन्तु उसके पूर्व ही उसे विश्राम करने का अवसर मिल गया।

अशोक : किस प्रकार ? शीघ्र बतलाइये।

उपगुप्त : सम्राट् ! चारुमित्रा आपके बाहरी शिविर में आपके लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी; किन्तु सम्भवतः आपके लौटने में देर हुई।

अशोक : हाँ ! आज मैं स्कन्धावार के निरीक्षण के लिये चला गया था। अभी तक मैं अपने बाहरी शिविर में शयन के लिये नहीं पहुँचा।

उपगुप्त : सम्राट् ! उस शिविर में आप पर आक्रमण करने के लिए कलिंग के कुछ सैनिक छिपे हुए थे। वे संध्या से ही मगध-सैनिक के वस्त्र में शिविर में घूम रहे थे। चारुमित्रा को उन पर सन्देह हुआ। उसने बातें कर यह जान लिया कि वे कलिंग के सैनिक हैं।

अशोक : (**आश्चर्य से**) फिर ?

उपगुप्त : सम्राट् ! देवी चारुमित्रा ने उन्हें धिक्कारते हुए कहा, 'कायरों ! तुम लोग मेरे देश कलिंग के नाम को कलंकित करने वाले हो ! यदि सम्राट् अशोक को मारना है, तो युद्ध में तलवार लेकर क्यों नहीं जाते ? यहाँ चोरों की तरह घुसकर एक वीर पुरुष से छल करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ?'

अशोक : चारुमित्रा ! तुम धन्य हो ! तुम देवी हो !

उपगुप्त : सम्राट् ! उन सैनिकों ने चारुमित्रा को लालच दिया, कलिंग की विजय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का स्वप्न दिखलाया; किन्तु चारुमित्रा ने कहा, 'मैं अपने स्वामी से विश्वासघात नहीं कर सकती ।'

अशोक : चारु ! तू अमर हो !

उपगुप्त : सम्राट् ! चारु निश्चय ही अमर होगी । उसने उन सैनिकों को हट जाने के लिए ललकारा । जब वे नहीं हटे तो कक्ष में टँगी हुई आपकी तलवार लेकर उसने उन सैनिकों पर आक्रमण कर दिया ।

महादेवी : धन्य, चारु !

उपगुप्त : हाँ, देवि ! दो सैनिक तो घायल होकर भाग गये ; किन्तु एक सैनिक की तलवार चारु के कंधे पर लगी और वह गिर पड़ी । उसी समय मैं पहुँचा । वह कायर वहाँ से भागकर पास की झाड़ी में छिप गया । देवी चारु ने अचेत होने से पहले सारी कथा मुझे टूटे-फूटे शब्दों में सुनाई थी ।

अशोक : धन्य है, चारु ! आज तूने अपने देश कलिंग को अमर कर दिया । भंते ! इसी समय किसी योग्य चिकित्सक को बुलाकर चारु के जीवन की रक्षा करनी होगी । (**पुकारकर**) राजुक !

[**राजुक का प्रवेश**]

अशोक : महामात्रों को सूचना दो कि वे देवी चारुमित्रा की रक्षा के लिए योग्य चिकित्सकों की शीघ्र व्यवस्था करें !

राजुक : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

महादेवी : आर्यपुत्र ! मेरी चारु...मेरी चारु की चिकित्सा शीघ्र ही होगी ।

अशोक : महादेवी ! अधीर न हों । चारु ने जो कार्य किया है, वह नारी-जाति के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जायगा । और सुनो, देवी ! आज से अशोक ने...अत्याचारी अशोक ने युद्ध को सदैव के लिए छोड़ दिया । [**तलवार भूमि पर फेंक देते हैं ।**]

महादेवी : (**प्रसन्नता से**) युद्ध छोड़ दिया ! युद्ध छोड़ दिया ! कितने महान् हैं आप ! धन्य हैं आप ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ । (**घुटने टेककर प्रणाम**) युद्ध छोड़ दिया...छोड़ दिया ! आर्यपुत्र की जय !

सब : सम्राट् अशोक की जय !

अशोक : महाभिक्षु ! आज से मैं हिंसा किसी भी रूप में न करूँगा और देखूंगा कि किसी मनुष्य का रक्त इस पृथ्वी पर न पड़े । प्रत्येक स्थान पर, सिंहासन पर, अन्तःपुर में, विहार में, मैं प्रजा की सेवा करूँगा । आज से मेरा महान् कर्त्तव्य होगा कि मैं सब जीवों की रक्षा का अधिक से अधिक प्रबन्ध करूँ ।

उपगुप्त : देवानाम्प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अशोक का कल्याण हो !

अशोक : मेरे आदेशों को शिलालेखों के रूप में लिखवाकर समस्त जम्बूद्वीप में प्रचार कर दो कि अशोक आज से उनकी रक्षा करने वाला उनका बन्धु है ।

चारुमित्रा । (**मूर्च्छा दूर होने पर**) सम्राट् अशोक की जय !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महादेवी : ओह, चारु ! चारु तू अच्छी है ?

अशोक : चारुमित्रा की जय ! चारु !

चारुमित्रा : सम्राट् ! क्षमा ! आपकी आज्ञा थी कि मैं मगध की ओर से तलवारों के साथ भैरवी-नृत्य सीखूँ। पूरी तरह नहीं सीख सकी, क्षमा हो ! ...क्षमा !

अशोक : चारुमित्रा ! तू पाटलिपुत्र की शोभा है। उसके गौरव की विभूति है।

चारुमित्रा : सम्राट् ! आग के अँगारों पर नाचने का अवसर तो आपने नहीं दिया, अब मैंने अँगारों पर अपनी देह रखने का अवसर आपसे माँग लिया। **(महादेवी से)** क्षमा करें, देवि !

महादेवी : ओह, चारु ! तू अच्छी हो जायगी। सम्राट् ने तेरे लिए कुशल चिकित्सकों का प्रबन्ध किया है। तू शीघ्र ही अच्छी हो जायगी।

चारुमित्रा : नहीं, देवी ! **(शिथिल स्वर में)** सम्राट् अशोक की जय !

[आँखें बन्द कर लेती है। अशोक अवाक् हो चारुमित्रा की ओर देखते रह जाते हैं।]

अशोक : चारु ! तू मरेगी नहीं और जब मैंने आजीवन प्राणियों की सुरक्षा का व्रत ले लिया है, तो तेरे जीवन की सुरक्षा में मैं अपनी सारी शक्ति लगा दूँगा। मगध-साम्राज्य के चिकित्सक तेरे जीवन की रक्षा करेंगे और समस्त जम्बूद्वीप के संघाराम तेरे जीवन की मंगलकामना !

[नेपथ्य में—संघं शरणं गच्छामि !
धम्मं शरणं गच्छामि !
बुद्धं शरणं गच्छामि !]

["देवानाम्प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अशोक की जय !"]

[धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 7 :

वासवदत्ता

•

पात्र-परिचय

वासवदत्ता—जन-पद-कल्याणी नर्तकी
पूर्णिका—वासवदत्ता की अंतरंग सखी
सुलोचना—वासवदत्ता की सहचरी
मदयंतिका—एक नर्तकी
जयसेन—बेरंजा के नगर-श्रेष्ठि
सुदर्शी—जयसेन का सखा
उपगुप्त—आचार्य

•

काल—ई० पू० 261
स्थान—बेरंजा नगर
समय—रात्रि का प्रथम पहर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वासवदत्ता

[वासवदत्ता के सप्तभूमि-प्रासाद का एक बहुत सुसज्जित कक्ष। पुष्परागजटित सुन्दर गवाक्षों से शुक्ल-पक्ष की एकादशी का चन्द्र दीख रहा है। उसकी ज्योत्स्ना कक्ष में बिखर रही है। स्फटिक के दीपाधारों पर सुगन्धित तैल से परिपूर्ण दीपक जगमगा रहे हैं। पीत और हरित पाट वस्त्रों से द्वार सुसज्जित हैं। स्थान-स्थान पर वासवदत्ता की नृत्यभंगिमाओं के आकर्षक चित्र हैं, जिन पर मणिमालाएँ झूल रही हैं। कक्ष में दर्पण इस कोण से लगे हुए हैं कि वे चित्र उनमें अनेक होकर प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। दुग्ध-फेन की भाँति आसन्दियों पर श्वेत कंचुक पड़े हुए हैं। उत्तर की ओर एक लम्बी पीठिका है जिस पर कोमल उपधान रखे हुए हैं। स्थान-स्थान पर अगरु-पात्र से धूम उठ रहा है। दक्षिण की ओर काष्ठ-स्तम्भ पर एक विशाल वीणा रखी हुई है। भूमि पर कौशेय धुस्स बिछे हुए हैं। इसी प्रासाद के अलिंद से दूरागत ध्वनि में एक दूसरी नर्तकी मदयंतिका मन्द स्वरों से श्यामकल्याण के स्वरों से अलाप ले रही है। वासवदत्ता अपना शृङ्गार कर चुकी है। वह वासन्ती परिधान धारण किये हुए है। मस्तक पर चन्द्र-कला का किरीट जिसमें राशि-राशि नीलमों की जगमगाहट है। पुष्पराग के कुण्डल जो उसकी अलकों के साथ झूल उठते हैं। गौर वर्ण, चतुर्थी के चन्द्र की भाँति मस्तक, कुञ्चित भ्रू जो कटाक्ष का अनुसरण करती है, जिसके मध्य में केसर से बनी हुई पुष्पित वल्लरी अंकित है। प्रस्फुटित कमल-दल की भाँति नयन-कोरक जिनमें अंजन भ्रमर का रंग और गूँज लेकर समाया हुआ है। कपोलों और चिबुक पर पत्रावलि। वह स्वर्ण तारों की कंचुकी कसे हुए है जैसे उत्तान शृङ्गार के दो घनाक्षरी छन्द पढ़े जाने से वर्जित कर दिये गये हैं। शरदकालीन आकाश के रंग का दुकूल। रत्न-जटित किंकणी। पैरों में जावक और नूपुर। जैसे वह स्वर्ग से उतरी हुई इन्द्रधनुषी रश्मि हो। वासवदत्ता इस समय पीठिका पर अर्ध-शयित अवस्था में नेपथ्य से आने वाली रागिनी पर बंशी-वादन कर रही है। समीप ही उसकी सहचरी पूर्णिका एक पुष्पमाला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गूँथ रही है। कुछ देर बंशी-वादन के उपरान्त वासवदत्ता मुस्कराते हुए बंशी ओठों से हटाती है और मधुर स्वर से हँसती है जैसे नूपुरों की घंटिकाएँ बिखर गई हों।]

वासव : [**मधुर हँसी**]

पूर्णिका : स्वामिनी !

बासव : [**मधुरतर हँसी**]

पूर्णिका : स्वामिनी !

वासव : पूर्णिके ! वृद्धा के सिकुड़े हुए शरीर पर अंगराग ! (**पुनः हँसती है**) वृद्धा के शरीर पर (**हँसती है**) अंगराग (**हँसती है**) उसी तरह दूर से आती हुई दुर्बल रागिनी के स्वरों पर मेरा बंशी-वादन ! (**हँसती है**) बंशी के स्वरों का अंगराग !

पूर्णिका : नगर-लक्ष्मी वासवदत्ता का बंशी-वादन अंगराग ही तो है।

वासव : कौन गा रही है ?

पूर्णिका : मदयन्तिका, स्वामिनी !

वासव : हाँ, मदयन्तिका ही होगी। हाय री, मदयन्तिका ! मेरे कक्ष की ओर मुख करके ही स्वरालाप करती है। कहती तो यही है कि मैं वासवदत्ता के प्रासाद का वातावरण संगीतमय करने के लिए ही स्वरालाप करती हूँ किन्तु इसमें एक रहस्य है। जानती है ?

पूर्णिका : नहीं जानती, स्वामिनी !

वासव : ओ हो ! मदयन्तिका को इतने दिनों से जानकर भी नहीं जानती ? अच्छा पहले द्वार पर जाकर संकेत से उसे विश्राम करने के लिए कह दे। उसका मुख मेरे कक्ष की ओर ही होगा।

पूर्णिका : जैसी आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

वासव : (**गहरी साँस लेकर**) बेचारी मदयन्तिका ! (**गवाक्ष से चन्द्र की ओर देखती है**) एकादशी का चन्द्र ! खण्डित होकर भी कितना मनोहर और दिव्य है ! कितनी शीतल किरणें हैं ! जैसे ये भी किसी बंशी के कोमल स्वर हैं। (**नेपथ्य में संगीत बन्द हो जाता है**) संगीत समाप्त। मदयन्तिका मौन हो गई।

[**पूर्णिका का प्रवेश**]

पूर्णिका : स्वामिनी प्रसन्न हों ! मदयन्तिका ने स्वरालाप समाप्त कर दिया।

वासव : मदयन्तिका बड़ी सौम्य है। मुझ पर श्रद्धा रखती है। उसे कुछ पुरस्कार दूँगी।

पूर्णिका : यही क्या कम पुरस्कार है स्वामिनी कि उसे आपने अपने प्रासाद में स्थान दे दिया है !

वासव : पूर्णिके ! मैंने मुक्त हृदय से अन्य नर्तकियों को अपने प्रासाद में निवास करने की अनुमति दे दी है। भय हो सकता है कि वे मेरे वसन्त में वर्षा के मेघ उठा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकती हैं; किन्तु मैं समझती हूँ कि उन्हें भी अपनी कला-कादम्बिनी की कमनीयता दिखलाने का अवसर मिलना चाहिए।

पूर्णिका : इन्द्रधनुष को मेघ-माला का भय नहीं होता, स्वामिनी !

वासव : (**हँसकर**) ओ हो ! कविता की किरण फैला दी तूने !

पूर्णिका : स्वामिनी ! मैंने मदयन्तिका को जैसे ही संकेत किया, उसका स्वर किसी नगर-श्रेष्ठि की भाँति उसके कण्ठ में ही रह गया। स्वामिनी, किसी रहस्य की बात कह रही थीं ?

वासव : रहस्य ! (**सोचते हुए**) हाँ, स्मरण आया। मदयन्तिका है तो बहुत सौम्य ......किन्तु......कहूँ ?

पूर्णिका : हाँ, स्वामिनी !

वासव : मदयन्तिका सदैव प्रयत्न करती रहती है कि उसका स्वरालाप इतना मधुर हो...इतना मधुर हो कि नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन...समझी !

पूर्णिका : नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन ! (**हँसती है**) स्वामिनी ! नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन की रुचि समस्त वेरंजा नगर जानता है। वे पाटल और जूही का भेद जानते हैं और जानते हैं मेरी स्वामिनी नगर-लक्ष्मी वासवदत्ता के कक्ष का पथ। मदयन्तिका के कक्ष का नहीं, भले ही वह मेरी स्वामिनी के प्रासाद में निवास कर मधुर से मधुर स्वरालाप करे।

वासव : मेरे प्रति तेरा पक्षपात है, पूर्णिके !

पूर्णिका : ये वाक्य तो स्वयं आर्य जयसेन ने कहे थे। कहते थे, आकाश के सौध-सदन में चन्द्र ने अपने साथ तारकों को भी स्थान दे दिया है।

वासव : आर्य जयसेन प्रेमी हैं। उनके मुख की रेखाएँ और हृदय के भाव दोनों ही सौन्दर्य के साँचे में ढले हुए हैं। तुझे एक सूचना दूँ !

पूर्णिका : आज्ञा, स्वामिनी !

वासव : आर्य जयसेन आज इस कक्ष में आ रहे हैं।

पूर्णिका : (**प्रसन्नता की उमंग में**) आ रहे हैं ?

वासव : मेरा शृंगार देखकर तूने कुछ अनुमान नहीं किया ?

पूर्णिका : किया स्वामिनी ! किन्तु चन्द्र तो चन्द्र है। कलाएँ स्वयं उसके मस्तक पर आकर धन्य हो जाती हैं।

वासव । (**मुस्कराकर**) कलाएँ धन्य हो जाती हैं। और यदि कलाएँ घट जायँ ? अमावास्या हो जाय, पूर्णिके ! अमावास्या !

पूर्णिका : ऐसी बात न कहें, स्वामिनी ! (**कराह के स्वर में**) भविष्य के बोझ से वर्तमान के कन्धे दुखने लगते हैं।

वासव : तू तो ऐसे स्वर में कह रही है, जैसे तेरे ही कन्धे दुख रहे हैं। (**मधुर हँसी**) पूर्णिके ! अपनी वाणी में रूपक और उपमाओं से अधिक काम न लिया कर। समझी !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्णिका : मेरी वाणी में अलंकार उसी भाँति आ जाते हैं जिस भाँति स्वामिनी के कक्ष में नगर-श्रेष्ठि जयसेन।

वासव : तो जयसेन मेरे कक्ष के अलंकार हैं ? पूर्णिके ! तेरे अलंकार अच्छे हैं जो कभी पुराने नहीं होते किन्तु मेरे अलंकार वासना में धुलकर छोटे होते जाते हैं और एक दिन समाप्त हो जाते हैं। पूर्णिके ! ये तो सेज पर सजे हुए फूल हैं जो सुगन्धि की बात कहते-कहते मुरझा जाते हैं।

पूर्णिका : इस आत्म-बलिदान में भी शोभा है, स्वामिनी !

वासव : इस शोभा से मैं खेलती हूँ, अभिनय करती हूँ। दुःख तो यह है कि संसार इस अभिनय को ही सत्य समझता है।

पूर्णिका : किन्तु कभी-कभी अभिनय भी सत्य हो जाता है, स्वामिनी !

वासव : जब उस अभिनय के मंच पर हिम-शृङ्ग की भाँति अचल पुरुष प्रवेश करता है। वह वाणी से नहीं, आत्मा से कहता है कि मैं तुम्हें कृतार्थ कर सकता हूँ। उसमें आकांक्षा नहीं, आकांक्षा की पूर्ति पर विरक्ति नहीं। वह अलंकार है और रस भी है। वह फूल है, उसकी सुगन्धि भी है।

पूर्णिका : तो नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन का प्रेम......

वासव : वह इस दीपक में जलने वाला सुगन्धित तेल है जो कुछ ही समय में समाप्त हो जायगा। किन्तु उससे मेरे कक्ष की शोभा है। इसलिए इस दीपक को मणि-जटित स्तम्भ पर रखती हूँ, कंचुक की ओट में सजाती हूँ, जिससे वह बुझ न जाय।

पूर्णिका : किन्तु आर्य जयसेन के आगमन से तो आप बहुत प्रसन्न हो उठती हैं।

वासव : क्योंकि वे मेरे अभिनय को सार्थक करते हैं। उनकी सम्पत्ति में मेरे नूपुरों की झंकार है, उनके हृदय की धड़कन में मेरे नृत्य की ताल है और उनके अनुराग में मेरे चरणों की लालिमा।

पूर्णिका : **(मुस्कराकर)** और उनके बाहु-पाश में......

वासव : **(तीव्रता से)** सावधान, पूर्णिके ! तू मेरी सखी है, तुझे क्षमा करती हूँ। वासवदत्ता ने आज तक आत्म-समर्पण नहीं किया। वह आनन्द और विलास की सूत्र-धारिणी है--पात्र नहीं। वह वसन्त-सुषमा की भाँति प्रत्येक फूल खिलाती है, फूल नहीं बन जाती। वह अभिनय का सत्य है, सत्य का अभिनय नहीं।

पूर्णिका : क्षमा करें, स्वामिनी !

वासव : क्षमा किया ! प्रसन्न हो जा ! आज नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन यहाँ आकर कृतार्थ होंगे। इस शृंगारगृह को तू और भी सुसज्जित कर दे। उनके आने में अब अधिक विलम्ब न होगा।

पूर्णिका : माध्वीक मदिरा का सुरा-भांड भी उपस्थित करूँ ?

वासव : उसमें चम्पक की सुगन्धि मिला दे। दासियों से कह दे, वे गन्ध-द्रव्य स्वर्ण-कलशों में सुसज्जित कर दें। स्फटिक प्रतिमाओं में स्वर्ण और मणि-मालाओं के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आभरण सजा दें। समस्त कक्ष सुगन्धित और आलोक से सुरभित और उज्ज्वल हो उठे। आज आर्य जयसेन का उसी भाँति स्वागत होना चाहिए जैसे शरीर में यौवन का होता है, वसन्त में कामदेव का होता है।

पूर्णिका : (**गम्भीर स्वर से**) जैसी आज्ञा !

वासव : बुरा मान गई ? हँसकर कह न 'जैसी आज्ञा'। तेरी वाणी के सारे अलंकार कहाँ गये ? (**पूर्णिका कुछ नहीं बोलती**) नहीं बोलेगी ! अच्छा, तो मैंने नगर-श्रेष्ठि श्री आर्य जयसेन को आत्म-समर्पण किया। स्वीकार है ?

पूर्णिका : कहीं चन्द्रकला भी अन्धकार को आत्म-समर्पण कर सकती है ?

वासव : वाणी में अलंकार तो आ गया। अब हँसी भी आयेगी......

[**दोनों हँस पड़ती हैं।**]

वासव : तू वास्तव में वासवदत्ता की पूर्णिका है। अब वह वीणा मेरे हाथों में दे दे। (**पूर्णिका वीणा उठाने के लिए जाती है**) आज ऐसी रागिनी का अलाप हो कि दूर-दूर तक स्वरों का बन्दनवार लग जाय। और राग का स्थायी तोरण की भाँति सुसज्जित हो ! यह राग तूने सुना ? (**वीणा में जयजयवन्ती का राग कुछ देर बजाती है**) कैसा रहा ?

पूर्णिका : यह तो आपकी जय-जय का स्वर लेकर जयजयवन्ती बन गई !

वासव : तब तो आज मैं संसार-विजयिनी बन गई हूँ।

[**दासी सुलोचना का प्रवेश**]

सुलोचना : जन-पद-कल्याणी की जय ! आर्य सुदर्शी दर्शन करना चाहते हैं।

वासव : (**देखकर**) सुलोचना ! आर्य सुदर्शी या नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन ? तूने अपने सुलोचनों से उन्हें ठीक देखा है ?

सुलोचना : दासी नगर-श्रेष्ठि जयसेन को पहचानती है। आर्य जयसेन नहीं हैं, आर्य सुदर्शी हैं।

वासव : (**सोचते हुए**) जयसेन नहीं आये ! सुदर्शी हैं। (**सुलोचना से**) दर्शनीय हैं ?

सुलोचना : (**लज्जित होकर**) मैं क्या कहूँ, स्वामिनी !

वासव : कह दे, दूसरे कक्ष में मदयन्तिका उनकी प्रतीक्षा कर रही है।

सुलोचना : स्वामिनी ! वे आपकी सेवा में कुछ निवेदन करना चाहते हैं।

वासव : मैं इस समय कोई निवेदन नहीं सुनना चाहती।

पूर्णिका : सम्भव है, स्वामिनी, कोई राजकीय सूचना हो !

वासव : राजकीय सूचनाएँ तो मेरे चरणों में जावक की पंक्तियाँ बनकर शयन करती हैं। किन्तु सुन लूंगी यह सूचना। सुलोचने ! तू आर्य सुदर्शी को कक्ष में भेज दे।

सुलोचना : जैसी आज्ञा !

पूर्णिका : इस बीच मैं दासियों को प्रबन्ध-सज्जा की आज्ञा दे दूँ ?

वासव : वे सावधानी से कार्य में तत्पर हों।

पूर्णिका : अत्यन्त सावधानी से। [**प्रस्थान**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[वासवदत्ता वीणा के तारों पर उँगलियाँ फेरती हुई कुछ सोचती है ।]

[सुदर्शी का प्रवेश]

सुदर्शी : जन-कल्याणी देवि वासवदत्ता को प्रणाम !

वासव : स्वागत, आर्य !

सुदर्शी : मुझे आपकी सेवा में एक सूचना निवेदन करनी है।

वासव : परिचय !

सुदर्शी : मेरा नाम सुदर्शी है । मैं नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन का मित्र हूँ ।

वासव : सुनकर प्रसन्न हूँ ।

सुदर्शी : नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन इस समय आपकी सेवा में उपस्थित होने वाले थे ।

वासव : नहीं होंगे ?

सुदर्शी : उनके आने में कुछ विलम्ब होगा ।

वासव : कारण !

सुदर्शी : आज उन्होंने मधुवन में आपके अभिसार की व्यवस्था की है । माधवी और यूथिका की मालाओं से समस्त भूमि सुसज्जित की है। आम्र-कुञ्ज के मध्य में विविध लताओं के बीच दुग्ध-धवल धुस्स बिछाये गये हैं । उसके चारों ओर पाट-वस्त्रों के झीने आवरण हैं । सुगन्धि की मन्द लहरें चारों ओर बह रही हैं, चन्द्र की शुभ्र किरणों में वह चन्द्रलोक का उपवन ज्ञात होता है। वहीं चलने की व्यवस्था है ।

वासव : कवि मत बनो, आर्य ! इसकी सूचना उन्होंने पहले नहीं दी ।

सुदर्शी : देवि ! क्षमा करें। कुतूहल में वे जीवन को कला समझते हैं। उन्होंने कहा था कि नगर की अपेक्षा प्रकृति की सुरम्य भूमि में ही देवि वासवदत्ता का सौन्दर्य वन-कुसुमों की भाँति सुसज्जित हो सकेगा ।

वासव : मैं सुनकर प्रसन्न हुई । आज मेरा अभिसार होगा । आर्य जयसेन समस्त सौन्दर्य पर जय प्राप्त करके ही रहेंगे ।

सुदर्शी : आपको चलने में कोई कष्ट न हो, इसलिए उन्होंने विविध पुष्पों से सुसज्जित श्वेत कौशेय का मन्दघोष रथ आपकी सेवा में भेजा है।

वासव : साधु ! उस रथ में मैं आर्य जयसेन के साथ ही आसन ग्रहण करूँगी ।

सुदर्शी : यह आर्य जयसेन का सौभाग्य है ।

वासव : तो मुझे कितनी देर प्रतीक्षा करनी होगी ?

सुदर्शी : आपके अभिसार की व्यवस्था करने में ही उन्हें कुछ विलम्ब हुआ । यदि आपको कुछ प्रतीक्षा करनी पड़े तो क्षमा करें।

वासव : सुख की प्रतीक्षा सुख से अधिक सुखदायक है ।

सुदर्शी : आपकी जय, देवि ! उन्होंने एक प्रार्थना और की है ।

वासव : सुनूँगी ।

सुदर्शी : आपकी वीणा भी अभिसार में साथ रहेगी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वासव : (**मुस्कराकर**) मेरे कण्ठ की वीणा पर्याप्त नहीं है ?

सुदर्शी : आपके कण्ठ का अनुकरण करने के लिए वीणा की आवश्यकता है।

वासव : बड़े मधुर-भाषी हो, आर्य ! तो मैं प्रस्तुत रहूँगी।

सुदर्शी : मुझे भी आपके शृंङ्गार के लिए जूही की पुष्प-मालाओं की व्यवस्था करनी है। आज्ञा चाहता हूँ !

वासव : जाओ, आर्य ! सामन्त-कुमारों से भी कह दो, वे भी आज चन्द्र की ज्योत्स्ना में मेरा नृत्य देखें। आर्य जयसेन को सूचना देना कि मेरे साथ मेरे गवाक्ष में झाँकने वाला यह चन्द्र भी उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।

सुदर्शी : जैसी आज्ञा, देवि ! [**प्रस्थान**]

वासव : तो अभिसार की सज्जा है। (**देखकर**) दीपकों की शिखाएँ मन्द हो रही हैं। अब तुम्हें तेल नहीं चाहिए। दीपको ! तुम विश्राम करो। बुझ जाओ। आज तो चन्द्र की ज्योत्स्ना का ही राज्य रहेगा। उसकी किरण-मणियों के दीपक जलेंगे—मणिदीप। और उन्हें शरीर पर सजाकर नृत्य करेगी—नगर-लक्ष्मी वासवदत्ता। [**वीणा के तारों को झनझना देती है।**]

[**पूर्णिका का प्रवेश**]

वासव : पूर्णिके ! तू आ गई। तू भी मेरे साथ चलेगी ?

पूर्णिका : कहाँ, स्वामिनी ?

वासव : मधुवन के अभिसार में।

पूर्णिका : कब चलना होगा, देवि ?

वासव : आज ही, आज की ज्योत्स्ना में ही, इसी समय !

पूर्णिका : और आर्य जयसेन की स्वागत-सज्जा ! सब प्रबन्ध कर आई हूँ।

वासव : मेरी स्वागत-सज्जा की है उन्होंने ! बड़े कौतुक-प्रिय हैं वे। दिन-भर मेरे अभिसार के प्रबन्ध में रहे होंगे वे। मुझे प्रसन्न करने की कितनी चेष्टा करते हैं।

पूर्णिका : फिर उनके आगमन की सूचना असत्य थी ?

वासव : तू कुछ नहीं जानती, पूर्णिके ! उन्होंने सूचना इसलिए भिजवा दी थी कि मैं उनकी ही प्रतीक्षा में रहूँ, किसी अन्य सामन्त-कुमार का स्वागत न करूँ। सन्ध्या-समय सूर्यमुखी पश्चिम की ओर ही घूमकर सूर्य को देखे।

पूर्णिका : आप बहुत प्रसन्न हैं, देवि !

वासव : आर्य जयसेन बड़े कुशल प्रेमी हैं, यह जानकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तू कुशल प्रेमी की परिभाषा जानती है ?

पूर्णिका : मैं नहीं जानती, स्वामिनी !

वासव : (**हँसकर**) तेरी पूर्णिमा के दिन जितने दूर हों, उतना ही अच्छा। सभी कुशल प्रेमी नहीं होते। पूर्णिके ! कुशल प्रेमी वह है जो शरीर से दूर रहकर हृदय के समीप आ जाय। [**मन्द हँसी**]

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[शीघ्रता मे मदयन्तिका का प्रवेश]

मद० : क्षमा करें, अय्या ! मैं बिना सूचना दिए ही आ गई।

वासव : मदयन्तिका ! आज बिना सूचना दिए ही सब कार्य हो रहे हैं। कोई विशेष वार्त्ता ?

मद० : आज आप अभिसार के लिए जा रही हैं ?

वासव : नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन की प्रार्थना है। किसी दिन तुम भी अभिसार करोगी।

मद० : यह मेरा सौभाग्य नहीं है, अय्या !

वासव : इतनी निराश मत बनो, मदयन्तिका। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम भी इस अभिसार की नक्षत्र-मालिनी बनो।

मद० : नहीं, अय्या ! मैं एक प्रार्थना करने आई हूँ। **(पूर्णिका की ओर देखकर)** पूर्णिके सखी ! मेरी प्रार्थना में सहायिका बनो।

पूर्णिका : कैसी प्रार्थना ?

मद० : अय्या ! नगर-श्रेष्ठि ने जो श्वेत कौशेय का रथ आपकी सेवा में भेजा है, उसे देखने मैं गई थी। बड़ा सुन्दर रथ है। स्वर्ण-कलश से मण्डित, सुगन्धित पुष्प-मालाओं से सुसज्जित। उसमें चार श्वेत सैन्धव अश्व, जो स्वर्ण और मणियों से अलंकृत हैं रथ ले जाने के लिए चंचल हो रहे हैं। ज्योत्स्ना में उनकी कलगी जल की उठी हुई फुहार जैसी ज्ञात होती है। यह सब देखकर जैसे ही मैं लौट रही थी वैसे ही......

पूर्णिका : नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन......

मद० : नहीं, पूर्णिके ! मैंने देखा, पास ही के शाल्मली वृक्ष के नीचे आचार्य उपगुप्त। उन्हें मेरे पैर की ठोकर लगी।

वासव : **(आश्चर्य से)** ठोकर ? आचार्य उपगुप्त को ?

मद० : हाँ, अय्या ! आचार्य उपगुप्त शयन कर रहे हैं, नग्न भूमि पर। कोई शैया नहीं, कठोर भूमि पर, जिस पर शाल्मली की काष्ठ-शुक्तियाँ पड़ी हुई हैं वे शयन कर रहे हैं। कुश-कंटकों पर चलने के कारण उनके चरण क्षत-विक्षत हो रहे हैं। इसलिए वे आज भिक्षा के लिए भी नहीं निकले।

वासव : तो आचार्य उपगुप्त ने आज भोजन नहीं किया ?

मद० : नहीं, अय्या ! उन्होंने कल से भोजन नहीं किया।

वासव : पूर्णिके ! तू आचार्य उपगुप्त को मधुकरी दे आ।

पूर्णिका : जो आज्ञा !

मद० : अय्या !, मैंने निवेदन किया कि मैं आचार्य के लिए यहीं मधुकरी ले आती हूँ; किन्तु उन्होंने मेरा निवेदन स्वीकार नहीं किया।

वासव : कारण ?

मद० : उन्होंने कहा कि भिक्षु द्वार पर ही मधुकरी ग्रहण करता है, अन्यत्र नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वासव : तो वे द्वार पर कैसे आ सकेंगे ?

मद० : मैंने उनसे प्रार्थना की। वे कठिनाई से खड़े हुए। मैंने सहायता देनी चाही। उन्होंने स्वीकार नहीं की। चलकर वे द्वार तक आ गये हैं।

वासव : द्वार तक आ गये हैं ! तो मैं उनका स्वागत करूँगी।

पूर्णिका : आज आपका अभिसार है, स्वामिनी !

वासव : हाँ, अभिसार है, तभी तो जा रही हूँ। पूर्णिके ! तू आसन ठीक कर, मैं उन्हें कक्ष में लाऊँगी।

पूर्णिका : नगर-श्रेष्ठि जयसेन यदि इसी समय आये तो वे निराश होंगे, स्वामिनी !

वासव : मेरे स्थान की पूर्ति मदयन्तिका करेगी। मेरे पास अब अधिक समय नहीं है। [**प्रस्थान**]

पूर्णिका : मदयन्तिका, मैं नहीं जानती थी कि तुम में इतनी ईर्ष्या है।

मद० : तुम्हें मेरी आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं है, पूर्णिके !

पूर्णिका : स्पष्ट बात कहने का सबको अधिकार है, मदयन्तिका ! जब तुमने देखा कि नगर-श्रेष्ठि ने अभिसार का प्रबन्ध किया है तो तुम इसे सहन नहीं कर सकीं। आचार्य उपगुप्त का प्रसंग ले आईं। उस प्रसंग का यह समय नहीं था। तुम उपगुप्त को स्वयं अपने कक्ष में ले जा सकती थीं। स्वामिनी से कहने की क्या आवश्यकता थी ?

मद० : इसलिए कि अय्या को इस बात की सूचना होनी चाहिए।

पूर्णिका : किन-किन बातों की सूचना तुम स्वामिनी को देती हो ? मैं तुम्हारी नीति समझती हूँ। स्वामिनी को उपगुप्त की सेवा में छोड़कर तुम नगर-श्रेष्ठि के साथ अभिसार करतीं।

मद० : तुम चुप रहो, पूर्णिके !

[**आचार्य उपगुप्त के साथ वासवदत्ता का प्रवेश**]

वासव : भन्ते ! दासी पर आपने बड़ी कृपा की। आप किसी के कक्ष में नहीं जाते; किन्तु मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर आपने यह कृपा की।

मद० : वास्तव में बड़ी कृपा की, अय्या ! आचार्य मानव-मात्र पर एक-सी कृपा करते हैं। उनके समक्ष न कोई छोटा है, न बड़ा। उनकी गति सर्वत्र है।

वासव : मैं आचार्य का उपदेश ग्रहण करूँगी, पूर्णिके ! आचार्य के लिए आसन बिछा दे और तू जा।

पूर्णिका : जो आज्ञा ! [**आसन बिछाकर आचार्य उपगुप्त को "भन्ते, प्रणाम" कहकर चली जाती है।**]

मद० : मैं भी अय्या से जाने की आज्ञा चाहती हूँ ?

वासव : हाँ, नगर-श्रेष्ठि से मेरा नमस्कार कहना।

मद० : उन्होंने मिलने की कृपा की तो कह दूँगी। भन्ते, प्रणाम करती हूँ। [**प्रस्थान**]

वासव : मैं मदयन्तिका का आभार मानती हूँ कि उसने आपकी सूचना मुझे दी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आपके नाम से तो मेरे कान अनेक बार पवित्र हो चुके हैं ; किन्तु नेत्रों को आज ही दर्शनों का वरदान प्राप्त हुआ ।

उपगुप्त : देवि ! आरोग्य लाभ करो ! नेत्रों द्वारा जो रंजनीय रूप देखा जाता है, वह हिंसक है और उसके सामने तुम्हारे नेत्र हरिण के समान हैं । रंजनीय रूप के जाल म बधकर नत्र इच्छानुसार विहार नहीं कर सकेंगे; उन्हें बन्धन में मत डालो, स्वाधीन रहने दो !

वासव : भन्ते ! आपकी वाणी अमर है । आपकी मनोहर कान्ति में नेत्र के हरिण यदि सदा के लिए उलझ जायें तो इससे अधिक नेत्रों का क्या सौभाग्य होगा ? भन्ते ! विराजिये, आसन प्रस्तुत है ।

उपगुप्त : देवि ! तृणों का आसन ही मेरा आसन है । सुख का ध्यान महाताप और महादाह उत्पन्न करता है । आनन्दमय जीवन का सिंहासन ही इस तृण के आसन पर है । इसलिए मैं इसी में समर्पित हूँ ।

वासव : आप धन्य हैं, भन्ते ! मदयन्तिका ने कहा था कि आप भूमि पर शयन कर रहे थे । क्या आपके शरीर की गौर कान्ति भूमि पर लुंठित होने योग्य है ? भन्ते ! यदि आपकी यह गौर कान्ति भूमि से मैली होती है, तो इन कौशेय वस्त्रों को अग्नि में होम कर देना चाहिए ।

उपगुप्त : देवि ! आरोग्य दृष्टि से देखो । जल पर जब किरण पड़ती है तो जल भी रजत-रूप धारण करता है; उसी भाँति इस शरीर पर जब यौवन की किरण पड़ती है तो शरीर में कान्ति उत्पन्न हो जाती है । किन्तु किरण जब अस्त हो जाती है तो शरीर पर श्याम रेखाएँ पड़ जाती हैं । शरीर में कान्ति नहीं है, वह तो अवस्था की कान्ति है और अवस्था परिवर्तनशील है, तब शरीर का महत्त्व कैसा ? चाहे वह गौर हो, चाहे श्याम । वह भी जीवन का एक आसन है । सुख में यदि तुम्हारी आसक्ति नहीं है तो शरीर का आसन सर्वोत्तम है ।

वासव : सत्य है, भन्ते !

उपगुप्त : और भूमि ! वह तो शरीर की माता है । यह महापृथ्वी गम्भीर है । पृथ्वी छोड़कर यह कोई दूसरी वस्तु नहीं हो सकती । कोई पुरुष हाथ में कुदाल लेकर आए और कहे मैं इस पृथ्वी को अ-पृथ्वी करूँगा तो क्या वह पृथ्वी को अ-पृथ्वी कर सकता है ? वह यहाँ खोदे, वहाँ खोदे, मिट्टी को यहाँ फेंके, वहाँ रखे और कहे, घोषणा करे कि मैंने पृथ्वी को मिटा दिया तो क्या देवि ! उस पुरुष ने इस महापृथ्वी को मिटा दिया ?

वासव : नहीं, भन्ते !

उपगुप्त : इसलिए यह महापृथ्वी गम्भीर है । इसे कोई मिटा नहीं सकता । उसी पृथ्वी से शरीर का निर्माण है, उसी पृथ्वी में शरीर का विनाश है । जब शरीर पृथ्वी का अंग है तो पृथ्वी पर शयन करने में शरीर को कष्ट कैसा ? अशान्ति कैसी ? पृथ्वी पर तो शयन करना वैसा ही है जैसा शिशु का माता के हृदय पर

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सो जाना।

वासव : किन्तु भन्ते ! मुझे कष्ट होता है कि इतना सुन्दर और दृढ़ शरीर पृथ्वी का होकर पृथ्वी के वैभव पर नहीं, उसकी भस्म पर विश्वास रखता है। मैं तो निवेदन करती हूँ कि यदि अवस्थाओं के अनुसार शरीर का उपयोग नहीं है तो अवस्थाओं की सृष्टि ही क्यों की गई ? भन्ते ! आपके ज्ञान-सूर्य के सामने मैं अन्धकार की बातें भले ही करूँ; किन्तु भगवान् सूर्य भी संध्या-समय अन्धकार में निवास करने चले जाते हैं। आज आप इस कक्ष में निवास कीजिए।

उपगुप्त : मैं एक होकर अनेक कैसे हो जाऊँ, देवि ! आविर्भाव और तिरोभाव में एक साथ कैसे विचरण करूँ ? असन्तोष में सन्तोष कैसे प्राप्त करूँ ? मैं कहूँ कि इस कक्ष को शाल्मली वृक्ष की भूमि बना दो। बनाओगी ? नहीं, देवि ! वस्तुओं में वासनाओं के केन्द्र है। मैं उन्हें अपने चित्त से देखकर जानता हूँ। आकाश में पक्षी उड़ते हैं तो पृथ्वी पर मनुष्य क्यों नहीं उड़ते ? प्रत्येक का धर्म और स्वभाव गुणों पर निर्भर है। अग्नि-मुख में पड़े हुए स्वर्ण में अन्य-अन्य धातुएँ मिलानी नहीं चाहिएँ, अन्य धातुएँ निकालनी चाहिएँ।

वासव : तो भन्ते ! ऐसे स्वर्ण का आभूषण कितना दिव्य होगा ? उस स्वर्ण के आभूषण से मेरा जीवन धन्य हो उठेगा। आपके वचनों में कितना आकर्षण, आपके नेत्रों में कितनी ज्योति, आपकी दृष्टि में कितनी करुणा है ! फिर... फिर...वह करुणा मेरे लिए क्यों नहीं है, देव ! वह ज्योति मेरे प्राणों के समीप क्यों नहीं आती ?

उपगुप्त : वह ज्योति किसी समय आ जायेगी। इस समय यदि कष्ट न हो, तो केवल मधुकरी, एक बार की मधुकरी से ही मेरा सत्कार हो।

वासव : जैसी आज्ञा, भन्ते ! इस रात्रि में जाने से आपको कष्ट होगा।

उपगुप्त : जिस भाँति देवी को अभिसार में जाते समय कष्ट नहीं होगा, उसी भाँति मुझे भी कोई कष्ट नहीं होगा।

वासव : किन्तु भन्ते ! आपके चरणों पर अपना अभिसार निछावर करती हूँ। मेरी प्रार्थना है कि इस समय आप ठहर जायँ।

उपगुप्त : अभी मेरे ठहरने का समय नही आया, देवि ! जिस दिन समय आयगा उस दिन मैं स्वयं तुम्हारे समीप पहुँच जाऊँगा।

वासव : वह समय कब होगा, प्रभु !

उपगुप्त : प्रतीक्षा में आकर्षण होता है, देवि ! अपने सुख में मेरी प्रतीक्षा न करना। तुम्हारे अभिसार में विलम्ब हो रहा है। इस समय जहाँ तुम्हें जाना है, वहीं जाओ।

वासव : **(शिथिल स्वरों में)** जैसी आज्ञा ! मधुकरी समर्पित कर दूँ। **(पुकारकर)** पूर्णिके !

पूर्णिका : **(नेपथ्य से)** आई, स्वामिनी !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वासव : भन्ते ! कभी-कभी इस चरण-सेविका का स्मरण करें। आपके आने का दिन जितना शीघ्र होगा, उतने ही निकट मेरा सौभाग्य होगा।

[**पूर्णिका का प्रवेश**]

पूर्णिका : आज्ञा, स्वामिनी !

वासव : भन्ते की सेवा में मधुकरी !

पूर्णिका : मैं मधुकरी ले आई हूँ, स्वामिनी !

वासव : भन्ते की झोली में डाल दे और इन्हें शाल्मली वृक्ष तक पहुँचा दे।

पूर्णिका : जैसी आज्ञा !

वासव : भन्ते के श्रीचरणों में प्रणाम।

उपगुप्त : कल्याण हो ! [**उपगुप्त और पूर्णिका का प्रस्थान**]

वासव : हिम-श्रृङ्ग की भाँति अचल पुरुष उपगुप्त वाणी से नहीं आत्मा से साक्षात्कार करते हैं; कितने आकर्षक, कितने सौम्य ! शुभ्र ललाट पर चन्द्र के समान स्निग्ध शान्ति ! आज तक वासवदत्ता नर्तकी थी, आज उसने अपने को नारी अनुभव किया। नारी ! मुझे पराजित कर वे चले गये। आज मेरा सतीत्व तरल होकर उनके चरणों को धोने के लिए उमड़ पड़ा। कुसुम से भी अधिक कोमल और वज्र से भी अधिक कठिन। आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ ! किन्तु...किन्तु मेरे यौवन और सौन्दर्य का इतना अपमान ! कितने नगर-श्रेष्ठि और सामन्त-पुत्र मेरे चरणों से टकराए और मैंने उन्हें ठोकर मार दी ! किन्तु आज...आचार्य उपगुप्त...ओह ! यह शरीर जल रहा है। मस्तक में भ्रांति बिखर गई है। मैं इस पुरुष-जाति से पूरा बदला लूंगी। जितने पुरुष हैं उन्हें चरणों के नीचे पीस दूंगी। वासवदत्ता नारी की समाधि पर विश्व-विजयिनी नर्तकी बनकर नृत्य करेगी।

[**पूर्णिका का प्रवेश**]

पूर्णिका : स्वामिनी ! आचार्य को पहुँचाने नीचे गई तो नगर-श्रेष्ठि जयसेन आपके कक्ष में आने को उत्सुक थे। सुलोचना ने उनसे कह दिया था कि आचार्य ऊपर हैं। वे नीचे प्रतीक्षा कर रहे हैं।

वासव : और मदयन्तिका कहाँ है ? वे उसे अभिसार के लिए नहीं ले गये ?

पूर्णिका : मैंने यह भी नगर-श्रेष्ठि से पूछा था। उन्होंने कहा कि मैंने मदयन्तिका की प्रार्थना ठुकरा दी। यदि अभिसार होगा तो एकमात्र नगर-लक्ष्मी वासवदत्ता का।

वासव : साधु ! जयसेन, साधु ! पूर्णिके ! शीघ्र ही आर्य जयसेन को कक्ष में आने दे। आज मेरा ही अभिसार होगा।

पूर्णिका : जैसी आज्ञा, स्वामिनी ! [**प्रस्थान**]

वासव : आज यह वीणा इस प्रकार गुंजित हो कि आचार्य उपगुप्त का सौन्दर्य और यौवन इसमें बुलबुले की भाँति बह जाय, सदैव के लिए बह जाय। (**वीणा के तारों की ध्वनि**) मैं विलासिनी हूँ तो मेरा विलास संगीत से दिशाओं को झक-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

झोर दे और सारी दिशाएँ मेरे संगीत के स्वर में गूँजकर एक हो जायँ। एक... केवल एक...[**वीणा के तारों की झंकार**]

[**जयसेन का प्रवेश**]

जयसेन : वासवदत्ते !

वासव : स्वागत, आर्य ! अधिक प्रतीक्षा करनी पड़ी ?

जयसेन : तुम्हारी छोटी प्रतीक्षा भी अधिक ज्ञात होती है, वासव ! किन्तु तुम्हारे वाक्य मुझे स्मरण हैं, 'सुख की प्रतीक्षा सुख से अधिक सुखदायक है ।' [**हल्की हँसी**]

वासव : कृतार्थ हुई ; किन्तु आचार्य उपगुप्त तो कहते हैं कि प्रतीक्षा करनी ही नहीं चाहिए ।

जयसेन : आचार्य के उपदेश बौद्ध भिक्षुओं के लिए हैं, वासव ! जन-कल्याणी वासवदत्ता के लिए नहीं । इधर देखो, वासव ! तुम्हारे कण्ठ के लिए मैंने यह जूही की माला अपने हाथों से गूँथी है ।

वासव : मैं कृतार्थ हुई, आर्य !

जयसेन : तो इसे भी अपने कण्ठ की कमनीयता से कृतार्थ करो ।

वासव : इसे अपने हाथों से ही कण्ठ में पहिना दें ।

जयसेन : किसी समय कामदेव ने भी रति को अपने हाथों से माला पहिनाई थी। यह लो, कण्ठ में समर्पित है । [**माला पहिनाते हैं, पहिनाते समय कण्ठ का स्पर्श**]

वासव : ओह ! माला पहिनाने में भी कला ! आर्य जयसेन कामदेव का कौशल भी सीखे हुए हैं ।

जयसेन : क्योंकि तुम आज अभिसार की रति हो, महामाया हो !

वासव : महामाया ! (**हँसती है**) किन्तु ये फूल तो इतने छोटे हैं ! देखिए, जूही के ये फूल—महा और लघु का विचित्र संयोग है । किन्तु देखिए, ये फूल इतने छोटे होते हुए भी अपने प्राणों में कितनी मादक सुगन्धि लिये हुए हैं !

जयसेन : सत्य है, तभी तो मैंने जान-बूझकर यह माला बनाई ।

वासव : जान-बूझकर !

जयसेन : हाँ, वासव ! तुम्हारे सुरभित कण्ठ में पड़कर जूही के ये पुष्प और भी कितने छोटे हो गये हैं ।

वासव : साधु ! आर्य, साधु ! आप वास्तव में सौन्दर्य के पारखी हैं । आज अभिसार में मदयन्तिका साथ नहीं रहेगी ?

जयसेन : उसका अभिमान तो देखो, वासव ! वह तुम्हारे बिना मेरे अभिसार में भाग लेना चाहती है । मैंने उसका तिरस्कार कर दिया ।

वासव : तिरस्कार कर दिया ? हाय ! उसी बेचारी ने तो उपगुप्त को मेरे कक्ष में लाकर अपने एकाकी अभिसार की भूमिका रची थी और आपने उसका तिरस्कार कर दिया । जाने दीजिए, आर्य ! वह कला-पारखी आर्य जयसेन के तिरस्कार के योग्य भी नहीं है ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जयसेन : नहीं । मैं इसकी व्यवस्था करूँगा । लघु होकर महान् होने का दंभ जीवन में अनर्थ उत्पन्न कर सकता है ।

वासव : भूल जाइए, आर्य ! वह लघु है और आप इतने महान् हैं और यह चन्द्र भी महान् है जिसने अपनी चाँदनी से मेरे अभिसार को अमृत से नहला दिया है ।

जयसेन : (**मुस्कराकर**) तुम बातें बहुत अच्छी करती हो, वासव ! मैं भी एक बात कहूँ ? आकाश में तो एकादशी का चन्द्र है ; किन्तु मेरे समीप सोलह कलाओं से सम्पन्न पूर्णचन्द्र ! [**दोनों की मधुर हँसी**]

वासव : प्रेम का पुरस्कार पाने वाली बातें कहते हो, आर्य ! तुम्हारे इस मधुर कण्ठ को माध्वीक सुरा का चषक उपहार में दूँ ?

जयसेन : मधुवन में तो अनेक मधु-द्रव्यों के चषक तुम्हारे अधरों की प्रतीक्षा कर रहे हैं । यदि कष्ट न हो तो हम चलें !

वासव : ओह ! मैं तो मधुर बातों में ही उलझ गई थी । (**पुकारकर**) पूर्णिके !

पूर्णिका : (**नेपथ्य से**) आई, स्वामिनी !

वासव : अभिसार में पूर्णिका मेरी सहचरी रहेगी । आपको कोई आपत्ति तो न होगी ?

जयसेन : तुम्हारी इच्छा सर्वोपरि है, वासव !

[**पूर्णिका का प्रवेश**]

पूर्णिका : आज्ञा, स्वामिनी !

वासव : तू बाहर ही रह गई थी ?

पूर्णिका : स्वामिनी ! आपके अभिसार की वस्तुएँ रथ पर सुसज्जित कर रही थी ।

वासव : और अपनी वस्तुएँ सुसज्जित कर लीं ?

पूर्णिका : मेरी वस्तुएँ कौन-सी हैं ! मेरी तो एकमात्र वस्तु आप हैं ।

वासव : मैं वस्तु हूँ ! [**अट्टहास**]

जयसेन : बाहर सामन्त-कुमार और अन्य नगर-श्रेष्ठि प्रतीक्षा में होंगे । मैं गमन-तूर्य का आदेश दे रहा हूँ ।

वासव : जैसी आर्य की इच्छा !

जयसेन : तुम मेरे साथ ही नीचे चलोगी, वासव ! मैं अभी आया । [**प्रस्थान**]

वासव : पूर्णिके ! अभिसार में मैं और मेरी वीणा दोनों ही तेरे हाथों में रहेंगी । तू समझी ?

पूर्णिका : समझती हूँ, देवि !

वासव : माध्वीक सुरा के चषक से मेरे कण्ठ का सौभाग्य जगा दे ।

पूर्णिका : जैसी आज्ञा ।

वासव : एक चषक आर्य जयसेन के लिए भी । वे आ रहे होंगे । हम दोनों साथ ही साथ चलेंगे ।

[**नेपथ्य में—'जन-कल्याणी वासवदत्ता की जय !'**]

[**तूर्य-नाद**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपसंहार

[तीस वर्ष के बाद]

स्थान : नगर-प्राचीर के बाहर
समय : अर्द्धरात्रि

[भयानक सन्नाटा । बीच-बीच में कुत्ते और सियारों के शब्द । कभी वायु जोर से चलकर वृक्षों को झकझोर देती है, जिससे निस्तब्धता और बढ़ जाती है । बीच-बीच में दूर से आता हुआ बाँसुरी का मन्द स्वर । सियारों के शब्द के बाद कराहने की आवाज आती है । एक पेड़ के नीचे वृद्धा वासवदत्ता जर्जर-शरीर पड़ी है । उसके अंग पर विषाक्त व्रण निकले हुए हैं और पीड़ा से वह कराह रही है । उसका समस्त शरीर काला पड़ गया है ।]

वासव : (सिसकी लेकर कराहते शब्दों में) आह ! दारुण पीड़ा है । अंगों के भीतर ज्वाला ! भयानक विष की ज्वाला जल रही है । फोड़ों से सारा अंग भर गया है । मैंने कितने पाप किए हैं, प्रभु ! कितने पाप...आह ! आज मेरे समीप कोई नहीं है !...मुझे नागरिकों ने प्राचीर के बाहर लाकर डाल दिया है जिससे मेरा विष किसी को न लगे ! विष...विष । तुम में विष नहीं है, नागरिको ! तुम्हारी वाणी का विष मेरे विष से भयानक है ! भयानक...हलाहल से भी भयानक । **(बंसी की तान सुन पड़ती है)** और यह अमृत ! यह अमृत की वर्षा कौन कर रहा है ! ......मैंने भी अमृत की वर्षा की थी । मदयन्तिका ...मदयन्तिका की दुर्बल रागिनी पर बंसी **(कराह भरी हँसी हँसकर)** बंसी के स्वर मैं बजा रही हूँ...मैं ही बजा रही हूँ । **(चौंककर)** ऐं, यह किसकी छाया है—पूर्णिके !...तू वहाँ खड़ी क्या कर रही है ? मेरे समीप आ...**(जोर से कराहते हुए)** पूर्णिके ! **(शिथिल स्वर से)** कोई नहीं है । पेड़ों की झुकी हुई डाल है । यह पूर्णिका नहीं बन सकती...नहीं बन सकती...मैंने तुझसे एक बार कहा था—कहीं मेरी कलाएँ घट जायँ, पूर्णिके ! अमावास्या हो जाय ! और आज अमावास्या हो गई, पूर्णिके ! अमावास्या, घोर अमावास्या ! **(सिसकियाँ लेने लगती है)** वासवदत्ता अब कहाँ है, वासवदत्ता ! जन-कल्याणी वासवदत्ता ! उसकी मधुयामिनी...अभिसार । नहीं, नहीं । **(सुनते हुए)** ऐं, तूर्य का नाद सुन पड़ता है ।...वह हुआ तूर्य-नाद । मेरे श्वेत-कौशेय का...रथ...फूलों की मालाएँ ...शीघ्र लाओ, जयसेन ! **(आदेश के स्वरों में)** शीघ्र लाओ ! **(रुककर)** हाय ! ...मैं किससे कह रही हूँ ! मेरे चारों ओर सूखी लताएँ झूल रही हैं । जर्जर वासवदत्ता के गले में इन्हें ही डाल दो । **(जोर से चीखकर)** डाल दो...नहीं तो मर जाऊँगी । **(स्वर धीमा होता जाता है)** मर...जाऊँगी...मर जाऊँगी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मरने से पहले आचार्य उपगुप्त से क्षमा नहीं माँग सकी । भन्ते ! तुमने कहा था किरण जब अस्त हो जाती है तो शरीर पर श्याम रेखाएँ पड़ जाती हैं । हाँ, पड़ जाती हैं । देखो, मेरा शरीर कितना काला हो गया ! सोने की भाँति दमकता हुआ वासवदत्ता का शरीर जलती हुई लकड़ी की भाँति हो गया । देव ! इस अधजले शरीर को अब तुम्हीं जला दो । आह ! कितनी पीड़ा है ! विलासी शरीर का अन्त...आज शृगालों के बीच में... **(सिसकती है । पदचाप की ध्वनि)** मेरा रुदन सुनने के लिए कोई आ रहा है । जी-भर कर सुन लो—आज वासवदत्ता रुदन कर रही है ! **[सिसकी]**

[आचार्य उपगुप्त का प्रवेश]

उपगुप्त : वासवदत्ता !

वासव : **(स्वर सँभालते हुए)** कौन पुकारता है ? मुझे कोई नहीं पहिचानता ?

उपगुप्त : मैं पहिचानता हूँ, देवि !

वासव : देवि ? 'देवि' कहकर कौन पुकारता है ? परिहास न करो, नागरिक !

उपगुप्त : मैं उपगुप्त हूँ ।

वासव : आचार्य ! **(सिसककर रोने लगती है)** आचार्य ! आप कहाँ, प्रभु ! प्रभु ! आज आपकी वासवदत्ता को वृक्ष के नीचे...वृक्ष के नीचे...... **[सिसकती है ।]**

उपगुप्त : मेरी गोद में अपना सिर रख लो, देवि ! मेरे कमंडल से शीतल जल पी लो ।

वासव : आपकी शीतल वाणी से ही सब कष्ट दूर हो गये, प्रभु ! आज दासी ने आपको पा लिया है । अब वह अपने आचार्य को नहीं छोड़ेगी...नहीं छोड़ेगी ।

उपगुप्त : तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा, देवि ! नागरिकों से पता पाया कि तुम किसी वृक्ष के नीचे डाल दी गई हो । खोजते-खोजते तुम्हें यहाँ पाया ।

वासव : प्रभु ! देखो मैं क्या हो गई हूँ ! सारा शरीर......

उपगुप्त : ओह ! सारे शरीर पर फोड़े उठ आये हैं । लाओ, इस शीतल चन्दन का लेप कर दूँ । तुम्हारी इस दशा की सूचना मुझे मिल गई थी ।

वासव : प्रभु ! वासवदत्ता पापिनी है । तुम दयामय हो, प्रभु ! तुम मेरे समीप आ गये......

उपगुप्त : तुम्हारे अभिसार की रात मैं तुम्हारे समीप नहीं रुक सका था, देवि ! मैंने कहा था जिस दिन समय आयेगा, उस दिन मैं स्वयं तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा ।

वासव : **(करुण स्वर में)** और मेरे प्रभु आ गये । ओह, प्रभु ! तुम्हारे हाथ का स्पर्श चन्दन से भी अधिक शीतल है । अब मुझे अपने साथ ले चलो, प्रभु !

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपगुप्त : अवश्य ले चलूँगा। मेरे साथ कहो :

[वासवदत्ता कराहते स्वर से दुहराती है।]

बुद्धं शरणं गच्छामि।

धम्मं शरणं गच्छामि।

संघं शरणं गच्छामि।

[धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 8 :

❖ स्वर्ण-श्री ❖

●

पात्र-परिचय

सम्राट् वृहद्रथ—पाटलिपुत्र के अंतिम मौर्य सम्राट्
पुष्यमित्र—सम्राट् वृहद्रथ के सेनापति और पुरोहित
नागदत्त, **स्वामिदत्त**—पुष्यमित्र की सेना में गुल्मपति
तेलियस—सम्राट् वृहद्रथ का मित्र, ग्रीक नायक
धारिणी—स्वामिदत्त की बहिन
मंजुगोपा—सम्राट् की तांबूल-वाहिनी
विलोमा—सम्राट् की अंगरक्षिका

●

काल—ई० पू० 185
स्थान—पाटलिपुत्र में सेना-शिविर
समय—दिन के लगभग दस बजे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वर्ण-श्री

[तूर्य की तीन बार ध्वनि होती है। दूर से आता हुआ जनता का सम्मिलित स्वर। कहीं-कहीं बीच में भारी स्वर से आदेश सुन पड़ता है—'सा व धा न' और उसके बाद ही किसी नारी का स्वर 'नहीं'...'नहीं'...'नहीं'। तीसरी बार का...'नहीं'...एक चीत्कार के रूप में होता है। जन-समूह का सम्मिलित स्वर—'यह नहीं हो सकता'...'यह नहीं हो सकता'...'यह नहीं होगा'...'हम अन्याय नहीं सहेंगे'...'हम विद्रोह करेंगे'...'हम विद्रोह करेंगे'...आदि धीरे-धीरे धीमा पड़ जाता है। उसके बाद ही नागदत्त भागता हुआ आता है और स्वामिदत्त जो तलवार लिए हुए शिविर के द्वार पर पहरा दे रहा है, अचानक रुक जाता है। नागदत्त भागकर आने के कारण हाँप रहा है। वह आते ही तेजी से स्वामिदत्त को सम्बोधित करता है]

नागदत्त : सा व धा न! (साँसों की गति तीव्र) स्वामिदत्त! जनता ने...जनता ने विद्रोह कर दिया है...वह आँधी की तरह भयानक हो उठी है।

स्वामिदत्त : आँधी लोहे की दीवाल नहीं तोड़ सकती, नागदत्त!

नागदत्त : लेकिन जनता की शक्ति ने ज्वालामुखी का रूप ले लिया है। राजधर्म का आदेश है...आदेश है कि......

स्वामिदत्त : उसे दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

नागदत्त : किन्तु जनता उत्तेजित हो उठी है। ज्वाला की जिह्वाओं की तरह वह बार-बार उठती है। टेढ़ी-तिरछी होकर वह सब दिशाओं को समेटना चाहती है और प्रत्येक वस्तु को वह श्मशान की भस्म बनाकर छोड़ देना चाहती है।

स्वामिदत्त : तब उसे बुझाने के लिए राज्य-शक्ति प्रलय-घन की तरह तड़प उठेगी।

नागदत्त : प्रलय-घन भी उसे नहीं बुझा सकेगा।

स्वामिदत्त : तुम सैनिक हो, नागदत्त! तुम्हें राज्य-शक्ति की आलोचना का अधिकार नहीं है।

नागदत्त : स्वामिदत्त! राज्य-धर्म की उचित आलोचना का अधिकार प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति को है। यदि राज्य-धर्म की उचित आलोचना न हो तो वह व्यवस्थित नहीं हो सकता। प्रजा का सुख ही राजधर्म की कसौटी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वामिदत्त : तुम प्रजा का पक्ष ले रहे हो, नागदत्त ! प्रजा राजद्रोह कर रही है, तुम भी राजद्रोह के अपराधी हो।

नागदत्त : किन्तु स्वामिदत्त ! मैं कहता हूँ कि राजद्रोह अपराध नहीं है। यदि राजाज्ञा निरंकुशता के महायान पर बैठकर आगे बढ़ना चाहती है तो......

स्वामिदत्त : तुम मर्यादा से आगे बढ़ रहे हो, नागदत्त ! तुम्हें सेनापति के सामने उत्तर देना होगा।

नागदत्त : मैं अपने प्राणों से उत्तर देने के लिए प्रस्तुत हूँ, स्वामिदत्त ! मैं सैनिक हूँ और उसी को सैनिक समझता हूँ जो प्रश्न का उत्तर प्राणों से दे सके।

स्वामिदत्त : तुम्हारे इस निर्णय की सूचना सेनापति को देनी होगी।

नागदत्त : तुम्हारी सूचना से पहले ही मेरे निर्णय की सूचना सेनापति की सेवा में पहुँच चुकी है। किन्तु स्वामिदत्त, तुम भी सैनिक हो। मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूँ कि क्या सैनिक मानव नहीं है ?

स्वामिदत्त : नहीं। वह केवल एक यन्त्र है जिसकी गति का निर्णय उसके नायक को है। सैनिक जीवन और मृत्यु में कोई अन्तर नहीं समझ सकता। वह केवल इसीलिए जीवित है कि वह नायक की आज्ञा से मृत्यु प्राप्त कर सके। इससे अधिक सैनिक का कोई अधिकार नहीं है।

नागदत्त : ऐसा सैनिक यदि स्वधर्म का सैनिक है तो उससे बढ़कर कोई न्याय नहीं है। किन्तु यदि वह सैनिक अधर्म का है तो उससे बढ़कर कोई अन्याय नहीं है। मैं स्वधर्म का सैनिक हूँ, अधर्म का नहीं।

स्वामिदत्त : यह सम्राट् की नीति से विद्रोह है और इस विद्रोह का दण्ड तुम्हें अवश्य मिलेगा।

नागदत्त : उसकी मुझे चिन्ता नहीं है, स्वामिदत्त ! किन्तु तथागत का आदेश है कि प्राणि-मात्र पर दया की जाय। मैं तथागत पर श्रद्धा रखता हूँ, इसलिए सैनिक होकर भी मैं मानव-धर्म में विश्वास रखता हूँ और प्राणि-मात्र पर दया करना चाहता हूँ।

स्वामिदत्त : पर न्यायाधिकरण तुम पर दया नहीं करेगा।

नागदत्त : न करे। किन्तु मैं सैनिक के स्वधर्म को महान् समझता हूँ। इसीलिए आज एक घटना से बहुत अधिक अशान्त हो गया हूँ।

स्वामिदत्त : कौन-सी घटना ?

नागदत्त : सुन सकोगे उसे ? सम्राट् की आज्ञा से एक निरपराध नारी आजीवन कारावास के दण्ड से दण्डित होने जा रही है।

स्वामिदत्त : नारी ने दण्डित होने का कार्य किया होगा। न्यायाधिकरण पुरुष और नारी में भेद नहीं करेगा।

नागदत्त : किन्तु नारी ने दण्डित होने का कोई कार्य नहीं किया।

स्वामिदत्त : इसका निर्णय कौन करेगा ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नागदत्त : जनता की सम्मिलित कंठ-ध्वनि। नारी का केवल यही अपराध है कि वह सुन्दरी है।

स्वामिदत्त : इसके अतिरिक्त ?

नागदत्त : इसके अतिरिक्त यही कि वह विदेशियों द्वारा संत्रस्त हुई और उसने अपनी रक्षा के लिए राज्य से सहायता माँगी।

स्वामिदत्त : सहायता माँगी ?

नागदत्त : हाँ, सहायता माँगी। किन्तु सम्राट् की सेना केवल वैदिक धर्म कुचलने के लिए है, नारी की रक्षा करने के लिए नहीं। इसलिए जनता ने विद्रोह किया है। वह सेनापति पुष्यमित्र के निवास की ओर गई है।

स्वामिदत्त : और वह नारी कहाँ है ?

नागदत्त : मेरे संरक्षण में।

स्वामिदत्त : उसका नाम ?

नागदत्त : धारिणी।

स्वामिदत्त : (**चौंककर**) धारिणी ?

नागदत्त : हाँ, धारिणी। चौंक क्यों उठे ?

स्वामिदत्त : धारिणी मेरी बहिन का नाम है, नागदत्त !

नागदत्त : तो इस नाम की अन्य स्त्रियाँ भी तो हो सकती हैं।

स्वामिदत्त : तुम...तुम उस स्त्री को दिखला सकोगे ?

नागदत्त : क्यों ? सैनिक तो यन्त्र की भाँति है, जिसकी गति का निर्णय उसके नायक को है, जैसा तुम कह चुके हो अभी।

स्वामिदत्त : नागदत्त ! मैं उस स्त्री को देखना चाहता हूँ।

नागदत्त : क्यों, सैनिकों के पास आँखें भी होती हैं ?

स्वामिदत्त : नागदत्त, तुम मुझ पर व्यंग्य कर रहे हो। मैं उस स्त्री को देखना चाहता हूँ।

नागदत्त : फिर तुम न्यायाधिकरण का साथ दोगे या धारिणी का ?

स्वामिदत्त : उस स्त्री को देखकर निर्णय दूँगा।

नागदत्त : तब तुम भी सैनिकों के निर्णय में विश्वास रखते हो ? ठीक है, मैं वह स्त्री तुम्हें दिखलाऊँगा। (**पुकारकर**) धनंजय !

[धनंजय का प्रवेश]

धनंजय : आदेश !

नागदत्त : धारिणी को उपस्थित करो !

धनंजय : जो आज्ञा। [**प्रस्थान**]

नागदत्त : स्वामिदत्त ! प्रजा का असन्तोष केवल इस बात पर है कि सम्राट् वृहद्रथ ने अपना अभिषेक होने पर यह घोषणा की थी कि उनके शासन का सबसे बड़ा आदर्श यह होगा कि विदेशी दस्युओं से प्रजा की रक्षा हो; किन्तु सम्राट् ने

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी आँखों के सामने देखा है कि धारिणी का अपहरण हुआ।

स्वामिदत्त : अपनी आँखों के सामने ?

नागदत्त : हाँ, अपनी आँखों के सामने। वे इन्द्रगज पर बैठकर वन-विहार के लिए जा रहे थे और धारिणी वन से यज्ञ के लिए समिधि ला रही थी। उसी समय तेलियस नामक यवन ने उसका अपहरण किया।

[धनंजय का प्रवेश]

धनंजय : धारिणी उपस्थित है, गुल्मपति !

नागदत्त : उसे सामने लाओ। नहीं, उसे यहाँ भेजकर अपना स्थान ग्रहण करो।

धनंजय : जो आज्ञा। **[प्रस्थान]**

नागदत्त : धारिणी आ गई। वह तुम्हारी बहिन न हो, यही मैं चाहता हूँ।

[धारिणी का प्रवेश]

धारिणी : **(चीखकर)** स्वामिदत्त !

स्वामिदत्त : **(सहमकर)** बहिन !

धारिणी : **(सिसकियाँ लेती हुई)** बहिन मत कहो मुझे। धारिणी तुम्हारी बहिन नहीं है, स्वामिदत्त ! तुम्हारे रहते उसका अपहरण हुआ है। **[घुटनों के बल गिर पड़ती है।]**

स्वामिदत्त : तुम्हारा अपहरण हुआ, बहिन ! यह कैसे हुआ ? उठो !

धारिणी : **(सिसकियाँ लेती हुई)** मेरा भाग्य ही जब धूल में मिल गया, तब उठकर क्या करूँगी। मैं लांछित हुई। मैंने न्याय-माँगा, पर न्याय के स्थान पर मुझे दण्ड मिला। मैंने न्याय क्यों माँगा ? मैं कलंकित क्यों नहीं हुई ? पाटलिपुत्र की नारी अपनी पवित्रता की रक्षा करने पर आज दण्डित हो रही है ! **[सिसकियाँ]**

स्वामिदत्त : मैं लज्जित हूँ, बहिन ! मैं नहीं जानता कि मुझे क्या करना चाहिए। तुम्हारे आँसुओं से मुझे पीड़ा हो रही है।

धारिणी : मेरे जीवन में आँसुओं के सिवाय और रह क्या गया ? इन्हीं आँसुओं में अपनी आयु डुबाती रहूँगी। न्याय की भीख में मुझे कारावास जो मिला है।

स्वामिदत्त : न्याय की भीख में कारावास ?

धारिणी : हाँ, कारावास। किन्तु मुझे कारावास का दण्ड नहीं चाहिए। मुझे मृत्यु का दण्ड चाहिए।...मैं मृत्यु का दण्ड चाहती हूँ। मेरे अपराध का दण्ड......

स्वामिदत्त : तुमने कोई अपराध नहीं किया, बहिन ! अपराध तो मैंने किया है कि सैनिक होकर भी मैं तुम्हें इस अवस्था में देख रहा हूँ और रक्षा करने में असमर्थ हूँ।

धारिणी : अब नारियों की रक्षा करना सैनिका का धर्म नहीं रह गया। सैनिक तो अब नारियों को लांछित करने के लिए रखे गये हैं। मैं यह लांछन बार-बार सहन नहीं करना चाहती, इसलिए मृत्यु का दण्ड चाहती हूँ। भाई मुझ, पर यह कृपा करो। मैं हाथ जोड़कर यही भिक्षा माँगती हूँ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नागदत्त : सब सुन चुके, स्वामिदत्त ! यह भिक्षा अपनी बहिन को दे दो न ?

स्वामिदत्त : मैं लज्जित हूँ, बहिन ! मेरी प्रार्थना है कि तुम शान्त हो जाओ।

नागदत्त : मैं भी तुम्हारा एक भाई हूँ, बहिन ! मैं तुम्हारे लांछन का प्रतिकार करूँगा। तुम्हारी सब तरह से रक्षा करूँगा। तुम मुझे अपना विवरण दो।

धारिणी : अपनी कलंक-कथा कितनी बार दुहराऊँ ? मैं महाकान्तार से लौट रही थी। उसी समय तेलियस नामक यवन ने मुझे पीछे से पकड़ना चाहा।

स्वामिदत्त : यवन तेलियस ?

धारिणी : हाँ, यही नाम मैंने सुना। उस समय सम्राट् इन्द्रगज पर बैठकर, वन-विहार के लिए जा रहे थे। मैंने पुकारकर कहा—'सम्राट् ! मेरी रक्षा कीजिए।' और सम्राट् ने सैनिकों को आज्ञा नहीं दी कि वे मेरी रक्षा करें।

नागदत्त : सम्राट् ने रक्षा करने की आज्ञा नहीं दी ?

धारिणी : नहीं।

स्वामिदत्त : तेलियस सम्राट् का विश्वासपात्र नायक है।

नागदत्त : फिर तुम्हारी रक्षा कैसे हुई, देवी !

धारिणी : मेरे क्रन्दन से महाकान्तार के कुछ श्रमिक दौड़ पड़े। उन्होंने तेलियस को घेर लिया और मुझे बच निकलने का अवसर दे दिया।

नागदत्त : सम्राट् ने कोई प्रतिरोध नहीं किया ?

धारिणी : वे तत्क्षण लौट पड़े और उन्होंने दण्डनायक को आज्ञा दी कि तेलियस को जो कष्ट हुआ है उसके लिए उसे पुरस्कार दिया जावे और श्रमिकों को दण्ड।

नागदत्त : और तुम्हारे सम्बन्ध में, देवी !

धारिणी : मुझे आजीवन कारावास।

स्वामिदत्त : क्यों ?

धारिणी : इसलिए कि मैंने तेलियस के समक्ष आत्म-समर्पण नहीं किया।

नागदत्त : पाटलिपुत्र में यवनों के समक्ष नारियों का आत्म-समर्पण क्या न्याय है, स्वामिदत्त !

[स्वामिदत्त मौन है।]

नागदत्त : तुम मौन क्यों हो ? उत्तर दो।

धारिणी : सारी प्रजा भी पुकार-पुकारकर कह रही है कि यह न्याय नहीं है। इसीलिए वह संगठित होकर सेनापति पुष्यमित्र के समक्ष निवेदन करने गई है।

स्वामिदत्त : और हमारी माँ कहाँ है ?

धारिणी : **(फूटकर)** उन्होंने इस राजाज्ञा को सुनकर नगर के सिंहद्वारे से अपना सिर टकरा लिया और उनके सिर के रक्त की धार बह निकली है। वे चीत्कार कर 'नहीं', 'नहीं' कहती हुई जनता का सहारा लिए न्याय के लिए गई हैं।

स्वामिदत्त : शान्त होओ, बहिन !

धारिणी : यदि मुझे प्राणदण्ड दिया जाता तो मैं शान्त रहती, किन्तु जीवित रहकर

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैं अपना कलंक जीवित नहीं रखना चाहती।

नागदत्त : मैं बहुत दुखी हूँ, देवी !

धारिणी : (**बिलखकर**) आज पाटलिपुत्र की नारी अपनी रक्षा नहीं कर सकती। यदि वह सम्राट् से अपनी रक्षा की प्रार्थना करती है तो सम्राट् अपनी राजनीति में नारी को ही दण्डित करना चाहते हैं। मैं जीवित नहीं रहूँगी।

स्वामिदत्त : (**चीखकर**) बहिन !

धारिणी : (**सिसकते हुए**) भाई स्वामिदत्त, मैं तुमसे भिक्षा माँगती हूँ कि तुम अपनी तलवार से मेरा सिर काट दो। मेरे रक्त से तुम मेरा कलंक धो दो।

नागदत्त : स्वामिदत्त ! स्वीकार करो अपनी बहिन की प्रार्थना। तुम्हारी तलवार राजधर्म का पालन करना जानती है।

स्वामिदत्त : (**स्तंभित होकर**) राजधर्म का पालन !

नागदत्त : हाँ, राजधर्म का पालन। जिस सम्राट् को नारी की रक्षा में नारी के दण्ड की व्यवस्था करनी पड़ती है, उस सम्राट् को नारी की मृत्यु से प्रसन्नता ही होगी। और जब उसकी मृत्यु उसके भाई के हाथों हो, तुम पुरस्कार के अधिकारी होगे।

स्वामिदत्त : बहिन, मैं बार-बार लज्जित हूँ। तुम्हारी यह दशा देखकर मैं अपनी राज-सेवा को कलंक का अभिशाप समझता हूँ।

धारिणी : पर क्या तुम अपनी बहिन को जीवन के अभिशाप से तड़पती हुई देखोगे ? यवन ने उसके अपहरण की चेष्टा की। उसका स्पर्श किया। ओह ! उसका स्पर्श अभी तक शर्प-दंशन की भाँति मेरे शरीर में ज्वाला की लपटें उठा रहा है। उससे मेरा सारा हृदय जल रहा है। मैं जीवित नहीं रहना चाहती। भाई ! मैं जीवित नहीं रहना चाहती। मृत्यु की यन्त्रणा भी उस स्पर्श से हलकी होगी। मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो ! [**सिसकियाँ**]

नागदत्त : किन्तु तुम पवित्र हो, बहिन ! मृतक शरीर गंगा का स्पर्श करते हैं, पर गंगा अपवित्र नहीं होती।

स्वामिदत्त : (**क्षुब्ध होकर**) नागदत्त ! मेरी बहिन को यहाँ से ले जाओ। मैं उसे इस रूप में नहीं देख सकता।

नागदत्त : (**पुकारकर**) धनंजय !

[**धनंजय का प्रवेश**]

धनंजय : आदेश !

नागदत्त : आर्या धारिणी को यहाँ से ले जाओ।

धनंजय : जो आज्ञा। (**धारिणी से**) देवी ! आदेश का पालन करें।

धारिणी : (**बिलखकर**) स्वामिदत्त ! स्वामिदत्त ! यदि तुम अपनी तलवार से मेरा मस्तक नहीं काट सकते तो इस सैनिक को आज्ञा दो कि यह कार्य वह पूरा कर दे। मैं जीवित नहीं रहना चाहती। मैं जीवित नहीं रहूँगी...। नहीं रहूँगी...।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[धनंजय धारिणी को ले जाता है। नेपथ्य में क्षीण होता हुआ स्वर—"मैं जीवित नहीं रहूँगी।"]

[एक क्षण स्तब्धता]

नागदत्त : क्या सोच रहे हो, स्वामिदत्त ! तुम राजाज्ञा का साथ दोगे या अपनी बहिन का ?

स्वामिदत्त : **(चीखकर)** मेरी राजभक्ति में आग लग रही है, नागदत्त ! उससे मेरा रोम-रोम जल रहा है।

नागदत्त : यह पहला अवसर नहीं है, स्वामिदत्त, जब नारी लांछित हुई है। इसके पहले भी न जाने कितनी स्त्रियों ने आत्महत्याएँ की हैं, न जाने कितनी स्त्रियों का यवनों द्वारा अपहरण हुआ है, और राजदण्ड अपने स्वार्थ की छाया में ऊँघता रहा है। आज तुमने अपनी आँखों के सामने अपनी बहिन को लांछित होते देखा है। तुम अधिकतर पांचाल में रहे। इस कारण इन बातों से अधिक परिचित नहीं हो। पर मैं तुमसे यही कहना चाहता हूँ कि आज पाटलिपुत्र के सैनिक राजसिंहासन के नीचे गढ़े हुए सिंहों की तरह निर्जीव और शोभा की वस्तु ही रह गये हैं। सम्राट् की आज्ञा धूमकेतु की भाँति समय-कुसमय अपनी भयानक लम्बाई में......

[नेपथ्य में तीव्र तुमुल। दूर "पुष्यमित्र की जय" का घोष]

नागदत्त : **(स्वगत)** क्या आर्य पुष्यमित्र यहाँ आ रहे हैं ? **(स्वामिदत्त से)** हाँ, आर्य पुष्यमित्र ही आ रहे हैं। सम्भवतः वे शिविर देखने के लिए आये हों।

स्वामिदत्त : उनके सामने मैं इस घटना के सम्बन्ध में निवेदन करना चाहूँगा।

नागदत्त : क्या तुम समझते हो कि उन्हें इस घटना के सम्बन्ध में सूचना न मिली होगी ? वे सेनापति हैं और राजपुरोहित भी। पाटलिपुत्र में कोई ऐसी घटना नहीं होती जिसकी सूचना उन तक नहीं पहुँचती। और हाँ, महाकान्तार के लोग तो उनकी सेवा में पहुँच ही गये होंगे।

[नेपथ्य में पुष्यमित्र का स्वर]

पुष्यमित्र : यह नागदत्त और स्वामिदत्त का शिविर है ?

उत्तर : हाँ, आचार्य !

पुष्यमित्र : वे अपने कर्त्तव्य पर नियत हैं ?

उत्तर : हाँ, आचार्य !

[शंख की ध्वनि होती है। आचार्य पुष्यमित्र का प्रवेश]

नागदत्त : आर्य को प्रणाम !

स्वामिदत्त : आर्य को प्रणाम !

पुष्यमित्र : गुल्मपति ! सावधान हो ?

नागदत्त : आर्य, सावधान हूँ !

पुष्यमित्र : गुल्मपति स्वामिदत्त ! तुम्हारे परिवार के सभी व्यक्ति कुशलता से हैं ?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वामिदत्त : (**व्यथित स्वर में**) आर्य ! मेरा निवेदन है...मेरा निवेदन है......

पुष्यमित्र : सैनिकों का यह स्वर नहीं है, स्वामिदत्त ! सूर्य की किरण की भाँति उनकी वाणी स्पष्ट और सीधी होनी चाहिए। सैनिकों की वाणी कवि की वाणी नहीं है, वह वैयाकरण की वाणी है जो नियमों से शासित होकर स्पष्ट कंठ से निकलना जानती है।

स्वामिदत्त : क्षमा हो, आर्य !

पुष्यमित्र : गुल्मपति स्वामिदत्त ! महाकान्तार कहाँ है, जानते हो ?

स्वामिदत्त : पाटलिपुत्र के दक्षिण में, आर्य !

पुष्यमित्र : दक्षिण नहीं, आग्नेय कोण में, स्वामिदत्त !

स्वामिदत्त : क्षमा हो, आर्य ! मैं अधिक दिनों तक पांचाल में रहा हूँ।

पुष्यमित्र : इसीलिए क्षम्य हो। महाकान्तार दक्षिण में नहीं, आग्नेय में है।

स्वामिदत्त : दक्षिण और पूर्व के मध्य कोण में।

पुष्यमित्र : और आग्नेय में अग्नि की ज्वाला धधक उठी है, जानते हो ?

स्वामिदत्त : जानता हूँ, आर्य !

पुष्यमित्र : गुल्मपति स्वामिदत्त ! तुम्हें ही इस आग की ज्वाला शान्त करनी है।

स्वामिदत्त : यह आग की ज्वाला कान्तार के साथ-साथ मेरे परिवार......

पुष्यमित्र : भावुक मत बनो, स्वामिदत्त ! तुम सैनिक हो। राजाज्ञा वज्र की तरह है। जिस दिशा में गिरना चाहती है, उस दिशा में गिरती है। कोई शक्ति उसकी दिशा और गति में परिवर्तन नहीं कर सकती।

स्वामिदत्त : सत्य है, आर्य !

पुष्यमित्र : और महाकान्तार की जनता को दण्डित करने की व्यवस्था तुम्हें ही करनी होगी।

स्वामिदत्त : जो आज्ञा, आर्य !

पुष्यमित्र : और एक अपमानिता नारी भी दण्डित हुई है।

स्वामिदत्त : (**तेजी से**) धारिणी !

पुष्यमित्र : तुम्हारी बहिन ! उसके आजीवन कारावास में उसे जो यन्त्रणाएँ मिलनी हैं उनके निर्धारण के लिए सम्राट् की ओर से तुम नियुक्त हुए हो।

स्वामिदत्त : (**विकल होकर**) आर्य !

पुष्यमित्र : यह राजाज्ञा है। सम्राट् बृहद्रथ की आज्ञा शस्त्र की वह धार है जिस पर चलने का साहस किसी में नहीं है।

स्वामिदत्त : आर्य ! एक प्रार्थना है।

पुष्यमित्र : इस संबंध में कोई प्रार्थना स्वीकार नहीं होगी।

स्वामिदत्त : मैं अपने संबंध में प्रार्थना करना चाहता हूँ, आर्य !

पुष्यमित्र : निवेदन करो !

स्वामिदत्त : मैं अपने पद-त्याग की प्रार्थना करना चाहता हूँ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुष्यमित्र : सुनी जायगी। किन्तु तुम्हारी प्रार्थना के पूर्व ही राजाज्ञा हो चुकी है। राजाज्ञा की पूर्ति के अनन्तर ही तुम मुक्त किए जा सकते हो।

स्वामिदत्त : मेरी बहन को जो यन्त्रणाएँ दी जाने को हैं, आर्य, उनके...उनके लिए राजाज्ञा में कुछ संशोधन...

पुष्यमित्र : सावधान, स्वामिदत्त ! सीमा से आगे बढ़ने का अधिकार किसी सैनिक को नहीं है। (**नागदत्त से**) नागदत्त ! तुम इस बात का ध्यान रखोगे कि स्वामिदत्त आत्महत्या नहीं करेंगे।

नागदत्त : जो आज्ञा, आर्य !

पुष्यमित्र : मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यदि स्वामिदत्त ने आत्महत्या का प्रयत्न किया तो वह उसकी बहिन धारिणी के भविष्य जीवन के लिए और भी यंत्रणाकारक सिद्ध होगा। इस बात का ध्यान स्वामिदत्त को रखना चाहिए। और हाँ, तुम्हें इस बात की सूचना है कि सम्राट् थोड़ी ही देर में सैन्य-निरीक्षण करेंगे ?

नागदत्त : इस बात की सूचना बहुत पहले से घोषित कर दी गई है, आर्य !

पुष्यमित्र : सभी गुल्मों के सैनिकों की उपस्थिति आवश्यक होगी, नागदत्त ! जो सैनिक अनुपस्थित होगा उसके दंड की व्यवस्था होगी।

नागदत्त : जो आज्ञा, आर्य !

पुष्यमित्र : आर्य ! आज सम्राट् की इच्छानुसार एक विशेष बात होगी। सम्राट् चाहते हैं कि मेरी धनुर्विद्या का कौशल भी मेरे सैनिक देखें।

नागदत्त : आपकी धनुर्विद्या तो अद्वितीय है, आर्य ! आपका कौशल देखकर सैनिक कृतार्थ हो जावेंगे।

पुष्यमित्र : यह सुनकर मैं प्रसन्न हूँ। यह मेरे सैनिकों का मेरे प्रति स्नेह है।

नागदत्त : नहीं, आर्य ! ये आपके गुण हैं। प्रजा का असंतोष आपने दूर किया है। जन-संपत्ति की सुरक्षा आपके द्वारा हुई है। बाहरी शत्रु का भय आपने दूर किया है और सेना का वेतन आपने अपने कोष से दिया है। पिता भी अपने पुत्र का वैसा ध्यान नहीं रखता जैसा आपने रखा है।

पुष्यमित्र : यह सेनापति पुष्यमित्र का कर्त्तव्य है।

नागदत्त : समस्त सेना का आप पर पूर्ण विश्वास है, आर्य !

[**धनंजय प्रवेश करता है और पुष्यमित्र को प्रणाम करता है।**]

धनंजय : आर्य की सेवा में प्रणाम स्वीकार हो !

पुष्यमित्र : कौन, धनंजय ! क्या समाचार है ?

धनंजय : आर्य ! मंजुगोपा सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा चाहती है।

पुष्यमित्र : (**सोचते हुए**) मंजुगोपा ! सम्राट् तांबूल-वाहिनी ! उसकी गति सर्वत्र है। आने की आज्ञा सुनाओ !

धनंजय : जो आज्ञा !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुष्यमित्र : स्वामिदत्त ! मैं देखता हूँ कि राजाज्ञा ने तुम्हें मलीन कर दिया है, मैं अपने सैनिकों की निर्बलता से लज्जित हूँ।

स्वामिदत्त : आर्य ! मैं क्षमा चाहता हूँ।

पुष्यमित्र : सैनिक की क्रियाशीलता सागर की वह तरङ्ग है जो सेनापति की इच्छा-वायु का संकेत पाकर आकाश के हृदय में समा जाती है और दूसरे क्षण पृथ्वी पर गिरते हुए भी दिशाओं को अपने संगीत से निनादित कर देती है। स्वामिदत्त ! तुम्हें भी ऐसी शक्ति का परिचय देना है।

स्वामिदत्त : मैं इससे अधिक शक्ति का परिचय देना चाहता हूँ, आर्य !

[धनंजय का पुनः प्रवेश]

धनंजय : (**प्रणाम करता हुआ**) आर्य की सेवा में प्रणाम ! मंजुगोपा उपस्थित हैं, आर्य !

पुष्यमित्र : उपस्थित हों !

नागदत्त : मंजुगोपा का इस स्थान पर आना रहस्यमय है, आर्य !

पुष्यमित्र : मैं एकांत चाहूँगा, नागदत्त ! तुम स्वामिदत्त के साथ बाहरी कक्ष में विश्राम लो।

नागदत्त : जो आज्ञा !

पुष्यमित्र : और सुनो ! स्वामिदत्त की रक्षा हो।

नागदत्त : जो आज्ञा !

पुष्यमित्र : स्वामिदत्त ! अपने विवेक से काम लो। तुम्हारा पुष्यमित्र पर विश्वास हो।

स्वामिदत्त : जो आज्ञा !

पुष्यमित्र : अब तुम दोनों शिविर के बाहरी द्वार पर स्थान ग्रहण करो।

नागदत्त : प्रणाम, आर्य !

स्वामिदत्त : प्रणाम, आर्य !

पुष्यमित्र : पाटलिपुत्र के सच्चे सैनिक बनो।

[नागदत्त और स्वामिदत्त का प्रस्थान]

पुष्यमित्र : मंजुगोपा का इस स्थान और इस समय पर आना भविष्य की भूमिका है...भविष्य की...भूमिका। [**सोचते हुए टहलते हैं।**]

[मंजुगोपा का प्रवेश]

मंजुगोपा : आर्य की सेवा में मंजुगोपा का प्रणाम स्वीकार हो।

पुष्यमित्र : सम्राट् की कृपापात्री बनो।

मंजुगोपा : आर्य ! सम्राट् ने एक विशेष इच्छा प्रकट की है। उसकी पूर्ति की आशा से मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुई हूँ।

पुष्यमित्र : सम्राट् की इच्छा मेरा गौरव है, मंजुगोपा !

मंजुगोपा : आर्य ! सम्राट् की इच्छा यह है कि आज आपकी धनुर्विद्या का कौशल इस

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार हो कि सम्राट् के परम-मित्र तेलियस भी प्रसन्न हों।

पुष्यमित्र : मैं इसका पूर्ण प्रयत्न करूँगा, मंजुगोपा, कि सम्राट् और उनके परम-मित्र तेलियस जैसी धनुर्विद्या की आशा मुझसे करते हैं उससे भी श्रेष्ठ धनुर्विद्या का प्रदर्शन मैं उनके समक्ष कर सकूँ।

मंजुगोपा : आर्य ! सम्राट् जानना चाहते हैं कि आप कैसी धनुर्विद्या का प्रदर्शन करेंगे।

पुष्यमित्र : यह सम्राट् की इच्छा पर निर्भर है।

मंजुगोपा : आर्य ! क्षमा करें। सम्राट् कुछ संकेत चाहते हैं।

पुष्यमित्र : तो उनसे निवेदन करो, देवि, कि मैं शिविर-भूमि में लक्ष्य-केन्द्र पर चारों दिशाओं में चार काष्ठ-दंड गाड़ दूँगा, जिनके ऊपरे सिरे सुलगते हों। मेरे बाण की गति इतनी तीव्र होगी कि प्रत्येक बाण के वायु-वेग से प्रत्येक दिशा के सुलगते काष्ठ-दंडों से ज्वालाएँ निकलने लगें और अन्त में चारों ज्वालाएँ मिल कर एक हो जावें।

मंजुगोपा : यह कौशल सराहनीय है, आर्य ! बाण-विद्या आपको पाकर कृतार्थ हुई है।

पुष्यमित्र : मंजुगोपे ! सम्राट् की प्रशंसा के लिए शब्द शेष रहें, इसका ध्यान रहे।

मंजुगोपा : सेनापति होकर भी आप जनता के हृदय के सम्राट् हैं। पाटलिपुत्र में ऐसा कोई सेनापति नहीं हुआ। सम्राट् ने एक इच्छा और प्रकट की है, आर्य !

पुष्यमित्र : मैं सुनने का अभिलाषी हूँ।

मंजुगोपा : उसे स्पष्ट करने में मुझे लज्जा और ग्लानि हो रही है।

पुष्यमित्र : मंजुगोपे ! यह सम्राट् की इच्छा का अपमान है। उनकी प्रत्येक इच्छा स्पष्ट कंठ से कही जाने की शक्ति रखती है। लज्जा और ग्लानि के बादल से उनकी इच्छा की विद्युत् छिप नहीं सकती। सम्राट् की आज्ञा स्पष्ट कहो।

मंजुगोपा : आर्य ! क्षमा करें। सम्राट् ने इच्छा प्रकट की है कि इस अवसर पर उनके परम-मित्र तेलियस का मनोरंजन भी होना चाहिए।

पुष्यमित्र : क्या मेरी धनुर्विद्या उनका यथेष्ट मनोरंजन न कर सकेगी ?

मंजुगोपा : उससे तो अनिर्वचनीय मनोरंजन होगा ही, किन्तु नायक तेलियस इसके अतिरिक्त भी मनोरंजन चाहते हैं।

पुष्यमित्र : किस प्रकार का ?

मंजुगोपा : वे नृत्य देखना चाहते हैं।

पुष्यमित्र : किसका ?

मंजुगोपा : धारिणी का।

पुष्यमित्र : धारिणी का ? वह धारिणी जिसका नायक तेलियस ने अपहरण करना चाहा था ?

मंजुगोपा : किन्तु नहीं कर सका। उनका कथन है कि आर्य पुष्यमित्र के संकेत से कुछ श्रमिकों ने बीच में बाधा डाल दी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुष्यमित्र : मेरे संकेत से ?

मंजुगोपा : हाँ, आर्य ! क्षमा हो।

पुष्यमित्र : नायक तेलियस सम्राट् के परम-मित्र हैं। वे सब कुछ कह सकते हैं। उनका अधिकार है कि वे अपनी वाणी का प्रयोग चाहे जिस प्रकार से करें।

मंजुगोपा : जनता भी ऐसा सोचती है, आर्य !

पुष्यमित्र : सम्राट् की वन-यात्रा के कारण मेरा शिविर महाकान्तार में रहना आवश्यक था। यदि मेरे शिविर के समीप श्रमिकों ने अपहरण में बाधा डाली तो नायक तेलियस को मेरे संकेत की संभावना में विश्वास हो सकता है; किन्तु सम्राट् से निवेदन करने से पूर्व नायक तेलियस को शासन-व्यवस्था के अनुसार सेनापति से उत्तर माँगना चाहिए और सेनापति पुष्यमित्र उसका उत्तर देता।

मंजुगोपा : नायक तेलियस सम्राट् के मित्र हैं और सम्राट् अपने मित्र की इच्छा का बड़ा आदर करते हैं। व्यवस्था के प्रतिकूल भी सम्राट् नायक के कथन पर ध्यान देंगे।

पुष्यमित्र : यह सम्राट् की इच्छा।

मंजुगोपा : फिर, आर्य ! धारिणी के नृत्य की व्यवस्था हो सकेगी ?

पुष्यमित्र : अवश्य होगी। सम्राट् से निवेदन करो कि अपमानित होने पर भी धारिणी नायक तेलियस के मनोरंजन के लिए अवश्य नृत्य करेगी; किन्तु उसका नृत्य मेरी धनुर्विद्या के प्रदर्शन के बाद होगा।

मंजुगोपा : यदि सम्राट् कारण जानना चाहेंगे तो मैं क्या निवेदन करूँगी, आर्य !

पुष्यमित्र : सम्राट् की सेवा में यह उत्तर निवेदन करना कि पहले सेनापति पुष्यमित्र का सौभाग्य होना चाहिये कि वह अपने सम्राट् और उनके मित्र नायक तेलियस को प्रसन्न करे। उसके बाद अन्य नागरिकों के सौभाग्य की बात है।

मंजुगोपा : जैसी आज्ञा, आर्य ! मैं अब जाने की अनुमति चाहती हूँ। सम्राट् ने शीघ्र ही यहाँ आने की इच्छा प्रकट की है।

पुष्यमित्र : निवेदन करो कि उनके स्वागत की पूर्ण व्यवस्था है।

मंजुगोपा : जैसी आज्ञा ! आर्य की सेवा में प्रणाम करती हूँ।

पुष्यमित्र : सम्राट् की कृपापात्री बनो।

[मंजुगोपा का प्रस्थान]

पुष्यमित्र : **(टहलते हुए)** नायक तेलियस का सन्देह...। सम्राट् का सेनापति पुष्यमित्र यवन तेलियस के मनोरंजन के लिए धनुर्विद्या का प्रदर्शन करें...। अपमानिता नारी को और भी अधिक लाँछित करने के लिए उसके नृत्य की माँग करे...। सम्राट् प्रजा से अधिक यवन को सम्मान दें...। उसका मनोरंजन प्रजा की सुरक्षा से अधिक मूल्य रखता है...अधिक मूल्य रखता है...। पर मेरे बाणों का कौतूहलपूर्ण प्रदर्शन और धारिणी का नृत्य अवश्य होगा...अवश्य होगा...। **(पुकारकर)** धनंजय !

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[धनंजय का प्रवेश]

धनंजय : आदेश, आर्य !

पुष्यमित्र : गुल्मपति नागदत्त और स्वामिदत्त को यहाँ आने की सूचना दो।

धनंजय : जो आज्ञा, आर्य !

पुष्यमित्र : सम्राट् बृहद्रथ का आदेश...धारिणी का नृत्य...आग पानी की तरलता प्राप्त करे और पानी आग की उष्णता में अपने को उतारने की चेष्टा करे।

[नागदत्त और स्वामिदत्त का प्रवेश]

नागदत्त : आर्य की सेवा में प्रणाम !

स्वामिदत्त : आर्य की सेवा में प्रणाम !

पुष्यमित्र : पाटलिपुत्र के यशस्वी सैनिक बनो। स्वामिदत्त ! मुझे प्रसन्नता है कि तुम्हारे पास सैनिक शिष्टता का विवेक है; तुम भावुक नहीं हो। मैंने जान-बूझ कर तुम्हें नागदत्त के साथ रहने का अवसर दिया। तुम चाहते तो आत्महत्या कर सकते थे। नागदत्त ! स्वामिदत्त ने आत्महत्या की इच्छा प्रकट तो नहीं की ?

नागदत्त : नहीं, आर्य !

पुष्यमित्र : स्वामिदत्त के मन की प्रवृत्ति किस दिशा में थी ?

नागदत्त : सत्ता के प्रति ही उनके हृदय में आक्रोश था।

पुष्यमित्र : स्वामिदत्त ! सत्ता किसी के साथ पक्षपात नहीं कर सकती। तुम स्वस्थ बनो। हाँ, मंजुगोपा ने सूचना दी है कि सम्राट् अपने परम-मित्र तेलियस के साथ शीघ्र ही सैन्य-निरीक्षण के लिये आवेंगे। किन्तु सैन्य-निरीक्षण के पूर्व वे मेरी धनुर्विद्या का कौशल भी देखना चाहेंगे।

नागदत्त : उसका निर्देश आर्य ने किया था।

पुष्यमित्र : इस कौशल के प्रदर्शन की सामग्री तुम्हें उपस्थित करनी होगी, स्वामिदत्त !

स्वामिदत्त : मैं आज्ञा के लिए प्रस्तुत हूँ।

पुष्यमित्र : सम्राट् जिस मंच पर तेलियस के साथ आसन ग्रहण करेंगे उससे तीस अक्ष की दूरी पर पूर्व की ओर बीस अंगुष्ठ-वर्ग में चारों कोनों पर अँगारों के रूप में सुलगते हुए काष्ठ-दंड खड़े करने होंगे। मेरे चार बाणों के वेग से उत्पन्न वायु से इन चारों काष्ठ-दंडों में ज्वालाएँ जलेंगी।

नागदत्त : यह आश्चर्यजनक बाण-विद्या है, आर्य !

स्वामिदत्त : आज यह देखकर हम सब कृतार्थ होंगे। मैं शीघ्र ही इस सामग्री की व्यवस्था करूँगा।

पुष्यमित्र : अच्छा जाओ, गुल्मपति स्वामिदत्त ! इसकी पूर्ण व्यवस्था करो।

स्वामिदत्त : आर्य की सेवा में प्रणाम ! **[प्रस्थान]**

पुष्यमित्र : **(स्वामिदत्त के जाने की दिशा में देखते हुए)** गये। मुझे स्वामिदत्त के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनोभावों से सहानुभूति है। राजनीति मस्तिष्क का संकेत है और मनोभाव हृदय का। मस्तिष्क और हृदय दो भिन्न दिशाओं में नहीं चल सकते।

नागदत्त : आपको हृदय की सही पहिचान है, आर्य !

पुष्यमित्र : (**सोचते हुए**) नागदत्त ! तुम्हें भी एक विशेष प्रदर्शन की सामग्री उपस्थित करनी है।

नागदत्त : आज्ञा, आर्य !

पुष्यमित्र : जिस प्रकार सम्राट् के मित्र नायक तेलियस ने मेरे बाणों की कला देखने की इच्छा प्रकट की है उसी प्रकार एक और भी कला देखने की इच्छा उन्होंने प्रकट की है जिसे सम्राट् की स्वीकृति प्राप्त हो गई है।

नागदत्त : उस कला का नाम सुनने की अभिलाषा है, आर्य !

पुष्यमित्र : नृत्य-कला।

नागदत्त : सैनिकों की शिविर-भूमि में ?

पुष्यमित्र : हाँ, सैनिकों की शिविर-भूमि में। राजमंच के समीप।

नागदत्त : और नृत्य-कला का प्रदर्शन करना किसका सौभाग्य होगा, आर्य !

पुष्यमित्र : धारिणी का।

नागदत्त : (**चौंककर**) धारिणी का ?

पुष्यमित्र : हाँ, धारिणी का। नायक तेलियस जिसका अपहरण नहीं कर सका। इस लिए वे सैनिकों के सामने धारिणी को नृत्य के लिए विवश कर उसे लांछित करना चाहते हैं।

नागदत्त : आर्य ! क्षमा हो। किन्तु धारिणी पहले ही लांछित हो चुकी है। वह नृत्य कैसे करेगी ?

पुष्यमित्र : उसे नृत्य करना होगा, नागदत्त !

नागदत्त : आपके आदेश की अवहेलना नहीं हो सकती ; किन्तु धारिणी के मन में नृत्य करने की भावना का उदय कैसे हो सकेगा, आर्य !

पुष्यमित्र : होगा, अवश्य होगा। सेनापति पुष्यमित्र की बाण-विद्या से जब अँगारे ज्वालाएँ उगल सकते हैं तो क्या धारिणी नृत्य नहीं कर सकेगी ? वह नृत्य करेगी, अवश्य ही करेगी। मेरी आज्ञा की अवहेलना नहीं हो सकेगी। मंच के समीप जो मेरा शिविर है, उसके अलिन्द पर तुम्हें धारिणी को उपस्थित करना होगा।

नागदत्त : आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

पुष्यमित्र : धारिणी तुम्हारे नियन्त्रण में है ?

नागदत्त : आर्य, वह मेरे नियन्त्रण में हैं।

पुष्यमित्र : तो उसे निश्चित समय पर अलिन्द में उपस्थित करो।

नागदत्त : जो आज्ञा, आर्य !

पुष्यमित्र : तुम जा सकते हो। मैं अपने धनुर्बाण की व्यवस्था करूँगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[पुष्यमित्र चुपचाप टहलने लगते हैं।]

संगीत

[पृष्ठभूमि में कोलाहल। उभरी हुई आवाज में "सम्राट् वृहद्रथ की जय", "सम्राट् वृहद्रथ की जय", "सम्राट् वृहद्रथ की जय"। सैनिक-संगीत का प्रारम्भ। तूर्य, शंख और मृदंग की सम्मिलित ध्वनि। धीरे-धीरे कोलाहल शान्त हो जाता है। सम्राट् वृहद्रथ के अट्टहास की ध्वनि]

[सम्राट् वृहद्रथ की अंगरक्षिका घोषणा करती है]

अंगरक्षिका : सम्राट् आज के पर्व पर सैनिकों से यह आदेश करने की आज्ञा देते हैं, "मेरे पाटलिपुत्र के सैनिको ! आज इस महान् शुभ अवसर पर तुम्हें न केवल मेरी जय की घोषणा करनी है, वरन् मेरे परम-मित्र नायक तेलियस की जय की घोषणा भी करनी है।"

["नायक तेलियस की जय" का घोष]

अंगरक्षिका : सम्राट् की वाणी है कि सैनिको ! यद्यपि नायक तेलियस हमारे देश के नहीं हैं तथापि उन्होंने हमसे वैसी मित्रता की है जैसे गंगा से शोण का संगम हुआ है।

तेलियस : (**विकृत भाषा में**) यह महाराज के मित्रता के परिणाम है।

[सम्राट् और नायक तेलियस की हँसी की ध्वनि]

अंगरक्षिका : सम्राट् की वाणी है कि सैनिको ! जनता के मन में बुरी भावना उत्पन्न करने के लिए महाकान्तार के कुछ लोगों ने एक स्त्रा के अपहरण की बात फैला दी है। यह बात नितान्त मिथ्या है।

[सैनिकों में कानाफूसी—"यह सत्य है", ' यह सत्य है।"]

अंगरक्षिका : सम्राट् की वाणी है कि नायक तेलियस महाकान्तार के सौन्दर्य का निरीक्षण करने गये थे। विदेशी होने के कारण लोगों ने उन पर लाँछन लगाया है कि उन्होंने एक नारी का अपहरण किया।

[सैनिकों का मन्द स्वर—"क्या यह सत्य है ?", "क्या यह सत्य है ?"]

अंगरक्षिका : सम्राट् की वाणी है कि इस लांछन को विश्वसनीय बनाने के लिए एक वृद्धा ने राज्य के सिंह-द्वार को अपने मस्तक के रक्त से कलंकित किया है।

[सैनिकों का मन्द स्वर—"वह धारिणी की माता है", "वह धारिणी की माता है", "धारिणी की माता है।"]

अंगरक्षिका : सम्राट् की वाणी है कि उस वृद्धा के सम्बन्ध में न्यायाधिकरण में विचार होगा। सम्राट् का आदेश है कि सैनिको ! भविष्य में इस प्रकार का काण्ड उपस्थित कर जनता के हृदय में व्यर्थ की आशंका उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों के लिए कठिन से कठिन दंड की व्यवस्था होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[सैनिकों में सन्नाटा]

वृहद्रथ : आर्य पुष्यमित्र उपस्थित हैं।

पुष्यमित्र : (उपस्थित होकर) मैं उपस्थित हूँ, सम्राट् !

वृहद्रथ : आर्य पुष्यमित्र ! हमारे परम-मित्र नायक तेलियस की इच्छा की सूचना तुम्हें प्राप्त हो चुकी ?

पुष्यमित्र : प्राप्त हो चुकी, सम्राट् !

वृहद्रथ : क्या उनके मनोरंजन के लिए तुम्हारी धनुर्विद्या के प्रदर्शन की सारी व्यवस्था हो चुकी ?

पुष्यमित्र : सारी व्यवस्था हो चुकी, सम्राट् !

वृहद्रथ : और जिस स्त्री के अपहरण के सम्बन्ध में कुछ विद्रोहियों ने अपना कंठ-स्वर ऊँचा किया है, उसके नृत्य की व्यवस्था है ?

पुष्यमित्र : व्यवस्था आदि है, सम्राट् ! सम्राट् के मंच के सामने जो अलिन्द है उस पर वह स्त्री उपस्थित की गई है।

वृहद्रथ : आर्य पुष्यमित्र ! जिस वृद्धा ने अपने रक्त से हमारे सिंह-द्वार को कलंकित किया है, उसके दंड की व्यवस्था नायक तेलियस ने जिस प्रकार दी है, उसकी घोषणा हुई ?

पुष्यमित्र : वह घोषणा हो चुकी, सम्राट् !

वृहद्रथ : वह घोषणा क्या है ?

पुष्यमित्र : सम्राट् ! वह घोषणा है कि पुष्यमित्र का चतुर्थ वाण वृद्धा के मस्तक के उस भाग को बेध देगा जहाँ से रक्त की धारा बही थी और जिसने सम्राट् के नगर का सिंह-द्वार कलंकित किया था।

वृहद्रथ : यह घोषणा कहाँ हुई है, आर्य !

पुष्यमित्र : महाकान्तार में। जहाँ की जनता ने विद्रोह किया था और जहाँ राजदंड के आतंक की आवश्यकता है।

तेलियस : (हँसकर) आपका सेनापति अच्छा वस्तु है, सम्राट् !

वृहद्रथ : आर्य पुष्यमित्र ! धनुर्विद्या का कौशल प्रारम्भ हो !

[कंठों का हलका-सा मिला-जुला स्वर]

वृहद्रथ : इस बात की घोषणा और करो विलोमा कि धनुर्विद्या के कौशल के अनन्तर सम्राट् नायक तेलियस के साथ नृत्य देखेंगे जिससे सैनिकों का मनोरंजन होगा। यह भी कहो कि सम्राट् अपने सैनिकों के मनोरंजन का कितना ध्यान रखते हैं। उसके अनन्तर सैन्य-निरीक्षण करेंगे।

अंगरक्षिका : सैनिको ! धनुर्विद्या के कौशल के अनन्तर सम्राट् नायक तेलियस के साथ नृत्य के समारोह का प्रबन्ध करेंगे। सैनिकों के मनोरंजन का ध्यान रखने में सम्राट् की उदारता सराहनीय है। नृत्य से मनोरंजन कराने के उपरान्त सम्राट् सैन्य-निरीक्षण करेंगे। सबसे प्रथम आर्य पुष्यमित्र अपनी धनुर्विद्या का कौशल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रदर्शित करेंगे ।

वृहद्रथ : यह और कहो विलोमा, कि सम्राट् की इच्छा है कि आर्य पुष्यमित्र का आदर्श प्रत्येक सैनिक का आदर्श होना चाहिए ।

अंगरक्षिका : सैनिको ! सम्राट् की वाणी है कि आर्य पुष्यमित्र का आदर्श प्रत्येक सैनिक का आदर्श हो ।

कुछ स्वर : सब सैनिकों का आदर्श होगा ।

वृहद्रथ : प्रारम्भ हो ।

[जन-रव कुछ अधिक जोर से सुनाई पड़ता है ।]

पुष्यमित्र : **(सामने आकर)** गुरुदेव को प्रणाम ! बाणों की शक्ति की वन्दना । **(बाणों को चूमते हैं)** सैनिको ! सम्राट् की आज्ञानुसार आप मेरी बाण-विद्या का कौशल देखें । आपके समक्ष लक्ष्यकेन्द्र पर चार सुलगते हुए काष्ठ-दण्ड हैं जिनके ऊपरी भाग ने अँगारों का रूप ले लिया है। मेरे बाणों की गति से कंपित वायु उन अँगारों से ज्वालाएँ निकाल सकेगी । सबसे पहले पूर्व दिशा का काष्ठ-दण्ड ज्वाला से जलेगा । **(बाणों को प्रणाम कर)** जय गुरुदेव !

[बाण के चलने की प्रखर ध्वनि । पूर्व दिशा के काष्ठ-दण्ड से ज्वाला उठती है । जनता की हर्ष-ध्वनि—"धन्य, धन्य ! आग की ज्वाला जल उठी ! आग की ज्वाला जल उठी !"]

वृहद्रथ : साधुवाद !

तेलियस : साधुवाद !

अंगरक्षिका : सम्राट् और तेलियस की वाणी आर्य पुष्यमित्र के कौशल की सराहना करती है ।

पुष्यमित्र : मैं इस सराहना के लिए सम्राट्, नायक तेलियस और जनता का कृतज्ञ हूँ । अब उत्तर दिशा के काष्ठ-दण्ड में ज्वाला उठेगी । **(बाणों को प्रणाम कर)** जय गुरुदेव !

[बाण के चलने की प्रखर ध्वनि । उत्तर दिशा के काष्ठ-दण्ड में ज्वाला]

[जनता का कोलाहल—"वह आग की ज्वाला उठी ! वह आग की ज्वाला उठी !"]

वृहद्रथ : साधुवाद, आर्य पुष्यमित्र !

अंगरक्षिका : सम्राट् की वाणी आर्य पुष्यमित्र के कौशल की सराहना करती है ।

पुष्यमित्र : मैं इस सराहना के लिए सम्राट् का कृतज्ञ हूँ ।

तेलियस : हम भी सराहना करता हूँ।

पुष्यमित्र : धन्यवाद ! अब पश्चिम दिशा के काष्ठ-दण्ड में ज्वाला उठेगी । **(बाण को प्रणाम कर)** जय गुरुदेव !

[बाण के चलने की प्रखर ध्वनि । जनता का तुमुल हर्ष । "धन्य है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धन्य है !" की ध्वनि। "आग की ज्वाला जल उठी" की ध्वनि]

वृहद्रथ : साधुवाद, आर्य पुष्यमित्र !

अंगरक्षिका : सम्राट् की वाणी आर्य पुष्यमित्र की सराहना करती है।

तेलियस : मेरी सराहना भी सीकार होगी।

पुष्यमित्र : मैं सराहना के लिए कृतज्ञ हूँ। अब दक्षिण दिशा के काष्ठ-दण्ड में ज्वाला उठनी चाहिए। राजाज्ञा है कि मेरा यह बाण दक्षिण दिशा के काष्ठ-दण्ड में ज्वाला उत्पन्न करते हुए वृद्धा के मस्तक को बेध दे जिसने अपने रक्त से राज्य के सिंह-द्वार को कलंकित किया है। दक्षिण दिशा का बाण मेरे धनुष पर है। किन्तु सैनिको ! मैं यह पूछना चाहता हूँ कि राज्य के सिंहद्वार को कलुषित करने का अपराध किसने किया है—वृद्धा ने किया है अथवा स्वयं सम्राट् ने ? **(सन्नाटा)** किसका मस्तक इस बाण का लक्ष्य है ?

वृहद्रथ : **(जोर से)** यह राजद्रोह है ! यह राजद्रोह है ! विलोमा, घोषणा करो कि यह राजद्रोह है।

अंगरक्षिका : सम्राट् की वाणी है कि......

पुष्यमित्र : पुष्यमित्र की वाणी है कि यह राजा की ओर से प्रजाद्रोह है। जिस राजा ने प्रजा की रक्षा नहीं की, नारियों का अपहरण होने दिया, सैनिकों का वेतन नहीं दिया, निरपराधियों को दण्डित किया, अपने विलास की छाया में प्रजा को कष्ट दिया, क्या उस राजा के प्रति कभी राजद्रोह हो सकता है ?

सैनिकों का स्वर : नहीं हो सकता, नहीं हो सकता।

वृहद्रथ : अरे, यह क्या ! यह षड्यन्त्र है। विलोमा ! घोषणा करो कि यह षड्यन्त्र है। यह षड्यन्त्र है। **(पीछे घूमकर)** अरे, विलोमा कहाँ है ? मेरी अंगरक्षिका विलोमा कहाँ है ?

पुष्यमित्र : अब विलोमा को घोषणा करने का अधिकार नहीं है, सम्राट् ! जब मेरे बाणों से अग्नि की ज्वाला जल सकती है तो मेरे बाणों की दिशा देखकर विलोमा का कंठ भी रुद्ध हो सकता है। समस्त सैनिक शान्त रहेंगे। मैं सम्राट् वृहद्रथ से यही पूछना चाहता हूँ कि दुष्ट और विलासी म्लेच्छ तेलियस के पैशाचिक मनोरंजन के लिए एक निरीह और निरपराध लांछिता नारी को नृत्य की आज्ञा देना कौन राजधर्म है ?

तेलियस : हम यहाँ नाहीं ठहरूँगा। हमको नींद आ रहा है। हम सोऊँगा।

[तेलियस उठकर जाना चाहता है।]

पुष्यमित्र : वहीं बैठे रहो, तेलियस ! नहीं तो यह बाण पहले तुम्हें सदैव के लिए सुला देगा।

तेलियस : सम्राट् पुष्यमित्र ! कैसा-कैसा बाण चलाने को कहते ! हम तो तुम्हारे सिंहासन के नीचे सो जाऊँगा। **[सिंहासन के नीचे छिपना चाहता है।]**

पुष्यमित्र : अपने स्थान पर रहो, तेलियस ! सम्राट् स्वयं अपनी रक्षा के लिए वही

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थान खोजेंगे । मौर्य चन्द्रगुप्त और अशोक की परम्परा को कलुषित करने वाले हिंस्र-पशु के लिए सम्राट् का यह आवरण बहुत ओछा है ।

वृहद्रथ : सैनिको, सैनिको ! अपने सम्राट् की रक्षा करो, यह राजद्रोह है ।

पुष्यमित्र : यह राजद्रोह किसी भी प्रकार नहीं है, वृहद्रथ ! यह राजसत्ता है । ये सैनिक तुम्हारे नहीं हैं । ये सैनिक सेनापति पुष्यमित्र के हैं ; सेनापति पुष्यमित्र के जो उनका पिता है । यह पाटलिपुत्र वृहद्रथ को सम्राट् नहीं, प्रवंचक और दस्यु समझता है ।

वृहद्रथ : **(घबराकर)** सैनिको, मेरी रक्षा करो ।

पुष्यमित्र : **(दृढ़ता से)** कोई सैनिक तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेगा क्योंकि जिस राजाज्ञा की घोषणा मैंने अभी तक तुम्हारी ओर से सैनिकों को सुनाई है उस राजाज्ञा के यन्त्र ने सैनिकों के शरीर से राजभक्ति से भरे रक्त को एक-एक बूंद में सिमिटकर निकल जाने दिया है ।

तेलियस : हमको-मुझको बचाओ, सेनापति ! हम क्षमा माँगता हूँ ।

वृहद्रथ : मित्र तेलियस ! तुम भी हमारा साथ छोड़ दोगे ?

तेलियस : हमारा रक्षा तुम नहीं करोगे तो सेनापति अवश्य करेंगे । हमारा रक्षा करो, सेनापति, हमारा रक्षा करो ।

वृहद्रथ : **(घबराकर)** तब क्या मैं अकेला हूँ ?

पुष्यमित्र : तुम अकेले नहीं रहोगे, वृहद्रथ ! आज इस सैनिक-शिविर के बीच तुम अपने को न्यायाधिकरण में समझो । मैं यह पूछना चाहता हूँ, वृहद्रथ, कि तुम्हारे द्वारा जन-सम्पति की सुरक्षा हुई है ? उत्तर दो !

वृहद्रथ : **[मौन है ।]**

पुष्यमित्र : क्या बाहरी शत्रुओं का भय तुम्हारे शासन से दूर हुआ ? बोलो !

वृहद्रथ : **[मौन है ।]**

पुष्यमित्र : क्या सैनिकों का वेतन महीनों उन्हें तुम्हारे कोष से दिया जा सका ? उत्तर दो !

वृहद्रथ : मैं...मैं...मैं...मैं कोई उत्तर नहीं दे सकता । हाय ! मैं कहाँ जाऊँ ?

पुष्यमित्र : वृहद्रथ ! दक्षिण दिशा के काष्ठ-दण्ड की ओर चलने वाले मेरे बाण के साथ तुम दक्षिण दिशा जाओ, जो यमराज की दिशा है । निरपराध धारिणी के लांछित होने पर भी उसके अत्याचारी को दण्ड न देकर उसे मित्र बनाना क्या पाटलिपुत्र की प्रजा का सबसे बड़ा अपमान नहीं है ? और उसी अत्याचारी के मनोरंजन के लिए धारिणी को नृत्य के लिए आज्ञा देना क्या राजधर्म का सबसे बड़ा कलंक नहीं है ? धारिणी तब नृत्य करेगी जब ऐसा राजधर्म नष्ट हो जायगा ।

वृहद्रथ : मेरी रक्षा करो, पुष्यमित्र ! मैं अपने प्राणों की भिक्षा माँगता हूँ ।

पुष्यमित्र : सैनिको ! राजा भिक्षा माँग रहा है । क्या तुम लोग उसे भिक्षा दोगे ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सैनिकों का स्वर : नहीं, नहीं। भिक्षा नहीं दी जा सकेगी।

पुष्यमित्र : न्यायाधिकरण ने भिक्षा नहीं दी, वृहद्रथ ! अब तुम्हारा मस्तक मेरे बाण का लक्ष्य होगा। तुम कहीं भी छिपने की चेष्टा कर सकते हो।

तेलियस : (**सिंहासन के नीचे छिपने की चेष्टा करते हुए**) हम तो यहाँ छिपूँगा।

पुष्यमित्र : वृहद्रथ ! तेलियस के समान तुम भी छिपने की चेष्टा कर सकते हो। मेरे बाण का यह कौशल होगा कि तुम चाहे जहाँ छिपो, वह तुम्हारे मस्तक को अवश्य वेध देगा। तुम एक बार फिर छिपने की चेष्टा कर सकते हो।

वृहद्रथ : (**पुकारकर**) विलोमा !

पुष्यमित्र : तुम्हारी पुकार कोई नहीं सुन सकता, वृहद्रथ ! विलोमा अब प्रजा की अंगरक्षिका है। तुमने राजदण्ड की छाया में धर्म पर अनन्त आघात किये हैं। तुमने यज्ञों को निर्वासित कर दिया है किन्तु आज मैंने यज्ञ की पुनः प्रतिष्ठा की है। देख रहे हो ये काष्ठ-दण्ड, जो तीन दिशाओं से यज्ञ की ज्वालाएँ उत्पन्न कर रहे हैं ? केवल चौथी दिशा शेष है। तुम्हारे मस्तक का रक्त लेकर मेरा बाण चौथी दिशा में भी यज्ञ की अग्नि उत्पन्न करेगा और तुम्हारे मस्तक की बलि लेकर मेरा यह यज्ञ पूर्ण होगा। तब सेनापति पुष्यमित्र के द्वारा वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा पाटलिपुत्र में फिर एक बार होगी। सावधान !

[**बाण चलने का तीव्र स्वर। एक क्षण बाद ही भीषण कराह**]

वृहद्रथ : आह ! आह !! आह !!!

[**सेना के द्वारा "सेनापति पुष्यमित्र की जय" का घोष**]

पुष्यमित्र : (**उमंग से**) इस मस्तक के रक्त से पाटलिपुत्र में स्वर्ण और श्री की प्रतिष्ठा एक बार फिर होगी। और धारिणी इस राजधर्म की विडम्बना के दूर होने पर अपने नृत्य से स्वर्ण-श्री को निमन्त्रण देगी। धारिणी ! मैंने कहा था कि धारिणी का नृत्य अवश्य ही होगा। तुम्हारा नृत्य प्रारम्भ हो।

धारिणी : पाटलिपुत्र की स्वर्ण-श्री अमर हो !

[**धारिणी के नृत्य की ध्वनि होती है।**]

[**धीरे-धीरे नृत्य की ध्वनि वायु में विलीन हो जाती है।**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 9 :

श्री विक्रमादित्य

●

पात्र-परिचय

श्री विक्रमादित्य—शकारि अवन्तिनाथ
विभावरी (भूमक)—छद्मवेषी शक कुमार
पुष्पिका—उज्जयिनी-निवासिनी
उद्यान-रक्षक,
प्रहरी,
वधिक

●

काल—ई० पू० 57
स्थान—उज्जयिनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्री विक्रमादित्य

[श्री विक्रमादित्य (आयु 26 वर्ष) की न्याय-सभा का बाहरी कक्ष। एक सिंहासन है, जिसके दोनों ओर सिंह की दो विशाल प्रतिमाएँ हैं। सिंहासन के पीछे एक मेहराब है, जिसके मध्य में सूर्य-मण्डल है। शिल्प-कला से सजाये गये पत्थरों पर बेल-बूटेदार आकृतियाँ हैं, जिनमें कमल और उसके चारों ओर मृणाल की जाली हैं। फर्श भी रंगीन पत्थरों का है और उसमें सरोवर की लहरों का आभास है। मेहराब से हटकर एक वातायन है, जिससे कुछ दूर पर शिप्रा का प्रवाह दीख रहा है। कमरे में सुगन्धित द्रव्य का धूम है और चारों ओर रंगीन प्रकाश की शलाकाएँ हैं। द्वार के समीप काठ का एक त्रिभुज है, जिसमें एक घण्टा लटक रहा है।

सिंहासन पर श्री विक्रमादित्य आसीन हैं। देवतुल्य शरीर, घुटने तक लम्बी बाँहें, प्रशस्त ललाट, चौड़ा और ऊँचा वक्षस्थल, कटि-प्रदेश पुष्ट, जैसे विश्वकर्मा ने अपने चक्र-यन्त्र पर चढ़ाकर उनकी आकृति और शोभा को और भी चमका दिया है। उनकी कमर में अपराजित खड्ग कसा हुआ है, जो उनके पुरुषार्थ-रूपी सागर की उच्छल तरंग है। वे राजसी वस्त्र पहने हुए हैं। सिर पर रत्न-जटित मुकुट है। मञ्च की सीढ़ियों पर दाहिनी ओर एक युवती विभावरी (आयु 22 वर्ष) खड़ी है। मोतियों से परिपूर्ण सीमन्त और वेणी में मन्धूकपुष्प। कन्धों पर हरा उत्तरीय और कमर में पीले रेशम का कटिबन्ध। वक्ष पर मोतियों की माला और पुष्पहार। उसका शेष शृंगार फूलों का ही है।

कक्ष में इस समय केवल ये दोनों ही हैं। गंभीर घोष से श्री विक्रमादित्य मौन भंग करते हैं।]

विक्रमादित्य : आश्चर्य है, उज्जयिनी में तुम्हारा अपमान हुआ।

विभावरी : सम्राट्! उस अपमान की यन्त्रणा से आज दिन-भर रुदन करने के कारण मेरे कण्ठ की विकृति हो गई है।

विक्रमादित्य : आर्य-नारियाँ रुदन नहीं करतीं। तुम्हारा नाम क्या है, देवी!

विभावरी : विभावरी, सम्राट्!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विक्रमादित्य : विभावरी ! कहाँ की निवासिनी हो ?

विभावरी : विदिशा में मेरा निवास है, सम्राट् !

विक्रमादित्य : उज्जयिनी में कब से निवास कर रही हो ?

विभावरी : शरद्-पूर्णिमा के पर्व से। एक मास से कुछ ही अधिक समय हुआ।

विक्रमादित्य : यहाँ तुम आई किसलिए थीं ?

विभावरी : पुण्यतीर्था उज्जयिनी में शिप्रा-स्नान के लिए।

विक्रमादित्य : कितने दिनों से शिप्रा-स्नान कर रही हो ?

विभावरी : पिछले तीन वर्षों से, सम्राट् !

विक्रमादित्य : प्रत्येक वर्ष तुम यहाँ एक मास से अधिक ठहरती हो ?

विभावरी : नहीं, सम्राट् ! जब से आपका शासन हुआ है तब से यहाँ अधिक ठहरने लगी हूँ।

विक्रमादित्य : क्यों ?

विभावरी : सम्राट् ! आपके शासन में उज्जयिनी की पवित्रता नक्षत्रों की पवित्रता के समान है। यहाँ चरणों के भैरव-राग में पुष्पों ने अपनी पँखुड़ियाँ खोलना सीखा है। जो नगरी अपने वैभव के स्तूपों में अपने हाथ फैलाकर आपके चरणों की वन्दना कर रही है, वह नगरी मेरे लिए इतना आकर्षण क्यों न रखे, सम्राट् !

विक्रमादित्य : इसे मैं कैसे सत्य समझूँ जब विभावरी जैसी आर्य-नारी अभियोगिनी के रूप में मेरे सामने उपस्थित है।

विभावरी : यह मेरा भाग्य-दोष है, सम्राट् ! सूर्य का आलोक कण-कण को प्रकाशित करता है, किन्तु पहाड़ की कन्दरा में अन्धकार ही रहता है। यह सूर्य का दोष नहीं है, प्रभो ! यह कन्दरा का दोष है, जो पत्थरों को तोड़कर उनमें छिपकर बैठ गई है।

विक्रमादित्य : यदि तुम ऐसा समझती हो, देवि, तो अभियोगिनी बनकर मेरे सामने क्यों खड़ी हो ? यदि यह स्वयं तुम्हारा दोष है तो तुमने राज-मर्यादा की शान्ति में बाधा क्यों डाली ? उस दोष के दण्ड को सहन करने की शक्ति तुममें होनी चाहिए।

विभावरी : सम्राट् ! यदि मैं दण्ड सहन कर लूँगी तो इस दण्ड का द्वार भविष्य में अन्य स्त्रियों के लिए भी खुल जायगा। आज मैं अपमानित हुई हूँ, यदि इसकी सूचना मैं आपके बाहुबल को न दूँ तो कल दूसरी स्त्री भी अपमानित हो सकती है।

विक्रमादित्य : तुमसे पहले तो कोई स्त्री मेरे राज्य में अपमानित नहीं हुई।

विभावरी : यह आपके राज्य-शासन का गौरव है, सम्राट् !

विक्रमादित्य : (दृढ़ता से) चुप रहो, विभावरी ! मैं ऐसे छद्मवेषी शब्द सुनना नहीं चाहता। ये मेरी यन्त्रणा को अधिक तीव्र करते हैं। मैं जानना चाहता हूँ, तुम्हारा अभियोग क्या है ?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विभावरी : सम्राट् ! लज्जा मेरे शब्दों को रोक रही है।

विक्रमादित्य : मुझे आश्चर्य हो रहा है, तुम आर्य-नारी किस प्रकार हो ? तुमने इस अपमान पर आज दिन-भर रुदन किया, जो आर्य-नारी की मर्यादा के प्रतिकूल है। फिर उस अपमान के कहने में तुम्हें लज्जा हो रही है। आर्य-नारियाँ अपना अपमान ज्वालामय शब्दों में कहती हैं, लज्जा के स्वरों में नहीं।

विभावरी : मैं बहुत दुखी हूँ, सम्राट् !

विक्रमादित्य : तब तो तुम्हें और भी निर्भीक होना चाहिए। भारत की दुःखिनी नारी क्रान्ति की ज्वाला है, उसे कोई रोक नहीं सकता। वह उठती है तो सुगन्धिमय धूम की भाँति, और आकाश तक उसकी उदारता फैल जाती है; वह गिरती है तो विजली की भाँति, और उससे पाताल का हृदय भी विदीर्ण हो जाता है।

विभावरी : सत्य है, सम्राट् !

विक्रमादित्य : फिर तुमने यह याचना की थी कि तुम्हारा अभियोग न्याय-सभा के बाहरी कक्ष में एकान्त में सुना जाय। यह याचना भी तुम्हारी स्वीकार हुई। मैंने अपनी सभा के सदस्यों और मन्त्रियों को यहाँ से हटा दिया। इस समय हम लोग एकान्त में हैं। तुम निर्भीक होकर अपना अभियोग मुझे सुना सकती हो।

विभावरी : **(हाथ जोड़कर)** मैं सम्राट् की कृतज्ञ हूँ।

विक्रमादित्य : कृतज्ञ होने की बात नहीं है। सम्राट् प्रजा का पिता है। यदि आवश्यकता होगी तो मैं इसी स्थल पर तुम्हारे अभियुक्त को दण्ड भी दे सकूँगा।

विभावरी : यह आपकी कृपा है, प्रभो !

विक्रमादित्य : अपना अभियोग स्पष्ट करो। किसमें इतनी शक्ति है जो उज्जयिनी में नारी का अपमान करे ?

विभावरी : सम्राट् ! आज प्रातःकाल उषा-वेला में मैं इसी शिप्रा **(वातायन की ओर संकेत)** के किनारे वायु-विहार के लिए गई थी। वहाँ पुष्पराग-उद्यान की सुगन्धि ने मुझे आकर्षित किया और मैंने उसमें प्रवेश किया। शीतल समीरण बह रहा था, अनेक भाँति के पुष्प खिले हुए थे...

विक्रमादित्य : **(बीच ही में)** मैं इस समय काव्य नहीं सुनना चाहता, मैं अभियोग सुनना चाहता हूँ।

विभावरी : क्षमा चाहती हूँ, सम्राट् ! मैं संक्षेप में ही कहूँगी। पुष्पराग-उद्यान में पुष्पों की विविधता देखकर मेरे मन में इच्छा हुई कि मैं सूर्य भगवान की पूजा के निमित्त कुछ पुष्प चयन कर लूँ। जिस समय मैं पुष्प चयन कर रही थी उसी समय एक दूसरी स्त्री मेरे समीप आई। उसने प्रेम से मेरी ओर देखकर निवेदन किया—"क्या मैं आपकी सहायता कर सकती हूँ ?" उसका प्रेम-भाव देखकर मैंने उसकी सहायता स्वीकार कर ली। पुष्प चयन के उपरान्त उसने मेरी वेणी में गूँथने की इच्छा प्रकट की। सम्राट् ! सौन्दर्य-प्रिय होने के कारण मैंने यह भी स्वीकार किया। जिस समय मेरी वेणी में वह पुष्प गूँथ रही थी, उस समय मेरे कण्ठ

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में उसका स्पर्श अस्वाभाविक ज्ञात हुआ।

विक्रमादित्य : **(चौंककर)** अस्वाभाविक ? [**सिंहासन से उतर पड़ते हैं।**]

विभावरी : सम्राट् ! उसके स्पर्श से मुझे पुरुष-स्पर्श का संकेत मिला।

विक्रमादित्य : **(स्तंभित होकर)** पुरुष-स्पर्श ? तो क्या वह नारी-वेश में पुरुष था ?

विभावरी : मैं यही सोचती हूँ, सम्राट् !

विक्रमादित्य : तुमने उसी समय अपने अपमान का प्रतिकार किया ?

विभावरी : सम्राट् ! मुझे भय था कि मैं कहीं अधिक अपमानित न हो जाऊँ।

विक्रमादित्य : तुम्हारे पास कोई शस्त्र था ?

विभावरी : हाँ, सम्राट् ! मेरे पास शस्त्र था। वह अब भी है। देखिए, यह दन्तिका।

[**कटिबन्ध से दन्तिका निकालकर दिखलाती है।**]

विक्रमादित्य : तुमने इसका प्रयोग किया ?

विभावरी : सम्राट् ! मुझे आपके न्याय में अधिक विश्वास है।

विक्रमादित्य : विभावरी ! तुम आर्य-नारी हो। तुमने अपने कुल को कलंकित किया है, साथ ही मुझे भी, अपने सम्राट् को। तुम इस प्रकार अपमानित हो जाओ और शक-स्त्रियों की भाँति रोने लगो ! तुम्हें अपनी असमर्थता पर लज्जा नहीं आई ! तुम्हारी माता को आत्महत्या करनी चाहिए। तुम्हारे पिता को देश से भाग जाना चाहिए। शक्ति-हीना नारी ! भारत के भविष्य की संरक्षिका को अपमान का प्रतिकार करना भी न आया ! [**अशान्ति से शीघ्र गति में टहलने लगते हैं।**]

विभावरी : सम्राट् ! मुझे क्षमा कीजिए। विदिशा में रहने वाली नारी को अभी उज्जयिनी की नारी से बहुत-कुछ सीखना है। आपके व्यक्तित्व के प्रभाव से तो उज्जयिनी की नारी दुर्गा और सरस्वती दोनों ही का रूप धारण कर सकती है।

विक्रमादित्य : **(घृणा से)** अयोग्य नारी ! इस तिल की ओट में तुम पर्वत को नहीं छिपा सकतीं। यह कारण तुम्हारी असमर्थता की रक्षा नहीं करेगा।

विभावरी : **(हाथ जोड़कर)** सम्राट् ! मैं भी दण्ड की पात्री हूँ।

विक्रमादित्य : निस्सन्देह। नारी-अपमान के लिए मैं अभियुक्त को निर्वासित तो करूँगा ही, साथ-ही-साथ तुम्हें भी साधना की अग्नि में तपकर सच्ची नारी बनना होगा।

विभावरी : मैं दण्ड सहन करने के लिये प्रस्तुत हूँ, प्रभो !

विक्रमादित्य : और तुम्हारा अभियुक्त कहाँ है ?

विभावरी : मैं उसे पुष्पराग-उद्यान की द्वार-रक्षिका से बन्दी कराकर ले आई हूँ। वह इस समय द्वार-रक्षिका के साथ बाहर है।

विक्रमादित्य : **(अशान्त होकर)** उज्जयिनी में कभी ऐसा अभियोग मेरे सामने उपस्थित नहीं हुआ। विभावरी ! तुमने आज मुझे यह सोचने के लिये बाध्य किया है कि इतने युद्ध करने के उपरान्त, इतने शत्रुओं को मालवा, सौराष्ट्र

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और गुर्जर से निर्वासित करने के उपरान्त भी मैं उज्जयिनी की सामाजिक व्यवस्था ठीक करने में असमर्थ रहा। आज भी उज्जयिनी में नारी अपमानित हो सकती है ?

विभावरी : हाँ, सम्राट् !

विक्रमादित्य : (**तीव्र स्वर में**) विभावरी !

विभावरी : (**विह्वल होकर**) सम्राट् ! क्षमा हो। जिस नगरी की वाणी ने ही शिप्रा का रूप धारण कर लिया हो, वहाँ मेरी वाणी में यदि कुछ भूल हो तो क्षमा कीजिए; किन्तु अपनी आत्मा का चीत्कार मैं किन शब्दों में व्यक्त करूँ, प्रभो ! मैं लांछित हुई हूँ, मेरे आत्म-सम्मान की अवहेलना...

विक्रमादित्य : (**रोककर**) बस, अब मैं अधिक नहीं सुन सकूँगा। तुम्हारे अभियोग ने मेरे पराक्रम की सहस्र भुजाओं को शक्तिहीन सिद्ध कर दिया है। मैं अब तक अपनी शक्ति का विश्वासी था। आज वह विश्वास तुम्हारे अभियोग में समाप्त हो रहा है। मेरे राज्य में नारी का अपमान हो, यह मेरे लिये अपमान की बात है।

विभावरी : आप सम्राट्-श्रेष्ठ हैं, प्रभो !

विक्रमादित्य : चुप रहो, विभावरी ! इन शब्दों से तुम मुझे पीड़ा पहूँचा रही हो। मैंने विक्रमादित्य का विरुद धारण किया था। क्या मेरे इस साहस की भावना पर तुम्हारा अभियोग हँस नहीं रहा है ? मैं उस विरुद का परित्याग करूँगा। तुमने विक्रम की ऐसी पताका भी कहीं देखी है जो अन्याय और अव्यवस्था के दण्ड में सजी हो ? तुम ऐसे सूर्य की कल्पना कर सकती हो जिसकी किरणों से अन्धकार निकलता हो ? विक्रमादित्य अन्याय और अव्यवस्था का प्रतीक हो— यह असम्भव है, यह असम्भव है।

विभावरी : सम्राट्, शान्त हों।

विक्रमादित्य : अयोग्य व्यक्ति कभी शान्त नहीं हो सकता। मैं अयोग्य हूँ। कालिदास ने व्यर्थ ही मेरी प्रशंसा की है। मुझे पहचानने में महाकवि ने भी भूल की।

विभावरी : नहीं, प्रभो ! मैंने आपको कष्ट पहुँचाने में भूल की है।

विक्रमादित्य : नहीं, मैं विक्रमादित्य नाम का परित्याग करूँगा। मेरे लिये केवल यही मार्ग है, केवल यही। किन्तु इसके पूर्व मैं नारी के सम्मान की पूर्ण व्यवस्था कर जाऊँगा। हाँ, तुम्हारा अपराधी बाहर है ? मैं उस नर-पिशाच को देखना चाहता हूँ जो अपने छद्मवेष में नारियों का अपमान करता फिरता है, जो पुरुष होकर अपने पुरुषत्व को नारी के वस्त्रों में छिपाये हुए है, जिसने विक्रमादित्य की सत्ता को विलासियों की श्रृंगार-शाला समझ रखा है। (**द्वार के समीप पहुँचकर घंटे पर चोट करते हैं, फिर लौटकर विभावरी से**) तुम्हें मेरे न्याय में अधिक विश्वास है ! मैं आज एकाकी न्याय करूँगा। न्याय-सभा का सारा अधिकार अपने बाहु-बल में केन्द्रित करके अपराधी को कठोर दण्ड दूँगा।

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[**प्रहरी का प्रवेश ; वह अपना भाला झुकाकर प्रणाम करता है ।**]

विक्रमादित्य : प्रहरी ! बाहर जो बन्दिनी द्वार-रक्षिका के अधिकार में है, उसे यहाँ उपस्थित होने की आज्ञा सुनाओ ।

प्रहरी : जो आज्ञा ! [**प्रणाम करके प्रस्थान**]

विक्रमादित्य : (**विभावरी से**) तुम मेरा न्याय देखना चाहती हो ? किन्तु सुनो, विभावरी ! मैं ऐसी नारी से घृणा करता हूँ जो अपना सम्मान स्वयं सुरक्षित नहीं रख सकती । नदी पहाड़ से कहे कि तुम मेरे लिये किनारा बना दो, बिजली बादल से कहे कि मुझे तड़पना सिखला दो और नारी राजा से कहे कि मेरा न्याय कर दो । नारी ! भारतवर्ष को संसार में लज्जित होने से बचाओ, विदेशियों से पद-दलित होने पर भी देश की मर्यादा सुरक्षित रहने दो ।

[**द्वार-रक्षिका का अभियुक्त (आयु 24 वर्ष) के साथ प्रवेश । द्वार-रक्षिका श्वेत वस्त्र धारण किये हुए है । काले रेशम का कटिबन्ध । कबरी में पुष्प-शृंगार और हाथ में शूल । अभियुक्त पाटल रंग का उत्तरीय और नीले रंग का कटिबन्ध पहने है । गले में स्वर्ण-माला । केशों में कुन्द-पुष्प । माथे में स्वस्तिक-तिलक । हाथों में पुष्प-वलय और पैरों में नूपुर धारण किये हुए है । दोनों का अभिवादन । द्वार-रक्षिका अभियुक्त को सामने उपस्थित करके द्वार पर जाकर खड़ी हो जाती है ।**]

विक्रमादित्य : (**द्वार-रक्षिका से**) तुम बाहर मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा करो !

द्वार-रक्षिका : (सिर झुकाकर) जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

विक्रमादित्य : (**अभियुक्त को गहरी दृष्टि से देखकर विभावरी से**) यही तुम्हारा अभियुक्त है ?

विभावरी : (**उद्वेग से**) सम्राट् ! यही अभियुक्त है । इसी ने मेरा अपमान किया है, यही वह दुष्ट है, यही वह छद्मवेषी है जिसने...

विक्रमादित्य : (**हाथ बढ़ाकर**) रुको, विभावरी ! तुम मेरे न्याय-कक्ष में हो । (**अभियुक्त से**) अभियुक्त ! तुम विक्रमादित्य की परीक्षा लेना चाहते हो कि वह अपनी व्यवस्था में सतर्क है या नहीं ? छद्मवेषी अभियुक्त ! तुम नारी-वेश में पुरुषत्व का अपमान और नारीत्व की अवहेलना करने वाले कौन हो ?

अभियुक्त : (**हिचकते हुए**) सम्राट् !

विक्रमादित्य : (**तीव्रता से**) तुम्हारा नाम क्या है ?

अभियुक्त : (**रुकते हुए शब्दों में**) सम्राट्, मैं...मैं...पुरुष हूँ ।

विक्रमादित्य : मैं जानता हूँ कि तुम पुरुष हो । पुरुषत्व को लज्जित करने वाले पुरुष ! तुम्हारा नाम क्या है ? विक्रमादित्य के सामने तुम असत्य भाषण नहीं कर सकोगे । मेरे अधिकार में अग्नि है, (**तलवार पर हाथ रखकर**) 'अपराजित' की तीक्ष्ण धार है और वधिक का तीक्ष्ण कृपाण ! सत्य और धर्म के सोपान पर सुसज्जित पवित्र न्याय के सामने अपने नाम के अक्षर दुहराओ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभियुक्त : **(विह्वल होकर)** सम्राट्...सम्राट्...मुझे क्षमा करें...मैं...स्त्री...हूँ !

विक्रमादित्य : तुम स्त्री हो ? यह तो सभी देखने वाले जान सकते हैं, किन्तु मैं तुम्हारी पुरुषत्व की परिभाषा जानना चाहता हूँ ।

अभियुक्त : सम्राट्, मैं स्त्री हूँ । मेरा नाम पुष्पिका है ।

विभावरी : **(तीव्रता से)** यह झूठ बोलता है, इसका यह नाम नहीं है ।

विक्रमादित्य : **(मुस्कराकर)** नाम तो बहुत सुन्दर है, किन्तु तुम्हारा वास्तविक नाम क्या है ? तुम विक्रमादित्य के न्याय के सामने हो, असत्य भाषण नहीं करोगे ।

अभियुक्त : सम्राट् ! मैं क्या कहूँ मेरी समझ में नहीं आता...हाँ, मैं पुरुष हूँ, ।

विक्रमादित्य : दण्ड के भय से उद्भ्रान्त मत बनो, अभियुक्त ! भगवान् महाकालेश्वर की आन पर तुम असत्य भाषण नहीं करोगे ।

अभियुक्त : सम्राट् के सामने यह साहस किसी का नहीं हो सकता ।

विक्रमादित्य : अभियोगी कहता है कि तुम पुरुष हो । तुमने विभावरी का अपमान किया है । क्या यह सत्य है ?

अभियुक्त : हाँ, सम्राट्, यह सत्य है । **(रुककर)** नहीं-नहीं यह सत्य नहीं है ।

विक्रमादित्य : **(तीक्ष्णता से)** स्थिर रहो, अभियुक्त ! तुम कहाँ के निवासी हो ?

अभियुक्त : सम्राट् ! मैं उज्जयिनी में निवास करती हूँ ।

विक्रमादित्य : **(दृढ़ता से)** तो तुम स्त्री हो ? अभियुक्त ! असत्य भाषण करने पर कठोर दण्ड मिलेगा । अपनी वास्तविकता स्वीकार करो ।

अभियुक्त : सम्राट् ! मेरा नाम पुष्पिका है । मैं उज्जयिनी की निवासी हूँ !

विक्रमादित्य : इसका प्रमाण ?

अभियुक्त : मैं सम्राट् के राज्यारोहण के समय उपस्थित थी । उस समय सम्राट् ने उज्जयिनी की प्रत्येक नारी को जो स्वर्ण-मुद्राएँ दी थीं, वे मेरे कण्ठ-हार में अब तक सुसज्जित हैं । देखिए । **[अपना कण्ठ-हार दिखलाती है ।]**

विक्रमादित्य : किन्तु वे मुद्राएँ तुम्हारे द्वारा चुराई भी तो जा सकती हैं ।

अभियुक्त : सम्राट् ! उज्जयिनी की प्रत्येक नारी आपकी मुद्रा को गौरव का चिह्न समझती है । वह उसे चोरी नहीं होने दे सकती और सम्राट्, उज्जयिनी में चोरों का निवास नहीं है ।

विक्रमादित्य : मैं यह बात सुनकर प्रसन्न हूँ; किन्तु तुम पर अभियोग है कि तुम पुरुष हो । क्या तुम पुरुष हो ?

अभियुक्त : **(दृढ़ता से)** सम्राट्, मैं पुरुष नहीं हूँ । **[विभावरी काँप जाती है ।]**

विक्रमादित्य : विभावरी! तुम काँप उठीं । इतना क्रोध करने की आवश्यकता नहीं है । मैं अभी निर्णय करता हूँ । **(अभियुक्त से)** अभियुक्त ! क्या मैं प्रहरी को आज्ञा दूँ कि वह तुम्हारा वेष-विन्यास परिवर्तित करे ?

अभियुक्त : सम्राट् ! उज्जयिनी की नारी को प्रहरी द्वारा अपमानित होने से रोकने की कृपा कीजिए ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विक्रमादित्य : क्या तुम पुरुष नहीं हो, अभियुक्त !

अभियुक्त : नहीं, सम्राट् ! मैं वचन दे चुकी हूँ कि अपने सम्राट् के सामने असत्य भाषण नहीं करूँगी ।

विक्रमादित्य : **(विभावरी से)** विभावरी ! क्या तुम्हारे कहने से अभियुक्त स्वीकार करेगा कि वह पुरुष है ?

विभावरी : **(अभियुक्त की ओर दृढ़ता से देखकर)** अभियुक्त ! तुम पुरुष हो । तुम्हारे स्पर्श में नारी का भाव नहीं था । तुमने मुझसे स्वीकार किया था कि तुम सम्रा के सामने पुरुषत्व स्वीकार करोगे । मेरी लज्जा के लिए स्वीकार करो । अपने वचन की पूर्ति के लिए स्वीकार करो । **(अभियुक्त मौन है)** देखो, अभियुक्त ! तुम चुप क्यों हो ? तुम स्वीकार क्यों नहीं करते ?

विक्रमादित्य : **(विभावरी से)** तुम्हारा कथन भी रहस्यपूर्ण है, विभावरी !

विभावरी : कोई रहस्य नहीं, सम्राट् ! **(अभियुक्त से)** अभियुक्त ! मैं निश्चयपूर्वक कहती हूँ कि तुम पुरुष हो । मेरी ओर देखकर कहो—मैं पुरुष हूँ ।

अभियुक्त : **(विभावरी की ओर देखकर)** अच्छा तो मैं पुरुष हूँ ।

विक्रमादित्य : **(क्रुद्ध होकर 'अपराजित' म्यान से निकालकर)** सावधान ! तुम सत्य से खिलवाड़ कर रहे हो, अभियुक्त ! राज-मर्यादा का अपमान करने के कारण तुम्हें कठोर दण्ड दिया जायगा । ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर तुम अंजलि के जल से अपनी रक्षा करना चाहते हो । **(जोर से)** प्रहरी !

अभियुक्त : **(घुटने टेककर)** सम्राट् ! क्षमा करें । मैं अपराधिनी हूँ, मैं आपकी करुणा का दान चाहती हूँ । **[प्रहरी का प्रवेश, वह प्रणाम करता है ।]**

विक्रमादित्य : **(अभियुक्त से)** तो तुम पुरुष नहीं हो ? अभी विभावरी की ओर देखकर तुमने कहा कि मैं पुरुष हूँ ।

अभियुक्त : मैं स्त्री हूँ । अपने सम्राट् के सामने असत्य भाषण नहीं कर सकती ।

विक्रमादित्य : इसमें कुछ रहस्य है । अच्छा तुम स्त्री ही सही । **(अकस्मात् दूसरी ओर नेपथ्य में देखकर)** ओह...इतना भयानक सर्प...**[प्रहरी उस ओर दौड़ता है । अभियुक्ता भागकर सिंहासन के पीछे छिप जाती है ।]**

विक्रमादित्य : अभियुक्ता वास्तव में स्त्री है; सर्प न होते हुए भी सर्प के नाम से वह विचलित हो गई । पुरुषों का यह लक्षण नहीं है । **(विभावरी की ओर देखकर)** तुम विचलित नहीं हुई ? **[खड्ग म्यान में रखते हुए ।]**

विभावरी : मैं साहसी हूँ, सम्राट् !

अभियुक्त : **(आगे बढ़कर)** सम्राट् ! क्षमा-दान करें । विभावरी पुरुष है ।

विक्रमादित्य : ओह ! यह रहस्य है । मैं भी अनुमान करता हूँ विभावरी पुरुष है ।

विभावरी : पुष्पिके, तुमने विश्वासघात किया । **[अभियुक्त की ओर दृष्टि करके ।]**

पुष्पिका : क्षमा हो, राजकुमार ! प्रयत्न करने पर भी मैं सम्राट् के सामने असत्य भाषण नहीं कर सकी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विक्रमादित्य : **(साश्चर्य)** राजकुमार !

पुष्पिका : सम्राट् ! क्षमा की भिक्षा माँगते हुए निवेदन करती हूँ कि यह विभावरी शक राजकुमार क्षत्रप भूमक है ।

विक्रमादित्य : **(आश्चर्य और क्रोध से)** शक राजकुमार भूमक ! **(तलवार पर हाथ रखते हुए)** बोलो, राजकुमार भूमक ! तुम सौराष्ट्र के युद्ध में कहाँ रहे ? क्या इसी वेष में विदिशा की नारियों के बीच छिपे हुए थे ? तुम विभावरी हो ! क्यों कायर राजकुमार ! तुम्हें अपनी माता का स्तन्य लज्जित करते हुए संकोच नहीं हुआ ! स्त्री-वेष में तुम्हें अपने पुरुषत्व को कलंकित करते हुए क्षोभ नहीं हुआ ! और फिर तुम्हीं अभियोग लाये थे ! स्वयं अपराधी होते हुए अभियोग लगाने का साहस ! राजमर्यादा में तुम्हें असत्य का अभिनय आत्म-हत्या करने से अच्छा ज्ञात हुआ ! कायरता की प्रतिमूर्ति राजकुमार भूमक !

भूमक : मैं कायर नहीं हूँ, सम्राट् !

विक्रमादित्य : तुम कायर नहीं हो ? तुम इतने तुच्छ हो कि तुम्हें आर्य-नारी बनने की योग्यता भी नहीं आई। आर्य-नारी ने रोदन किया ! उसके कण्ठ की विकृति हुई ! अपना पुरुष-स्वर छिपाने के लिए कण्ठ की विकृति ! उसने अपमान सहा ! शस्त्र का प्रयोग नहीं किया ! वह सम्मान के प्रतिशोध में सम्राट् के सामने अभियोगिनी बनी, और उसे अभियोग के स्पष्ट करने में लज्जा हुई ! ये सब क्या आर्य-नारी के लक्षण हैं ? मुझे पहले ही सन्देह होने लगा था । शकों में आर्य-नारियों का धर्म पहचानने की क्षमता कहाँ ? तुम शक राजकुमार भूमक हो; तुम इन बातों को क्या समझो ? तुम केवल स्त्री-वेष धारण करना जानते हो ।

भूमक : सम्राट् ! आप मेरा अपमान न कीजिए । स्त्री-वेष मैंने अपनी इच्छा से धारण किया । मैं कायर नहीं हूँ । यदि आपकी इच्छा युद्ध करने की है तो मेरे लिए भी एक तलवार लाने की आज्ञा दीजिए । मैं जानता हूँ कि मैं आप पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता; किन्तु शक राजकुमार मरने से भी नहीं डरता ।

विक्रमादित्य : **(मुस्कराकर)** मैं यह सुनकर प्रसन्न हूँ ।**(घन्टे पर चोट करते हैं)** किन्तु विभावरी और भूमक में क्या अन्तर है, यह मैं जानना चाहता हूँ ? यह सब काण्ड रहस्य के रूप में मेरे सामने क्यों उपस्थित किया गया है ? स्त्री और पुरुष, फिर पुरुष और स्त्री ! मेरे राज्य में इस इन्द्रजाल के लिए स्थान नहीं है ।

[प्रहरी का प्रवेश]

प्रहरी : **(प्रणाम करके)** सम्राट् ! कोई सर्प नहीं दीख पड़ा ।

विक्रमादित्य : यह मैं जानता हूँ । **(विभावरी की ओर संकेत करते हुए)** इस स्त्री को शस्त्रागार में ले जाकर इसे सैनिक का वस्त्र-विन्यास दो और साथ ही इस की रुचि के अनुसार एक तलवार भी ।

प्रहरी : जो आज्ञा !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विक्रमादित्य : स्त्री-वेष में मेरे समक्ष तुम अपने पुरुषत्व को अधिक देर तक लज्जित मत करो, क्षत्रप-राजकुमार !

[**भूमक का सैनिक के साथ प्रस्थान**]

विक्रमादित्य : (**घूमकर पुष्पिका से**) पुष्पिके, जो पुरुष था वह स्त्री-रूप में आया और जिसमें पुरुष की कल्पना थी वह स्त्री ही निकली। यह सब मेरे सामने किस षड्यन्त्र का रूप है ?

पुष्पिका : सम्राट् ! क्षमा करें। यह मेरी व्यक्तिगत जीवन-कथा है। परिस्थितिवश मुझे यह कार्य करना पड़ा। मैं लाचार थी।

विक्रमादित्य : तो तुम इस घटना-चक्र की प्रधान-पात्री हो ?

पुष्पिका : नहीं, सम्राट् ! मैं प्रधान-पात्री नहीं हूँ।

विक्रमादित्य : तुम प्रधान-पात्री नहीं हो ? तुमने यह क्यों कहा कि मैं पुरुष हूँ ?

पुष्पिका : उपकार-ऋण से मुक्त होने के लिए, सम्राट् !

विक्रमादित्य : उपकार-ऋण ? किसके उपकार-ऋण से मुक्त होने के लिए ?

पुष्पिका : राजकुमार भूमक ने मेरे प्रति उपकार किया था।

विक्रमादित्य : कैसा उपकार ?

पुष्पिका : सम्राट् ! मैं उज्जयिनी की निवासिनी हूँ। दो वर्ष पूर्व मैं एक कार्य से गुर्जर चली गई थी। अकस्मात् शकों ने गुर्जर पर आक्रमण किया। दुर्भाग्य से मैं भी शकों के हाथों में पड़ गई। जब अन्य बन्दियों के साथ मैं वध-स्थान को ले जाई जा रही थी, उस समय एकाएक इस शक राजकुमार ने आकर मेरी रक्षा की और मुझे स्वतन्त्र किया।

विक्रमादित्य : तुम पर ही यह कृपा क्यों की ?

पुष्पिका : मैं नहीं जानती, सम्राट् !

विक्रमादित्य : सम्भवत: तुम्हारे सौन्दर्य के आकर्षण ने उससे यह कार्य कराया हो।

पुष्पिका : जो भी हो, सम्राट् ! किन्तु उसने मेरे आत्मसम्मान पर आँच नहीं आने दी और साथ ही मुझे जीवन-दान दिया। सम्राट् ! मुझे इतने बड़े उपकार का बदला देना था।

विक्रमादित्य : तो क्या उपकार का बदला तुम अन्याय-रूप से देतीं ?

पुष्पिका : क्षमा कीजिए, सम्राट् ! राजकुमार भूमक ने इसी बात की याचना की थी।

विक्रमादित्य : और इस क्षत्रप-राजकुमार ने स्त्री-वेष क्यों धारण किया ?

पुष्पिका : सम्राट् ! जब आपने मालवा, गुर्जर और सौराष्ट्र से शकों को निर्वासित किया तो मेरे ऊपर अनुग्रह रखने वाले क्षत्रप को गुर्जर छोड़ने में कष्ट हुआ। उसने गुर्जर ही में रहना निश्चय किया; किन्तु पुरुष-वेष में रहना उसके जीवन के लिए संकट का कारण होता, इसलिए उसने स्त्री-वेष रखकर रहने में ही अपनी कुशल समझी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विक्रमादित्य : फिर वह गुर्जर ही में क्यों नहीं रहा ?

पुष्पिका : सम्राट् ! दुर्भाग्य से गुर्जर में लोगों की सन्देह-दृष्टि उस पर पड़ ही गई। इस समय मुझे उज्जयिनी भी आना था। तो उसने मुझसे प्रार्थना की कि वह भी मेरे साथ उज्जयिनी चले। मैंने उसकी प्रार्थना स्वीकार की।

विक्रमादित्य : क्या तुम उससे प्रेम करती हो ?

पुष्पिका : सम्राट् ! उपकार का बदला देना प्रेम नहीं कहा जा सकता।

विक्रमादित्य : क्या वह तुमसे प्रेम करता है ?

पुष्पिका : मैं कह नहीं सकती, सम्राट् ! किन्तु इस प्रकार के व्यवहार की मैंने सदैव अवहेलना की है। इस समय अधिक-से-अधिक वह मेरा भाई कहा जा सकता है।

विक्रमादित्य : यह सुनकर मैं प्रसन्न हूँ; किन्तु छद्मवेष रखने का अपराध करके भी उस राजकुमार को उज्जयिनी में आते हुए भय नहीं हुआ ?

पुष्पिका : उसे मेरे आश्रय का सबसे बड़ा बल था, सम्राट् ! वह समझता था कि मैं उसकी पूर्ण रक्षा कर सकूँगी।

विक्रमादित्य : जो तुम राज्य के समक्ष अपराधिनी होते हुए भी उसकी रक्षा नहीं कर सकीं ?

पुष्पिका : आप रक्षा कर सकते हैं, सम्राट् !

विक्रमादित्य : तुम जानती हो, पुष्पिके ! शकों को मैं एक ही दण्ड दिया करता हूँ और वह है प्राण-दण्ड। किन्तु खेद है कि युद्ध में इस क्षत्रप ने मेरा सामना नहीं किया। फिर भी इससे उसके दण्ड की व्यवस्था में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचती। अभी एक बात तुम्हें और स्पष्ट करनी है। वह यह कि स्वयं छद्मवेष में उपस्थित होकर और तुम पर अभियोग लाकर उसने अपने किस कार्य की पूर्ति करनी चाही ?

पुष्पिका : सम्राट् ! कुछ ही दिनों में यहाँ उसे आपके आतंक और मर्यादापूर्ण शासन का ज्ञान हो गया। उसे भय था कि वह किसी दिन भी न्याय-सभा के सामने उपस्थित कर दिया जायगा। अतः उसे उज्जयिनी की प्रत्येक दिशा में सम्राट् विक्रमादित्य का कृपाण दीख पड़ने लगा। उसने निश्चय किया कि वह शीघ्र ही कपिशा चला जायगा; किन्तु मार्ग में उसे प्राणों का भय था। इसलिए उसने सैनिकों के संरक्षण में जाना ही उचित समझा। इसी बात के लिए उसे इस अभियोग की कल्पना करनी पड़ी।

विक्रमादित्य : **(सिर हिलाकर)** ठीक।

पुष्पिका : और सम्राट् ! राज्य का यह नियम तो आपने निर्धारित कर दिया है कि नारी के अपमान का दण्ड देश-निर्वासन है। मैं उस दण्ड के अनुसार निर्वासित होती; क्योंकि मैं स्वीकार करती कि मैं पुरुष हूँ। मेरे दण्डित होने पर वह विभा-वरी-रूप में आपसे यह प्रार्थना भी करता कि वह स्वयं पदाघात कर मुझे राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की सीमा से बाहर करता। इसलिए वह भी मेरे साथ-ही-साथ सैनिकों के संरक्षण में सीमा तक पहुँच जाता और सीमा पर पहुँचकर वह आपके राज्य से निकल भागता।

विक्रमादित्य : यह रहस्य है !

पुष्पिका : यही कारण है कि उसने मेरी आँखों में आँखें डालकर मुझसे अनुरोध किया था कि मैं आपके सामने यह स्वीकार कर लूँ कि मैं पुरुष हूँ।

विक्रमादित्य : किन्तु, इससे अच्छा क्या यह न होता कि वह स्वयं किसी स्त्री को अपमानित करके निर्वासन का दण्ड प्राप्त करता ?

पुष्पिका : सत्य है, सम्राट् ! किन्तु आपसे प्राण-दान पाकर भी उसे भय था कि वह मार्ग ही में किसी सैनिक द्वारा न मार दिया जाय।

विक्रमादित्य : तो इस अभियोग में तुम तो निर्वासित हो ही जातीं।

पुष्पिका : सम्राट् ! एक उपकारी के लिये मैं यह भी करती; किन्तु बाद में मैं पुनः उज्जयिनी लौट आती, आपकी मुद्राओं से सुसज्जित अपना कण्ठ-हार दिखलाकर।

विक्रमादित्य : तो तुमने अपराधी को छिपाकर और उसकी कूटनीति में भाग लेकर राज-द्रोह किया है। तुम दण्ड की अधिकारिणी हो।

पुष्पिका : सम्राट् ! मैं दण्डित होने को प्रस्तुत हूँ; किन्तु अपने ऊपर अनन्त उपकार करने वाले शक राजकुमार की केवल एक इच्छा की पूर्ति करना मैंने अपना परम-धर्म समझा।

विक्रमादित्य : किन्तु तुम जानती हो शकों आर्यों का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? शकों ने आर्यों पर कितने अत्याचार किये हैं ? उन्होंने ब्राह्मणों का वध किया है। उन्होंने वर्णाश्रम धर्म को जड़-मूल से उखाड़ने की चेष्टा की है। क्या शहानुशाही क्षत्रपों के शासन से तुम अपरिचित हो ?

पुष्पिका : नहीं, सम्राट् ! मुझे शकों के अत्याचार की कथा ज्ञात है; किन्तु शक राजकुमार भूमक बहुत दयावान् है। वह कोमल-हृदय है, वह न्यायी है; अन्यथा वह मुझे मुक्त क्यों करता ? वह मेरे सम्मान की रक्षा क्यों करता ? वह जाति से शक है, किन्तु अपने विश्वास से वह पूर्ण आर्य है। जैन धर्म में उसका पूर्ण विश्वास है। वह हिंसा का विरोधी है, वह शक होकर भी शाकाहारी है।

विक्रमादित्य : तुम इस वक्तव्य से उसे निरपराध सिद्ध नहीं कर सकतीं। यदि आर्य-नारी की रक्षा करने के कारण उसे क्षमा भी कर दूँ तो कपटपूर्ण अभियोग के लिए उसे दण्डित तो करूँगा ही, और साथ ही तुम्हें भी।

पुष्पिका : सम्राट् ! मुझे दण्ड दीजिए; किन्तु मुझ पर उपकार करने वाले क्षत्रप-राज-कुमार को क्षमा कर दीजिए।

विक्रमादित्य : वह शक-क्षत्रप होने के कारण ही दण्ड का अधिकारी है। शासन का न्याय शक-क्षत्रप को शक्तिशाली नहीं रहने देगा। शकों ने जिस प्रकार आर्य-संस्कृति को कुचलने की चेष्टा की है उसके लिए उन्हें अनेक परम्पराओं तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रायश्चित की अग्नि में जलना होगा। फिर विक्रमादित्य के सामने आर्य-धर्म का विद्रोही संसार का सबसे बड़ा अपराधी है।

पुष्पिका : क्या राजकुमार किसी भांति भी क्षमा नहीं किया जा सकेगा?

विक्रमादित्य : मैं उसे क्षमा भी कर सकता हूँ; किन्तु केवल एक बात पर और वह यह कि वह आर्य-धर्म स्वीकार करे और सारे देश में उसका प्रचार करे। क्या वह यह प्रायश्चित स्वीकार करेगा?

पुष्पिका : सम्राट्! मुझे आशा नहीं है।

विक्रमादित्य : तब वह अवश्य दण्डित होगा। उसने राजधर्म की अवहेलना की है। उसने राज्य के प्रति षड्यन्त्र किया है, उसने एक झूठे अभियोग से अपनी मुक्ति की कुटिल युक्ति सोची है।

पुष्पिका : **(शिथिल होकर)** सम्राट् की जो इच्छा!

विक्रमादित्य : और सुनो, पुष्पिके! तुम्हारे दण्ड की भी व्यवस्था है। यद्यपि सत्य बोलकर और राजधर्म की मर्यादा मानकर तुमने अपने अपराध की गुरुता कम कर ली है, फिर भी तुम्हें शक-क्षत्रप के साथ गुप्त अभिसन्धि करने के कारण दो मास के कारावास का दण्ड मिलेगा।

पुष्पिका : सम्राट्! मेरे कारावास का दण्ड बढ़ा दीजिए; किन्तु मेरे उपकारी क्षत्रप को क्षमा कर दीजिए।

विक्रमादित्य : यह असम्भव है। राजनीति स्त्रियों की विनयशीलता से तरल नहीं हुआ करती।

[प्रहरी के साथ भूमक सैनिक-वेश में आता है। उसके हाथ में तलवार है। वह एक सुन्दर शरीर का युवक दृष्टिगत होता है।]

विक्रमादित्य : **(प्रहरी से)** प्रहरी! तुम यहीं द्वार पर बाहर रहो। तुम्हारी आवश्यकता पड़ेगी।

प्रहरी : **(सिर झुकाकर)** जो आज्ञा! **[प्रस्थान]**

विक्रमादित्य : **(भूमक से)** आओ, क्षत्रप-राजकुमार भूमक! मैं तुम्हारी गुप्त अभिसन्धि की सब बातें जान चुका हूँ। तुमने राज-मर्यादा का अपमान भी किया है। कपट-पूर्ण अभियोग लाकर तुमने न्याय को धोखा देने की चेष्टा भी की है। तुम कुछ और कहना चाहते हो?

भूमक : जब उज्जयिनी की नारी ने भी मेरे साथ विश्वासघात किया तब मुझे और कुछ नहीं कहना।

विक्रमादित्य : तुम इसे विश्वासघात क्यों कहते हो, क्षत्रप! यदि उसने तुम्हारे पवित्र विश्वास की अवहेलना की होती तो वह निश्चय ही विश्वासघातिनी होती; किन्तु उसने सत्यासत्य का निर्णय करते हुए पवित्र राजधर्म की मर्यादा रखी। क्या इस आचरण के लिए तुम उसकी सराहना नहीं करोगे?

भूमक : सम्राट्! मैंने स्वयं अपने दल के सैनिकों से उसकी रक्षा की थी। मैं चाहता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था कि वह भी आर्य-सम्राट् से मेरी रक्षा करती।

विक्रमादित्य : तो तुम उपकार का प्रतिदान चाहते हो ?

भूमक : नहीं। संकटकाल में केवल आत्म-रक्षा, और कुछ नहीं।

विक्रमादित्य : किन्तु यह आत्म-रक्षा कपटपूर्ण अभियोग से नहीं हो सकती। तुम द्वन्द्व के लिए प्रस्तुत होकर आये हो ? [**तलवार हाथ में तौलते हैं।**]

भूमक : मैं प्रस्तुत होकर आया हूँ, सम्राट् ! [**तलवार हाथ में सँभालता है।**]

विक्रमादित्य : किन्तु तुम्हें युद्ध-दान नहीं मिलेगा।

भूमक : मैं कारण जानना चाहता हूँ।

विक्रमादित्य : कारण यह है कि स्त्री-वेष धारण कर लेने वाले व्यक्ति मेरे द्वन्द्व के योग्य नहीं रह जाते। मेरे सामने विभावरी का रूप है, मैं उस पर कृपाण नहीं रख सकूँगा। तुम्हारे लिए वधिक का कृपाण हो सकता है, विक्रमादित्य का 'अपराजित' नहीं। तुम तलवार पृथ्वी पर रख दो।

भूमक : किन्तु मैं द्वन्द्व चाहता हूँ।

विक्रमादित्य : (**तीव्र स्वर में**) तुम न्याय-सभा के सामने हो, क्षत्रप !

[**भूमक लज्जा और क्रोध से तलवार फेंक देता है।**]

विक्रमादित्य : न्याय की आज्ञा-पालन करने के कारण मैं प्रसन्न हुआ। भूमक ! तुमने स्त्री-वेश धारण करके राज्य-दृष्टि के प्रति छल किया। झूठा अभियोग लगाकर तुमने राज्य-मर्यादा का अपमान किया, इसलिए तुम कठोर दण्ड के पात्र हो। किन्तु भूमक ! किसी समय तुमने एक आर्य-नारी की प्राण-रक्षा की थी, इस कारण तुम्हें आंशिक रूप से क्षमा भी दी जा सकती है यदि तुम राज्य के नियम के अनुसार प्रायश्चित करो। तुम्हें प्रायश्चित करना स्वीकार है ?

भूमक : मुझे किसी प्रकार का भी प्रायश्चित करना स्वीकार नहीं है।

विक्रमादित्य : फिर झूठे अभियोग के लिए दण्ड निश्चित है।

भूमक : जो आपके समक्ष झूठा अभियोग है, वह मेरे समक्ष मेरी राजनीति है।

विक्रमादित्य : किन्तु मैं तुम्हें अपनी राजनीति से दण्ड दे रहा हूँ। सम्राट् के साथ कपट करने का दण्ड तुम जानते हो, भूमक !

भूमक : सम्राट् ! मैंने कभी जानने की इच्छी नहीं की।

विक्रमादित्य : तो अब जान लो। तुम्हारे दोनों हाथ काट लिए जायेंगे।

पुष्पिका : (**शीघ्रता से घुटने टेककर**) क्षमा, सम्राट् ! क्षमा।

विक्रमादित्य : उठो, पुष्पिके ! उठो। तुम पहले से ही दण्डित हो। अब तुम्हें कुछ कहने का अधिकार नहीं है। (**भूमक से**) और भूमक, तुम्हारे दण्ड की व्यवस्था मैं इसी समय करूँगा। [**पुष्पिका उठती है।**]

भूमक : सम्राट् ! मैं सब समय प्रस्तुत हूँ।

[**विक्रमादित्य घण्टे पर चोट करते हैं।**]

विक्रमादित्य : भूमक ! मुझे केवल दुःख यही है कि तुम्हारे हाथों के न रहने से मैं कभी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो जाते तो पुष्पिका को चोट न लगती ।

भूमक : सम्राट् ! मुझे आपके शासन में उज्जयिनी की नारी की महानता ज्ञात नहीं थी । मैं नहीं जानता था कि आपने अपने शासन का आदर्श इतना ऊँचा रखा है, जिसमें नारियाँ उपकार का बदला देने के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग तक कर सकती हैं ।

विक्रमादित्य : तो तुम प्रायश्चित करने के लिए प्रस्तुत हो ?

भूमक : हाँ, सम्राट् ! मैं प्रस्तुत हूँ ।

विक्रमादित्य : (**वधिक से**) वधिक, तुम जा सकते हो ।

[**वधिक का सिर झुकाकर प्रस्थान**]

विक्रमादित्य : (**भूमक से**) भूमक, मुझे प्रसन्नता है कि तुम प्रायश्चित करने के लिये तैयार हो । प्रायश्चित की पहली व्यवस्था यह है कि तुम पुष्पिका को अपनी बहन समझकर—यदि वह जीवित रही तो—उसकी शुश्रुषा का भार लोगे । स्वीकार है ?

भूमक : (**सिर झुकाकर**) स्वीकार है, सम्राट् ! [**पुष्पिका के सिर को अपने घुटने पर रखता है।**]

विक्रमादित्य : प्रायश्चित की दूसरी व्यवस्था यह है कि तुम जैन-धर्म छोड़कर आर्य-धर्म का पालन करोगे और उसका प्रचार सौराष्ट्र के समीपवर्ती प्रदेश में करोगे । स्वीकार है ?

भूमक : (**सिर झुकाकर**) स्वीकार है, सम्राट् !

विक्रमादित्य : गो-ब्राह्मण की रक्षा करने का पुनीत कर्त्तव्य तुम्हारे जीवन का प्रथम कर्त्तव्य होगा । स्वीकार है ?

भूमक : (**सिर झुकाकर**) मैं स्वीकार करता हूँ, सम्राट् !

विक्रमादित्य : तो आज अपनी सारी प्रतिज्ञाओं को भगवान् महाकालेश्वर के मन्दिर में अभिमन्त्रित करो ।

भूमक : मुझे स्वीकार है, सम्राट् ! पुष्पिका के महान् उत्सर्ग में आपके चरित्र-बल की श्रेष्ठता छिपी हुई है । सुगन्धित पुष्प का विकास वसंत ही में होता है । आपके शासन में मैं अनुभव करता हूँ कि जैसे आर्य-धर्म का सूर्य अपनी उज्ज्वल और प्रखर रश्मियों से भारतीय गगन-मण्डल में चमक रहा है और उसके सामने छल का कोई बादल नहीं आ सकता । मैंने स्वयं अपनी आँखों से देख लिया कि आपके राज्य में षड्यन्त्र सफल नहीं हो सकता । आज मुझे गौरव है कि मैं आपका सेवक और आर्य-धर्म का सच्चा अनुयायी हूँ ।

विक्रमादित्य : (**हाथ उठाकर**) तब तुम मुक्त हो, क्षत्रप राजकुमार !

पुष्पिका : सम्राट् (**टूटे स्वर में**) मेरी...प्रार्थना...पूरी...हुई...मैं...कृतज्ञ...हूँ ! और...और...मेरी...एक...प्रार्थना...और है ! आज...की...अमर...घटना...की...स्मृति...में...आपका,...संवत्...प्रचलित...हो ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमक : हाँ, सम्राट् ! अभी तक के मान्य युधिष्ठिर-संवत् के स्थान पर विक्रम-संवत् का प्रचलन हो, यह मेरी भी प्रार्थना है।

विक्रमादित्य : (**हाथ उठाकर**) तथास्तु ! पुष्पिके, तुम आदर्श नारी हो। तुम्हारी शुश्रुषा में राज्य की विशेष सहायता रहेगी। तुम्हारे आदर्श आचरण के कारण तुम्हारा अपराध भी क्षमा किया गया।

भूमक और पुष्पिका : (**सम्मिलित स्वर में**) सम्राट् विक्रमादित्य की जय हो !

[**सम्राट् विक्रमादित्य अभय-मुद्रा में हाथ उठाते हैं।**]

[**परदा गिर जाता है।**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 10 :

समुद्रगुप्त पराक्रमांक

●

पात्र-परिचय

समुद्रगुप्त पराक्रमांक—पाटलिपुत्र के सम्राट्
धवलकीर्ति—सिंहल के राजदूत
मणिभद्र—भांडागार के अधिकरण
कोदण्ड—महाबलाध्यक्ष
घटोत्कच, वीरबाहु—भगवान् बुद्धदेव की प्रतिमा निर्माण करने वाले शिल्पी
प्रियदर्शिका—सम्राट् समुद्रगुप्त की वीणा-वाहिनी
रत्नप्रभा—राजनर्तकी
प्रहरी

●

काल—ई० 363
स्थान—पाटलिपुत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त पराक्रमांक

[भांडागार का बाहरी कक्ष। दीवालों पर अनेक नृत्य-मुद्राओं में नर्तकियों के चित्र हैं। स्फटिक पत्थरों के स्तम्भों पर दीपों का आलोक हो रहा है। पीछे लौह-दण्डों से बना हुआ परिवेश है। मंच के बीच में समुद्रगुप्त खड़े हुए हैं। शरीर पर श्वेत और पीत परिधान। रत्नजटित शिरोभूषण, केश उन्मुक्त। पुष्ट वक्षस्थल, जिस पर रत्नों के हार। कटिबन्ध में कृपाण। उनकी मुद्रा गम्भीर है। उनके दाहिनी ओर सिंहल के राजदूत धवलकीर्ति और राज्य के महाबलाध्यक्ष कोदण्ड हैं और बाईं ओर भांडागार के अधिकरण मणिभद्र हैं। धवलकीर्ति का पीत, मणिभद्र का श्वेत और कोदण्ड का नील परिधान है। कोदण्ड सैनिक-वेश में है। द्वार पर शस्त्र लिए हुए प्रहरी। समुद्रगुप्त धवलकीर्ति को सम्बोधन करते हुए कहते हैं]

समुद्रगुप्त : तो अब यह निश्चय है कि भांडागार में वे रत्न नहीं हैं ?

धवलकीर्ति : यह तो आपने स्वयं देखा, सम्राट् ! किन्तु भांडागार से इस तरह चोरी हो जाना आश्चर्यजनक है। भांडागार के अधिकरण मणिभद्र स्वयं कुछ नहीं कह सकते।

समुद्रगुप्त : **(तीव्र स्वर से)** क्यों नहीं कह सकते ? **(मणिभद्र से)** मणिभद्र ! वे रत्न कैसे चोरी चले गये ? आज तुम्हारा वह विश्वास कहाँ है जिसमें दो युगों से पाटलिपुत्र की मर्यादा पोषित होती आ रही थी ? वह विश्वास कहाँ है जिसमें मैंने तुम्हें कौशल, कांची और देवराष्ट्र की सम्पत्ति सौंपी थी ? वह विश्वास कहाँ है जिसमें लिच्छवि-वंश का गौरव निवास करता रहा है ? क्या उस विश्वास में विष प्रवेश कर गया ? बड़ी से बड़ी सम्पत्ति की रक्षा करने का अनुभव लेकर भी तुम दो हीरक-खण्डों की रक्षा नहीं कर सके ? तुमने मेरे विश्वास में इन रत्नों की केवल दो चिनगारियों से आग लगा दी ! तुम्हारे ये श्रम-बिन्दु यदि-रक्त-बिन्दु बन जाते...! [क्रूर दृष्टि]

मणिभद्र : सम्राट् ! अच्छा होता यदि मेरे प्रत्येक रोम से रक्त-बिन्दु निकलकर आपके चरणों पर गिरकर कह सकते कि मैं निर्दोष हूँ ! यदि रक्त-बिन्दु वाणी-रहित हैं तो आप उन्हें राजनीति की भाषा दीजिए ; किन्तु आपके विश्वास की पवित्रता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खोकर मैं जीवन की रक्षा नहीं चाहता।

धवलकीर्ति : सम्राट् ! आपका विश्वास खोकर कौन अपने जीवन की रक्षा करना चाहेगा ? किन्तु मणिभद्र की संरक्षा से रत्नों का चोरी जाना आश्चर्यजनक है।

मणिभद्र : यह आश्चर्य ही मुझे मृत्यु-पीड़ा का दंशन है। सम्राट् ने जिस विश्वास से मुझे अश्वमेध यज्ञ की संचित निधि सौंपी थी, उसी विश्वास की पवित्रता से मैंने उन रत्नों की संरक्षा की थी, फिर भी प्रातः वे राज्य-भांडागार में नहीं पाये गये।

समुद्रगुप्त : भांडागार के एकमात्र अधिकारी तुम्हीं हो, मणिभद्र ! फिर तुम्हारी आज्ञा के बिना वहाँ कोई प्रवेश ही कैसे कर सकता है ?

धवलकीर्ति : यही तो आश्चर्य है, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : आश्चर्य से अपराध नहीं छिपाया जा सकता, धवलकीर्ति ! अपराध की सहस्र जिह्वाएँ हैं जो अग्नि-शिखा की भाँति चंचल हो सकती हैं और **(मणिभद्र से)** तुम यह जानते हो, मणिभद्र, कि भांडागार की रक्षा क्या है ! वह कृपाण के दर्पण में बन्द की हुई छाया है, कृपाण से मुक्त नहीं की जा सकती।

मणिभद्र : सम्राट् ! मैं अपनी मृत्यु हाथ में लेकर आया हूँ। रत्नों का खो जाना ही मेरे लिए सबसे बड़ा अपराध है। मुझे केवल अपने भाग्य-दोष का दुःख है। यश और कीर्ति के साथ सम्राट् की सेवा पच्चीस वर्षों तक करने के अनन्तर इस भाँति अपयश से मेरे जीवन का अन्त हो ! मैं आपसे अपनी मृत्यु माँगने आया हूँ, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : मुझसे अपनी मृत्यु माँगने की भी आवश्यकता है ?

मणिभद्र : सत्य है, सम्राट् ! मैं अभी तक अपने जीवन की समाप्ति कर चुका होता; किन्तु आपके समक्ष अपनी आत्मा की पवित्रता के दो शब्द कहे बिना मुझे परितोष न होता। आप मेरे चरित्र के सम्बन्ध में अनेक बातें सोच सकते थे। अब मुझे सन्तोष है, मैंने अपनी आत्मा की पुकार आप तक पहुँचा दी। अब मुझे आज्ञा दीजिए।

समुद्रगुप्त : मणिभद्र ! अभी तुम नहीं जा सकोगे। तुम्हारे उत्तरदायित्व के साथ राज्य का भी उत्तरदायित्व है। यदि तुम्हारे अधिकार में सुरक्षित की गई अश्वमेध-यज्ञ की सारी सम्पत्ति भी नष्ट हो जाती तो मुझे इतना दुःख न होता जितना इन दो रत्न-खण्डों की चोरी से हुआ है। इन रत्नों के साथ जैसे मेरे हृदय की सारी शान्ति और पवित्रता भी खो गई है।

धवलकीर्ति : सम्राट् ! उन रत्नों का सम्बन्ध भी पवित्रता से ही था। वे सिंहल की राजमहिषी के कंठहार के प्रधान रत्न थे जो भगवान् बुद्धदेव की प्रतिमा के लिए विश्वास से आपकी सेवा में भेजे गये थे।

समुद्रगुप्त : **(आश्चर्य से)** राजमहिषी के कंठहार से ?

धवलकीर्ति : हाँ, सम्राट् ! मैं ही राजदूत बनकर सिंहल से यह सम्पत्ति लाया हूँ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त पराक्रमांक

[भांडागार का बाहरी कक्ष। दीवालों पर अनेक नृत्य-मुद्राओं में नर्तकियों के चित्र हैं। स्फटिक पत्थरों के स्तम्भों पर दीपों का आलोक हो रहा है। पीछे लौह-दण्डों से बना हुआ परिवेश है। मंच के बीच में समुद्रगुप्त खड़े हुए हैं। शरीर पर श्वेत और पीत परिधान। रत्नजटित शिरोभूषण, केश उन्मुक्त। पुष्ट वक्षस्थल, जिस पर रत्नों के हार। कटिबन्ध में कृपाण। उनकी मुद्रा गम्भीर है। उनके दाहिनी ओर सिंहल के राजदूत धवलकीर्ति और राज्य के महाबलाध्यक्ष कोदण्ड हैं और बाईं ओर भांडागार के अधिकरण मणिभद्र हैं। धवलकीर्ति का पीत, मणिभद्र का श्वेत और कोदण्ड का नील परिधान है। कोदण्ड सैनिक-वेश में है। द्वार पर शस्त्र लिए हुए प्रहरी। समुद्रगुप्त धवलकीर्ति को सम्बोधन करते हुए कहते हैं]

समुद्रगुप्त : तो अब यह निश्चय है कि भांडागार में वे रत्न नहीं हैं?

धवलकीर्ति : यह तो आपने स्वयं देखा, सम्राट्! किन्तु भांडागार से इस तरह चोरी हो जाना आश्चर्यजनक है। भांडागार के अधिकरण मणिभद्र स्वयं कुछ नहीं कह सकते।

समुद्रगुप्त : **(तीव्र स्वर से)** क्यों नहीं कह सकते? **(मणिभद्र से)** मणिभद्र! वे रत्न कैसे चोरी चले गये? आज तुम्हारा वह विश्वास कहाँ है जिसमें दो युगों से पाटलिपुत्र की मर्यादा पोषित होती आ रही थी? वह विश्वास कहाँ है जिसमें मैंने तुम्हें कौशल, कांची और देवराष्ट्र की सम्पत्ति सौंपी थी? वह विश्वास कहाँ है जिसमें लिच्छवि-वंश का गौरव निवास करता रहा है? क्या उस विश्वास में विष प्रवेश कर गया? बड़ी से बड़ी सम्पत्ति की रक्षा करने का अनुभव लेकर भी तुम दो हीरक-खण्डों की रक्षा नहीं कर सके? तुमने मेरे विश्वास में इन रत्नों की केवल दो चिनगारियों से आग लगा दी! तुम्हारे ये श्रम-बिन्दु यदि रक्त-बिन्दु बन जाते...! **[क्रूर दृष्टि]**

मणिभद्र : सम्राट्! अच्छा होता यदि मेरे प्रत्येक रोम से रक्त-बिन्दु निकलकर आपके चरणों पर गिरकर कह सकते कि मैं निर्दोष हूँ! यदि रक्त-बिन्दु वाणी-रहित हैं तो आप उन्हें राजनीति की भाषा दीजिए; किन्तु आपके विश्वास की पवित्रता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खोकर मैं जीवन की रक्षा नहीं चाहता।

धवलकीर्ति : सम्राट्! आपका विश्वास खोकर कौन अपने जीवन की रक्षा करना चाहेगा? किन्तु मणिभद्र की संरक्षा से रत्नों का चोरी जाना आश्चर्यजनक है।

मणिभद्र : यह आश्चर्य ही मुझे मृत्यु-पीड़ा का दंशन है। सम्राट् ने जिस विश्वास से मुझे अश्वमेध यज्ञ की संचित निधि सौंपी थी, उसी विश्वास की पवित्रता से मैंने उन रत्नों की संरक्षा की थी, फिर भी प्रातः वे राज्य-भांडागार में नहीं पाये गये।

समुद्रगुप्त : भांडागार के एकमात्र अधिकारी तुम्हीं हो, मणिभद्र! फिर तुम्हारी आज्ञा के बिना वहाँ कोई प्रवेश ही कैसे कर सकता है?

धवलकीर्ति : यही तो आश्चर्य है, सम्राट्!

समुद्रगुप्त : आश्चर्य से अपराध नहीं छिपाया जा सकता, धवलकीर्ति! अपराध की सहस्र जिह्वाएँ हैं जो अग्नि-शिखा की भाँति चंचल हो सकती हैं और (**मणिभद्र से**) तुम यह जानते हो, मणिभद्र, कि भांडागार की रक्षा क्या है! वह कृपाण के दर्पण में बन्द की हुई छाया है, कृपाण से मुक्त नहीं की जा सकती।

मणिभद्र : सम्राट्! मैं अपनी मृत्यु हाथ में लेकर आया हूँ। रत्नों का खो जाना ही मेरे लिए सबसे बड़ा अपराध है। मुझे केवल अपने भाग्य-दोष का दुःख है। यश और कीर्ति के साथ सम्राट् की सेवा पच्चीस वर्षों तक करने के अनन्तर इस भाँति अपयश से मेरे जीवन का अन्त हो! मैं आपसे अपनी मृत्यु माँगने आया हूँ, सम्राट्!

समुद्रगुप्त : मुझसे अपनी मृत्यु माँगने की भी आवश्यकता है?

मणिभद्र : सत्य है, सम्राट्! मैं अभी तक अपने जीवन की समाप्ति कर चुका होता; किन्तु आपके समक्ष अपनी आत्मा की पवित्रता के दो शब्द कहे बिना मुझे परितोष न होता। आप मेरे चरित्र के सम्बन्ध में अनेक बातें सोच सकते थे। अब मुझे सन्तोष है, मैंने अपनी आत्मा की पुकार आप तक पहुँचा दी। अब मुझे आज्ञा दीजिए।

समुद्रगुप्त : मणिभद्र! अभी तुम नहीं जा सकोगे। तुम्हारे उत्तरदायित्व के साथ राज्य का भी उत्तरदायित्व है। यदि तुम्हारे अधिकार में सुरक्षित की गई अश्वमेध-यज्ञ की सारी सम्पत्ति भी नष्ट हो जाती तो मुझे इतना दुःख न होता जितना इन दो रत्न-खण्डों की चोरी से हुआ है। इन रत्नों के साथ जैसे मेरे हृदय की सारी शान्ति और पवित्रता भी खो गई है।

धवलकीर्ति : सम्राट्! उन रत्नों का सम्बन्ध भी पवित्रता से ही था। वे सिंहल की राजमहिषी के कंठहार के प्रधान रत्न थे जो भगवान् बुद्धदेव की प्रतिमा के लिए विश्वास से आपकी सेवा में भेजे गये थे।

समुद्रगुप्त : (**आश्चर्य से**) राजमहिषी के कंठहार से?

धवलकीर्ति : हाँ, सम्राट्! मैं ही राजदूत बनकर सिंहल से यह सम्पत्ति लाया हूँ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब सिंहल के महासामन्त सिरिमेघवन्न ने एक लक्ष स्वर्ण-मुद्राएँ बोधगया में एक विशाल मठ बनवाने और भगवान् बुद्ध की रत्न-जटित स्वर्ण-प्रतिमा निर्माण करने के निमित्त स्वर्ण-पात्रों में सुसज्जित कीं तब राजमहिषी कुमारिला के नेत्रों में श्रद्धा और प्रेम के आँसू छलक आये। उन्होंने उसी समय महासामन्त से प्रार्थना की कि उनके कंठहार के दो प्रधान हीरक-खण्ड श्रीमान् की सेवा में इस अनुरोध के साथ भेज दिये जायँ कि ये हीरक-खण्ड भगवान् बुद्धदेव की प्रतिमा के अँगुष्ठ-नखों के स्थान पर विजड़ित हों। सम्राट्! ये दोनों हीरक जैसे राजमहिषी कुमारिला की श्रद्धा और प्रेम के दो पवित्र अश्रु-बिन्दु थे, जो आज खो गये। इन अश्रु-बिन्दुओं के खो जाने से भगवान् के चरणों पर राजमहिषी की श्रद्धांजलि न चढ़ सकेगी। प्रतिमा अपूर्ण रहेगी, सम्राट्!

समुद्रगुप्त : **(आवेग से)** तब सुनो, धवलकीर्ति! तुम सिंहल के राजदूत हो। मेरे महासामन्त की भेंट लाने वाले! तुम्हारे सामने मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि सम्राट् समुद्रगुप्त यदि उन रत्न-खण्डों को नहीं खोज सका तो वह अपने राज्याधिकार का ध्यान छोड़कर भगवान् बुद्धदेव की प्रतिमा के सामने कठोर प्रायश्चित करेगा!

मणिभद्र : सम्राट्!......

धवलकीर्ति : सम्राट्!......

समुद्रगुप्त : रुको, राजदूत! यह प्रतिज्ञा समस्त साम्राज्य के भाग्य-निर्णय के साथ घोषित की जा रही है। यह बुद्धदेव के प्रति मेरे अपराध का दण्ड है। राजमहिषी के विश्वास की रक्षा न कर सकने वाले का प्रायश्चित है। मेरी घोषणा प्रचारित हो और इसके साथ मेरे भांडागार के अधिकरण का कलंक भी अमर हो! **(मणिभद्र की ओर दृष्टि)** वह किस रूप में हो, इसका निर्णय अभी होगा।

मणिभद्र : सम्राट्! आपके इन शब्दों में मेरी मृत्यु भी मेरा उपहास कर रही है। जीवन का एक-एक क्षण मुझे शूल की भाँति चुभ रहा है। मैं आपकी सेवा से जाने की आज्ञा चाहता हूँ, जिससे मैं अपने इस कलंकित जीवन को अधिक कलंकित न कर सकूँ।

समुद्रगुप्त : ठहरो, मणिभद्र! मेरी प्रतिज्ञा की पूर्ति में तुम्हारी सहायता अपेक्षित होगी। तुम्हारी आत्महत्या से मेरा कलंक मिटेगा नहीं। मुझे कुछ बातों के जानने की आवश्यकता है।

धवलकीर्ति : सम्राट्! यदि एकान्त की आवश्यकता हो तो मुझे आज्ञा दीजिए।

समुद्रगुप्त : नहीं, धवलकीर्ति! ठहरो। तुम्हारे ही संरक्षण में यह मठ और प्रतिमा निर्मित हुई है, तुम्हारी उपस्थिति भी आवश्यक है। मुझे विश्वास है, तुम अपने संकेतों से मेरे प्रयत्न में सहायता पहुँचाओगे। **(मणिभद्र से)** विश्वासपात्र मणिभद्र! वे रत्नखण्ड सर्वप्रथम तुम्हारे अधिकार में कब आये?

मणिभद्र : सम्राट्! आज से दस दिन पूर्व।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त : फिर तुमने उन्हें कहाँ सुरक्षित किया ?

मणिभद्र : इसी कक्ष में, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : अंतरंग प्रकोष्ठ में क्यों नहीं ?

मणिभद्र : मुझे धवलकीर्ति से यह सूचना मिली थी कि मठ और प्रतिमा का कार्य सम्पूर्ण हो गया है और अब वे शीघ्र ही शिल्पियों को दे दिये जावेंगे, अतः उन्हें अंतरंग प्रकोष्ठ में रखने की आवश्यकता नहीं है।

धवलकीर्ति : महासामन्त से मुझे यही आज्ञा मिली थी कि मैं शीघ्रातिशीघ्र मठ और प्रतिमा के निर्माण और उसकी व्यवस्था की चेष्टा करूँ। सिंहल द्वीप के भिक्षुओं को बोधगया में बड़ा कष्ट होता है, इसलिए उनकी सुविधा के लिए शीघ्रातिशीघ्र मठ का निर्माण होना था। सम्राट् ! आपकी प्रशंसा नहीं की जा सकती कि आपने भागवत धर्म में विश्वास रखते हुए भी बोधगया में भिक्षुओं के लिए मठ बनवाने की आज्ञा दे दी।

समुद्रगुप्त : यह मेरी प्रशंसा का अवसर नहीं है, धवलकीर्ति ! हाँ, तो मठ और प्रतिमा की शीघ्र व्यवस्था करने की प्रेरणा से ही तुमने मणिभद्र को अंतरंग प्रकोष्ठ में रत्न रखने से रोक दिया ?

धवलकीर्ति : हाँ, सम्राट् ! शिल्पी प्रतिमा-निर्माण का कार्य समाप्त कर चुके थे। दो-एक दिन में ही भगवान् बुद्धदेव के चरणों में वे रत्न-विजड़ित कर दिये जाते।

समुद्रगुप्त : दो-एक दिन का प्रश्न नहीं था। प्रश्न मणिभद्र के उत्तरदायित्व और कोष-संरक्षा का था। फिर वे रत्न शिल्पियों को दूसरे दिन दे दिये गये ?

मणिभद्र : नहीं, सम्राट् ! वे रत्न शिल्पियों को नहीं दिये जा सके। शिल्पियों को केवल पूर्व-निश्चय के अनुसार चार सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ दी गई थीं।

समुद्रगुप्त : क्यों ?

मणिभद्र : उनका पारिश्रमिक चार सहस्र मुद्राएँ निश्चित किया गया था।

समुद्रगुप्त : तो कार्य-समाप्ति के पूर्व ही उन्हें पारिश्रमिक क्यों दिया गया ?

मणिभद्र : धवलकीर्ति का आदेश था।

समुद्रगुप्त : (**धवलकीर्ति से**) क्यों, धवलकीर्ति ! तुम्हारा यह निर्देश सत्य है ?

धवलकीर्ति : सत्य है, सम्राट् ! मैं उन शिल्पियों के कार्य से बहुत प्रसन्न था। वे अत्यन्त सात्विक प्रवृत्ति वाले हैं, मुझे विश्वास था कि वे पुरस्कार पाने के उपरान्त भी रत्न जड़ने का कार्य पूर्ण करेंगे।

समुद्रगुप्त : ऐसे कितने शिल्पी हैं ?

धवलकीर्ति : केवल दो हैं, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : उनके नाम ?

धवलकीर्ति : घटोत्कच और वीरबाहु।

समुद्रगुप्त : इस समय वे कहाँ हैं ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धवलकीर्ति : वे अपने आवास-स्थान पर ही होंगे !

कोदण्ड : नहीं, सम्राट् ! वे इस समय बन्धन में हैं । जब से रत्नों की चोरी का समाचार प्रसिद्ध हुआ है तब से मैंने उन शिल्पियों को बन्दी कर रखा है । मैं उन्हें मणिभद्र के साथ ही ले आया था । वे बाहर हैं; यदि आज्ञा हो तो उन्हें सम्राट् की सेवा में उपस्थित करूँ !

समुद्रगुप्त : मैं तुम्हारी सतर्कता से प्रसन्न हूँ, महाबलाध्यक्ष ! यद्यपि मैं जानता हूँ कि शिल्पी निर्दोष हैं, फिर भी मैं उनसे विचार-विनिमय करना चाहूँगा । उन्हें मेरे समक्ष शीघ्र ही उपस्थित करो !

कोदण्ड : (सिर झुकाकर) जो आज्ञा ! **[प्रस्थान]**

समुद्रगुप्त : तो धवलकीर्ति ! तुम शिल्पियों के कार्य से बहुत प्रसन्न हो ?

धवलकीर्ति : हाँ, सम्राट् ! उन्होंने केवल एक मास में भगवान् की प्रतिमा का निर्माण कर दिया ।

समुद्रगुप्त : उनके निर्माण-कार्य की कुछ विशेषता ?

धवलकीर्ति : सम्राट् ! भगवान् की प्रतिमा इतनी सजीव ज्ञात होती है, मानो वे संघ को उपदेश देने के अनन्तर अभी ही मौन हुए हैं। उनकी प्रतिमा का ओज अन्य धर्मावलम्बियों को भी बौद्ध-धर्म की ओर आकर्षित करने में समर्थ है ।

समुद्रगुप्त : और बोधगया का मठ पूर्ण हो गया ?

धवलकीर्ति : हाँ, सम्राट ! मठ भी पूर्ण हो गया। एक सहस्र भिक्षुओं के निवास के योग्य उसमें प्रबन्ध है और उसमें चरम सीमा की कला-कुशलता उपस्थित की गई है ।

समुद्रगुप्त : कला-कुशलता की चरम सीमा से क्या तात्पर्य है ?

धवलकीर्ति : सम्राट् ! बुद्धदेव के जीवन के समस्त चित्र भित्तियों पर अंकित हैं । महामाया का स्वप्न, गौतम का जन्म, शाक्य-नरेश का सुखोत्सव, वैराग्य उत्पन्न कराने वाले रोग, जरा और मृत्यु के चित्र, भगवान् गौतम का महाभिनिष्क्रमण, फिर उनकी तपस्या एवं उनके बोधिसत्व का रूप ! संघ को उपदेश देते हुए उनके चित्रों में महान् ऐश्वर्य और विभूति है ।

समुद्रगुप्त : और भिक्षुओं की सुविधा का क्या प्रबन्ध है ?

धवलकीर्ति : सम्राट् ! प्रवज्या की समस्त सामग्री प्रत्येक कक्ष में संचित है । चीवर आदि की व्यवस्था देश के अन्य मठों से इसमें विशेष रहेगी । संक्षेप में, अब किसी भी भिक्षु को लौकिक एवं पारलौकिक दृष्टि से किसी प्रकार की भी असुविधा नहीं हो सकती ।

समुद्रगुप्त : तब तो मठ के समस्त शिल्पियों को राज्य की ओर से भी पुरस्कार प्रदान किया जावेगा—घटोत्कच और वीरबाहु को तो विशेष रूप से । धवल-कीर्ति ! पाटलिपुत्र में इन दोनों शिल्पियों को आवास कहाँ दिया गया था ?

धवलकीर्ति : जिस अतिथिशाला में मैं हूँ उसी के समीप राज्यकुटीर में ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त : तुमने रत्न-खण्डों के सम्बन्ध में उनसे कभी चर्चा की थी ?

धवलकीर्ति : भगवान् बुद्ध की प्रतिमा के समाप्त होने के कुछ पहले ही मैंने भगवान् के चरण-अँगुष्ठ में स्थान छोड़ने की आज्ञा देते समय उनसे उन रत्नों की चर्चा की थी, किन्तु उनसे अधिक वार्त्तालाप कर अपना समय नष्ट करना मैंने कभी उचित नहीं समझा। आवश्यक आदेशों के अतिरिक्त मैंने उनसे कभी कोई बात ही नहीं की।

समुद्रगुप्त : तुम सिंहल के प्रमुख कलाविद् हो। फिर कलाकारों से वार्त्तालाप करना समय नष्ट करना नहीं है, धवलकीर्ति !

धवलकीर्ति : सम्राट् ! आप जैसे उत्कृष्ट कलाकार से वार्त्तालाप करना सौभाग्य की बात है, किन्तु सभी कलाकार मेरे समय के अधिकारी नहीं हैं।

समुद्रगुप्त : तुम भूल करते हो, धवलकीर्ति ! प्रत्येक कलाकार में कुछ न कुछ मौलिकता अवश्य होती है। कलाविद् को चाहिए कि कलाकार को उस मौलिकता का वह रत्नों की भाँति संग्रह करे।

[महावलाध्यक्ष कोदण्ड का प्रवेश]

कोदण्ड : **(प्रणाम कर)** सम्राट्, दोनों शिल्पी यहाँ उपस्थित हैं। आज्ञा हो तो भीतर लाऊँ !

समुद्रगुप्त : उपस्थित करो !

[महाबलाध्यक्ष का प्रस्थान]

समुद्रगुप्त : धवलकीर्ति ! ये दोनों शिल्पी क्या सिंहल के निवासी हैं ?

धवलकीर्ति : हाँ, सम्राट् ! इनका आदि-स्थान तो सिंहल ही है, किन्तु अपनी कला-प्रियता के कारण ये समस्त देश का पर्यटन करते हैं।

[महाबलाध्यक्ष कोदण्ड के साथ घटोत्कच और वीरबाहु का प्रवेश। वे प्रणाम करते हैं।]

कोदण्ड : **(संकेत करते हुए)** सम्राट् ! यह शिल्पी घटोत्कच है और यह वीरबाहु।

समुद्रगुप्त : घटोत्कच और वीरबाहु, सिंहल के शिल्पी ! किन्तु समस्त देश के अभिमान, राज्य में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करने वाले, प्रस्तर में प्राण फूंकने वाले ! तुम लोगों से राज्य की शोभा है। इसीलिए ये किसी भी दण्ड-विधान से दण्डित नहीं हो सकते। क्यों शिल्पी ! सौन्दर्य किसे कहते हैं ?

घटोत्कच : सम्राट् ! विषम वस्तु में समता लाना ही सौन्दर्य है।

समुद्रगुप्त : और तुम क्या समझते हो, वीरबाहु ?

वीरबाहु : हृदय में अनुराग की सृष्टि का साधन ही सुन्दरता है।

समुद्रगुप्त : यदि चोरी के प्रति हृदय में अनुराग है तो वह भी सुन्दरता है, शिल्पी !

वीरबाहु : सम्राट् ! यदि चोरी सात्त्विक भावों से होती है तो वह सुन्दरता कही जा सकती है।

समुद्रगुप्त : सात्विक भावों से कौन-सी चोरी होती है ?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वीरबाहु : कला, कविता और नारी-हृदय की, सम्राट् ! जिसमें निरीहता और पवित्रता है ।

समुद्रगुप्त : और रत्न-खण्डों की चोरी, शिल्पी !

वीरबाहु : वह सुन्दरता नहीं है, सम्राट् ! रत्न-खण्डों की चोरी में तृष्णा है, जिसका रूप दुःख है और फल पाप है ।

समुद्रगुप्त : तुम्हें ज्ञात है कि सिंहल से भेजे गये रत्न-खण्ड चोरी चले गये ?

वीरबाहु : सम्राट् ! मुझे इसकी सूचना महाबलाध्यक्ष से ज्ञात हुई । यही कारण है कि प्रभात से हम लोगों की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध है । हमारी रक्षा कीजिए, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : तुम लोगों की पूर्ण रक्षा होगी, शिल्पी ! पहले मेरे प्रश्नों के उत्तर दो ।

वीरबाहु : प्रश्न कीजिए, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : तुम्हें दो सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ प्राप्त हो चुकी हैं ?

वीरबाहु : हाँ, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : और घटोत्कच, तुम भी पुरस्कृत हो चुके हो ?

घटोत्कच : हाँ, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : तुम लोग कार्य-समाप्ति के पूर्व ही पुरस्कृत क्यों हुए ?

घटोत्कच : धवलकीर्ति की प्रसन्नता ही इसका कारण है ।

वीरबाहु : या हम लोगों की कार्य-कुशलता ।

समुद्रगुप्त : क्या इस बात की सम्भावना हो सकती है कि उन दो सहस्र मुद्राओं में वे रत्न-खण्ड भी चले गये हों ?

घटोत्कच : सम्राट् ! यदि रत्न-खण्ड उन स्वर्ण-मुद्राओं में मिलते तो मैं मणिभद्र को इस बात की सूचना अवश्य देता ।

वीरबाहु : सम्राट् ! मेरा निवेदन तो यह है कि यदि मुझे दो सहस्र मुद्राओं से एक मुद्रा भी अधिक मिलती तो मैं वह मणिभद्र के पास भेज देता ।

समुद्रगुप्त : इस बात का प्रमाण ?

घटोत्कच : सम्राट् ! हृदय की निर्मलता का प्रमाण केवल निर्मल हृदय ही पा सकता है ।

समुद्रगुप्त : क्यों शिल्पी ! क्या तुम्हें मेरे हृदय की निर्मलता में विश्वास नहीं है ?

घटोत्कच : सम्राट् ! हमें पूर्ण विश्वास है, इसीलिए आपसे निवेदन करना चाहते हैं । दूसरी बात यह है कि आज तक मैंने भगवान् बुद्धदेव की प्रतिमाओं का निर्माण किया है । भगवान् बुद्धदेव की अनेक प्रतिमाओं तथा उनके जीवन के अनेक चित्रों को अंकित करते-करते मेरे हृदय में—मेरी कला में—भी तथागत की प्रतिमा का निर्माण हो गया है । उनके 'आर्य-सत्य' मेरी प्रत्येक यति और गति में संचरित हो गये हैं । ऐसी स्थिति में रत्न-खण्डों की प्रभा मेरे चरित्र को कलंकित नहीं कर सकती ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त : वीरबाहु ! तुम्हारा क्या कथन है ?

वीरबाहु : सम्राट् ! जो रत्न-खण्ड भगवान् बुद्धदेव के चरणों में स्थान पाने के लिए भेजे गये थे, वे रत्न-खण्ड निर्जीव हैं और हम लोगों के हृदय सजीव। निर्जीवों में इतनी शक्ति नहीं है कि वे सजीवों की प्रकृति में बाधा डाल सकें। यदि आवश्यकता होगी तो रत्न-खण्डों के स्थान पर हम लोग अपने हृदय भी विजड़ित करने के लिए प्रस्तुत होंगे।

समुद्रगुप्त : दोनों ही उच्च कोटि के कलाकार तथा शिल्पी हैं। घटोत्कच ! बुद्धदेव की प्रतिमा का निर्माण हो गया ?

घटोत्कच : सम्राट् ! पिछले सप्ताह ही पूर्ण हो गया।

समुद्रगुप्त : फिर रत्न-खण्डों को प्राप्त करने में इतना विलम्ब क्यों हुआ ?

घटोत्कच : सम्राट् ! मैंने धवलकीर्ति से रत्न-खण्डों के शीघ्र पाने की याचना की थी, किन्तु उन्हें अवकाश नहीं था।

समुद्रगुप्त : धवलकीर्ति को अवकाश नहीं था ! क्यों धवलकीर्ति ?

धवलकीर्ति : सम्राट् ! मैं पाटलिपुत्र का उपासक हूँ। उसके सौन्दर्य को देखने की इच्छा अनेक वर्षों से मेरे हृदय में थी। मैं यहाँ आकर उसे अधिक-से-अधिक देखने के अवसर प्राप्त करना चाहता था। अतः, मैं प्रायः आपके नगर के उद्यानों और सरोवरों ही में अपने जीवन की अनुभूतियाँ प्राप्त करता था, किन्तु फिर भी शिल्पियों की आवश्यकता का ध्यान मुझे सदैव रहा करता था।

घटोत्कच : किन्तु, गत सन्ध्या को जब मैंने आपकी सेवा में आने की चेष्टा की, तो मुझे ज्ञात हुआ कि पाटलिपुत्र में आकर नृत्य-दर्शन की ओर आपकी विशेष अभिरुचि हो गई है। आप नृत्यों की विशेष भाव-भंगिमाओं के चित्र-संग्रह में इतने व्यस्त रहते हैं कि आपको मेरी प्रार्थनाओं के सुनने का अवकाश नहीं था।

धवलकीर्ति : घटोत्कच ! मेरी रुचि की समालोचना करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।

समुद्रगुप्त : शान्त, धवलकीर्ति ! मुझे यह सुनकर प्रसन्नता है कि तुम्हें नृत्य-कला विशेष प्रिय है। तुमने पाटलिपुत्र की राजनर्तकी का नृत्य, सम्भव है, अभी तक न देखा हो। वह भी मैं तुम्हें दिखलाने का प्रयत्न करूँगा।

धवलकीर्ति : सम्राट् ! आपकी विशेष कृपा है।

समुद्रगुप्त : मैं उसे अभी दिखलाने का प्रबन्ध करूँगा। मेरे नृत्य देखने का समय भी हो गया। **(महाबलाध्यक्ष से)** कोदण्ड ! तुम इन शिल्पियों को न्याय-सभा की उत्तर-शाला में स्थान दो। **(शिल्पियों से)** शिल्पी घटोत्कच और वीरबाहु ! तुम्हारे उत्तरों से मैं प्रसन्न हुआ। राजकीय नियमों के आचरण में यदि शिल्प-साधकों को कुछ असुविधा हो तो वह उपेक्षणीय है। तुम ध्यान मत देना, शिल्पी !

वीरबाहु : सम्राट् की जो आज्ञा !

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धवलकीर्ति : मुझे कोई असुविधा नहीं है, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : तो तुम लोग जाओ, राज-शिल्पियों को किसी प्रकार की असुविधा नहीं होनी चाहिए।

कोदण्ड : जो आज्ञा, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : और सुनो, कोदण्ड ! राजनर्तकी रत्नप्रभा को इसी स्थान पर आने की सूचना दो। आज मैं धवलकीर्ति के साथ इसी स्थान पर राजनर्तकी का नृत्य देखूंगा।

[कोदण्ड और शिल्पी जाने के लिए उद्यत होते हैं।]

समुद्रगुप्त : और सुनो ! प्रियदर्शिका से कहना कि वह मेरी वीणा ले आये। आज मैं फिर वीणा बजाना चाहता हूँ। केदारा के स्वरों का सन्धान हो !

कोदण्ड : जो आज्ञा !

[कोदण्ड और शिल्पियों का प्रस्थान]

समुद्रगुप्त : **(मणिभद्र से)** मणिभद्र ! दुर्भाग्य से यदि यह तुम्हारी अन्तिम रात्रि हो, तो तुम्हें अपने सम्राट् की वीणा सुनने का अवसर क्यों न मिले ? तुम भी सुनो !

मणिभद्र : यह मेरा सौभाग्य है, सम्राट् !

धवलकीर्ति : सम्राट् ! फिर मुझे आज्ञा दीजिए।

समुद्रगुप्त : क्यों धवलकीर्ति ! क्या तुम हमारी वीणा नहीं सुनोगे और राजनर्तकी का नृत्य नहीं देखोगे ? तुम तो बड़े भारी कलाकार हो !

धवलकीर्ति : सम्राट् ! प्रशंसा के लिए धन्यवाद। मैं सोचता हूँ कि कला की उपासना के लिए पवित्र मन की आवश्यकता है। मेरा मन इस घटना से बहुत अव्यवस्थित हो गया है।

समुद्रगुप्त : मैं अपनी वीणा से तुम्हारा हृदय व्यवस्थित कर दूंगा। फिर आज इस वादन और नृत्य को तुम मणिभद्र की विजय-विदा समझो। जिस मणिभद्र ने पच्चीस वर्षों तक राज्य की सेवा की है उसके अन्तिम क्षणों को मुझे अधिक-से-अधिक सुखमय बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस मंगल-वेला के समय तुम्हें भी उपस्थित रहना चाहिए। पाटलिपुत्र के न्यायाचरण में सिंहल का भी प्रतिनिधित्व हो।

धवलकीर्ति : सम्राट् ! आपका कथन सत्य है; किन्तु मैंने समझा, सम्भवतः आप एकान्त चाहते हैं।

समुद्रगुप्त : नहीं, धवलकीर्ति ! ऐसे समारोहों में एकान्त टूटे हुए तार की तरह कष्टदायक है।

धवलकीर्ति : **(सँभलकर)** और सम्राट् ! आपकी वीणा में वह स्वर है जो टूटे हुए हृदयों को भी जोड़ देता है। आप संगीत-कला में नारद और तुम्बुरु को भी लज्जित करते हैं। आपकी संगीत-प्रियता इसी बात से स्पष्ट है कि आपकी मुद्राओं पर वीणा बजाती हुई राजमूर्त्ति अंकित है। मैंने सुना है कि आपने अपने अश्वमेध

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यज्ञ के उपरान्त दो मास तक संगीतोत्सव किया था।

समुद्रगुप्त : यह सरस्वती की साधना करने की सबसे सरल युक्ति है। अच्छा, धवलकीर्ति ! तुम भी तो संगीत जानते हो ?

धवलकीर्ति : सम्राट् ! आपकी साधना की समानता कौन कर सकता है ! किन्तु इस कला की ओर मेरी अभिरुचि अवश्य है।

समुद्रगुप्त : और नृत्य-कला भी तो जानते होगे ?

धवलकीर्ति : सम्राट् ! नृत्य-कला का मैंने अध्ययन-मात्र किया है, उसकी विवेचना कर सकता हूँ, किन्तु स्वयं नृत्य नहीं कर सकता।

समुद्रगुप्त : नृत्य-कला देखने से प्रेम है ?

धवलकीर्ति : यह सिंहल के वातावरण का प्रभाव है।

समुद्रगुप्त : मुझे प्रसन्नता है कि सिंहल का वातावरण मेरी अभिरुचि के अनुकूल है। फिर तो राजनर्तकी के नृत्य से तुम्हें विशेष प्रसन्नता होगी।

धवलकीर्ति : यह सम्राट् का अनुग्रह है।

समुद्रगुप्त : और मेरी वीणा के स्वर भी आज मुखरित होंगे।

धवलकीर्ति : आपकी वीणा तो स्वर्गीय संगीत है, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : अधिक नहीं, धवलकीर्ति ! किन्तु संगीत ईश्वरीय विभूति की वह किरण है जिससे मनुष्य देवता हो जाता है। हृदय का समस्त कलुष वीणा की एक झंकार से ही दूर हो जाता है।

[प्रियदर्शिका का वीणा लिए हुए प्रवेश। वह प्रणाम करती है।]

समुद्रगुप्त : आओ, प्रियदर्शिके ! आज मैं फिर वीणा बजाऊँगा।

प्रियदर्शिका : **(वीणा आगे प्रस्तुत कर)** प्रस्तुत है, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : **(वीणा हाथ में लेते हुए)** केदारा के स्वर में वीणा का सन्धान है ?

प्रियदर्शिका : हाँ, सम्राट् ! इसी राग की आज्ञा प्राप्त हुई थी।

समुद्रगुप्त : राजनर्तकी रत्नप्रभा का शृंगार पूर्ण हुआ ?

प्रियदर्शिका : वे तैयार हैं, आपकी सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा चाहती हैं।

समुद्रगुप्त : उन्हें नृत्य के साथ आने दो, केदारा स्वरों में !

प्रियदर्शिका : **(सिर झुकाकर)** जो आज्ञा ! **[प्रस्थान]**

समुद्रगुप्त : **(वीणा के तारों पर उँगलियाँ फेरते हुए)** सुनो, धवलकीर्ति ! केदारा के स्वर में वह भावना है कि करुणा की समस्त मूर्छनाएँ एक बार ही हृदय में जाग्रत हो जाती हैं। ऐसा ज्ञात होता है जैसे सारा संसार तरल होकर किसी की आँखों से आँसू बनकर निकलना चाहता है। तारिकाएँ आकाश की गोद में सिमिटकर पतली किरणों में प्रार्थना करने लगती हैं। कलिकाएँ सुगन्धि की वेदना से फूल बन जाती हैं और बिन्दु में डूबकर पृथ्वी के चरणों में आत्म-समर्पण करना चाहती हैं। अच्छा, तो सुनो वह रागिनी !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[समुद्रगुप्त वीणा पर केदारा का स्वर छेड़ते हैं। धीरे-धीरे बजाते हुए वे तन्मय हो जाते हैं। उसी क्षण रत्नप्रभा का नृत्य करते हुए प्रवेश। रत्नप्रभा के अंग-अंग से रागिनी की गति व्यक्त हो रही है। वह अट्ठारह वर्षीया सुन्दरी है। सौन्दर्य की रेखाओं ही में उसके शरीर की आकृति है। केशकलाप में पुष्पों की मालाएँ, शरीर में अंगराग और चन्दन की चित्र-रेखाएँ हैं। मस्तक पर केसर का पुष्पांकन। बीच में कुंकुम का बिन्दु। नेत्र-कोरों में अंजन की रेखा। चिबुक पर कस्तूरी बिन्दु। कंठ में मुक्ताहार। हृदय पर रत्न-राशि। कटि में दोलायमाना किंकणी और पैरों में नूपुर। वह केदारा राग की साकार प्रतिमा बनकर नृत्य कर रही है। साथ ही सम्राट् समुद्रगुप्त की वीणा से निकलती हुई रागिनी राजनर्तकी के पद-विन्यास में माधुर्य भर रही है। कुछ समय नृत्य करने के उपरान्त 'सम' पर राजनर्तकी हाथ जोड़कर भाव-मुद्रा में सम्राट् के समक्ष तिरछी होकर खड़ी हो जाती है।]

समुद्रगुप्त : (प्रसन्न होकर) मेरे राज्य की उर्वशी, तुम बहुत सुन्दर नृत्य करती हो! ......यह पुरस्कार!

[गले से मोती की माला उतारकर देते हैं।]

रत्नप्रभा : (हाथ जोड़कर) सम्राट्! मैं इसके योग्य नहीं हूँ। मुझ से आज दो बड़े अपराध हुए हैं!

समुद्रगुप्त : (भ्रांत होकर) तुमसे कभी कोई अपराध नहीं हुआ! कौन-सा अपराध?

रत्नप्रभा : पहला अपराध तो यह है कि मैं आपकी मधुर वीणा के अनुकूल नृत्य नहीं कर सकी। आपके संगीत की मर्यादा कभी भंग नहीं हुई। आज मेरे नृत्य के कारण आपका संगीत कलुषित हो गया, सम्राट्!

समुद्रगुप्त : नहीं, रत्नप्रभा! अपने नृत्य से तुमने मेरे स्वरों में सहायता ही पहुँचाई है, हानि नहीं!

रत्नप्रभा : सम्राट्! मैं अनुग्रहीत हूँ। आपने कभी मेरे नृत्य के साथ वीणा नहीं बजाई। आज आपने मेरे नृत्य को अनन्त गौरव प्रदान किया है।

समुद्रगुप्त : यह कला की साधना में आवश्यक है। अच्छा दूसरा अपराध कौन-सा है?

रत्नप्रभा : सम्राट्! आज आपने इतनी मधुर वीणा बजाई कि संगीत की इस दिव्य अनुभूति में मेरे हृदय का समस्त दोष दूर हो गया और आज मैं अपना अपराध स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हूँ।

समुद्रगुप्त : मैं उत्सुक हूँ सुनने के लिए, रत्नप्रभा!

रत्नप्रभा : सम्राट्! राजनर्तकी होकर मैंने एक अन्य व्यक्ति से भेंट स्वीकार की!

समुद्रगुप्त : (उत्सुकता से) किससे?

धवलकीर्ति : (शीघ्रता से) मुझसे, सम्राट्! सिंहल के राजदूत धवलकीर्ति से।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त : तो इसमें कोई हानि नहीं। तुम तो हमारे राज्य के अतिथि हो, तुमसे भेंट स्वीकार करने में कोई हानि नहीं है।

रत्नप्रभा : फिर भी, सम्राट्! अन्य राज्य के व्यक्ति की भेंट स्वीकार करने की आज्ञा मेरी आत्मा मुझे नहीं देती। इनकी यह भेंट आप ही के चरणों में समर्पित करती हूँ। और वह यह है!

[सम्राट् के चरणों में दो हीरक-खण्ड समर्पित करती है।]

मणिभद्र : **(हीरक-खण्डों को देखकर प्रसन्नता से)** वे हीरक-खण्ड यही हैं! **(उद्वेग से)** महाराज प्रायश्चित नहीं करेंगे! महाराज प्रायश्चित नहीं करेंगे!!

समुद्रगुप्त : **(रत्नों को हाथ में लेकर)** ठहरो, ठहरो, मणिभद्र! प्रसन्नता से पागल मत बनो। **(धवलकीर्ति से)** राजदूत धवलकीर्ति! क्या यह सत्य है?

धवलकीर्ति : **[लज्जा से नीचे सिर करके मौन है।]**

समुद्रगुप्त : बोलो, राजदूत! क्या तुम इसी आचरण से राजदूतत्व का निर्वाह करते हो?

धवलकीर्ति : सम्राट्! मैं लज्जित हूँ।

समुद्रगुप्त : राजदूत! मुझे तुम पर पहले ही कुछ शंका हो रही थी। मणिभद्र की आत्महत्या के विचार पर तुम मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे, राजमहिषी कुमारिला के कंठ-हार के रत्नों की पवित्रता का सन्देश जतलाकर तुम राज्याधिकार को लांछित करना चाहते थे, तुम इसीलिए शिल्पियों पर प्रसन्न हुए कि वे रत्न-खण्डों के लिए अधिक जिज्ञासा न करें, तुम रत्नप्रभा के नृत्य के पूर्व ही चले जाना चाहते थे जिससे तुम रत्नप्रभा के समक्ष दोषी होने से बच सको। मैंने इसीलिए आज वीणा बजाई जिससे संगीत के वातावरण में अपराधी विह्वल हो जाय और अपना रहस्य खोल दे। नहीं तो मर्यादा के संकट में संगीत की क्या आवश्यकता? तुम मेरे ही राज्य में आकर विष का बीज बोना चाहते हो? बोलो! तुम्हें क्या दण्ड दिया जाय?

धवलकीर्ति : सम्राट्, जो चाहें! मुझे दण्ड दें।

समुद्रगुप्त : तुम जानते हो, धवलकीर्ति! राजदूत दण्डित नहीं होता। इसीलिए तुम निर्भीकता से कहते हो, सम्राट् जो चाहें मुझे दण्ड दें। किन्तु तुम यह ठीक तरह से समझ लो कि समुद्रगुप्त पराक्रमांक न्याय को देवता मानकर पूजता है और अन्याय को दैत्य समझकर उसका विनाश करता है। मैं अपने महासामन्त सिरि-मेघवन्न से तुम्हारे दण्ड की व्यवस्था कराऊँगा। तुमने राजमहिषी कुमारिला के रत्न-खण्डों को स्वयं कलुषित किया है, मणिभद्र के प्राण संकट में डाले हैं, राज-नर्तकी को मर्यादा के पथ से विचलित करने का प्रयत्न किया है। दण्ड तुम्हें पाकर सुखी होगा।

धवलकीर्ति : सम्राट्! मुझे अधिक लज्जित न कीजिए। मैं स्वयं परिताप की अग्नि में जल रहा हूँ।

समुद्रगुप्त : उस परिताप की अग्नि के प्रकाश में क्या यह स्पष्ट कर सकते हो कि ये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रत्न-खण्ड तुमने मणिभद्र की संरक्षा से किस प्रकार मुक्त किये ?

धवलकीर्ति : अपने अन्तिम समय में मैं असत्य भाषण नहीं करूँगा, सम्राट् ! आपको अभी ज्ञात हुआ कि शिल्पियों की कार्य-समाप्ति के पूर्व ही शिल्पियों को मैंने प्रसन्न हो निश्चित पारिश्रमिक दे दिया और वह इसलिए कि जब मेरे सामने मणिभद्र उन्हें देने के लिए स्वर्ण-मुद्राएँ गिनें तो मैं मणिभद्र का ध्यान सिंहल की विशेषता की ओर बार-बार आकर्षित करूँ और ऐसे ही किसी अवसर पर मैं वे रत्न-खण्ड दृष्टि बचाकर मंजूषा में से निकाल लूं। अपने कार्य की सरलता के कारण ही मैंने उन रत्नों को भांडागार के भीतरी प्रकोष्ठ में न रखने का परामर्श मणिभद्र को दिया था।

समुद्रगुप्त : फिर रत्नप्रभा को तुमने किस विचार से ये रत्न भेंट किये ?

धवलकीर्ति : मैंने उससे नृत्य करने की प्रार्थना की, किन्तु उसने कहा कि मैं सम्राट् की आज्ञा के बिना किसी दूसरे के समक्ष नृत्य नहीं करूँगी। मैंने बार-बार प्रार्थना की और उसकी सुन्दरता के अनुरूप ही हीरक-खण्डों की भेंट की। उसने मौन होकर वे रत्न-खण्ड ले लिये। न जाने क्या सोचकर और क्या समझकर !

समुद्रगुप्त : फिर रत्नप्रभा ने तुम्हारे सामने नृत्य किया ?

धवलकीर्ति : नहीं, सम्राट् ! उसने फिर भी अस्वीकार किया।

समुद्रगुप्त : रत्नप्रभा ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। अब स्वीकार करो अपना यह पुरस्कार।

[हाथ में रखी हुई माला देते हैं।]

रत्नप्रभा : **(माला लेकर सिर झुकाकर)** सम्राट् ! आपकी प्रसन्नता में ही मेरे पुरस्कृत होने की सार्थकता है।

समुद्रगुप्त : मेरे साम्राज्य में इस प्रकार का अन्याय नहीं हो सकता, इसी बात से मैं सुखी हूँ।

धवलकीर्ति : सम्राट् ! मुझे और किसी प्रश्न का उत्तर देना है ?

समुद्रगुप्त : नहीं ! अब केवल महासामन्त को सूचना देनी है कि राजमहिषी के रत्न-खण्डों को भगवान् बुद्धदेव की श्रद्धा में समर्पित न कर राजनर्तकी को भेंट करने के अपराध में जो दण्ड-व्यवस्था हो, उसका प्रबन्ध करें।

धवलकीर्ति : सम्राट् ! आप उन्हें सूचना देने का कष्ट न उठाएँ। मैंने मणिभद्र के साथ विश्वासघात किया, राजमहिषी के हीरक-खण्डों को कलुषित किया, राजनर्तकी को मर्यादा से विचलित करने की चेष्टा की, और सम्राट् ! आपके प्रायश्चित करने का अवसर उपस्थित किया, इन सबका सम्मिलित दण्ड बहुत भयानक है। यदि मुझे सौ बार प्राण-दण्ड दिया जाय, तब भी वह पर्याप्त नहीं है। मैं अपनी ओर से सबसे बड़ा दण्ड स्वयं अपने को दे रहा हूँ और वह है आत्महत्या !

[कटार अपने हृदय में मार लेता है और सम्राट् के समक्ष ही गिर पड़ता है। मणिभद्र और राजनर्तकी के मुख से आश्चर्य और दुःख की ध्वनि]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त : स्वयं दण्डित होने से अब तुम अपराधों से मुक्त हुए, धवलकीर्ति ! तुमने अपने नाम को धवल ही रहने दिया।

धवलकीर्ति : **(अस्फुट स्वरों में)** मैं...राजमहिषी को...अपना मुख...नहीं...दिखला सकता था...सम्राट् ! मेरी...कला की...उपासना...असत्य है ! मुझे...शान्ति ...से...मरने...दें ! आपका...संगीत...

समुद्रगुप्त : हाँ, धवलकीर्ति ! मैं तुम्हें संगीत सुनाऊँगा। राजनर्तकी ! तुम नृत्य करो ! सच्चे अपराधी की मृत्यु को मंगलमय बनाओ ! मणिभद्र के स्थान पर धवलकीर्ति को विजय-विदा दो ! मैं भी वीणा-वादन करूँगा। शिल्पियों को मुक्त कर यहाँ आने का निमन्त्रण दो ! आज धवलकीर्ति मृत्यु के समय मेरा मंगल-वाद्य सुने। राजनर्तकी ! नृत्य शीघ्र आरम्भ हो !

[राजनर्तकी नृत्य करने के लिए प्रस्तुत होती है और सम्राट् समुद्रगुप्त अपने हाथ में वीणा लेकर स्वर छेड़ते हैं।]

[परदा गिरता है।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 11 :

कृपाण की धार

●

पात्र-परिचय

परम भट्टारक रामगुप्त—गुप्त-सम्राट् और समुद्रगुप्त पराक्रमांक का ज्येष्ठ पुत्र
चन्द्रगुप्त—रामगुप्त का छोटा भाई
ध्रुवस्वामिनी—रामगुप्त की रानी और महादेवी
शिखर स्वामी—रामगुप्त का अमात्य
सुलोचना—रामगुप्त की मधुबाला और प्रेयसी
वासंती, **हेमा**—रामगुप्त की प्रतिहारियाँ

●

काल—382 ई०
स्थान—व्यास नदी के किनारे हिमालय की बाहरी श्रृंखला में विष्णुपद नामक पहाड़ी गढ़ में रामगुप्त का युद्ध-शिविर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृपाण की धार

[*स्थिति*—बाहर युद्ध का कोलाहल हो रहा है। शिविर के भीतर वंशी की ध्वनि। उसके साथ ही नृत्य में नूपुरों की झंकार। उसके बाद ही अट्टहास। मदिरा में कुछ मत्त रामगुप्त का हँसते हुए प्रवेश।]

रामगुप्त : (हँसते हुए) वंशी और उस पर नृत्य ! क्यों सुलोचना ! इसे भी युद्ध कहते हैं ? नूपुरों का नाद ढाल की तरह सामने आता है और वंशी की तीखी तान का तीर ? वह हृदय तक पहुँच ही जाता है......हृदय तक। **(हँसता है)** यह संगीत का युद्ध है। इसमें तुम मेरी शत्रु हो, सुलोचना !

सुलोचना : परम भट्टारक ! सेविका शत्रु ही सही, किन्तु विजय तो सदैव आप ही की है।

रामगुप्त : नहीं। इस युद्ध में हारना ही मुझे अच्छा लगता है। मैं हारना चाहता हूँ। परम भट्टारक महा-पराक्रम रामगुप्त का महा-पराक्रम हार में ही है। कहाँ है तुम्हारी वंशी के स्वर का तीर ?

सुलोचना : वह यह रहा, परम भट्टारक !

[वंशी का तीव्र वादन]

रामगुप्त : ओह ! मैं हारा, मैं हारा ! तुम जीती, सुलोचना ! महा-पराक्रम सुलोचना की जय ! जय !! जय !!!

सुलोचना : परम भट्टारक ! आपकी इस हार से जीत भी लज्जित हो जाती है।

रामगुप्त : हार ही तो मेरे हृदय का हार है, सुलोचना ! और जब तुम्हारी वंशी के स्वर का तीर तुम्हारी बंकिम दृष्टि के तीर के साथ चलता है, तब मेरे हृदय के दोनों पक्ष घिर जाते हैं। तब मैं तुमसे सन्धि करना चाहता हूँ, सुलोचना !

सुलोचना : परम भट्टारक सन्धि भी शीघ्र कर लेते हैं।

रामगुप्त : हाँ, सुलोचना ! क्योंकि तीर तो एक बार ही प्रहार करता है, किन्तु दृष्टि का तीर अनेक दिनों बाद भी ध्यान के धनुष पर चढ़कर प्रति क्षण प्रहार करता रहता है।

सुलोचना : किन्तु परम भट्टारक वीर हैं। वे प्रति क्षण युद्ध कर सकते हैं।

रामगुप्त : प्रति क्षण युद्ध तो करता ही हूँ। और दो-दो युद्धों में साथ-साथ भाग लेता हूँ। एक युद्ध शिविर के बाहर हो रहा है और दूसरा युद्ध हृदय के भीतर;

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किन्तु देवि ! मैं बाहर के युद्ध में उतना सावधान नहीं हूँ, जितना भीतर के युद्ध में । तुम्हीं कहो, देवि !

सुलोचना : आज्ञा, देव !

रामगुप्त : तुम्हीं कहो, देवि ! मैं हृदय के युद्ध में भाग लूँ या बर्बर शकों के युद्ध में ? (**व्यंग्य से**) हुँम्, बर्बर शक ! जो भूमि चाहते हैं, रक्त चाहते हैं, कर चाहते हैं । और मैं ? मैं दर्शन चाहता हूँ, हृदय चाहता हूँ, मुस्कान चाहता हूँ । किसमें अधिक आकर्षण है ?

सुलोचना : परम भट्टारक सच्चे वीर हैं । युद्ध की बात ठीक समझते हैं ।

रामगुप्त : युद्ध की बात वीर ही समझ सकता है, सुलोचना ! बर्बरों का युद्ध तो कृपाण की धार पर केवल दिन में ही चलता है । यह युद्ध, मेरा युद्ध श्यामल नयनों की धार पर दिन और रात दोनों समय चलता है । उस युद्ध में आग है, और इस युद्ध में ? इस युद्ध में मुस्कान की पँखुड़ियों से झरने वाला पराग है । उस युद्ध में कर्कश ललकार है, इस युद्ध में अभिसार है, शरीर का शृंगार है । उसमें मरण है, इसमें जीवन है, सुलोचना ! इसमें जीवन है, अमर जीवन है और जीवन में ही सुख है, आनन्द है ।

सुलोचना : सत्य है, देव !

रामगुप्त : हाँ, सुलोचना ! उस युद्ध में कृपाण की धार पर मृत्यु है और इस युद्ध में नेत्र की धार पर जीवन है, ऐसा जीवन जिसकी सीमा बड़े-से-बड़े राज्य की सीमा से भी बड़ी है ।

सुलोचना : आपका कंठ सूख रहा होगा, देव !

रामगुप्त : नहीं, सुलोचना ! इस युद्ध की बात में कंठ नहीं सूखता । किन्तु तुम्हारे संकेत से जो लहर उठना चाहती है, वह उठे । सरिता में एक लहर के बाद दूसरी लहर उठती है । उसी प्रकार तुम्हारा मधुपात्र भी उठे । लाओ, उठाओ अपने हाथों से वह लहर ।

सुलोचना : लीजिए, देव ! [**पात्र भरकर देती है ।**]

रामगुप्त : (**पान करते हुए**) ओह ! कितनी मादक लहर है !...लहर, लहर...और तुम्हारा शरीर भी तो सौन्दर्य की लहर है, देवि ! इस सौन्दर्य की लहर से मेरे मधुपात्र की लहर उठी है ।...मधुपात्र की लहर...और यह विचित्रता देखो, देवि ! कि एक...लहर—तुम्हारे सौन्दर्य की लहर—मेरे नेत्रों में समा रही है और दूसरी लहर—तुम्हारे मधुपात्र की लहर—मेरे कंठ में समा रही है, (**फिर पान करता है**) मेरे कंठ में समा रही है । कहते हैं कि लहरों को कोई पकड़ नहीं सकता ; किन्तु मेरे नेत्र और कंठ दो-दो लहरों को एक साथ पकड़ सकते हैं, दो-दो लहरों को......

[**प्रतिहारी का प्रवेश**]

प्रतिहारी : परम भट्टारक की जय हो !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रामगुप्त : कौन ! वासंती ! आओ, तुम्हें भी मधु-पान कराऊँ ! मधु-पान कर 'जय' कहने में जो मादकता आयेगी, नहीं...जो मादकता उभरेगी...नहीं...नहीं, ठीक नहीं कह सका...!

वासंती : परम भट्टारक ! महामात्य शिखर स्वामी सेवा में आने की अनुमति चाहते हैं ।

रामगुप्त : शिखर स्वामी ! महामात्य ! नहीं, ठीक नाम नहीं है । महामात्य का नाम मदिरामात्य होना चाहिए । आज मदिरामात्य शिखर स्वामी से भी युद्ध करूँगा कि कौन अधिक मधु-पान कर सकता है ।

वासंती : परम भट्टारक ! महामात्य शिखर स्वामी के सम्बन्ध में क्या आज्ञा है ?

रामगुप्त : (**चौंककर**) आज्ञा ! आज आज्ञा देने का अधिकार मेरी प्रेयसी सुलोचना को है । सुलोचना ! शिखर स्वामी के सम्बन्ध में क्या आज्ञा है ?

सुलोचना : मैं तो दासी हूँ, परम भट्टारक ! दासी आज्ञा पालन कर सकती है, आज्ञा नहीं दे सकती ।

[दूसरी प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी : परम भट्टारक की जय हो !

रामगुप्त : फिर जय ! अरे, मैं प्रेम के युद्ध में हारना चाहता हूँ और तुम लोग 'जय' कहती चली आ रही हो ? कौन ! हेमा ! तुम मधुपात्र की 'जय' क्यों नहीं बोलतीं, मधुपात्र की, जो तुम्हारे परम भट्टारक पर भी जय प्राप्त कर चुका है । मैं हार रहा हूँ और तुम जय बोलती हो !

हेमा : परम भट्टारक ! महादेवी ध्रुवस्वामिनी सुसज्जित हैं । वे आपकी सेवा में...।

रामगुप्त : (**बीच ही में**) महादेवी ध्रुवस्वामिनी ! ध्रुवस्वामिनी ! ओह ! सौन्दर्य की दीप-शिखा ! पिता समुद्रगुप्त की विजय में सामन्त द्वारा अपनी पुत्री की भेंट...। वही तो मेरी महादेवी ध्रुवस्वामिनी...ध्रुवस्वामिनी हैं ।

वासंती : परम भट्टारक ! क्या शिखर स्वामी महामात्य से निवेदन कर दूँ कि इस समय महादेवी के आगमन......।

रामगुप्त : (**चौंककर**) एँ, क्या कहा ? महामात्य शिखर स्वामी ! बाहर के युद्ध के नायक शिखर स्वामी और भीतर के युद्ध की नायिका ध्रुवस्वामिनी ! मैंने कहा न, दो युद्ध साथ-साथ चल रहे हैं । दोनों से कह दो कि वे जायँ । मैं दोनों से सन्धि कर लूंगा ।

वासंती : परम भट्टारक ! महामात्य इस समय युद्ध का एक अत्यन्त आवश्यक समाचार निवेदन करने आये हैं ।

रामगुप्त : युद्ध का आवश्यक समाचार...?

हेमा : और परम भट्टारक ! महादेवी का आपसे यह प्रथम मिलन है ।

रामगुप्त : प्रथम मिलन...! हाँ, प्रथम मिलन...। प्रथम मिलन किसे कहते हैं, वासंती ! वसंत के आने पर लता के प्रेम की गाँठ खुल जाती है, उसका नाम फूल है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो रहस्य की गाँठ नहीं खुलती, उसका नाम कली है। खुले और अध-खुले रहस्य के पास आने का नाम प्रथम मिलन है। हाँ, यही प्रथम मिलन है...!

सुलोचना : किन्तु...!

रामगुप्त : किन्तु...मेरे विचारों के मार्ग में 'किन्तु' का कंटक नहीं चाहिए, सुलोचना !

सुलोचना : क्षमा करें, देव ! महामात्य को युद्ध का समाचार...!

रामगुप्त : युद्ध का समाचार...युद्ध का समाचार...तुम सुनो, सुलोचना !

सुलोचना : दासी युद्ध की नीति से अपरिचित है।

रामगुप्त : जिसके संकेत पर युद्ध होते हैं, वह युद्ध की नीति से अपरिचित है ? **(हँसता है)** ह्‌ह्‌ह्‌ह्‌ह ! अच्छा, जाओ वासंती ! जाओ हेमा ! दोनों को भेज दो। शिखर स्वामी और ध्रुवस्वामिनी। एक साथ। आज दोनों को एक साथ देखकर कहूँगा कि मेरे युद्ध-शिविर में अमावस और पूनम एक साथ होती है।

वासंती : जो आज्ञा ! महामात्य शिखर स्वामी सेवा में अभी उपस्थित होंगे।

हेमा : और महादेवी ध्रुवस्वामिनी भी इसी समय सुशोभित होंगी।

[दोनों का प्रणाम कर दो दिशाओं में प्रस्थान]

रामगुप्त : **(सोचता हुआ)** शिखर स्वामी और ध्रुवस्वामिनी ! सुलोचना ! शिखर स्वामी को शकराज के युद्ध से अवकाश नहीं और ध्रुवस्वामिनी को प्रेम की धूप-छाँह में सही मार्ग पाने का उत्साह नहीं ! प्रेम की धूप-छाँह में...!

सुलोचना : परम भट्टारक ! आर्य समुद्रगुप्त चाहते थे कि राजकुमार चन्द्रगुप्त ही महादेवी का वरण करें। कदाचित् महादेवी भी यही चाहती थीं।

रामगुप्त : सुलोचना ! ज्येष्ठ भ्राता का अधिकार प्रेम से ऊपर है। पिता तो यह भी चाहते थे कि चन्द्रगुप्त ही राज्य का अधिकारी हो। किन्तु रामगुप्त के रहते क्या यह सम्भव था ? आज दोनों ही मेरे अधिकार में हैं—राज्य और महादेवी, जो चन्द्रगुप्त के प्रेम की धूप-छाँह में......!

[महामात्य शिखर स्वामी का प्रवेश]

महामात्य : परम भट्टारक की जय !

रामगुप्त : महामात्य, तुम आ गये ! महादेवी भी आ रही हैं। मैं यह पूछना चाहता हूँ कि महादेवी से युद्ध करूँ या सन्धि ! महादेवी चन्द्रगुप्त के प्रेम से......!

महामात्य : प्रेम के रहस्य सुलझाने का समय नहीं है, देव ! युद्ध का उलझाने वाला समाचार है।

रामगुप्त : उसे मधुपात्र से सुलझा लो। **(सुलोचना से)** सुलोचना ! महामात्य शिखर स्वामी को एक मधुपात्र से पवित्र करो।

महामात्य : परम भट्टारक क्षमा करें। शकों ने हमें चारों ओर से घेर लिया है।

रामगुप्त : चारों ओर से घेर लिया है ? तब उनसे कहो कि वे हमारी जय का घोष करें। चारों दिशाओं से जय-ध्वनि भी अच्छी तरह से गूंजेगी। परम भट्टारक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महापराक्रमांक रामगुप्त की जय ! जय !! जय !!! (**हँसता है**) ह् ह् ह्-ह् ह् ह ! तुम भी कहो...महामात्य ! परम भट्टारक......

महामात्य : परम भट्टारक ! आप मधु के प्रभाव से मुक्त हों। शकराज ने हमारी सेना को पराजित कर दिया है। हमारा शिविर शत्रु से घिर गया है। वे चारों ओर से बढ़ना चाहते हैं।

रामगुप्त : बढ़ना चाहते हैं ! कोई हानि नहीं। उनका स्वागत करो। हम भी मधु-युद्ध में तुम्हारा स्वागत करेंगे। गुप्त-कुल अतिथि-सत्कार करना जानता है। क्यों सुलोचना ! अभी हमें महादेवी का भी तो सत्कार करना है !

सुलोचना : सत्य है, देव !

महामात्य : महादेवी का सत्कार आप नहीं करेंगे, परम भट्टारक ! शकराज करेगा।

रामगुप्त : महादेवी का सत्कार शकराज करेगा ! मैं समझा नहीं, अमात्य ! शकराज करेगा महादेवी का सत्कार ?

महामात्य : हाँ, देव ! महादेवी का सत्कार शकराज करना चाहता है। सुलोचना ! तुम यहाँ से जाओ। मैं परम भट्टारक के साथ एकान्त चाहता हूँ।

सुलोचना : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

महामात्य : परम भट्टारक ! मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि आप स्थिर चित्त से युद्ध की भयानकता का अनुमान करें। हमारे आधे से अधिक वीर मारे जा चुके हैं। शकराज ने विजय प्राप्त की है और सन्धि-पत्र भेजा है।

रामगुप्त : देखने में तो बड़ा सुन्दर सन्धि-पत्र है, महामात्य !

महामात्य : किन्तु सुनने में उतना ही भयानक। सुनिए, 'परम भट्टारक महापराक्रमांक रामगुप्त की सेवा में कुषाणवंशी शकराज का निवेदन है कि महादेवी ध्रुव-स्वामिनी का विवाह-सम्बन्ध सबसे प्रथम मुझसे स्थिर हुआ था. किन्तु परम भट्टारक समुद्रगुप्त पराक्रमांक की दिग्विजय में महादेवी के पिता ने सामन्त बन-कर महादेवी को आर्य समुद्रगुप्त के चरणों में समर्पित कर दिया। महादेवी पर प्रथम अधिकार मेरा है। युद्ध में विजय प्राप्त करके भी मैं इस बात पर सन्धि करता हूँ कि महादेवी को मेरे पास भेज दिया जाय। व्यास के दूसरे तट पर मेरा शिविर है। मैं कल संध्या तक महादेवी की प्रतीक्षा करूँगा।

—**कुषाणवंशी शकराज।**'

रामगुप्त : यह सन्धि-प्रस्ताव तो बड़ा भयानक है, अमात्य ! वह महादेवी की प्रतीक्षा करेगा ! इधर मैं महादेवी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

महामात्य : इस सन्धि-प्रस्ताव के सम्बन्ध में क्या निर्णय है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : निर्णय ! मैं इस प्रस्ताव पर उससे भयानक युद्ध करता, किन्तु महामात्य, मेरे युद्ध के अच्छे-अच्छे वस्त्र सब राजधानी में ही रह गये हैं। युद्ध में शकराज कहेगा कि परम भट्टारक रामगुप्त पराक्रमांक के पास युद्ध के वस्त्र ही नहीं हैं। यह अपमान मैं सहन नहीं कर सकूँगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महामात्य : तो यह स्पष्ट है कि आप युद्ध में नहीं जावेंगे।

रामगुप्त : जाना तो चाहता हूँ, किन्तु किसी दूसरे के वस्त्र परम भट्टारक को पहनना शोभा नहीं देता।

महामात्य : ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए ? हमारे सब बड़े-बड़े वीर युद्ध में काम आ चुके हैं। एक भी ऐसा वीर नहीं है जो शत्रु के आक्रमण को रोक सके।

रामगुप्त : चन्द्रगुप्त को युद्ध में नहीं भेजा ? वह मेरी ओर से लड़ेगा और अपनी ओर से भी। क्योंकि वह दोनों हाथों से तलवार चलाता है। एक हाथ उसका, एक हाथ मेरा।

महामात्य : राजकुमार चन्द्रगुप्त आज ही राजधानी से आये हैं, किन्तु वे अकेले शत्रु के हजारों सैनिकों से कैसे युद्ध कर सकेंगे ?

रामगुप्त : फिर तुम्हारी क्या सम्मति है, महामात्य !

महामात्य : मेरी सम्मति तो यह है, परम भट्टारक, कि राष्ट्र की रक्षा राजा का प्रथम कर्त्तव्य है। हम सब व्यक्तियों का बलिदान कर सकते हैं, किन्तु अपने महापुरुषों द्वारा अर्जित राज्य नहीं खो सकते। उन्होंने न जाने कितने युद्ध लड़े होंगे, न जाने कितनी रक्त की नदियाँ बहाई होंगी, तब कहीं जाकर इतना विशाल साम्राज्य उन्होंने संगठित किया। हम केवल एक व्यक्ति के पीछे सहस्रों वीरों का रक्त नहीं बहा सकते। सम्मान तो बनता-बिगड़ता रहता है, किन्तु राज्य एक बार हाथ से निकल जाने पर फिर कठिनाई से प्राप्त होता है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : तुम्हारा कहना यथार्थ है, महामात्य !

महामात्य : और फिर शकराज से मैत्री हो जाने से यह राज्य अकंटक हो जायगा, परम भट्टारक ! इसमें सन्देह नहीं।

रामगुप्त : यह भी यथार्थ है, महामात्य !

महामात्य : फिर इस सन्धि-प्रस्ताव के सम्बन्ध में क्या निर्णय है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : निर्णय ! मधुपात्र की सहायता के बिना मैं कभी कोई निर्णय नहीं कर सकता। और फिर सुलोचना भी नहीं है।

महामात्य : सुलोचना की कोई आवश्यकता नहीं है, परम भट्टारक ! वह तो महादेवी को चाहता है।

रामगुप्त : चन्द्रगुप्त भी महादेवी को चाहता है, अब शकराज भी चाहने लगा। मेरे चाहने की बात किसी के सामने नहीं आती, महामात्य !

महामात्य : आप महान् हैं, परम भट्टारक ! आप इसकी चिन्ता न करें।

रामगुप्त : महामात्य ! शकराज कहता है कि महादेवी का विवाह-सम्बन्ध पहले उसी के साथ स्थिर हो चुका था। क्या यह सत्य है ?

महामात्य : लिखता तो वह यही है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : तब तो सत्य की रक्षा होनी चाहिए। यदि महादेवी के पिता ने उनके साथ अन्याय किया तो हम तो नहीं कर सकते। गुप्त-कुल सत्य की रक्षा के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए प्रसिद्ध है। यदि महादेवी का विवाह-सम्बन्ध पहले शकराज के साथ स्थिर हो चुका है, तो महादेवी को उसी के पास जाना चाहिए। इससे दोनों बातों की पूर्ति होगी। एक तो शकराज से हमारी सन्धि होगी जिससे हमारे बचे हुए सैनिक मृत्यु से बचेंगे और दूसरे हम सत्य की रक्षा कर सकेंगे। शकराज हमारे न्याय पर हमारी जय का घोष करेगा। तुम्हारी सन्धि करने की सम्मति नितान्त उचित है, महामात्य !

महामात्य : तो फिर शकराज की इच्छानुसार हम महादेवी को भेंट में देकर शकराज से संधि कर लें ?

रामगुप्त : संधि ! संधि तो आवश्यक है। संधि तो आवश्यक है, महामात्य ! महादेवी को इस बात की सूचना देनी होगी और मेरा महादेवी से प्रथम परिचय भी नहीं हुआ, प्रथम परिचय भी नहीं।

महामात्य : जिस वस्तु से परिचय भी नहीं हुआ, परम भट्टारक, उसके जाने से विशेष दुःख भी नहीं होता। एक बात और परम भट्टारक ! शकराज ने महादेवी के साथ सौ स्त्रियाँ भी अपने सामन्तों के लिए माँगी हैं।

रामगुप्त : ठीक ही माँगी हैं, महामात्य ! क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि ध्रुवस्वामिनी उसकी महादेवी बनने जा रही हैं, तो वे अकेली तो जायँगी नहीं। कम-से-कम सौ स्त्रियाँ उनकी सेवा करती हुई जानी चाहिए। उन्हीं स्त्रियों को वह अपने सामन्तों के लिए चुन लेगा।

महामात्य : आपकी बुद्धि वास्तव में बहुत तीक्ष्ण है, परम भट्टारक ! यह उपहार पाकर शकराज वास्तव में आपकी प्रशंसा करेगा।

रामगुप्त : प्रशंसा की क्या बात है, महामात्य ! तुम्हीं विचार कर देखो उपहार के महत्त्व को ! महादेवी...ध्रुवस्वामिनी उपहार में मेरे पिता को प्राप्त हुईं। तो उपहार...उपहार में मिली हुई वस्तु...हम जैसे वीरों को स्वीकार हो सकती है ? हम उपहार की वस्तु उपहार में ही देंगे। हम किसी का उपहार स्वीकार नहीं कर सकते।

महामात्य : देव ! आप ठीक सोच रहे हैं। सिंह को कोई उपहार नहीं दे सकता। वह अपने बल से...अपनी शक्ति से अपना आखेट करता है। उपहार स्वीकार करना आपकी शक्ति का अपमान है।

रामगुप्त : शक्ति का अपमान ! तुम ठीक कहते हो, अमात्य ! यह मेरी शक्ति का अपमान है। उपहार में प्राप्त की गई वस्तु उपहार की सामग्री ही बन सकती है। ठीक है। हम महादेवी को उपहार-स्वरूप शकराज को भेंट करेंगे। तुम शकराज को लिख दो कि आपकी संधि हमें स्वीकार है...स्वीकार है **(सुलोचना का प्रवेश)** तुम आ गईं, सुलोचना !

सुलोचना : परम भट्टारक की जय ! महादेवी ध्रुवस्वामिनी आपकी सेवा में......

रामगुप्त : यह भी तुम्हारा उपहार है, किन्तु मधुपात्र के अतिरिक्त मैं कोई उपहार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रहण नहीं करता । कोई उपहार नहीं...केवल मधुपात्र ! **[पान करता है ।]**

सुलोचना : देव ! महादेवी सेवा में उपस्थित हैं ।

महामात्य : यह भी ठीक हुआ, परम भट्टारक ! महादेवी स्वयं आ रही हैं ।

रामगुप्त : महादेवी ध्रुवस्वामिनी ! उपहार की महादेवी !... **(सोचता हुआ)** ध्रुवस्वामिनी सौन्दर्य की दीपशिखा...जिसकी लौ से सौन्दर्य का प्रकाश तो बिखरता है, किन्तु उसमें आग है...आग...फूलों की माला में सर्प...मधुपात्र में भयानक हलाहल...रसना में कृपाणी...रसना में......

सुलोचना : क्या सोच रहे हैं, देव !

रामगुप्त : **(चौंककर)** और मेरा मन बार-बार कह रहा है...सुलोचना...!

सुलोचना : किन्तु वे तो महादेवी हैं देव ! मैं तो केवल परिचारिका मात्र ... परिचारिका...!

रामगुप्त : किन्तु परम भट्टारक रामगुप्त की परिचारिका किसी भी महादेवी से महान् है । क्योंकि...क्योंकि...

सुलोचना : परम भट्टारक रुक क्यों गये ?

महामात्य : परम भट्टारक ने राजनीति की एक महान् समस्या हल की है ।

रामगुप्त : हाँ, मैंने हल की है...मैंने ही हल की है ..मेरा कंठ सूख रहा है, सुलोचना !

सुलोचना : यह पान कीजिए, देव ! **[मदिरा-पात्र भरकर देती है ।]**

रामगुप्त : **(पान करते हुए)** राजनीति की महान् समस्या...

[महादेवी ध्रुवस्वामिनी का प्रवेश]

ध्रुवस्वामिनी : आर्यपुत्र की जय !

रामगुप्त : **(मादक स्वरों में)** महादेवी ध्रुवस्वामिनी ! स्वागत, महादेवी !

महामात्य : महादेवी की जय !

ध्रुवस्वामिनी : सुलोचना ! मैं एकान्त चाहती हूँ ।

सुलोचना : जो आज्ञा ! **[जाने को उद्यत होती है ।]**

रामगुप्त : तुम जा रही हो, सुलोचना ! फिर मेरा मधुपात्र कौन भरेगा ?

ध्रुवस्वामिनी : भरनेवालों की कमी नहीं है, आर्यपुत्र ! सुलोचना ! तुम जाओ !

सुलोचना : जो आज्ञा हो ! **[प्रस्थान]**

रामगुप्त : महामात्य ! तुम मेरा मधुपात्र भरोगे ? मैं महादेवी को कष्ट नहीं देना चाहता ।

ध्रुवस्वामिनी : महामात्य !

महामात्य : हाँ, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : महामात्य ! तुम राजनीति के आचार्य हो । तुम दाम्पत्य-नीति भी जानते होगे ?

महामात्य : हाँ, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : मैं केवल महादेवी ही नहीं हूँ, अपने पति की पत्नी भी हूँ और ऐसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवसर पर तुम जानते हो कि तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है ?

रामगुप्त : वे अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह जानते हैं, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : आर्यपुत्र ! महामात्य इसका उत्तर दें !

महामात्य : मैं अपना कर्त्तव्य तो अच्छी तरह जानता हूँ, महादेवी ! किन्तु इस समय युद्ध की मंत्रणा भी आवश्यक है जिसमें मेरा यहाँ रहना सब प्रकार से उचित है।

ध्रुवस्वामिनी : इसका निर्णय मैं करूँगी कि आपका यहाँ रहना आवश्यक है या नहीं । और मैं यह निर्णय करती हूँ कि......

रामगुप्त : महादेवी ! निर्णय के पूर्व मेरा रिक्त मधुपात्र......

ध्रुवस्वामिनी : परम भट्टारक ! क्षमा करें । इस समय रिक्त मधुपात्र भरने की आवश्यकता नहीं है और मेरा कर्त्तव्य केवल रिक्त मधुपात्र भरना ही नहीं है, मैं विलासिनी नहीं हूँ, गुप्त-कुल की महादेवी हूँ ।

महामात्य : किन्तु......

ध्रुवस्वामिनी : किन्तु-परन्तु नहीं, महामात्य ! मैं इस स्थान की एकमात्र स्वामिनी हूँ ।

महामात्य : किन्तु यह युद्ध-शिविर है, महादेवी ! और यहाँ युद्ध की मन्त्रणाएँ होती हैं ।

ध्रुवस्वामिनी : मधुपात्र के साथ ! यहाँ कृपाण की धार पर निर्णय होना चाहिए, महामात्य ! मधु की धार पर नहीं ।

महामात्य : यह तो परम भट्टारक की इच्छा ।

ध्रुवस्वामिनी : परम भट्टारक की ! और आप उनके महामात्य हैं। यदि परम भट्टारक अन्तःपुर की दिशा भूल कर युद्ध-शिविरों में विलास के कुंज बसा लें, तो क्या आपका यह कर्त्तव्य नहीं है कि उन विलास-कुंजों को नष्ट कर दें और युद्ध-शिविर को युद्ध-शिविर ही रहने दें ?

रामगुप्त : **(भर्राये स्वर से)** यह युद्ध-शिविर ही बन गया, महादेवी ! तुमने सुलोचना को हटा ही दिया और लो, मैं यह मधुपात्र भी फेंक देता हूँ। **(मधुपात्र से)** जा, मधुपात्र ! टूट जा । **(फेंक देता है)** युद्ध में गिरे हुए वीर के मस्तक की तरह टूट जा । तेरे भीतर से भी लाल रक्त की तरह लाल मदिरा बह निकलेगी । **(महादेवी से)** लो महादेवी ! मधुपात्र को मैंने चूर-चूर कर दिया ।

ध्रुवस्वामिनी : मैं कृतार्थ हुई । अब युद्ध की मंत्रणा हो सकती है ।

रामगुप्त : तुम युद्ध में मंत्रणा दोगी, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : युद्ध में मंत्रणा क्यों न दूँगी, परम भट्टारक ! गुप्त-कुल की वधू केवल अन्तःपुर की निवासिनी नहीं है, वह युद्ध की मंत्रणा में भी भाग ले सकती है और युद्ध भी कर सकती है, विशेषकर जब आर्यपुत्र इस युद्ध-शिविर में हैं । गुप्त-कुल के गौरव के अनुकूल ही यह बात है कि पति-पत्नी का प्रथम सम्भाषण अमात्य के सामने युद्ध-शिविर में हो ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रामगुप्त : मैं तुम्हारे पास आने ही वाला था, महादेवी ! किन्तु......

ध्रुवस्वामिनी : ...सुलोचना ने नहीं आने दिया । विलास-कुंजों ने रोक लिया। मधु-पात्र की सरिता बहुत गहरी हो गई। मधु की बूँदों के दर्पण में बन्दी हो गये।

महामात्य : मुझे यहाँ से चला जाना चाहिए था, महादेवी ! किन्तु आपके सम्बन्ध में ही वार्त्तालाप हो रहा था।

ध्रुवस्वामिनी : मेरे सम्बन्ध में ! आर्यपुत्र के अतिरिक्त किसी को भी अधिकार नहीं है कि वह मेरे सम्बन्ध में वार्त्तालाप करे।

महामात्य : क्षमा करें, महादेवी ! शकराज भी इसे अपना अधिकार समझता है ।

ध्रुवस्वामिनी : (**तीव्रता से**) महामात्य ! तुम्हें शकराज को इसका दंड देना चाहिये । उसे इसी विष्णुपद के समीप व्यास नदी में डुबा देना चाहिए।

महामात्य : यदि उसने हमें घेर न लिया होता तो उसे मैं अवश्य ही व्यास नदी में डुबा देता, परम भट्टारक !

ध्रुवस्वामिनी : तो क्या शकराज ने हमारे शिविर को घेर लिया है ?

रामगुप्त : इसमें शकराज का कौशल ही क्या ! हमारा शिविर ही इतना छोटा है कि शकराज का शिशु भी उसे घेर सकता है । [**हँसता है।**]

ध्रुवस्वामिनी : (**व्यंग्य से**) और आप सरलता से घिर सकते हैं। आर्यपुत्र ! क्या दिग्विजयी समुद्रगुप्त पराक्रमांक के वंश में इस प्रकार की बात करने वाले परम भट्टारक की संज्ञा से पुकारे जा सकते हैं ?

रामगुप्त : इसका उत्तर दो, महामात्य शिखरसेन !

ध्रुवस्वामिनी : आर्यपुत्र यदि स्वयं उत्तर नहीं दे सकते तो उन्होंने आर्य समुद्रगुप्त की व्यवस्था के विपरीत चन्द्रगुप्त से सिंहासन क्यों छीन लिया ?

रामगुप्त : चन्द्रगुप्त के साथ यह पक्षपात......

महामात्य : गुप्त-कुल में ज्येष्ठ पुत्र द्वारा ही सिंहासन प्राप्त करने की परम्परा है, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : चुप रहिए, महामात्य ! आप राजनीति का मार्ग कूटनीति और षड्यंत्र के पैरों से नहीं चल सकते । यह आपकी ही मंत्रणा थी कि मैं नारी के स्वाभाविक अधिकारों को छोड़कर महादेवी बन जाऊँ ! महादेवी...जिसके वैभव के सिंहासन पर नारीत्व क्रंदन कर रहा है। रानी का मुकुट उसके मस्तक का सौन्दर्य अवश्य बढ़ा देता है, किन्तु उसके नीचे उसके सुहाग की रेखा छिप जाती है ।

रामगुप्त : (**चौंककर**) सुहाग की रेखा ! सुहाग-रेखा तो वर्तमान है, महामात्य !

ध्रुवस्वामिनी : वर्तमान है ? मुझसे कहें, आर्यपुत्र ! जब परम भट्टारक महादेवी के सौभाग्य की बातें महामात्य की मंत्रणा से करते हैं तब भी महादेवी की सुहाग-रेखा...

महामात्य : महादेवी, क्षमा करें ! परम भट्टारक और महादेवी केवल पति-पत्नी ही नहीं, राज्य के राजा और रानी भी हैं । उनका सम्बन्ध केवल उन्हीं तक सीमित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं है, उनसे राज्य के मंगल और अमंगल का भी सम्बन्ध है और आज तो अमंगल अपनी चरम सीमा तक पहुँच रहा है।

ध्रुवस्वामिनी : अपने ही राज्य में राजनीति की बातें स्पष्ट कही जाती हैं, महामात्य !

महामात्य : मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ, किन्तु महादेवी ! स्पष्ट कहने का साहस मुझमें नहीं है।

ध्रुवस्वामिनी : तब यह साहस किसमें होगा ? क्या मैं परम भट्टारक से प्रार्थना करूँ कि हमारे प्रथम मिलन ही में राजनीति अमंगल को क्यों निमंत्रित कर रही है ? क्या परम भट्टारक में भी साहस नहीं है कि वे अमंगल को मंगल में परिणत कर दें ?

रामगुप्त : महामात्य ! साहस एकत्रित करो। राजनीति के प्रत्येक पर्व में तुमने हमारी सहायता की है। मेरा कंठ सूख रहा है, अमात्य ! अब तो मेरा मधुपात्र टूट गया।

महामात्य : महादेवी की आज्ञा से दूसरा मधुपात्र आ सकता है, परम भट्टारक !

ध्रुवस्वामिनी : बात बदली नहीं जा सकती, महामात्य ! मैं अपने प्रश्न का सीधा उत्तर चाहती हूँ। आप किस अमंगल की बात कह रहे थे ?

महामात्य : महादेवी ! यदि क्षमा करें तो...

ध्रुवस्वामिनी : स्पष्ट कहिए, महामात्य ! शब्दों के छद्म-वेष में बात छिपाई नहीं जा सकती। निर्बलता ही शिष्टाचार का आवरण है।

महामात्य : महादेवी ! शकराज ने हमारे दुर्ग को घेर लिया है। वह हमारे रक्तपात पर तुला हुआ है, किन्तु इतने पर भी उसने संधि का प्रस्ताव भेजा है।

ध्रुवस्वामिनी : यह आग शीतल क्यों हो रही है ? सिंह गो-मुख की मुद्रा क्यों धारण करता है ?

रामगुप्त : वह बात कह दो, महामात्य ! महादेवी सुनने की मुद्रा में हैं। ओह ! महादेवी ! तुम कितनी महान् हो।

महामात्य : महादेवी ! वह संधि केवल इस बात पर करना चाहता है कि परम भट्टारक अपनी महादेवी ध्रुवस्वामिनी को उसे भेंट कर...

ध्रुवस्वामिनी : **(बीच ही में चीखकर)** महामात्य...!

महामात्य : महादेवी, क्षमा करें ! शकराज कहता है कि उसका विवाह-सम्बन्ध पहले ही महादेवी से स्थिर हो चुका था। तभी तो महादेवी के पिता ने उपहार-स्वरूप उन्हें गुप्त-कुल में...

ध्रुवस्वामिनी : चुप रहो... महामात्य ! स्त्री उपहार की सामग्री नहीं है। **(रामगुप्त से)** परम भट्टारक ! मैं महामात्य को दंड देना चाहती हूँ।

रामगुप्त : महामात्य, तुम दंड के भागी हो। अवश्य ही दंड के भागी हो और सबसे बड़ा दंड मैं यह तुम्हें देना चाहता हूँ कि तुम इसी समय मेरे लिए एक भरा हुआ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मधुपात्र उपस्थित करो ! क्यों न, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : **(आह भरकर)** ओफ़ ! जिस बात पर कृपाण म्यान छोड़कर शत्रुओं के कंठों पर गतिशील हो सकती है, उसी बात पर गुप्त-कुल दंड की व्यवस्था में मधुपात्र...की इच्छा करता है । परम भट्टारक ! यह कैसी बात है ! कैसी विडंबना है ! **(महामात्य से)** महामात्य ! परम भट्टारक को कुत्सित मंत्रणा देने के कारण तुम अपने को दंड का भागी समझो !

महामात्य : महादेवी ! दंड से भी अधिक भयानक जो हो वह मुझे दीजिए, किन्तु परम भट्टारक ने ही यह राजनीति की समस्या हल कर दी है । वे शकराज के संधि-प्रस्ताव को मान चुके हैं ।

ध्रुवस्वामिनी : **(चीखकर)** ओह ! निर्लज्ज अमात्य ! यह कलंकित सूचना देने के अपराध में तुम्हारी जिह्वा काट दी जायगी । जाओ, यहाँ से इसी समय चले जाओ ! मैं एकान्त चाहती हूँ ।

महामात्य : जैसी आज्ञा, महादेवी ! अमात्य का कार्य सूचना देना है, चाहे वह पवित्र हो या कलंकित । निर्णय का अधिकार परम भट्टारक और महादेवी को है । परम भट्टारक और महादेवी को प्रणाम ! [**प्रस्थान**]

रामगुप्त : **(उठकर)** मैं भी चल रहा हूँ, महामात्य !

ध्रुवस्वामिनी : **(रोककर)** नहीं, आप नहीं जा सकते । मैं यह पूछना चाहती हूँ कि जो कुछ महामात्य ने कहा है, क्या वह सत्य है ?

महामात्य : **(घबराकर)** एँ एँ एँ एँ, मैं क्या कहूँ ! सत्य भी हो सकता है ।

ध्रुवस्वामिनी : तो परम भट्टारक ने यह संधि स्वीकार कर ली ? परम भट्टारक ! क्या गुप्त-साम्राज्य की विभूति इसी में है कि शत्रुओं को रक्त देने के स्थान पर अपनी मान-मर्यादा दे दी जाय ? परम भट्टारक ! यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकेगा ।

रामगुप्त : महामात्य कहते हैं कि साम्राज्य की रक्षा करना हमारा धर्म है, देवी ! हम एक स्त्री के पीछे साम्राज्य नहीं खो सकते ।

ध्रुवस्वामिनी : यह तो अमात्य कहते हैं, किन्तु आप क्या कहते हैं ? अपनी महादेवी को शत्रु के हाथों सौंपने पर जिस साम्राज्य की रक्षा आप करेंगे क्या वह साम्राज्य आपको कीर्ति दे सकेगा ? अपमान के साथ मिला हुआ वैभव ऐसा भोजन है जिसमें विष मिला हुआ है । उससे जीवन की रक्षा नहीं हो सकती ।

रामगुप्त : तुम्हारा उपदेश तो बहुत सुन्दर है, महादेवी ! यदि तुम्हारा और महामात्य का उपदेश एक ही तरह होता तो कितना अच्छा होता ! अब सबसे बड़ी कठिनाई यह है, महादेवी, कि शकराज तुम्हें माँगता है । क्या यह सच है कि तुम्हारा विवाह-सम्बन्ध शकराज से स्थिर हो चुका था ?

ध्रुवस्वामिनी : बलपूर्वक न तो स्त्री का विवाह-सम्बन्ध स्थिर हो सकता है और न उससे प्रेम किया जा सकता है । मैं पूछती हूँ, परम भट्टारक ! क्या गुप्त-कुल की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यही मर्यादा है कि स्त्री के मूल्य पर संधि प्राप्त की जाय ?

रामगुप्त : जो कुछ मैं करूंगा आगे चलकर वही मर्यादा समझी जायगी। किन्तु यह भी सोचो, महादेवी, कि मैं एक स्त्री के स्थान पर लाखों वीरों की रक्षा कर रहा हूँ। महामात्य शिखरसेन भी यही कहते हैं। मेरी राजनीति की तुम प्रशंसा नहीं करतीं !

ध्रुवस्वामिनी : आपकी राजनीति मुझे आत्महत्या का निमंत्रण दे रही है।

रामगुप्त : **(घबराकर)** न न न न न न न, ऐसा न करो, ऐसा न करो, महादेवी ! मेरी संधि पूरी न हो सकेगी। गुप्त-साम्राज्य शकराज के हाथों नष्ट हो जायगा। तुम्हारी आत्महत्या से मेरे प्रख्यात वंश में रक्त का धब्बा लग जायगा।

ध्रुवस्वामिनी : सत्य है, रक्त के धब्बे से कहीं कलंक का धब्बा धुल न जाय !

रामगुप्त : तो तुम आत्महत्या तो न करोगी ? नहीं...नहीं। ओह, देवी ! तुम कितनी सुन्दर हो ! कितनी सुन्दर हो ! मेरे सम्मान का कितना ध्यान रखती हो ! अच्छा, देवी ! मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि तुम इतनी सुन्दर हो क्यों ? इस सुन्दरता का रहस्य क्या है ? मैं यदि एक मधुपात्र पान कर लूं तो इस एक सुन्दरता को सौ गुनी देख सकता हूँ। **(महादेवी मौन रहती है)** तुम बोलती क्यों नहीं, महादेवी ! तुम बोलती क्यों नहीं ? तुम मुझ से युद्ध करने के लिए कहोगी, किन्तु संभव नहीं है, महादेवी ! क्योंकि मेरे विचार से तलवारों का युद्ध अच्छी बात नहीं है। इतने वर्षों से पोषित किया हुआ सुन्दर शरीर एक क्षण में कट जाता है। वर्षों से पोषित की हुई सुन्दरता की सम्पत्ति तलवार के एक हल्के झोंके में ही उड़ जाती है। सोचो ! तुम्हीं सोचो।

ध्रुवस्वामिनी : **(करुण स्वर से)** आपके विचार क्यों ऐसे हुए, आर्यपुत्र ! किसने आपको इन विचारों में पोषित किया ? आर्य समुद्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र को युद्ध में शरीर की सुन्दरता का ध्यान क्यों होता है ? आप अपने को सम्हालिए, आर्यपुत्र !

रामगुप्त : अच्छी बात है, इस संधि के बाद अपने को सम्हाल लूंगा।

ध्रुवस्वामिनी : **(बिलखकर)** नहीं, नहीं, आर्यपुत्र ! इस सन्धि में आप मेरा बलि-दान न कीजिए। नहीं, नहीं ! परम भट्टारक ! ऐसा न कीजिए। आपकी अनु-चरी हूँ। गुप्त-कुल की महादेवी हूँ। आर्य समुद्रगुप्त की कीर्ति देखिए। मैं आपकी पत्नी हूँ, आर्यपुत्र !

रामगुप्त : तो पत्नी को पति की आज्ञा माननी चाहिए।

ध्रुवस्वामिनी : मैं आपकी सब आज्ञाएँ मानूंगी, आर्यपुत्र ! किन्तु ऐसी आज्ञा न दीजिए जिसमें वंश का गौरव ही नष्ट हो जाय। मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, आर्यपुत्र ! मेरी रक्षा कीजिए, मेरी रक्षा कीजिए ! [सिसकियाँ]

रामगुप्त : अरे, यह क्या ! यह क्या ! परम भट्टारक रामगुप्त की महादेवी को रोना शोभा नहीं देता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्रुवस्वामिनी : अपने दुर्भाग्य को आँसुओं से बहा देना चाहती हूँ, आर्यपुत्र ! आपने मुझसे विवाह किया था, मेरी रक्षा का भार एकमात्र आप पर ही है । मैं आपसे भिक्षा माँगती हूँ कि वंश-मर्यादा की रक्षा कीजिए ।

रामगुप्त : महादेवी ! उठो, उठो । संधि से ही वंश की रक्षा हो सकती है ।

ध्रुवस्वामिनी : तो आपका यह निश्चय अटल है ?

रामगुप्त : हाँ, बिल्कुल अटल, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन या संशोधन नहीं होगा ?

रामगुप्त : नहीं, तुम्हें शकराज के पास जाना ही होगा ।

ध्रुवस्वामिनी : और यदि मैं न जाऊँ तो ?

रामगुप्त : बलपूर्वक भेजा जायगा । नहीं तो शकराज कहेगा कि मुझे अपनी स्त्री पर भी अधिकार नहीं । जिसे अपनी स्त्री पर अधिकार नहीं, वह राज्य पर अधिकार कैसे रख सकता है ?

ध्रुवस्वामिनी : ऐसा व्यक्ति न पति हो सकता है, न राजा ।

रामगुप्त : **(उग्रता से)** महादेवी ! तुम मेरा अपमान नहीं कर सकतीं ।

ध्रुवस्वामिनी : मैं अपमान क्या कर सकती हूँ । अपमान तो शकराज कर सकता है । और उस अपमान को गौरव के साथ सिर पर धारण किया जा सकता है ।

रामगुप्त : **(तीव्रता से)** महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : यह तीव्रता मेरे ही साथ है ? जाने दीजिए । मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी ।

रामगुप्त : तुम अपनी रक्षा स्वयं करोगी, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : हाँ, जब पति अपनी मर्यादा खो रहा है, तब पत्नी उस मर्यादा की रक्षा करेगी ।

रामगुप्त : महादेवी ! तुम मर्यादा की रक्षा नहीं करोगी । शकराज के हाथों मेरे प्राण संकट में पड़ जायेंगे ।

ध्रुवस्वामिनी : तो यह कहना चाहिए कि परम भट्टारक कायर हैं और क्लीव भी । यदि राजकुमार चन्द्रगुप्त यह सुनें कि मेरी दशा इतने संकट में है तो वे अपने प्राणों का मूल्य चुकाकर......

रामगुप्त : **(बीच ही में)** चन्द्रगुप्त का नाम न लो, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : क्यों ? क्यों न लूं ? मैं उनकी वाग्दत्ता थी । तुमने कूट मंत्रणा करके मुझसे विवाह किया । उन्होंने मर्यादा के लिए अपने बड़े भाई को राज्य और स्त्री दोनों पर अधिकार कर लेने दिया, किन्तु बड़ा भाई इतना कायर है कि वह किसी की रक्षा भी नहीं कर सकता ।

रामगुप्त : तुम चन्द्रगुप्त का नाम न लो, महादेवी ! मुझे ईर्ष्या हो रही है ।

ध्रुवस्वामिनी : शकराज के पास मुझे भेजने में ईर्ष्या नहीं होती ? आर्य समुद्रगुप्त की इच्छानुसार मेरा जो सच्चा अधिकारी है, उसके प्रति आपको ईर्ष्या हो रही है ?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रामगुप्त : मैं अधिक बातें नहीं सुनना चाहता, महादेवी ! इतनी बातों के बदले यदि तुमने एक मधुपात्र ही दे दिया होता तो मैं तुम्हें क्षमा कर देता; किन्तु अब तुम क्षमा भी नहीं की जा सकतीं।

ध्रुवस्वामिनी : मुझे क्षमा की आवश्यकता भी नहीं है, परम भट्टारक ! मैं आपको मद्यप और निर्लज्ज समझती हूँ। आपकी क्षमा का मेरे समक्ष कोई मूल्य नहीं है। मेरी मर्यादा की रक्षा केवल यही कृपाणी करेगी। (**कृपाणी निकाल लेती है**) मैं जा रही हूँ। [**जाने को उद्यत होती है।**]

रामगुप्त : (**घबराहट से**) देखो, देखो, महादेवी ! मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम आत्महत्या न करना। शकराज मेरी हत्या कर देगा। मेरे प्राणों के लिए—जीवन के लिए। महादेवी ! (**महादेवी का शीघ्रता से प्रस्थान**) गईं। वे कहीं आत्महत्या न कर लें ? मैं जाऊँ ? हाय, मैं क्या करूँ, सुलोचना......! सुलोचना......!

[**राजकुमार चन्द्रगुप्त का कृपाण लिये हुए प्रवेश**]

चन्द्रगुप्त : परम भट्टारक की जय !

रामगुप्त : कौन, चन्द्रगुप्त ! भाई चन्द्रगुप्त ! महादेवी को बचाओ। वे आत्महत्या करने जा रही हैं। ओह ! मेरी संधि कैसे पूरी होगी ? वे आत्महत्या करने जा रही हैं।

चन्द्रगुप्त : कौन आत्महत्या करने जा रही हैं ? महादेवी ! नहीं। वे आत्महत्या नहीं करेंगी। मैं उनके आदर्श को पहिचानता हूँ। गुप्त-वंश की वीर वधू कभी आत्महत्या न करेगी।

रामगुप्त : किन्तु चन्द्रगुप्त ! उन्होंने कृपाणी निकाल भी ली है।

चन्द्रगुप्त : तो कृपाणी तो महादेवी की शोभा है, परम भट्टारक ! और फिर ऐसी कौन-सी बात है जिसके लिए आत्महत्या करनी पड़े ?

रामगुप्त : शकराज का युद्ध है, चन्द्रगुप्त !

चन्द्रगुप्त : हाँ, मैंने सुना है कि शकराज ने भयानक युद्ध किया है।

रामगुप्त : देखो, तुम्हारे शरीर पर भी छींटे हैं। ये मधु के छींटे तो......

चन्द्रगुप्त : युद्ध के दिन में मधु के छींटे शरीर और वस्त्रों पर नहीं गिरते, परम भट्टारक ! (**सामने टूटा हुआ मधुपात्र देखकर**) और आपने भी तो यह मधुपात्र तोड़ दिया है, गुप्त-कुल की मर्यादा इसीलिए स्थिर है कि युद्ध के दिनों में विलास स्वप्न की तरह भुला दिया जाता है। आत्म-सम्मान और वंश-गौरव ही एकमात्र कहने और सुनने का विषय बन जाता है।

रामगुप्त : किन्तु कभी-कभी ऐसा करना कठिन हो जाता है, चन्द्रगुप्त !

चन्द्रगुप्त : हो सकता है, परम भट्टारक ! आज ही मैं राजधानी से आया। शिविर में आते समय मैंने सुना कि हमारा दुर्ग चारों ओर से घिर गया है। शत्रु-पक्ष के सैनिक ने व्यंग्य से कहा कि हमारे शकराज महादेवी ध्रुवस्वामिनी को उपहार में लेकर संधि करेंगे। मैंने उसी क्षण उस सैनिक का सिर काट दिया। मुझ पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
चारों ओर से आक्रमण हुए किन्तु मैंने प्रत्येक आक्रमण का निवारण किया और दस सैनिकों को सदा के लिए सुला दिया। उन्हीं के रक्त के ये धब्बे हैं। यह मधु नहीं है, परम भट्टारक! शत्रु का रक्त है जिसे मैंने महादेवी के अपमान में युद्ध-भैरवी का तिलक बना दिया।

रामगुप्त : किन्तु, चन्द्रगुप्त! संधि कर लेनी चाहिए। यह महामात्य ने भी कहा है।

चन्द्रगुप्त : संधि! परम भट्टारक! आप क्या कह रहे हैं? महामात्य को दण्ड दीजिए। संधि के लिए झुकना गुप्त-कुल की परम्परा में नहीं है। और वह संधि भी कैसी? गुप्त-कुल की गौरव-लक्ष्मी महादेवी ध्रुवस्वामिनी का अपमान करते हुए? परम भट्टारक! ऐसा दिन आने के पूर्व ही गुप्त-साम्राज्य का एक-एक सैनिक अपना रक्त बहाना अपने जीवन का सबसे बड़ा कर्त्तव्य समझेगा।

रामगुप्त : और तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है, चन्द्रगुप्त, यह जानते हो! अस्तु, ये बातें तो होती रहेंगी। तुम मुझे एक मधुपात्र भी नहीं दे सकते? कितनी देर से मैं मधु की कामना कर रहा हूँ!

चन्द्रगुप्त : इस समय आप शत्रुओं का रक्तपान कीजिए, परम भट्टारक! शत्रुओं की संख्या बहुत अधिक है। आपका रक्त-पात्र कभी रिक्त न होगा। मेरे समक्ष गुप्त-वंश की मर्यादा सुरक्षित रखने का व्रत है। इस कुल का महत्त्व स्थिर रहे इसीलिए मैंने राजदंड न ग्रहण करके पिता के द्वारा दिया गया सिंहासन छोड़ दिया। और आपके परम भट्टारक बनने में अपने सौभाग्य का अनुभव किया।

रामगुप्त : किन्तु राज्य तो बड़े भाई को ही मिलना चाहिए। इसे मानकर तुमने छोटे भाई की तरह काम किया। बड़े भाई को राजनीति के प्रसंगों को सुलझाने का गंभीर कार्य करना है और बड़े भाई ने यह निर्णय दे दिया है कि इस समय की परिस्थिति में राज्य की रक्षा के लिए उचित यही है कि महादेवी शकराज के शिविर में चली जावें।

चन्द्रगुप्त : (उग्रता से) परम भट्टारक!

रामगुप्त : राजनीति पर शान्ति से विचार करो, चन्द्रगुप्त! कहो तो मैं महामात्य को भी बुला दूं! उनकी सहायता से तुम शीघ्र ही-ठीक निर्णय पर पहुँच सकोगे।

चन्द्रगुप्त : परम भट्टारक! मैं ऐसे अमात्य का वध कर दूंगा। और मैं देखता हूँ कि पिता आर्य समुद्रगप्त का पराक्रम आपके द्वारा कायरता के कारागार में बन्द होने जा रहा है। सँभलिये, परम भट्टारक! अपने इतिहास को सँभालिये! नहीं तो यह गुप्त-वंश में आपके नाम को घृणा के अक्षरों में लिखेगा। मैं गुप्त-कुल की वधू ध्रुवस्वामिनी को राज-प्रासाद में लाने के लिए इस कारण नहीं गया था कि संधि-प्रस्ताव में वे शकराज को सौंप दी जायँ और गुप्त-कुल स्त्री की भाँति आत्म-समर्पण कर दे। उठिए, परम भट्टारक, और शकराज के सामने कृपाण की धार का कौशल दिखाइए!

रामगुप्त : मैं संधि करूँगा, चन्द्रगुप्त ! राजाज्ञा बदली नहीं जा सकती। तुम्हें भी मेरा आदेश मानना होगा।

चन्द्रगुप्त : मैं गृह-विद्रोह उपस्थित नहीं करना चाहता। नहीं तो परम भट्टारक, मैं पहला द्वन्द्व आपसे ही करता। गुप्त-कुल की लक्ष्मी आज लांछित न होती। परम भट्टारक ! जिस श्रद्धा से मैंने गुप्त-कुल का सिंहासन आपको सौंप दिया था, उसी श्रद्धा से मैं आपको रण-निमंत्रण भी देता। किन्तु इस समय आप मेरी प्रार्थना मान लीजिए और महादेवी का गौरव तथा गुप्त-कुल की यशःश्री दोनों की रक्षा कीजिए। मैं आपकी प्रत्येक आज्ञा मानने के लिए तैयार हूँ।

रामगुप्त : प्रत्येक आज्ञा मानने के लिए तैयार हो ? तो जिस प्रकार तुम महादेवी ध्रुवस्वामिनी को गुप्त-कुल में लाये थे, उसी तरह तुम उन्हें शकराज के शिविर में पहुँचाओ। और हाँ, मेरे लिए शीघ्र ही एक मधुपात्र लाओ !

चन्द्रगुप्त : मैं एक प्रार्थना करता हूँ !

रामगुप्त : मैं कोई प्रार्थना नहीं सुनना चाहता। प्रार्थना स्त्रियाँ किया करती हैं।

चन्द्रगुप्त : अपने वंश-गौरव की रक्षा के लिए आप मेरी प्रार्थना को स्त्री-प्रार्थना ही समझ लीजिए।

रामगुप्त : तो क्या तुम स्त्री हो ? (**हँसता है**) ह् ह् ह् ह् ह् ह। यदि तुम अपने को स्त्री समझो तो मैं तुमसे युद्ध कर सकता हूँ। क्योंकि मैं अभी तक उनसे ही युद्ध करता रहा हूँ। यही मेरा अभ्यास है। सुकुमार शत्रु को जीतने में जितना आनन्द है, उससे अधिक आनन्द उससे हारने में है। (**हँसता है**) ह ह् ह् ह् ह् ह !

चन्द्रगुप्त : अच्छा तो मैं स्त्री ही सही। तब मैं आपसे एक बात का प्रस्ताव करता हूँ कि शकराज के शिविर में महादेवी न जायें। मैं ही महादेवी का रूप रखकर स्त्री-वेश में शकराज के पास जाऊँ। आपकी संधि की बात पूरी होगी।

रामगुप्त : महादेवी बनकर जाओगे ? स्त्री-वेश रखकर ? तुम्हें स्त्री-वेश में देखकर शकराज को बहुत आनन्द आयेगा। (**हँसता है**) ह् ह् ह् ह् ह् ह ! अच्छा, तुम जा सकते हो और अपने साथ सौ स्त्रियों को ले जा सकते हो या तुम्हारी तरह यदि सामंत भी स्त्री-वेश धारण करना चाहें तो ऐसी सामन्त-स्त्रियों को ले जाओ। ह् ह् ह् ह् ह् ह ! (**हँसता है**) किन्तु महादेवी को भी जाना होगा। मैं राजनीति में असत्य भाषण नहीं करता। (**महादेवी ध्रुवस्वामिनी का प्रवेश। उन्हें देखकर**) ओह ! महादेवी ! तुम आ गईं ? तुमने आत्महत्या नहीं की ! ओह ! तुम कितनी अच्छी हो ! यदि तुम आत्महत्या कर लेतीं तो संधि पूरी नहीं हो सकती थी। किन्तु पतिपरायणा हो। ऐसी पतिपरायणा को प्राप्त कर शकराज कितना प्रसन्न होगा ! ह् ह् ह् ह् ह् ह ! (**हँसता है**) मेरी प्रशंसा किये बिना नहीं रहेगा। पतिपरायणा महादेवी ध्रुवस्वामिनी !

ध्रुवस्वामिनी : (**चन्द्रगुप्त को देखकर**) ओह ! राजकुमार चन्द्रगुप्त ! कुमार ! मेरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भयानक परिस्थिति देखो। मुझे शकराज के पास जाने का आदेश मिला है।

रामगुप्त : तुम अकेली नहीं जाओगी, देवी ! चन्द्रगुप्त तुम्हारे साथ स्त्री-वेश धारण कर जावेंगे। एक के स्थान पर दो स्त्रियाँ देखकर शकराज कितना प्रसन्न होगा ! वह समझ जायगा कि गुप्त-वंश माँगी हुई वस्तु को दुगुनी करके देता है। (**हँसता है**) दुगुनी करके देता है। एक महादेवी नहीं, दो महादेवियाँ ! दो-दो ! (**पुकारकर**) अरे, महामात्य ! तुम कहाँ हो, तुम भी सुनो ! दो महादेवियाँ !

ध्रुवस्वामिनी : (**तीव्रता से**) महादेवी सदैव एक होती है। भट्टारक ! दो महादेवियाँ नहीं हो सकतीं।

रामगुप्त : एक ही सही, किन्तु मैं कहता हूँ कि मधुबाला और महादेवी एक से दो अच्छी होती हैं। (**हँसता है**) ह, ह, ह, ह, ह, ह ! एक से दो अच्छी होती हैं, महादेवी ! किन्तु मुझे कोई आपत्ति नहीं और सुनो, आज से प्रण करता हूँ कि महादेवी के यहाँ से जाने का पर्व मैं मधुबालाओं के साथ प्रतिवर्ष मनाऊँगा, प्रतिवर्ष !

ध्रुवस्वामिनी : तब मेरा जाना निश्चित है ?

चन्द्रगुप्त : हाँ, और मैं साथ चलूँगा। स्त्री-वेश धारण करके ही जाऊँगा। शक-शिविर में मैं शकराज से युद्ध करूँगा, और महादेवी की रक्षा करूँगा।

ध्रुवस्वामिनी : किन्तु मैं अपने कारण राजकुमार के प्राण संकट में नहीं डालूँगी।

चन्द्रगुप्त : आर्य समुद्रगुप्त के पुत्र के लिए संकट भी वरदान है, महादेवी ! और यदि महादेवी की रक्षा में मेरे जीवन का उपयोग हो सके तो इससे अधिक गौरव की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है ? मैं प्राण देकर महादेवी के सम्मान की रक्षा करूँगा।

ध्रुवस्वामिनी : राजकुमार ! तुम गुप्त-वंश के भूषण हो।

[महामात्य शिखर स्वामी का प्रवेश]

महामात्य : परम भट्टारक की जय ! मैं अपने लिए दण्ड की व्यवस्था लेने आया हूँ, देव !

रामगुप्त : (**हँसकर**) ह, ह, ह, ह, ह, ह ! तुम्हारे दण्ड की व्यवस्था ! ओह ! तुम तो मंत्रणा देने में बृहस्पति हो। तुम्हारे ही संकेतों से कार्य हो रहा है, महामात्य ! और एक बड़ी मनोरंजक बात हुई है। चन्द्रगुप्त भी महादेवी के साथ शक-शिविर में जायेंगे। और भी सुनो ! स्त्री-वेश धारण कर ! तुमने कभी स्त्री-वेश धारण किया है, महामात्य ! (**हँसता है**) ह, ह, ह, ह, ह, ह ! किसी दिन स्त्री-वेश धारण करो, महामात्य ! (**हँसता है**) ह, ह, ह, ह, ह, ह !

महामात्य : परम भट्टारक ने मेरी मंत्रणा मानकर मुझे कृतार्थ किया है। राजनीति में राष्ट्र किसी भी व्यक्ति से महान् है।

चन्द्रगुप्त : चुप रहो, महामात्य ! सिद्धान्त की बलि-वेदी पर राजकुल के गौरव का बलिदान नहीं किया जा सकता। यदि तुम में शत्रु से युद्ध करने की शक्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं है तो अपना आत्म-सम्मान भी तुम नहीं बेच सकते। किन्तु राजाज्ञा मुझे माननी है। मैं संकट के समय अपने ही पक्ष में विद्रोह नहीं करना चाहता, नहीं तो परम भट्टारक और तुम्हें दोनों को ही युद्ध में निमंत्रण देता।

महामात्य : राजकुमार !

चन्द्रगुप्त : चुप रहना सीखो, महामात्य ! मैंने महादेवी की रक्षा करने का प्रण किया है। उन्हें अपने साथ शक-शिविर में ले जाऊँगा और शकराज को उसकी उद्दण्डता का दण्ड दूंगा।

महामात्य : राजकुमार ! मेरी राजनीति के अनुसार ही आप काम कर रहे हैं।

चन्द्रगुप्त : राजनीति के कीड़े ! तुम नहीं जानते कि राजनीति गुप्त-वंश के गौरव का अनुसरण करती रही है, गुप्त-वंश ने राजनीति का अनुसरण नहीं किया। आर्य समुद्रगुप्त पराक्रमांक के राज्य की सीमा कृपाण की धार पर बनी है, संधियों से नहीं। आज उसी कृपाण की धार पर महादेवी को ले जाऊँगा और शकराज से द्वन्द्व युद्ध करूँगा। उसे यम-लोक भेज कर मैं तुम्हें और परम भट्टारक को रक्त की धार से नहलाऊँगा। मैं गुप्त-वंश के सिंहासन पर उस व्यक्ति को नहीं बैठने दूंगा जो महादेवी के महत्त्व को नहीं पहिचान सका और जो कृपाण की धार में डूबने के बदले मधुपात्र में डूब गया। **(महादेवी से)** चलो, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : भट्टारक, तुम्हें प्रणाम करने में भी मुझे लज्जा आती है। सिंहों की परम्परा में तुम जैसे शृगालों के लिए मैं अपनी घृणा देकर जा रही हूँ। जय गुप्त-वंश !

[चन्द्रगुप्त के साथ शीघ्रता से महादेवी का प्रस्थान]

रामगुप्त : **(निर्लज्जता की हँसी हँसते हुए)** ह, ह, ह, ह, ह, ह ! नाटक तो बड़ा सुन्दर रहा, महामात्य ! संधि की बात पूरी हुई और चन्द्रगुप्त जैसा कंटक भी दूर हुआ। तुम्हारी नीति बड़ी सुन्दर है, महामात्य !

महामात्य : यह आपकी गुण-ग्राहकता है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : इन लोगों के विवाद में मेरा मधुपात्र भी टूट गया। मेरी मधुबाला सुलोचना को बुलाओ, महामात्य !

[सुलोचना का प्रवेश]

सुलोचना : परम भट्टारक की जय ! मैं तो आपके आदेश की प्रतीक्षा कर रही थी। मैं शिविर-द्वार पर ही खड़ी थी। आपकी आज्ञा सुनते ही मैं उपस्थित हूँ।

रामगुप्त : तो लाओ मधुपात्र, सुलोचना ! इस राजनीति की उलझन में तो मेरा कंठ सूख गया।

सुलोचना : प्रस्तुत है, परम भट्टारक ! **[मधुपात्र देती है।]**

रामगुप्त : **(मधुपान कर)** ओह ! यह अमृत अभी तक मुझसे दूर रहा। **(मधुपात्र ऊपर उठाकर उसे सम्बोधित करते हुए)** मधुपात्र ! तेरी धारा में मेरा जीवन सदैव ही बहता रहे।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुलोचना : मैं मधु और भी लाई हूँ, परम भट्टारक !

रामगुप्त : लाओ, लाओ ! सुलोचने ! आज इतना मधु पी लूँ कि उसकी सुगन्धि शकराज के शिविर तक पहुँच जाय, शकराज के शिविर तक। चन्द्रगुप्त और महादेवी भी कहें कि मधु का महत्त्व महादेवी से भी अधिक है। महादेवी से भी अधिक......

महामात्य : सत्य है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : (**हँसता हुआ**) ह्, ह्, ह्, ह्, ह्, ह ! चन्द्रगुप्त कहता है कि कृपाण की धार में डूबने के बदले मैं मधु-धार में डूब रहा हूँ। हाँ, डूब रहा हूँ। मधु की धार में डूब रहा हूँ।

सुलोचना : और मधु दूँ, परम भट्टारक !

रामगुप्त : हाँ, और मधु दो। मधु से सारा संसार भर दो कि मधु का धरातल आकाश तक पहुँच जाय और ग्रह-नक्षत्र उसमें डूबते हुए चले जायँ। फिर सारा मधु मेरे पात्र में आकर समा जाय। आज से तुम सुलोचना...तुम्हीं महादेवी हो, महादेवी। (**चौंककर**) मैं तो भूल ही गया। मैंने प्रण किया था कि महादेवी के यहाँ से जाने का पर्व मैं मधुबालाओं के साथ प्रति वर्ष मनाऊँगा। प्रति वर्ष... यह पर्व आज से ही आरम्भ हो। सुलोचना ! अपनी वंशी में स्वर भरो। उसी तीखी तान का तीर मेरे हृदय तक पहुँच जाय। मेरे हृदय तक......!

सुलोचना : जो आज्ञा, परम भट्टारक ! [**प्रस्थान**]

महामात्य : बहुत सुन्दर प्रस्ताव है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : (**नशे में**) तुम भी मुझसे सहमत हो, महामात्य ! एँ...तब तो वंशी की ध्वनि में भी राजनीति है, राजनीति ! संगीत के युद्ध में भी तुम्हारी राजनीति चलती है। अब चलाओ संगीत में अपनी राजनीति......

[सुलोचना आकर नृत्य-मुद्रा लेकर वंशी के स्वर भरती है।]

रामगुप्त : (**और भी अधिक नशे में**) ओह ! यह वंशी-ध्वनि का तीर आया, वंशी-ध्वनि का तीर ! मैं मधु की धार में डूब रहा हूँ, वंशी-ध्वनि की धार में डूब रहा हूँ, कृपाण की धार में नहीं, कृपाण की धार में नहीं, कृपाण की धार में नहीं।

[वंशी का स्वर चलता रहता है और रामगुप्त मदिरा की मादकता से मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है।]

[परदा गिरता है।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 12 :

✤ कादम्ब या विष ? ✤

•

पात्र-परिचय

परम भट्टारक महाराजाधिराज कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य—
मगध के सम्राट्
कुमार स्कन्दगुप्त—युवराज
पुरगुप्त—सम्राट् के छोटे पुत्र
अनन्त देवी—सम्राट् की छोटी रानी, पुरगुप्त की माता
सुनन्दा—अनन्त देवी की अंतरंग परिचारिका
टिण्डल—हूण सैनिक
नर्तकियाँ

•

काल—455 ई०
समय—8 बजे रात्रि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कादम्ब या विष ?

[अनन्तदेवी का शृंगार हो चुका है। वे दर्पण के समीप बैठी हुई सुनन्दा से वार्त्तालाप कर रही हैं। सुनन्दा उनकी केश-राशि में मोतियों की माला सजा रही है।]

अनन्तदेवी : सुनन्दा ! तू मेरी केश-राशि में बड़े सुन्दर ढंग से मोती गूँथ रही है। पर यह बतला कि तूने कभी मेरे नेत्रों में आँसुओं के मोती देखे हैं ?

सुनन्दा : हाँ, देवी !

अनन्त : किस समय ?

सुनन्दा : जिस समय आपने पहली बार परम भट्टारक के दर्शन किये और आपके विशाल नेत्रों से आनन्द के दो आँसू पलकों की कोर में झलके उठे थे।

अनन्त : (**हँसकर**) अच्छा ! और तूने कभी मेरे हृदय में पीड़ा देखी ?

सुनन्दा : हाँ, देवी !

अनन्त : किस समय ?

सुनन्दा : जब लाज-भरे सौन्दर्य की पंखुड़ियों की प्रेम की किरण ने पहली बार छेड़ा था।

अनन्त : ओह ! कहाँ पहुँच गई। अच्छा यह बतला कि मैं किस समय सबसे अच्छी लगती हूँ ?

सुनन्दा : उषाकाल की निद्रा में। सौन्दर्य के साथ श्रांति; माधुर्य के साथ मादकता; जैसे सोने में सुगन्धि हो।

अनन्त : (**हँसकर**) तू बड़ी प्रियवादिनी है, सुनन्दा !

सुनन्दा : यह बड़ा मोती केश-पाश के छोर में सजा दूं ?

अनन्त : सजा दे। ज्ञात होगा जैसे नीलाकाश के कोने में शुक्र नक्षत्र चमक रहा है। तू बड़ी कला-पारखी है। (**सहसा**) हाँ, मेरे शयनपर्यंक की पीठिका केतकी के पराग से सजा दी गई ?

सुनन्दा : मृणालिनी ने सजा दी, महादेवी !

अनन्त : और कर्पूर-पल्लवों के रस से कादम्ब-पात्र सुवासित हुआ ?

सुनन्दा : लवंगिका ने सुवासित कर दिया, महादेवी !

अनन्त : और मेरे शयन-कक्ष की प्रतिमाओं के वक्षस्थल पर कुंकुम के रंग से चित्र-कारी हो गई ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुनन्दा : मधुरिका ने चित्रकारी कर दी, महादेवी !
अनन्त : मेरे कलहंसों ने कमल का मधु-रस पान किया ?
सुनन्दा : गीतिका ने करा दिया, महादेवी !
अनन्त : और मेरी कोकिलाओं को आम्र-मंजरी के अँकुर तो खिला दिये गये होंगे ?
सुनन्दा : सुहासिनी ने अपने हाथ से खिला दिये, महादेवी !
अनन्त : मृणालिनी, लवंगिका, मधुरिका, गीतिका और सुहासिनी को मेरी मुस्कान का संवाद भिजवा दे, सुनन्दा !
सुनन्दा : जो आज्ञा ! अभी जाऊँ ?
अनन्त : नहीं, आर्यपुत्र शयन-मन्दिर में आना ही चाहते हैं। मैं उनके स्वागत के मनोभावों में होना चाहती हूँ। मेरी वाणी सन्देह-वाहक राजहंस के शब्द-सी हो। मेरी विरहोच्छ्वास सारिका के मधुर स्वर-सा हो। मेरा प्रणय-निवेदन कोकिल के कूजन-सा हो और मेरी दृष्टि चन्द्रिका-पान में मद-विह्वल चकोर की दृष्टि हो।
सुनन्दा : मेरा निवेदन है कि इसके लिए प्रयत्न न करना होगा, महादेवी ! ये तो आपके स्वाभाविक गुण हैं और वे अस्त्र होने की सीमा तक पहुँच गये हैं।
अनन्त : (**हँसते हुए**) तू सचमुच प्रियवादिनी है। फिर भी अपने अस्त्रों की धार तीक्ष्ण करने की आवश्यकता पड़ ही जाती है।
सुनन्दा : सत्य है, महादेवी !
अनन्त : तू मेरी वेणी में मुक्तामाल गूँथ चुकी ?
सुनन्दा : हाँ, स्वामिनी !
अनन्त : तो अब इन वाद्य-यन्त्रों को मुखरित कर सकेगी ?
सुनन्दा : आपकी आज्ञा ही मेरे समस्त कार्यों की स्वामिनी है।
अनन्त : मैं वीणा में अपनी उमंग को साकार देखना चाहती हूँ।
सुनन्दा : जो आज्ञा !

[कुछ क्षणों तक वीणा में राग भैरव का वादन]

अनन्त : बहुत सुन्दर। ऐसा ज्ञात होता है कि वीणा के प्रत्येक तार में मेरा हृदय अनगिनती कंपन ले रहा है। अब तू वंशी में मेरा प्रणय-निवेदन भर दे।
सुनन्दा : जो आज्ञा !

[कुछ क्षणों तक वंशी में राग मालकोश का वादन]

अनन्त : कितना सुन्दर प्रणय-निवेदन है ! जैसे वंशी की ध्वनि करुण नेत्रों की दृष्टि बनकर प्रियतम के हृदय में निवास करने जा रही है। अब तू मेरे उत्साह को मृदंग में मुखरित करेगी ?
सुनन्दा : जैसी आज्ञा, महादेवी !

[कुछ क्षणों तक मृदंग में राग हिण्डोल का वादन]

अनन्त : चमत्कारपूर्ण ! मृदंग के बोल ही जैसे मेरे पद-चाप हैं जो अपने आदर्श पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीव्र गति से जा रहे हैं। कितनी गमनशीलता है ? अब तू मेरे रोष को डमरू का स्वर देने का प्रयत्न कर।

सुनन्दा : जैसी आज्ञा !

[कुछ क्षणों तक डमरू में राग मारू का वादन]

अनन्त : बहुत अच्छे ढंग से तूने मेरे रोष का रूप उपस्थित किया। यह डमरू जैसे मेरे रोष के प्रत्येक प्रहार को बार-बार तीव्र आघातों से व्यक्त कर रहा है।

सुनन्दा : मैं धन्य हुई, महादेवी ! किन्तु इस रोष से मुझे भय लगता है।

अनन्त : तुझे भय करने का कोई कारण नहीं है, सुनन्दा ! दूसरे हैं जो भय कर सकते हैं।

सुनन्दा : महादेवी ! ऐसे कौन भाग्यहीन व्यक्ति हैं जिन्हें आपके रोष से भय होना चाहिए ?

अनन्त : सुनन्दा ! अपनी सीमा से आगे बढ़ने का प्रयत्न न कर। राजनीति परिचारिकाओं के मनोविनोद की सामग्री नहीं है।

सुनन्दा : क्षमा करें, महादेवी ! मेरी जिज्ञासा राजनीति की दृष्टि नहीं रखती। वह तो केवल महादेवी की महत्ता के सामने श्रद्धानत होना चाहती है।

अनन्त : तो श्रद्धानत ही बने, रोष का मार्ग खोजने का प्रयत्न न करे। जाने दे। मेरा कंठ शुष्क हो रहा है। कादम्ब !

सुनन्दा : जो आज्ञा, स्वामिनी ! **[कादम्ब भरकर देती है।]**

अनन्त : **(एक घूँट पीकर)** बड़ा स्वादिष्ट कादम्ब है। तूने इसमें चम्पक की सुगन्धि भी दे दी है। इसका पान करने पर ऐसा अनुभव होता है, सुनन्दा, जैसे मैं इन्द्र के नन्दन-निकुंज में कल्पवृक्ष के किसलयों पर शयन कर रही हूँ और विद्याधर और किन्नरियाँ मेरे समक्ष सुगन्धि को ही राग बनाकर गा रही हैं। इन्द्राणी मेरे चरण-पल्लवों को चूम रही हैं और स्वयं इन्द्र मरुत् को इस बात का संकेत कर रहे हैं कि वायु धीरे बहे। मेरे ओठों की लालिमा शुष्क भी न बने और मेरे केशों के तिरछे छोर मेरे मस्तक के समीप नृत्य करते रहें। सुनन्दा ! यह दिव्य क्षण कितना मादक है !

सुनन्दा : हाँ, महादेवी !

[एक परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका : महादेवी की सेवा में प्रणाम !

अनन्त : गीतिका, तू है ? तुझे मेरी प्रसन्नता का सौभाग्य प्राप्त हो। किन्तु तुम सबने मुझे महादेवी कहना क्यों प्रारम्भ कर दिया ?

[हल्की हँसी]

गीतिका : स्वामिनी ! महादेवी न होते हुए भी आप वास्तव में महादेवी हैं, क्योंकि परम भट्टारक सम्राट् का प्रेम आप ही पर है। कुमार स्कन्दगुप्त की माता तो केवल महादेवी का नाम धारण करती हैं, महादेवी का महत्त्व नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनन्त : तो क्या आर्यपुत्र केवल मेरे ही हैं ?

सुनन्दा : जैसे साँस केवल नासिका से प्रवाहित होती है, दृष्टि केवल नेत्रों में निवास करती है, प्राण केवल शरीर में संचरित होते हैं उसी प्रकार परम भट्टारक सम्राट् का प्रेम केवल आपके द्वारा साकार होता है ।

अनन्त : **(हँसकर)** तू तो कविता भी करने लगी, सुनन्दा ! इसमें केवल अलंकार ही हैं या रस भी ? हाँ, गीतिका ! क्या समाचार लाई है ?

गीतिका : महादेवी की जय हो ! परम भट्टारक सम्राट् के चरणों की दिशा इस कक्ष की ओर हो रही है ।

अनन्त : आर्यपुत्र इस कक्ष में आ रहे हैं ?

गीतिका : सत्य है, महादेवी !

सुनन्दा : मेरा कथन भी कितना सत्य निकला, महादेवी !

अनन्त : आर्यपुत्र सचमुच ही मेरे हैं, सुनन्दा ! कादम्ब-पात्र पूरी तरह से भरा हुआ है ?

सुनन्दा : हाँ, महादेवी ! आपके आशीर्वाद की भाँति ।

अनन्त : लेखनी प्रस्तुत है ?

सुनन्दा : हाँ, महादेवी ! कृपाण की भाँति ।

अनन्त : फूल-माला प्रस्तुत है ?

सुनन्दा : हाँ, महादेवी ! बाहु-पाश की भाँति ।

अनन्त : गीतिका ! पारसीक नर्तकियों का प्रबन्ध है ?

गीतिका : हाँ, महादेवी !

अनन्त : जैसे ही मैं इच्छा करूँ, नर्तकियों को नृत्य के लिए उपस्थित रहना चाहिए ।

गीतिका : जो आज्ञा, महादेवी !

अनन्त : अच्छा, तू जा !

गीतिका : महादेवी की जय हो ! [**प्रस्थान**]

अनन्त : सुनन्दा ! आज आर्यपुत्र के सामने बड़े महत्त्व की बात होनी है ।

सुनन्दा : उस महत्त्व की बात में मेरे योग्य कोई सेवा हो सकती है, महादेवी !

अनन्त : **(हँसकर)** तू अपनी महादेवी को क्या किसी बात में असमर्थ समझती है ?

सुनन्दा : ऐसा सोचना भी पाप है, महादेवी !

अनन्त : तो मैं अपना कार्य उसी भाँति कर सकती हूँ जिस प्रकार अँगारों से अपने-आप ज्वाला उठ आती है, बादलों के घुमड़ने पर आपसे-आप बिजली चमकने लगती है और तीव्र वायु के चलने से लहरें अपने-आप प्रताड़ित होने लगती हैं ।

सुनन्दा : यह सत्य है, महादेवी !

अनन्त : तो ज्वाला उठना चाहती है, बिजली चमकना चाहती है और लहरें प्रताड़ित होना चाहती हैं ।

सुनन्दा : महादेवी ! मैं भयभीत हो उठी हूँ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनन्त : भयभीत ! नारी भी कहीं भयभीत होती है ? मूर्खा ! **(हँसती है)** जब नारी को अपने आप पर विश्वास नहीं रह जाता तभी वह भयभीत होती है। यदि नारी वर्त्तमान के साथ भविष्य को भी अपने हाथ में ले ले तो वह अपनी शक्ति से बिजली की तड़प को भी लज्जित कर सकती है। बेचारी नारी ! उसे निर्भर रहने का अभ्यास हो गया है। इसलिए भविष्य की झूठी कल्पना भी उसे प्रतिक्षण आतंकित किये रहती है। तू अपने भविष्य को हाथों में ले और शक्ति की देवी बन !

सुनन्दा : जैसी आज्ञा, महादेवी !

अनन्त : तभी मेरे कार्यों में तू सच्ची सहचरी बन सकती है।

सुनन्दा : आपके कार्यों में, महादेवी ! मेरी योग्यता ?

अनन्त : इसमें योग्यता और अयोग्यता की कौन-सी बात है। सुनन्दा ! आग जब संसार की प्रत्येक वस्तु को जलाने के लिए उठती है तब उसे किस योग्यता की साधना करनी पड़ती है ? वह तो उसका स्वाभाविक गुण है। समुद्र की लहरें किस योग्यता को लेकर आकाश चूमती हैं ?

सुनन्दा : सत्य है, महादेवी !

अनन्त : अब यही बात देख ले ! मैं आर्यपुत्र से हँसते हुए ऐसी बात करवा सकती हूँ जिसके लिए संसार में अनेक युद्ध हुए हैं या हो सकते हैं।

सुनन्दा : कौन-सी बात, महादेवी !

अनन्त : **(हँसकर)** अच्छा ! तो तेरी जिज्ञासा भी जाग उठी। मैं तुझे भी बतला दूं ?

सुनन्दा : महादेवी ! भविष्य के परिणाम देखकर अपनी स्वामिनी की शक्ति की प्रशंसा ठीक ढंग से कर सकूँगी।

अनन्त : इन छद्मवेशी वाक्यों को सुनकर प्रसन्न होने के बदले मैं तुझसे रुष्ट हो सकती हूँ।

सुनन्दा : आपके रोष का मार्ग खोजने का साहस किसी को भी न होगा, महादेवी !

अनन्त : किसी को भी न होगा ? है। ऐसा साहस एक व्यक्ति में है।

सुनन्दा : वह क्षीण आयु वाला कौन व्यक्ति है, महादेवी !

अनन्त : तू मेरी सहचरी है। तू सुन ले। किन्तु यह अत्यन्त गोपनीय है।

सुनन्दा : यह मेरे प्राणों के स्थान पर रहेगा, महादेवी !

अनन्त : द्वार पर जाकर देख आ, कोई है तो नहीं।

सुनन्दा : जो आज्ञा ! **(द्वार तक जाती है)** कोई नहीं है, महादेवी !

अनन्त : सुन और सुनकर भूल जा। अनन्तदेवी की क्रोधाग्नि में......

[दरवाजा खड़कने की हल्की आवाज]

अनन्त : यह किसने द्वार खटखटाया ?

सुनन्दा : कोई नहीं है, महादेवी ! वायु का शब्द है।

अनन्त : वायु का शब्द है ? अच्छा, तो सुन। अनन्तदेवी की क्रोधाग्नि को छेड़ने वाले

का नाम है......स्कन्दगुप्त ।

सुनन्दा : **(चौंककर)** कुमार स्कन्दगुप्त !

अनन्त : चौंक उठी ? **(व्यंग्य की हँसी हँसकर)** शक्तिहीना नारी ! पवन के झोंकों से चौंक उठना, फूलों की पंखुड़ियों से शरीर पर खरोंच लगना, कंठ पर बाहु का बोझ अनुभव करना, ये सब कुँज में पुष्प-शैया की बातें हैं, राजनीति की नहीं । राजनीति में कुँज की पुष्प-शैया जल उठती है, लाल फूल अँगारों का रूप धारण कर लेते हैं और शीतल समीर सर्पों की फुफकार बन जाती है ।

सुनन्दा : **(काँपते हुए)** सत्य है, महादेवी ! युवराज स्कन्दगुप्त......

अनन्त : उसे युवराज न कह । युवराज-पद का सम्मान मेरे पुत्र पुरगुप्त को प्राप्त होगा । **(प्रत्येक शब्द पर जोर देकर)** मेरे पुत्र पुरगुप्त को ।

सुनन्दा : **(डरे हुए स्वर में)** महादेवी !

अनन्त : और डमरू के जिस स्वर में तूने मेरे रोष को साकार किया है, उसके अनवरत प्रहारों में स्कन्द के सारे स्वप्न भस्मीभूत होंगे ।

सुनन्दा : किन्तु परम भट्टारक का कुमार स्कन्दगुप्त पर पूर्ण विश्वास है ।

अनन्त : आर्यपुत्र का स्कन्द पर विश्वास ? **(व्यंग्य की हँसी)** इस शयन-कक्ष के द्वार पर सारे विश्वास भिक्षुक बनकर खड़े रहते हैं । जिस विश्वास की झोली भरनी आवश्यक होती है, मैं आर्यपुत्र के हाथों की दिशा बदलकर वह झोली भरती हूँ ।

सुनन्दा : आपमें अपरिमित शक्ति है, महादेवी !

अनन्त : और सुन ! मैंने ऐसे विधान की रचना की है जिससे स्कन्द पर आर्यपुत्र का विश्वास वैसे ही क्षुब्ध हो उठेगा जैसे ग्रीष्मकाल में बड़े-बड़े तालाबों का पानी सूख जाने से मछलियाँ लौटने लगती हैं ।

सुनन्दा : सत्य है, महादेवी !

अनन्त : और तू जानती है, यह कैसे होगा ? स्कन्द की वीरता ही उसका षड्यन्त्र बनेगी, उसके द्वारा बन्दी किया गया हूण सैनिक ही धन के लोभ से उसके मार्ग का कंटक बनेगा ।

सुनन्दा : **(काँपकर)** महादेवी !

अनन्त : इस रहस्य को गोपनीय रख, शक्तिहीना नारी ! आज आर्यपुत्र के मुख से उच्चरित होने वाले शब्दों से गुप्त साम्राज्य का भविष्य बदलेगा ।

सुनन्दा : **(डरे हुए शब्दों में)** गुप्त साम्राज्य का भविष्य ?

अनन्त : हाँ, गुप्त साम्राज्य का भविष्य । और यह सब करेगी महादेवी **(महादेवी पर जोर)** अनन्त देवी !

[**नेपथ्य में—'परम भट्टारक महाराजाधिराज की जय !'**]

अनन्त : **(शीघ्रता से)** आर्यपुत्र आ गये, सुनन्दा ! जल्दी कर । मेरी वेणी सुधार दे और यह आसन ठीक कर दे । उस पर मौलश्री की पंक्तियाँ सजा दे ।

सुनन्दा : जैसी आज्ञा, महादेवी !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनन्त : और देख, चरण-पीठिका पर कौशेय वस्त्र की सिकुड़न दूर कर दे। और कादम्ब-पात्र सामने की पीठिका पर सजा दे।

[सुनन्दा आज्ञानुसार वस्तुएँ सुसज्जित करती है।]

अनन्त : आज तेरी महादेवी की परीक्षा है। उसकी शक्ति आज राजनीति की कसौटी पर कसी जायगी। तू देखेगी कि उसके कार्यों की रेखा राजनीति की कसौटी पर कंचन की रेखा जैसी चमकदार निकलती है।

[अट्टहास के साथ कुमारगुप्त का प्रवेश]

सुनन्दा : परम भट्टारक महाराजाधिराज की जय हो!

अनन्त : आर्यपुत्र की जय हो!

कुमारगुप्त : **(हँसते हुए)** प्रिये! तुम्हें खोजते-खोजते थक गया। तुम इस कामदेव-कक्ष में इतनी दूर चली आईं।

अनन्त : आपके स्वागत के लिए, आर्यपुत्र! आसन ग्रहण कीजिए।

कुमार : देवी! आसन नहीं, मुझे तो हृदय चाहिए, हृदय! अच्छा, तो मैं आसन को तुम्हारा हृदय समझकर ही ग्रहण करूँगा। **(फिर हँसी)** लो, ग्रहण कर लिया। **(बैठते हैं)** प्रिये! तुम्हारा कामदेव-कक्ष तो बहुत सुन्दर सजा हुआ है। और तुम भी कितनी सुन्दरी हो, प्रिये!

अनन्त : यह आपका अनुराग है, आर्यपुत्र!

कुमार : मुझे तो लगता है कि कामदेव भस्म होने के बाद अब स्त्री बन गया है, स्त्री! **(हँसी)** और तुम्हारे शरीर को पाकर फिर संसार में साकार हुआ है। [हँसी]

अनन्त : वह इसलिए आर्यपुत्र, कि आपके साहचर्य का सुख मिलता रहे।

कुमार : और तुम जानती हो कि कामदेव भस्म होने के बाद स्त्री क्यों बन गया?

अनन्त : नहीं, आर्यपुत्र!

कुमार : इसलिए स्त्री बन गया कि पुरुष होने पर शिवजी उसे भस्म कर सकते थे, अब स्त्री होने पर उनकी क्या शक्ति जो उसे फिर भस्म कर सकें। स्त्री पर कोई पुरुष प्रहार नहीं कर सकता। तो यह कामदेव का षड्यन्त्र है षड्यन्त्र कि वह तुम्हारे रूप में प्रकट हुआ है जिससे वह सब प्रकार के प्रहारों से सुरक्षित रहे।

अनन्त : आर्यपुत्र का अनुराग ही तो मेरा कवच है।

कुमार : अनुराग है तभी तो इतनी दूर कामदेव-कक्ष तक चला आया। मार्ग में पुष्प की पंखुड़ियाँ बिछी थीं। ज्ञात होता था जैसे किसी कवि के छंद बिछे हों और वाणी की भाँति मेरे पैर अग्रसर हो रहे थे। **(गहरी साँस लेकर)** ओह! थक गया।

अनन्त : सुनन्दा! एक पात्र कादम्ब...नहीं, नहीं...तू जा। मैं अपने हाथों से आर्यपुत्र को कादम्ब दूंगी। तू यहाँ से जा।

कुमार : हाँ, सुनन्दा! तू यहाँ से जा। जब पूर्णिमा की रात होती है तो चाँदनी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकाश में चारों ओर से बरसना चाहती है । तू बादल बन कर उस चाँदनी को नहीं रोक सकती ।

सुनन्दा : आपके आदेश का समीर मुझे कहीं भी ले जा सकता है, महाराज ! प्रणाम ! (**अनन्त देवी से**) महादेवी ! प्रणाम !

कुमार : (**दुहराते हुए**) महादेवी ! (**अट्टहास**) तो महादेवी तुम हो ! (**प्रत्येक शब्द पर जोर देते हुए**) सचमुच महादेवी तुम्हीं हो । राज्य की महादेवी महारानी देव-की और मेरे हृदय-मन्दिर की महादेवी तुम ! तुम ! अनन्त देवी ! जिनका प्रेम अनन्त है, जिनका सौन्दर्य अनन्त और सौन्दर्य का आकर्षण ? वह भी अनन्त है, अनन्त ! अनन्त !

अनन्त : आर्यपुत्र ! आपका कंठ सूख रहा है, यह कादम्ब !

कुमार : ऐं, कादम्ब ! तुम्हारे हाथों से ! तुम्हीं अपने कोमल करों से पिला दो । (**दो घूंट पीकर**) आह ! कितना मधुर, कितना मादक ! जैसे यह तुम्हारा प्रेम है जो अपने आत्म-समर्पण में तरल हो गया है और मैं उसे संसार-भर की प्यास लेकर पी रहा हूँ । (**जोर से पीने का शब्द**) महादेवी ! महादेवी ! तुम मगध की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हो, (**मतवाले स्वरों में**) सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी ! चन्द्रमा की किरणों से अगर कोई तारों की माला गूंथे तो उसका नाम होगा अनन्त देवी ! परम भट्टारक के हृदय-मन्दिर की महादेवी !

अनन्त : आर्यपुत्र का प्रेम पाकर मैं कृतार्थ हुई । मेरे हाथ से गूंथी हुई यह माला आपके हृदय में स्थान पाकर धन्य बने ।

कुमार : जिस हृदय में तुम्हारा निवास है, प्रिये, उसमें किसी अन्य के लिए स्थान नहीं है । किन्तु लाओ ! यह माला अपने हाथों से पहिना दो (**माला पहिनाती है**) समझूंगा कि मेरे हृदय में जो तुम्हारी मूर्त्ति है, उसके चरणों पर यह पुष्पांजलि सजी हुई है । (**देखकर**) ऐं, यह बकुल की माला ? देवी ! यह तो उसी बकुल की माला है जो तुम्हारे मुख की मदिरा के छींटे पाकर उत्फुल्ल हुआ था ।

अनन्त : हाँ, आर्यपुत्र ! यह उसी बकुल की माला है ।

कुमार : इसमें अशोक के अरुण पुष्प भी हैं, जो तुम्हारे पदाघात से पुष्पित हुए थे । जब अशोक की डाल से उतरकर मयूर भागने की चेष्टा कर रहा था तब तुमने उसे अपनी चूड़ियों की मंजु ध्वनि में नृत्य करा लिया था । नृत्य...अविराम नृत्य !...ओह,...एक पात्र कादम्ब !

अनन्त : यह है, आर्यपुत्र ! [**कादम्ब देती है ।**]

कुमार : प्रिये ! उस मयूर का नृत्य इस समय भी आँखों में नाच रहा है ।

अनन्त : आर्यपुत्र ! कुछ पारसीक नर्तकियाँ भी आपकी सेवा में नृत्य की अनुमति चाहती हैं ।

कुमार : नृत्य ! अवश्य होना चाहिये । देखूंगा कि तुम्हारी चूड़ियों की ध्वनि में नाचते हुए मयूरों के नृत्य में और उनके नृत्य में कितना साम्य है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनन्त : जैसी आज्ञा ! [**कक्ष के घंटे पर चोट करती है ।**]

कुमार : यह घंटे की ध्वनि उसी प्रकार गूँज रही है जिस तरह समस्त मगध साम्राज्य में तुम्हारी कीर्ति की ध्वनि गूँज रही है । प्रिये ! इसी प्रकार तुम्हारे प्रेम से मेरा हृदय भी गूँजता रहता है ।

अनन्त : तो आर्यपुत्र, आपके हृदय में अनुराग का कैसा संगीत भरा हुआ है जो निरंतर गूँजता रहता है ?

कुमार : जैसी मेरी हँसी गूंजती है । [अट्टहास]

[**गीतिका का प्रवेश**]

गीतिका : महादेवी को प्रणाम । मुझे क्या आज्ञा है ?

अनन्त : नर्तकियों को आज्ञा दो कि आर्यपुत्र ने उनके नृत्य को धन्य हो जाने की अनुमति प्रदान कर दी है । उन्हें यहाँ आने की आज्ञा शीघ्र सुनाओ ।

गीतिका : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

कुमार : प्रिये ! इन नर्तकियों द्वारा केवल नृत्य ही होगा या संगीत भी ?

अनन्त : आर्यपुत्र ! पुरुष और प्रकृति के मिलन पर ही सृष्टि प्रारम्भ होती है । संगीत पुरुष है और नृत्य प्रकृति है । इन दोनों के मिलाप पर ही आनन्द की सृष्टि होगी ।

कुमार : यह तुमने बहुत अच्छा कहा, प्रिये ! यही मैं भी कहना चाहता था कि मेरी आत्मा में तो तुम्हारे प्रेम का संगीत है और उस संगीत के अनुसार तुम्हारा क्रिया-कलाप ही नृत्य है । इन दोनों के मिलाप में...(**नेपथ्य में नृत्य की ध्वनि**) अच्छा ! नृत्य करते हुए नर्तकियाँ आ भी गईं !

[**नर्तकियों का नृत्य करते हुए प्रवेश**]

अनन्त : नर्तकियों ! इस नृत्य के साथ इतना सुन्दर गायन हो कि आर्यपुत्र की प्रसन्नता तुम्हारे भविष्य पर भी छा जाय ।

[**नर्तकियों का गायन**]

नूपुर की झंकार ।
जैसे वायु पहन जाती है ध्वनि के चंचल हार । नूपुर की झंकार ।
कुंज कुंज की कली खिल गयी;
प्रियतम से प्रियतमा मिल गयी;
और अधूरी प्रेम-कथा है राका में साकार ! नूपुर की झंकार ।
लज्जा की बंकिम अरुणाई;
तट पर सधी लहर-सी आई;
सिकता-कण के प्राणों से गूंजा है मानों प्यार ! नूपुर की झंकार ।

[**गाते हुए प्रस्थान**]

कुमार : (**मतवाले स्वरों में**) प्रिये ! यह संगीत समाप्त होने पर भी कानों में गूँज रहा है जैसे तुम्हारी स्मृति तुम्हारे जाने के बाद भी हृदय पर छाई रहती है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीत कहता है कि 'और अधूरी प्रेम-कथा है राका में साकार ।' मैं कहूँगा कि 'और अधूरी प्रेम-कथा है नयनों में साकार ।' तुम्हारी आँखें मौन रहकर भी सारी प्रेम-कथा कह देती हैं ।

अनन्त : मैं धन्य हुई, स्वामी ! एक कादम्ब-पात्र और दूँ ?

कुमार : प्रिये ! जैसे सागर में सहस्रों सरितायें अपना आत्म-समर्पण करती हैं किन्तु सागर अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता उसी प्रकार कादम्ब के अनगिनती पात्र मेरे कंठ में अपना सर्वस्व समर्पित करते हैं और मेरा हृदय अपनी चेतना नहीं खोता । प्रिये ! आँखों में आलस्य का संकेत दीख रहा है । मैं अब शयन करना चाहता हूँ ।

[सहसा नेपथ्य में भयानक तुमुल होता है ।]

['इस हूण का वध'...'इस हूण का वध करना होगा' की कर्कश ध्वनि]

अनन्त : **(घबराये स्वर में)** अरे ! यह तो पुरगुप्त का कंठ-स्वर है ।

प्रतिहार : परम भट्टारक की जय हो ! कुमार पुरगुप्त द्वार पर हैं ।

कुमार : **(अलसाए स्वर में)** प्रिये ! पुरगुप्त को भी एक कादम्ब-पात्र की आवश्यकता होगी ।

अनन्त : नहीं, आर्यपुत्र ! कोई भयानक कांड घटित हुआ ज्ञात होता है ।

कुमार : नहीं, नहीं, कादम्ब-पात्र के टूटने का शब्द होगा ।

अनन्त : प्रतिहार ! राजकुमार पुरगुप्त को यहाँ आने की सूचना दो ।

प्रतिहार : जो आज्ञा ! **[प्रस्थान]**

कुमार : **(वैसे ही अलसाए और मादक स्वर में)** प्रिये ! मेरी आँखों में एक स्वप्न तैर रहा है । तुम हो, मैं हूँ और हमारे सामने कादम्ब की नदी बह रही है । हम और तुम उसमें स्नान कर रहे हैं । मैं जब कभी उस नदी में तैरते हुए सिर उठाता हूँ तो तुम कादम्ब के छींटे मुझ पर उछाल रही हो । वे छींटे मेरे मुख पर पड़ते हुए मेरे हृदय में भी समा रहे हैं और मुझे हँसी आ रही है, हँसी आ रही है ।

[मतवाली आवाज में हँसते हैं ।]

[पुरगुप्त का प्रवेश]

पुरगुप्त : परम भट्टारक के चरणों में प्रणाम ।

कुमार : कौन ? कादम्ब चरणों में प्रणाम नहीं कर सकता । उसे मेरे मुख तक आना चाहिए ।

अनन्त : आर्यपुत्र ! पुरगुप्त चरणों में प्रणाम कर रहे हैं ।

कुमार : पुरगुप्त ? कुमार पुरगुप्त ! मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा कादम्ब-पात्र कभी रिक्त न रहे ।

पुरगुप्त : **(घबराए स्वरों में)** परम भट्टारक ! गुप्त साम्राज्य की राजलक्ष्मी आज षड्यन्त्र के चरणों पर बलि होने को थी, हमारे जीवन का सूर्य आज पश्चिमी क्षितिज पर पहुँचने को था और प्रतिहिंसा-राक्षसी के लिये आज हमारे हृदय का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पवित्र रक्त शरीर से बाहर आने को था ।

अनन्त : पुरगुप्त ! मेरे लाल ! क्या हुआ ? स्पष्ट शब्दों में कहो न ।

पुरगुप्त : माँ ! शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कलाओं के समान बढ़ने वाले गुप्त साम्राज्य में भी कलंक की एक कालिमा है ।

कुमार : कलंक की कालिमा ? वह मेरे कादम्ब-पात्र से उछला हुआ कोई छींटा तो नहीं है जो चन्द्रमा तक जाकर उसका अंजन बन गया ! तुम लोग उसे कलंक कहने लगे । [**हँसते हैं ।**]

पुरगुप्त : परम भट्टारक के कादम्ब-पात्र से नहीं, वात्सल्य से उछला हुआ अमृत है जो विष बन गया है । एक क्षण के विलम्ब से हमारी सौभाग्य-लक्ष्मी विदेशियों से पद-दलित होती ।

अनन्त : (**आग्रह से**) इस घटना को स्पष्ट करो, पुरगुप्त !

पुरगुप्त : कैसे स्पष्ट करूँ, माँ ! जिस बात की संभावना स्वप्न में भी नहीं हो सकती, वह कठिन सत्य बनकर हृदय को ज्वालामुखी बना रहा है ।

कुमार : किसी समय पृथ्वी ने भी मदिरा पी होगी । इतनी अधिक पी होगी कि वही ज्वालामुखी की लपट बनकर उन्मत्तता के साथ......

अनन्त : आर्यपुत्र स्वस्थ हों ! इस घटना का मदिरा से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

कुमार : तो मदिरा-पात्र से होगा ।

पुरगुप्त : (**सहसा**) परम भट्टारक की हत्या से था ।

अनन्त : (**चीखकर**) परम भट्टारक की हत्या से ?

कुमार : (**चौंककर**) मेरी हत्या से ?

पुरगुप्त : हाँ, पिता जी ! आपकी हत्या से । कुसुमपुर आज सर्पों की बामी बन गया है । और ये सर्प स्वच्छन्दतापूर्वक घूमते हुए चाहे जिस व्यक्ति को दंशित कर सकते हैं ।

कुमार : मैं सर्प का नाम जानना चाहता हूँ, पुरगुप्त !

पुरगुप्त : परम भट्टारक क्षमा करें । मैं सर्प का ही नहीं, विषैले तक्षक का नाम भी ले सकता हूँ । कोई सहसा विश्वास नहीं करेगा किन्तु मैं प्रमाण भी प्रस्तुत कर सकता हूँ ।

कुमार : कौन है वह नर-रूप तक्षक ?

पुरगुप्त : परम भट्टारक का जिस पर अटल स्नेह और विश्वास है । मगध साम्राज्य के भविष्य का राजदंड जिसके हाथों में होने जा रहा है ।

अनन्त : (**चीखकर**) स्कन्दगुप्त ?

कुमार : युवराज स्कन्दगुप्त ! असंभव है, असंभव, असंभव !

पुरगुप्त : मेरे पास प्रमाण प्रस्तुत है, पिताजी !

कुमार : नहीं, पुरगुप्त ! मर्यादा पालक राघवेन्द्र ने दशरथ की जैसी सेवा की थी, वैसी ही सेवा पुत्र स्कंद ने मेरी की है । उस जैसा सुशील, विनम्र और सच्चरित्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुत्र दुर्लभ है। महादेवी देवकी का मातृत्व उससे धन्य है।

अनन्त : मैं भी यही सोचती थी, आर्यपुत्र ! किन्तु इधर उसके मन की दिशा बदल रही है। वह षड्यन्त्रकारियों के हाथ का खिलौना बन रहा है।

कुमार : प्रिये ! चाहे मेरे मन की दिशा बदल जावे किन्तु स्कन्द का मन ध्रुव नक्षत्र की भाँति स्थिर और अटल है। मेरा पुत्र स्कन्द हमारे वंश का प्रतापी सम्राट् होगा।

पुरगुप्त : पिताजी ! आपके इसी विश्वास की छाया में युवराज स्कंद की महत्त्वाकांक्षा षड्यन्त्र में परिणत हुई है और आज तो उसका चरम दृश्य संसार के समक्ष उपस्थित होने को था यदि आपका यह सेवक समय पर उपस्थित न हो जाता।

कुमार : तुम मेरी कुतूहलता और क्रोध को एक साथ उत्तेजित कर रहे हो, पुरगुप्त !

पुरगुप्त : पिताजी ! यदि मेरा अपराध किसी भी परिस्थिति में आप देखें तो मुझे कठोर से कठोर दंड दीजिये। किन्तु यदि मेरी सेवा में देश-भक्ति और पितृ-भक्ति का कहीं भी संकेत मिले तो मैं केवल आशीर्वाद के दो शब्दों का अधिकारी-मात्र समझा जाऊँ।

अनन्त : पुरगुप्त ! अपना मन इस तरह छोटा मत करो। जो घटना घटित हुई है वह आर्यपुत्र के समक्ष निवेदन करो।

पुरगुप्त : पिताजी ! पूज्य भाई स्कंद के चरणों में मेरी अपार श्रद्धा रही है।

अनन्त : यह तो मैं जानती हूँ।

पुरगुप्त : उसी श्रद्धा से प्रेरित होकर मैं प्रतिदिन संध्या समय उनके चरणों में प्रणाम कर अपने कक्ष की ओर जाता हूँ। आज संध्या समय जब मैं उनके कक्ष में गया तो वे वहाँ नहीं थे।

अनन्त : वहाँ वे कैसे होंगे ! अपने विश्वास-पात्रों से मिलने का अवसर तो संध्या के धुँधले प्रकाश में ही है।

कुमार : प्रिये ! व्यर्थ के सन्देह से अपने मन को कलुषित मत करो।

अनन्त : आर्यपुत्र ! सन्देह जब तक घटना का रूप न ले तब तक मैं उसे अपने मन में स्थान ही नहीं देती। जिस मन में आपकी मूर्त्ति है उसे अपवित्र करना मैं पाप समझती हूँ। हाँ, पुरगुप्त ! फिर क्या हुआ ?

पुरगुप्त : पिताजी ! जब मैंने उन्हें कक्ष में नहीं देखा तो यह समझकर कि वे आपके कक्ष में होंगे, इस कक्ष में आया। आने के पूर्व देखा कि पश्चिम के पार्श्व में कोई तोरण-शाल-भंजिका की मूर्त्ति की ओट में काले वस्त्रों के आवरण में छिपा हुआ बैठा है।

अनन्त : काले वस्त्रों के आवरण में ? कौन था वह ? युवराज स्कंद ?

पुरगुप्त : नहीं, माँ ! युवराज स्कंद नहीं थे। वह स्कन्द के षड्यन्त्र का रूप था।

अनन्त : स्कन्द का षड्यन्त्र ? मैं कुछ समझी नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरगुप्त : वह एक हूण था जो शस्त्र लिये उस क्षण की प्रतीक्षा में था जब परम भट्टारक मधुर निद्रा में लीन रहते और वह एक ही हाथ में मगध का वैभव और इतिहास रक्त की धाराओं में बहा देता।

अनन्त : (**चीखकर**)रक्त की धाराओं में बहा देता ? (**सिसकियाँ लेते हुए**) नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता था, ऐसा नहीं हो सकता था। मेरा भाग्य इतना प्रतिकूल नहीं हो सकता था।

कुमार : धैर्य रखो, प्रिये ! मेरी मृत्यु की सम्भावना ऐसी नहीं है जो तुम्हें इतना विह्वल बना दे। हाँ, पुरगुप्त ! फिर क्या हुआ ?

पुरगुप्त : पिताजी ! मैंने उस हूण पर पीछे से जाकर पाद-प्रहार किया। जैसे ही वह घबराकर भागने को हुआ कि मैंने उसे पकड़ लिया। अन्त:पुर की समस्त द्वार-रक्षिकाएँ सहम उठीं। मेरा उससे मल्लयुद्ध हुआ और अन्त में वह जब शिथिल हो गया तो मैंने एक द्वार-रक्षिका के उत्तरीय से उसके हाथ-पैर बाँध दिये।

अनन्त : धन्य हो, मेरे लाल ! तुमने हूण को मल्लयुद्ध में पराजित किया, तुम्हें कहीं चोट तो नहीं लगी ?

पुरगुप्त : मैंने जब उसके हाथ से तलवार छीनी तो मेरे बायें हाथ में रक्त की एक रेखा-मात्र झलक उठी। कोई विशेष चोट नहीं है।

अनन्त : लाओ, मैं उसे बाँध दूँ, लाल ! (**पास आकर बाँधती है**) ओहो, इतना अधिक रक्त निकल रहा है और तुम उसे केवल एक रक्त की रेखा ही कह रहे हो। हाथ उठाओ, मेरे लाल ! हाँ, इस तरह। लाओ ! पीठिका का कौशेय ही बाँधूं। (**फाड़ने की आवाज़**) इसे ऐसे बाँधूँ...हाँ, इस तरह। ओह, आर्यपुत्र ! देखिये... कितना रक्त निकल रहा है।

कुमार : मेरे पुत्रों के लिए रक्त शृंगार की वस्तु है। हाँ, पुरगुप्त ! तो तुमने यह कैसे जाना कि वह हूण युवराज स्कन्द के षड्यन्त्र में था।

पुरगुप्त : जब मैंने उसी की तलवार से उसका वध करना चाहा तो वह मुँह फाड़कर चीख उठा और कहने लगा कि युवराज स्कन्दगुप्त की आज्ञा से ही वह वहाँ छिपकर बैठा था।

कुमार : किसलिये ?

पुरगुप्त : आपको अनन्त निद्रा में शयन कराने के लिए।

कुमार : नहीं, नहीं, यह असंभव है। स्कन्द के मन में ऐसी दुर्भावना आ ही नहीं सकती।

पुरगुप्त : मैं प्रमाण उपस्थित कर सकता हूँ, पिताजी ! मैंने उस हूण के हाथ-पैर बाँध कर उसी तोरण-शाल-भंजिका की ओट में डाल दिया है। यदि आपकी आज्ञा होगी तो मैं आपकी सेवा में उसे उपस्थित भी कर दूँगा।

अनन्त : संदेह के लिये स्थान ही क्यों छोड़ा जाय ; आर्यपुत्र के समक्ष उसे उपस्थित क्यों नहीं कर देते ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुमार : किन्तु मुझे स्कन्द पर किंचितमात्र भी सन्देह नहीं है।

अनन्त : आप इतने साधु और सौम्य हैं, आर्यपुत्र, कि आप समस्त संसार को अपने जैसा ही साधु और सौम्य समझते हैं। राज्याधिकार ने किसके मन को कलंकित नहीं किया ? क्या अजातशत्रु ने महाराज बिम्बसार को राज्य-सिंहासन से हटाकर स्वयं राजशक्ति अपने हाथों में नहीं कर ली ? इतिहास इसका साक्षी है, आर्यपुत्र !

कुमार : किन्तु, स्कन्द !

अनन्त : जब आपका ही पुत्र पुरगुप्त प्रमाण उपस्थित करने की आज्ञा चाहता है तो उसे अनुमति प्रदान करने में हानि ही क्या है ?

कुमार : अच्छा, पुरगुप्त ! प्रमाण उपस्थित हो।

पुरगुप्त : जो आज्ञा। [**प्रस्थान**]

कुमार : प्रिये ! मैं बार-बार विश्वास करने का प्रयत्न करता हूँ कि तुम्हारा और पुरगुप्त का कथन सत्य हो, किन्तु मेरे अन्तःकरण की ध्वनि विश्वास करने की आज्ञा नहीं देती।

अनन्त : आपका कंठ सूख रहा है, आर्यपुत्र ! एक पात्र कादम्ब ग्रहण कीजिये।

कुमार : लाओ, प्रिये ! (**एक घूँट पीकर**) तुम्हारे प्रेम की भाँति ही यह कादम्ब मधुर है, किन्तु, प्रिये ! मैं भीतर से एक उदासी का अनुभव कर रहा हूँ।

अनन्त : सत्य है, प्राणनाथ ! जब विश्वास-पात्र ही विश्वास खोने लगते हैं तब मन की ऐसी दशा हो ही जाती है। यद्यपि स्कन्द ने प्राणदण्ड पाने का कार्य किया है, किन्तु उसका निर्णय कुछ दयापूर्ण हो।

[पुरगुप्त का बंदी हूण के सहित प्रवेश]

पुरगुप्त : पिता जी ! यह हूण बन्दी है। यही तोरण-शाल-भंजिका के पीछे तलवार लिये छिपा था।

कुमार : अच्छा, तुम हो ! तुम्हारा नाम ?

हूण : (**हकलाते हुए**) टि...टि...टि...टिण्डल।

कुमार : तुम कुसुमपुर में किस तरह आए ?

हूण : सो...सो...सो...सोकंद गुप्त टा लाया।

कुमार : स्कन्दगुप्त क्यों लाये ?

हूण : सोकंद गुप्त टा लाया। बंदी टा बेनाया। हाम की सेनाटा भगगाया। फि... फि...फि...फिर बंदी खाना टा में डाला।

कुमार : वहाँ से तुम यहाँ कैसे आये ?

अनन्त : तुमसे स्कन्दगुप्त ने यहाँ आने को कहा था न ?

हूण : ज...ज...ज...जेश रानी टा केहा तेश ठीक।

अनन्त : आर्यपुत्र ! आपको अब तो विश्वास होगा।

कुमार : क्या स्कन्दगुप्त ने तुम्हें तोरण-शाल-भंजिका के पास छुपने को कहा था ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हूण : ह...ह...ह...हाम टा समझता नहीं।

कुमार : तुम तलवार लेकर मारने आये थे?

हूण : ए...ए...ए...ऐसा टा पोरगुप्त बोला।

अनन्त : तुम ठीक से नाम उच्चारण करो। किसने तुमसे ऐसा कहा? स्कन्दगुप्त ने?

हूण : ज...ज...ज...जेश रानी टा केहा तेश ठीक।

पुरगुप्त : पिताजी को मेरे कथन पर विश्वास करना चाहिए। यदि मैं ठीक समय पर न आता तो आज सर्वनाश था।

कुमार : मैं इस हूण से अधिक बात नहीं कर सकता। मुझे मूर्च्छा-सी आ रही है। कादम्ब का प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

अनन्त : प्राणनाथ! आप विश्राम कीजिये। पुरगुप्त, जाओ! इस हूण बन्दी को ले जाओ। इसके दण्ड का निर्णय मैं स्वयं करूँगी।

पुरगुप्त : जैसी आज्ञा। (**हूण से**) चलो जी!

[पुरगुप्त का हूण के साथ प्रस्थान]

अनन्त : आर्यपुत्र! हमारे मगध साम्राज्य में एक षड्यन्त्र चल रहा है जिसका केन्द्र स्कन्दगुप्त है। इसका आभास मुझे तो कई महीनों से लग रहा था, आज यह सत्य बन गया।

कुमार : (**शिथिल स्वरों में**) प्रिये! स्कन्द से इस संबंध में बातें किए बिना मैं विश्वास कैसे करूँ? स्कन्द को बुलाओ।

अनन्त : स्कन्द आपके सामने किस प्रकार आ सकेगा? उसे तो अब आपके पास आने में लज्जा आवेगी। जिसने अपने पिता के वध की योजना बनाई, वह क्या पिता से बातें कर सकेगा? छोड़िये, इन अरुचिकर प्रसंगों को। आपका कंठ सूख रहा है। लीजिये. यह एक पात्र कादम्ब।

कुमार : नहीं, प्रिये! मैंने आज कादम्ब इतना अधिक पान किया है कि उसकी नदी मेरे शरीर में बह रही है। मेरा सिर घूम रहा है और नेत्र उठ भी नहीं सकते।

अनन्त : फिर भी मेरे हाथों से इस बार कादम्ब को पान करें। इसमें मैंने अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखकर मुस्करा दिया है। यह कादम्ब तो आपको और भी प्रिय होगा!

कुमार : लाओ, प्रिये! यदि तुम इस प्रकार मुस्करा कर मुझे विष भी दो तो मैं उसे अमृत समझकर पान कर लूंगा। लाओ। [**पान करते हैं।**]

अनन्त : मैं धन्य हुई, आर्यपुत्र!

कुमार : मुझे मूर्च्छा-सी आ रही है, प्रिये!

अनन्त : आर्यपुत्र! आप मेरी गोद में विश्राम करें। कल प्रातःकाल स्कन्द को बुलाकर आपके समक्ष उपस्थित करूँगी और जिस विश्वासघात से उसने अपने पिता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के जीवन का अन्त करना चाहा है, उसका निर्णय मैं स्वयं उससे करवाऊँगी ।

कुमार : स्कन्द...स्कन्द...देवकी कहाँ है ?

अनन्त : वह चक्रपाणि भगवान की पूजा में व्यस्त होंगी । जिसने पति की ओर से उदासीन होकर चक्रपाणि को ही सब-कुछ समझ लिया है उस नारी के संबंध में मैं क्या कह सकती हूँ ?

कुमार : (**आँख बंद कर शिथिल स्वरों में**) महादेवी ! देवकी श्रद्धा की देवी हैं ।

अनन्त : आर्यपुत्र अत्यन्त सरल स्वभाव के हैं । (**सहसा**) हाँ, एक आवश्यक आज्ञा-पत्र मन्त्री कुमारामात्य पृथ्वी सेन की ओर से आया था, उस पर आपके हस्ता-क्षर होना है ।

कुमार : (**शिथिल स्वरों में**) किस संबंध में आज्ञा-पत्र है ?

अनन्त : मैं तो उसे देख नहीं सकी, किन्तु कुमारामात्य ने निवेदन किया था कि यह आज्ञा-पत्र अत्यंत आवश्यक है, इस पर आज ही हस्ताक्षर हो जाने चाहिए ।

कुमार : प्रिये ! मैं तो इस समय आँख खोल भी नहीं सकता । कादम्ब ने स्वप्नों की चित्रशाला मेरी आँखों में खींच दी है । मैं उसी में खो गया हूँ ।

अनन्त : मेरी आँखों से देखिये, आर्यपुत्र ! मेरी सेवा से चैतन्य हो जाइये । आज मन्त्रि-परिषद् में आपने किसी विशेष समस्या पर विचार किया होगा ।

कुमार : (**सोचता हुआ**) हाँ...पुष्यमित्रों की गति रोकने के लिये...हाँ...सामन्त राज्यों की रक्षा के लिए...हाँ, मालव की रक्षा के लिए मैं स्कन्द को भेजना चाहता था ।

अनन्त : तब उसी संबंध में मन्त्री कुमारामात्य ने आपके हस्ताक्षरों के लिये आज्ञा-पत्र भेजा होगा ।

कुमार : संभव है, वही हो । कार्य अत्यन्त आवश्यक है ।

अनन्त : तब आप हस्ताक्षर कर दीजिये । मैं इसी समय आज्ञा-पत्र को कुमारामात्य के पास भिजवा दूँगी ।

कुमार : हाँ, हाँ......स्कन्द को कल प्रातःकाल ही मालव के लिए प्रस्थान करना चाहिए ।

अनन्त : तब यह रही लेखनी । आप यहाँ हस्ताक्षर कर दीजिये ।

कुमार : लाओ...(**सोचकर**) पर हाँ, मुझे तो कल प्रातःकाल स्कन्द से पूछना था कि पुरगुप्त के कथन में कितना सत्य है !

अनन्त : स्कन्द मालव जाने के पूर्व तो आपकी सेवा में आएगा ही । उस समय उससे पूछ लीजिएगा ।

कुमार : यह भी ठीक है । (**हस्ताक्षर करते हुए**) लो, हस्ताक्षर कर दिये । प्रिये ! मुझे मूर्च्छा आ रही है । मैं विश्राम करना चाहता हूँ ।

अनन्त : आप मेरी गोद में विश्राम कीजिये, प्राणनाथ !

कुमार : (**स्वप्निल स्वरों में**) पुष्यमित्रों को हरानेवाला...स्कन्द ! वीर-तेजस्वी...

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पितृभक्त मेरा वध नहीं करवा सकता। मेरे युवराज...स्कन्द !...उसका विवाह ...यदि मालव-कुमारी देवसेना से हो...तो...कितना अच्छा होगा...देवसेना ! वह नन्दन-वन की वसन्त-श्री अमरावती की शची, स्वर्ग की लक्ष्मी...स्वर्ग... स्वर्ग की लक्ष्मी...चक्रपाणि भगवान की शेष-शैय्या पर आसीन...लक्ष्मी...लक्ष्मी सागर से उत्पन्न...समुद्र-मंथन के अवसर पर...कल्पवृक्ष...धन्वन्तरि...ऐरावत, वारुणी. अमृत...विष...विष......

अनन्त : विश्राम कीजिये, आर्यपुत्र ! आपका मन पशान्त है। विश्राम कीजिये।

कुमार : विष...शंकर ने पान किया...नीलकंठ की शोभा...आकाश की भाँति... जिसमें चमकता हुआ चन्द्रमा... किन्तु उसकी कालिमा जो कादम्ब के छींटों से बनी है...कादम्ब...कादम्ब......

अनन्त : आर्यपुत्र ! एक पात्र कादम्ब और दूँ ? लीजिये। [**कादम्ब पिलाती है।**]

कुमार : (**कादम्ब मुख में भरकर**)...ओह, मूर्च्छा......

[**नेपथ्य में—'मैं पिताजी के दर्शन इसी समय करना चाहता हूँ।'**
सुनंदा का स्वर—'महादेवी भी साथ हैं।'
स्कंद का स्वर—'मेरी माँ !']

[**स्कन्द का प्रवेश**]

स्कन्द : माँ...माँ...

अनन्त : कौन, स्कन्दगुप्त !

स्कन्द : क्या माँ नहीं है ? किन्तु तुम तो मेरी माँ हो।

अनन्त : तुम्हारा छद्मवेश मैंने बहुत देखा है, स्कन्द ! आगे से मुझे माँ मत कहा करो। मैं तुम्हारे द्वारा माँ कहने पर अपने को अपमानित समझती हूँ।

स्कन्द : मेरी ओर से आज तक कोई अपराध नहीं हुआ, माँ ! किन्तु अनजाने यदि अपराध हो गया हो तो मैं क्षमा चाहता हूँ। मुझे क्षमा करो।

अनन्त : यह छल-छन्दों की भाषा मुझे नहीं चाहिए। यह उनसे कहो जो महादेवी का दम्भ भरकर चक्रपाणि भगवान की पूजा का ढोंग करती हैं।

स्कन्द : मेरी माँ को अपमानित मत करो, माँ ! वे पूज्य हैं और माँ ! तुम भी पूज्य हो। पिताजी भी जानते हैं...(**पिताजी को देखकर सहसा**) क्या पिताजी निद्रा में हैं ?

अनन्त : हाँ, निद्रा में हैं।

स्कन्द : तो माँ, धीरे बातें करो। कहीं पिताजी की निद्रा भंग न हो जाय।

अनन्त : यह झूठी पितृभक्ति रहने दो, स्कन्द !

स्कन्द : माँ ! तुम ऐसी बातें करके मुझे कष्ट न दो।

अनन्त : मैंने तुम्हें रोक दिया है कि तुम मुझे माँ मत कहो।

स्कन्द : आज इतना क्रोध मुझ पर क्यों है, माँ ! आप तो मेरी सौतेली माँ हैं, फिर ऐसी कौन-सी नारी है जो 'माँ' शब्द पर द्रवित नहीं होती ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनन्त : अच्छा, तो मैं नारी नहीं राक्षसी हूँ ! अब तू मुझे भी अपमानित करेगा !

स्कन्द : नहीं माँ ! जिस दिन स्कन्द से अपनी माँ का अपमान होगा उस दिन स्कन्द इस संसार में नहीं रहेगा ।

अनन्त : पिता को संसार में रहने दे, यही तेरी बड़ी कृपा होगी ।

स्कन्द : पिता को संसार में रहने दूँ ? यह आप कैसी बातें कर रही हैं ? मैं तो समझता हूँ कि भगवान ही पिता के रूप में अवतार ग्रहण करते हैं । वे ही उत्पत्तिकर्त्ता हैं, वे ही पालक हैं । उनके प्रति कपट करना संसार के सबसे बड़े पापों में है ।

अनन्त : ये विचार इसलिए तो नहीं हैं कि तुझ पर किसी को सन्देह करने का अवसर न मिले ? मुख से पिता का गुण-गान करना और अपने कार्यों से उनके वध का प्रबन्ध करना ।

स्कन्द : वध का प्रबन्ध करना ! मैं कुछ समझा नहीं ।

अनन्त : हाँ, इसे तो हूण ही समझ सकता है ।

स्कन्द : हूण ? कौन-सा हूण ? मैंने तो कुसुमपुर में छिपे हुए समस्त हूणों को या तो मार डाला है या उन्हें बन्दी कर लिया है ।

अनन्त । बन्दी इसलिए कर लिया है कि वे तेरे षड्यन्त्रों में भाग लेकर तेरे युवराज पद को परम भट्टारक के पद में परिवर्तित कर दें ।

स्कन्द : माँ ! अपने शब्दों पर प्रतिबन्ध लगाओ । ऐसे अनुचित और पापमूलक वाक्यों से......

अनन्त : मेरे वाक्य पापमूलक हैं और उन्हीं के अनुसार तेरे कार्य पुण्यसूचक हैं । क्यों स्कन्द ?

स्कन्द : (**पुकारकर**) पिता !

अनन्त : तुम्हारे पिता इस समय गाढ़ निद्रा में हैं । उनकी निद्रा भंग मत करो । (**व्यंग्य से हँसकर**) जो उन्हें चिर-निद्रा में सुलाना चाहता था, वह उसकी निद्रा भंग करे ! बड़े कौतुक की बात है ।

स्कन्द : माँ ! तुम क्या कर रही हो ? क्या तुम अपने वाक्य प्रमाणित कर सकती हो ?

अनन्त : सत्य को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, स्कन्द ! अमावस का अंधकार किसी व्यक्ति से नहीं कहता कि मेरी घोषणा करो । वह पाप-रूप से सब संसार पर छा जाता है । इसी प्रकार तुम्हारे पाप-कार्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रखते ।

स्कन्द : माँ ! मेरा रक्त खोल रहा है । मैं पिताजी से निवेदन करूँगा......

अनन्त : जब मेरे पुत्र ने हूण से उनकी रक्षा कर ली तब उनसे तुम क्या निवेदन करोगे ? उसी हूण से जिसे तुमने पितृ-वध के लिए तोरण-शाल-भंजिका के पीछे छिपा दिया था ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्कन्द : ओह ! घोर षड्यन्त्र । क्या ऐसा संभव हो सकता है, माँ ! यह किसी नीच का कार्य है। स्कन्द सौ जन्म् में भी अपने पिता के प्रति दुर्भावना नहीं ला सकता । ओह ! बतलाओ, माँ ! वह हूण कौन था ?

अनन्त : इस तरह अनजान बन जाने से तुम्हारे पापों पर परदा नहीं पड़ सकता। (**व्यंग्य से**) वह हूण कौन था—जैसे दो वर्ष के भोले बच्चे हो न ? जिस हूण को षड्यन्त्र में सम्मिलित किया, उसका नाम भी नहीं जानते !

स्कन्द : भगवान चक्रपाणि की शपथ, माँ ! मैं उसे नहीं जानता ।

अनन्त : भगवान चक्रपाणि तो माँ और बेटे के खिलौने हैं। चाहे जब उनकी दुहाई दे दी । चक्रपाणि न हुए वक्रपाणि हो गये । टेढ़े कार्यों में भी उनकी साक्षी !

स्कन्द : माँ, माँ, बस करो ! मेरी निन्दा करो किन्तु भगवान की निन्दा न करो। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ ।

अनन्त : जिस तरह हूण टिण्डल से प्रार्थना की थी ।

स्कन्द : ओह टिण्डल ! वह नीच हूण जो धन लूटने के लिए गरम लोहे से नागरिकों को जलाता था—खौलते तेल में कपड़े डुबाकर जनता को जलाता था और कोड़े मारता था ! उसको मैंने बन्दी किया । पैसे का लोभी ! उसे मार डालता तो यह सब कुछ न होता ।

अनन्त : उसे मार डालना सहज नहीं था । मेरा पुत्र ही उसे मार सकता है ।

स्कन्द : मैं भी तुम्हारा पुत्र हूँ, माँ ! मैंने उसे मारने के लिए कृपाण उठाया । उसने पैरों पर गिरकर प्राण-भिक्षा माँगी । मैंने उसे केवल बन्दी करने की आज्ञा दी । वह पैसे का बड़ा लोभी था । ज्ञात होता है किसी नीच ने बंधन-मुक्त कर पैसे का लोभ दिया और चाहे जैसा कहला लिया । इन हूणों में मानवता नहीं है, माँ ! ये धन के लिए सब कुछ कर सकते हैं । किसी नीच का ही यह कार्य है । मैं टिण्डल को दण्ड दूँगा—अब प्राणदण्ड दूँगा ।

अनन्त : किस पद से प्राणदण्ड दोगे ? युवराज पद से ? तुम्हारे इन्हीं षड्यन्त्रों से क्षुब्ध होकर परम भट्टारक ने तुम्हें युवराज-पद से हटाकर कुसुमपुर छोड़ने को कहा है और पुरगुप्त को युवराज-पद दिया है। देखो, यह आज्ञा-पत्र जिसकी स्याही अभी तक सूखने नहीं पाई । [**हँसती है।**]

स्कन्द : (**आज्ञा-पत्र देखकर**) ठीक है, माँ ! यह आज्ञा शिरोधार्य है । मुझे राज्य का कोई लोभ नहीं है। किन्तु मैं सोच रहा हूँ कि इसी कार्य के लिए षड्यन्त्र की रूप-रेखा किसी ने बनाई है ।

अनन्त : अर्थात् मैंने बनाई है ? तुझे लज्जा नहीं आती अपनी माँ पर इस प्रकार लांछन लगाते हुए ! नीच ! दुष्ट ! एक ओर तो मुझे अपनी माँ कहता है, दूसरी ओर मुझ पर षड्यन्त्र का लांछन लगाता है ।

स्कन्द : मैंने तुम्हारा नाम नहीं लिया, महादेवी !

अनन्त : और नाम कैसे लिया जाता है ? जब कुछ कहने को नहीं है तो 'महादेवी'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्बोधन से मुझे प्रसन्न करना चाहता है ! मैं ऐसे छद्मवेशियों के भुलावे में नहीं आ सकती ।

स्कन्द : सारा रहस्य मेरी समझ में आ गया । अब मुझे कुछ नहीं कहना है । अपनी माँ की आज्ञा लेकर मैं कुसुमपुर छोड़ दूँगा, किन्तु मुझे दुःख इसी बात का है कि मगध की प्रजा पर संकट आने पर......

अनन्त : क्या तू ही संकट दूर कर सकता है ? क्या मेरे पुत्र पुरगुप्त में इतनी शक्ति नहीं है कि वह विदेशियों और आततायियों से प्रजा की रक्षा कर सके ? तुझे अपनी शक्ति पर बड़ा अभिमान हो गया ज्ञात होता है ।

स्कन्द : शक्ति जननी की है और साहस पिता का है । मुझे राज्याधिकार का मोह नहीं । मेरे भाई पुरगुप्त युवराज बने । मगध-साम्राज्य के अधिकारी हों किन्तु मेरी जन्मभूमि की दुर्दशा न हो ।

अनन्त : अभिनय तू अच्छा कर सकता है, स्कन्द !

स्कन्द : महादेवी ! यह अभिनय नहीं, यह प्राणों का चीत्कार है । जन्मभूमि की दुर्दशा मैं किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकूँगा । शरीर में अन्तिम रक्त-बिन्दु के रहते मैं किसी भी विदेशी और अत्याचारी को मगध की भूमि पर पैर नहीं रखने दूँगा । युवराज बनकर न सही, सैनिक बनकर तो मैं अपनी मातृभूमि की रक्षा का अधिकार रखता हूँ । यह आज्ञा-पत्र कहाँ तक पिता की इच्छा से लिखा गया है, यह तो परिषद् निर्णय करेगा किन्तु मैं यह वचन देता हूँ, माँ ! कि मैं सिंहासन के प्रलोभन से कोई कार्य नहीं करूँगा ।

अनन्त : (**व्यंग्य से**) बस, बस, बहुत हुआ ।

स्कन्द : मुझे कल प्रातःकाल मालव की ओर प्रस्थान करना है । पिछले शक-युद्ध में मालव-राज्य की जो संधि मगध-साम्राज्य से हुई थी, उसके अनुसार मालव की रक्षा हमारा धर्म है । आज मालव संकट में है । शकों की सेना फिर मालव को घेर रही है । मुझे शीघ्र ही मालव की रक्षा के लिए प्रस्थान करना है । किन्तु महादेवी ! मुझे आपसे यही निवेदन करना है कि अपने पुत्र को युवराज-पद दिलाने के उपरान्त अब और कोई अभिसन्धि मेरी अनुपस्थिति में न हो ।

अनन्त : क्या मुझे आज्ञा देने का साहस तुझमें है ?

स्कन्द : तुम महादेवी हो, किन्तु मगध-साम्राज्य से बढ़कर नहीं हो । मगध की रक्षा तुम्हें भी उसी प्रकार करनी होगी जिस प्रकार एक सैनिक करता है । मगध पर विदेशियों की सेना उमड़ रही है । युवराज पुरगुप्त को तैयार करो कि वह उसका सामना करे । मगध का शासन विलास की छाया में नहीं हो सकता, कृपाण की छाया में होगा । पिताजी के जागने पर उनके चरणों में मेरा प्रणाम निवेदन करना और कहना कि स्कन्द उन्हीं के आदेशों से मालव की ओर चला गया है । विजय प्राप्त करके ही लौटेगा । [**प्रस्थान**]

अनन्त : चला गया । कंटक दूर हुआ । कहता है, मगध का शासन विलास की छाया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में नहीं हो सकता ! विलास की छाया में ! मैं तो ऐसा शासन करूँगी कि समस्त मगध साम्राज्य के इतिहास में वह अमर हो जाए। (**घंटे पर चोट करती है**) कंठ सूख रहा है, कादम्ब समाप्त हो गया ।

[**सुनन्दा का प्रवेश**]

सुनन्दा : आज्ञा, महादेवी !

अनन्त : हाँ, आज से तुम्हारा सम्बोधन सार्थक हो गया, महादेवी ! आज से मैं वास्तव में महादेवी हूँ। सुनन्दा ! मेरा कंठ सूख रहा है।

सुनन्दा : मैं कादम्ब साथ लाई हूँ, पान करें। मैं जानती थी कि महादेवी का कंठ सूख रहा होगा।

अनन्त : तू बड़ी कुशल है, सुनन्दा ! ला, पान करूँ। (**पान करती है**) और सुन ! परम भट्टारक ने लिखित आज्ञा-पत्र से यह घोषणा की है कि आज से स्कन्द युवराज नहीं हैं। युवराज हैं मेरे पुत्र कुमार पुरगुप्त ! और देख ! इस बात की किसी को भी सूचना न हो कि परम भट्टारक अब इस संसार में नहीं हैं। देख, वे चिर-निद्रा में लीन हैं।

सुनन्दा : परम भट्टारक सम्राट् अब संसार में नहीं हैं ! [**सिसकी**]

अनन्त : चुप, सुनन्दा ! एक सिसकी भी नहीं। (**सुनन्दा की सिसकियाँ बन्द हो जाती हैं**) अधिक से अधिक इसी बात की सूचना हो कि परम भट्टारक अस्वस्थ हैं और अपनी अंतिम शैया पर लेटे हैं।

सुनन्दा : (**सिसकी मिले हुए कंठ से**) जो आज्ञा !

अनन्त : आज मैं महादेवी हूँ। महादेवी देवकी का अभिमान धूल में लौट रहा है। जा, इस लिखित आज्ञा-पत्र की घोषणा तूर्य से हो कि आज़ से युवराज पुरगुप्त की आज्ञा मान्य हो। शीघ्र जा !

सुनन्दा : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

अनन्त : (**अट्टहास करती है**) स्कन्द कहता है कि मगध का शासन विलास की छाया में नहीं हो सकता। मैं कहती हूँ कि मैं विलास की छाया में ही मगध का शासन करूँगी। जिस प्रकार डमरू के नाद से नाग मोहित होता है, उसी प्रकार मेरे रोष से मगध जो नाग की भाँति मतवाला है, मोहित होकर मूर्च्छित होगा और तब मैं एकाधिपत्य शासन करूँगी। विलास की छाया में...विलास की छाया में......

[**बाहर तूर्य की ध्वनि**]

अनन्त : (**अट्टहास के साथ**) मैं महादेवी हूँ ! मेरा पुत्र युवराज है ! मैं स्वयं अपने मुँह से कहूँगी—महादेवी अनन्त की जय ! जय...... !जय......!!

[**धीरे-धीरे शब्द क्षीण हो जाता है।**]

[**परदा गिरता है।**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 13 :

राज्यश्री

•

पात्र-परिचय

सम्राट हर्षवर्द्धन—स्थाण्वीश्वर के सम्राट्
दिवाकर—विन्ध्याटवी आश्रम के आचार्य
माधव—सम्राट् हर्षवर्द्धन का सेवक
सुबन्धु, **तारक**—आचार्य दिवाकर के शिष्य
भिक्षु, शिष्य, सैनिक आदि
राज्यश्री—सम्राट् हर्षवर्द्धन की बहिन
मेनका, **विराजिका**—राज्यश्री की सहचरियाँ
शिप्रा—चित्रक की पत्नी

•

समय—प्रभात
स्थान—विन्ध्याटवी में दिवाकर मित्र का आश्रम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्यश्री

[प्रभात की अनुपम शोभा-श्री। पक्षियों का कलरव।]

तारक : (मन्द स्वर में पाठ करता हुआ)

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।
एवं त्वयि नान्ययेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(धीरे-धीरे) इस लोक में कर्म करते हुए भी सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करे। अतः तेरे लिए इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है कि तू कर्म में लिप्त न हो।

सुबन्धु : (समीप आता हुआ) आयुष्मन् !

तारक : क्या है, सुबन्धु !

सुबन्धु : एक बात कहना चाहता हूँ।

तारक : कहो !

सुबन्धु : तुम मन्त्र-पाठ करते हो। अग्निहोत्र करने जा रहे हो, पर तुम्हें इस बात का दुःख नहीं है कि रात्रि में विन्ध्याटवी की पूर्वी सीमा पर इतनी बड़ी आग लगी थी।

तारक : आग लगी थी ? यदि मैं इन्द्र होता तो पर्जन्यों से धारासार वृष्टि करता।

सुबन्धु : किन्तु जब तुम इन्द्र नहीं बन सके तो मनुष्यत्व का अभिमान रखनेवाले तारक ! तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं रहा ?

तारक : कर्तव्य ! वन में जब आग लग जाय तो मनुष्य किस कर्तव्य का पालन करे ?

सुबन्धु : तुम भूल करते हो, तारक ! मनुष्य का कर्तव्य जीवन की रक्षा करना है। तुम वन की आग नहीं बुझा सकते ; किन्तु आग में जलते हुए प्राणियों की रक्षा तो कर सकते हो।

तारक : किस तरह ? भगवान की प्रार्थना करते हुए ?

सुबन्धु : नहीं ! पेड़ पर न जाने कितने पक्षि-शावक होंगे जो उड़ना नहीं जानते। अपने नीड़ों में ही वे जलकर मर जायँगे। उन्हें तुम नीड़ समेत बचा सकते हो। चारों दिशाओं में आग लगने पर एक दिशा की आग को फैलने से रोका जा सकता है, जिससे उसी दिशा से जीव-जन्तु भाग सकें।

तारक : (हँसकर) तुम बौद्ध हो न, सुबन्धु !

सुबन्धु : बौद्ध होना जीवन का सत्य है। तथागत ने आर्य सत्य का आख्यान किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
है। दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध, दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा। इन्हीं से चार आर्य सत्यों का आख्यान तथागत ने किया।

तारक : शास्त्रार्थ न करो, सुबन्धु ! मुझे अग्निहोत्र के लिए देर हो रही है।

सुबन्धु : मुझे क्षमा करना, तारक ! तुम्हारे अग्निहोत्र में बाधक हुआ। वह तो आचार्य दिवाकर मित्र अभी विन्ध्याटवी से लौटे, तो उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा कि आज की अग्नि भयानक थी। उन्होंने न जाने कितने पक्षि-शावकों के प्राणों की रक्षा की।

तारक : अच्छा ! यह बात थी। हाँ, आचार्य तो सन्ध्या को ही लौटने को थे ! हम सब उनके सम्बन्ध में चिन्तित थे।

सुबन्धु : वे उषाकाल में आये। उन्होंने कहा कि रात-भर वे चारों शिष्यों के साथ अग्नि का मार्ग रोकते रहे और अग्नि-शून्य दिशा से जीव-जन्तुओं को भागने की सुविधा देते रहे।

तारक : वे आश्रम में सूचना भिजवा देते तो अनेक शिष्य पहुँच जाते।

सुबन्धु : मैंने भी उनसे यही निवेदन किया; किन्तु उन्होंने कहा कि उनके चार शिष्य पर्याप्त थे। फिर जब तक एक शिष्य समाचार देता और अन्य शिष्य आते, तब तक न जाने कितने जीवों की हानि हो जाती।

तारक : तो आचार्य को बहुत कष्ट हुआ।

सुबन्धु : वे कहते हैं कि यही मेरा जीवन-यज्ञ है।

तारक : तो इस जीवन-यज्ञ के सम्बन्ध में......

[एक भिक्षु के साथ एक स्त्री का प्रवेश]

स्त्री : (**करुण स्वर में**) नहीं ! नहीं ! मैं किसी को कष्ट नहीं देना चाहती।

भिक्षु : कष्ट कैसा, देवि ! आचार्य दिवाकर मित्र के आश्रम में कष्ट नहीं है। यहाँ आकर तुम्हारा कष्ट भी दूर हो जायेगा।

स्त्री : मेरे हाथ में यह कृपाणी और मेरे वस्त्र में रक्त के धब्बे देखकर इस पवित्र आश्रम में कोई क्या कहेगा !

तारक : यही कि आप साक्षात् दुर्गा हैं, देवि। आपका शुभ नाम क्या है ?

भिक्षु : इनका शुभ नाम शिप्रा है। एक डाकू का आक्रमण निष्फल बनाकर इन्होंने उसी पर आक्रमण किया। उसके शरीर का रक्त तो इनकी कृपाणी और वस्त्र पर रह गया ; पर वह भाग गया।

तारक : आप वास्तव में दुर्गा हैं। वह डाकू कौन था, देवि !

शिप्रा : मेरे पतिदेव विदेश गये हुए हैं। मैं अकेली बन ग्रामक में रहती थी। एक दस्यु ने मेरे एकाकीपन का लाभ उठाकर मेरा धन चुराने के लिए रात्रि में मेरे घर में प्रवेश किया।

सुबन्धु : विन्ध्याटवी में भी दस्यु हैं !

शिप्रा : मैं जाग रही थी। मुझे जागते देखकर दस्यु ने मुझ पर प्रहार किया, किन्तु

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिरहाने रखी हुई पति की तलवार से मैंने आक्रमण रोक लिया।

तारक : साधु ! साधु ! देवि !

शिप्रा : मैंने उसे घर से निकल जाने को कहा। जब वह नहीं हटा तो मैंने उस पर प्रहार किया। उसके शरीर से रक्त की धारा बह निकली ; किन्तु वह भाग गया।

तारक : तुम धन्य हो, देवि ! तुम्हें तो कोई चोट नहीं लगी ?

शिप्रा : मेरे पैरों में कुछ चोटें अवश्य लगी हैं; किन्तु अधिक नहीं। मेरे वस्त्र उसके रक्त से अवश्य भीग गये हैं। मैं इसकी सूचना अटवी-सामन्त व्याघ्रकेतु को देने के लिए जा रही थी कि महात्मा भिक्षु मुझे यहाँ ले आये।

सुबन्धु : आपकी क्या सेवा की जाय, देवि !

भिक्षु : मैंने सोचा, दस्यु से संघर्ष करने में देवी का कंठ सूख गया होगा। आश्रम में ले जाकर इन्हें शीतल जल पिला दूँ।

सुबन्धु : ठीक किया, भन्ते ! (**शिप्रा से**) देवि ! शीतल जल पान कर कुछ विश्राम करें फिर अटवी-सामन्त के समीप जावें। यह आचार्य दिवाकर मित्र का आश्रम है। यहाँ किसी प्रकार की असुविधा नहीं होगी।

शिप्रा : धन्यवाद। मैं शीघ्र ही सामन्त से परिस्थिति का निवेदन करना चाहती हूँ। यदि इस पर ध्यान न दिया जायगा तो अनेक स्त्रियों के लिए संकट उपस्थित हो सकता है।

सुबन्धु : आपका कथन यथार्थ है। यदि आप आवश्यक समझें तो मैं भी साथ चलूं।

शिप्रा : नहीं, धन्यवाद ! मुझे कोई भय नहीं है, आप कष्ट न करें !

तारक : इस आश्रम में बिना आतिथ्य ग्रहण किये कोई नहीं जाता, देवि !

शिप्रा : आप जैसे महात्माओं के दर्शन ही अतिथि को तृप्त कर देते हैं। फिर मैं अतिथि भी नहीं हूँ।

सुबन्धु : अस्तु, आप शीतल जल ग्रहण करें, तब जावें। (**भिक्षु से**) भन्ते ! इन्हें रेवा का शीतल जल पान कराओ।

भिक्षु : चलो, देवि !

शिप्रा : मैं कृतार्थ हुई। मैं अभिवादन करती हूँ।

सुबन्धु : स्वस्ति !

[भिक्षु के साथ शिप्रा का प्रस्थान]

तारक : कैसी दिव्य-शक्ति और कैसा दिव्य-सौन्दर्य !

सुबन्धु : तुम्हें अग्निहोत्र के लिए देर हो रही होगी, तारक !

तारक : इस अग्नि-शिखा की वन्दना किसी अग्निहोत्र से कम नहीं है। मैं सोचता हूँ, सुबन्धु, कि यदि इस देवी में आक्रमण करने की शक्ति न होती तो क्या होता ?

सुबन्धु : उसके धन का अपहरण। और संसार के दुःखों से छूटने में उसे सुविधा

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होती। धन संसार का बन्धन ही तो है।

तारक : यदि धन के साथ उसका भी अपहरण हो जाता तो !

सुबन्धु : आर्यावर्त की नारी इतनी हीन नहीं है कि दस्यु उसका अपहरण करे।

तारक : (**सोचते हुए**) हाँ, यह तो ठीक है। धन का अपहरण ही होता।

[**एक सैनिक का प्रवेश**]

सैनिक : महात्माओं को प्रणाम !

तारक : कौन हो तुम, सैनिक !

सैनिक : मैं स्थाण्वीश्वर-नरेश महाराज हर्षवर्द्धन का दूत हूँ। क्या आचार्य दिवाकर मित्र का आश्रम यही है ?

तारक : हाँ। आचार्य दिवाकर मित्र का आश्रम यही है। किन्तु महाराज हर्षवर्द्धन के दूत को यहाँ आने की क्या आवश्यकता प्रतीत हुई ?

सैनिक : क्षमा करें, वह निवेदन आचार्य के समक्ष ही किया जा सकेगा।

सुबन्धु : अभी आचार्य स्नान-गृह में हैं। वे उषाकाल ही में विन्ध्याटवी से लौटे हैं।

सैनिक : मैं एक बात पूछ सकता हूँ ?

सुबन्धु : अवश्य।

तारक : यह आश्रम तो सभी प्रश्नों का समाधान है, दूत !

सैनिक : आपके आश्रम में महादेवी आयी थीं ?

सुबन्धु : महादेवी ! नहीं। एक स्त्री आयी थी। अभी-अभी तो वह यहीं थी। रक्त से उसके वस्त्र भीग गये थे।

सैनिक : (**चौंककर**) रक्त से ?

तारक : उसके हाथ में एक कृपाणी भी थी। उसके मुख पर अलौकिक तेज था।

सैनिक : (**उद्विग्नता से**) वही होंगी, वही होंगी, वही हैं।

तारक : कौन ? कौन वही हैं, दूत !

सैनिक : महादेवी राज्यश्री !

सुबन्धु : महादेवी राज्यश्री !

तारक : स्थाण्वीश्वर-नरेश की छोटी बहिन !

सैनिक : हाँ, वे विन्ध्याटवी की ओर चली आयी हैं।

सुबन्धु : विन्ध्याटवी में तो चारों ओर आग लगी थी। सारी रात आचार्य वहीं थे।

तारक : किन्तु वे महादेवी राज्यश्री नहीं होंगी, दूत !

सैनिक : आप कहते हैं कि उनके हाथ में कृपाणी थी।

तारक : कृपाणी तो प्रत्येक नारी के हाथ में रह सकती है। (**सुबन्धु से**) देखो सुबन्धु, वह स्त्री आश्रम में है ?

सुबन्धु : मैं अभी देखता हूँ। [**प्रस्थान**]

तारक : उसके हाथ में कृपाणी थी। उसके वस्त्र रक्त से भीग गये थे।

सैनिक : उनके पैरों में चोट लगी थी ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तारक : हाँ, उनके पैरों में चोट अवश्य थी।

सैनिक : तब तो वे महादेवी ही होंगी। लौह-शृंखला से कसे जाने पर उनके पैर अवश्य क्षत-विक्षत हो गये होंगे।

तारक : लौह-शृंखला ? लौह-शृंखला से नहीं, दूत ! उन्होंने एक दस्यु से युद्ध किया था।

सैनिक : महाराज ग्रहवर्मा का घातक मालवा-नरेश देवगुप्त किस दस्यु से कम है ? ओह ! क्षमा करें, महात्मा ! आचार्य दिवाकर मित्र से निवेदन करने की वार्त्ता मेरे मुख से अनायास ही......

तारक : कोई हानि नहीं, दूत ! यह वार्त्ता मन्त्र की भाँति गुप्त और सुरक्षित रहेगी। यह आश्रम नीति का तपोवन है, राजनीति का नहीं। (**देखकर**) अच्छा, सुबन्धु आ गये। उस स्त्री का क्या समाचार है, सुबन्धु !

[**सुबन्धु का प्रवेश**]

सुबन्धु : खेद है कि वह स्त्री जल पीने के उपरान्त ही आश्रम से चली गयी।

सैनिक : तब मुझे यह सूचना महाराज की सेवा में निवेदन करनी होगी।

तारक : महाराज कहाँ हैं ?

सैनिक : विन्ध्याटवी की पश्चिमी सीमा पर।

सुबन्धु : पश्चिमी सीमा पर ! ठीक है। आग तो पूर्वी सीमा पर लगी थी।

सैनिक : महाराज तीव्र गति से विन्ध्याटवी का एक-एक भाग देखेंगे। वायु की भाँति उनकी गति है। वे अपनी बहिन को खोजकर ही रहेंगे।

तारक : इस प्रसंग से हम सब दुखित हैं, सैनिक !

सैनिक : महाराज हर्षवर्द्धन सर्वप्रिय नरेश हैं। तो महात्मन् ! जब आचार्य स्नान-गृह से बाहर आवें तो उन्हें महाराज के आगमन की सूचना अवश्य दे दें।

सुबन्धु : अब तो वे पूजन-गृह में होंगे। उनके आते ही यह सूचना उनकी सेवा में निवेदित की जायगी। आचार्य के शिष्यों की ओर से उनका इस आश्रम में स्वागत है।

सैनिक : प्रणाम। [**प्रस्थान**]

तारक : महाराज हर्षवर्द्धन की बहिन ! क्यों सुबन्धु ! क्या वह स्त्री महाराज हर्षवर्द्धन की बहिन हो सकती है ?

सुबन्धु : मेरे अनुमान से नहीं हो सकती, क्योंकि वह स्त्री कहती थी कि मैं वन ग्रामक में रहती हूँ और मेरे पति विदेश गये हैं। महारानी राज्यश्री के पति तो कन्नौज के नरेश हैं।

तारक : किन्तु राजनीति में कूटनीति भी तो एक अंग है। सम्भव है, महादेवी राज्यश्री ने छद्मवेश धारण कर दस्यु से युद्ध करने का अभिनय किया हो। कृपाणी पर लगा हुआ रक्त कोई रासायनिक द्रव्य ही हो।

सुबन्धु : मैं ये सब बातें कुछ नहीं जानता। मनुष्य को पहिचानने की सामान्य बुद्धि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुझ में है । उस स्त्री की भाव-भंगिमा से मुझे ज्ञात नहीं होता कि वह राजकुल की है । फिर इस आश्रम में आकर उस स्त्री को असत्य भाषण करने की क्या आवश्यकता हुई ?

तारक : किन्तु उसके पैर में चोट थी । दूत भी कहता था कि महादेवी राज्यश्री के पैरों में चोट है ।

सुबन्धु : ठीक है, किन्तु महादेवी राज्यश्री अकेले यहाँ कैसे आ सकती हैं ? उनके साथ तो अनेक स्त्रियों का समूह होगा ।

[एक शिष्य का प्रवेश]

शिष्य : आचार्य पूजा समाप्त कर इस बाहरी कक्ष में आ रहे हैं । **[प्रस्थान]**

सुबन्धु : हमें समस्त घटना-चक्र आचार्य के समक्ष रखना चाहिए ।

तारक : और महाराज हर्ष के विन्ध्याटवी तक आ जाने का समाचार जो दूत ने कहा है, वह तो उन्हें सुनाना ही चाहिए ।

[आचार्य दिवाकर मित्र का पादुका पहने हुए प्रवेश । सुबन्धु और तारक उन्हें प्रणाम करते हैं ।]

सुबन्धु : भन्ते के श्री चरणों में प्रणाम !

तारक : भन्ते के श्री चरणों में प्रणाम ! आसन ग्रहण कीजिए, भन्ते !

दिवाकर : **(गंभीर स्वर में)** स्वस्ति । तरुण बीजों को जल न मिलने से जो विकार होता है, वैसा विकार तो किसी के हृदय में नहीं है ? माता को देखने पर शिशु के मन में जो विकार होता है, वैसा विकार तो किसी में नहीं हुआ ?

सुबन्धु : भन्ते ! आशीर्वाद देने के लिए उठे हुए आपके हाथ की शीतल छाया सभी प्रकार के तापों को दूर कर देती है ।

तारक : किन्तु, भन्ते ! कुछ देर पहले एक स्त्री आयी थी ।

दिवाकर : इस आश्रम में स्त्री ?

सुबन्धु : उसके वस्त्र रक्त से भीगे थे । और उसके हाथ में एक कृपाणी थी ।

तारक : कहती थी कि उसने एक दस्यु से युद्ध किया है ।

दिवाकर : वह स्त्री ! पहले मैं समझा वे महादेवी राज्यश्री हैं । किन्तु राज्यश्री नहीं हैं । वह स्त्री एक सामान्य गृहस्थ की स्त्री है । दस्यु उसके धन का अपहरण करने के लिए उसके घर में आ घुसा था ।

तारक : आप यह कैसे जानते हैं ?

दिवाकर : मैंने लौटते समय उस दस्यु के घावों को धोया था और जड़ी का लेपन किया था । उसने सारी कथा मुझसे कही । अब से उसने दस्यु-कर्म सदैव के लिए छोड़ दिया ।

सुबन्धु : आपके सम्पर्क में आकर दुष्ट भी अपनी दुष्टता छोड़ देता है ।

तारक : एक समाचार और है, प्रभु ! विन्ध्याटवी की पश्चिमी सीमा पर महाराज हर्षवर्द्धन आये हुए हैं । उनका सैनिक यह सूचना आपको सुनाना चाहता था ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिवाकर : हर्षवर्द्धन, तुम धन्य हो ! आर्यावर्त का भविष्य तुम्हारे ही हाथों में है ।

तारक : सैनिक ने यह भी कहा कि महाराज तीव्र गति से विन्ध्याटवी का एक-एक भाग देखेंगे । वायु की भाँति उनकी गति है । वे अपनी बहिन को खोजकर ही रहेंगे ।

दिवाकर : यह आश्रम उनके साथ होगा ।

सुबन्धु : भन्ते ! वह सैनिक कुछ बातें अस्पष्ट ढंग से कह गया । वह मालव-नरेश देवगुप्त को दस्यु कह रहा था । और महादेवी राज्यश्री का नाम भी ले रहा था।

दिवाकर : यह दारुण संवाद है, सुबन्धु ! मैंने इसे वेणुवन जनपद की सीमा पर सुना । शिष्य चित्रभानु को देखकर लौट रहा था कि यह दारुण संवाद मुझे मिला ।

तारक : क्या हम लोग उसे सुन सकेंगे, भन्ते !

दिवाकर : कुशस्थल नरेश महाराज ग्रहवर्मा अब इस संसार में नहीं रहे ! (**मन्द स्वर में**) वे मेरे बाल्य-बन्धु थे ।

सब : (**चौंककर**) नहीं रहे ?

दिवाकर : जिस दिन स्थाण्वीश्वर-नरेश प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु हुई उसी दिन मालव-नरेश देवगुप्त ने ग्रहवर्मा की हत्या की ।

सुबन्धु : घोर अनर्थ !

दिवाकर : और सब से भयानक बात यह है कि देवगुप्त ने ग्रहवर्मा की हत्या कर उनकी महादेवी राज्यश्री को लौह-शृंखलाओं में कसकर कारागार में डाल दिया ।

तारक : सैनिक भी कह रहा था कि लौह-शृंखला से कसे जाने के कारण उनके पैर क्षत-विक्षत हो गये हैं ।

दिवाकर : हाँ, वे लौह-शृंखलाओं से कसी गयी थीं; किन्तु गुप्त नामक कुलपुत्र द्वारा वे अन्तःपुर की समस्त स्त्रियों-सहित मुक्त हुईं और छिपकर इसी विन्ध्याटवी में आ गयी हैं ।

तारक : तब तो हमें उन्हें शीघ्र ही खोजना चाहिए ।

सुबन्धु : इस समय तक उन्होंने कहीं आत्म-हत्या न कर ली हो । क्योंकि वर्द्धन-वंश की स्त्रियाँ अग्नि को अपनी सहचरी मानती हैं ।

दिवाकर : इसलिए मैं कल रात विन्ध्याटवी में रुक गया था । जब मैंने उसमें अग्नि लगी हुई देखी तो मैं उत्सुकता से उन्हीं की खोज करने लगा । मैं केवल पक्षि-शावकों तथा जीव-जन्तुओं की रक्षा कर सका, उन्हें कहीं नहीं पा सका ।

तारक : महाराज हर्षवर्द्धन के हृदय में अपनी छोटी बहिन के प्रति इतना प्रेम है कि वे प्रचंड शत्रु को पराजित किये बिना ही अपना देश मन्त्रियों पर छोडकर राज्य-श्री को खोजने के लिए विन्ध्याटवी में सामान्य व्यक्ति की भाँति भटक रहे हैं ।

[समीप ही शंख-ध्वनि]

[शिष्य का प्रवेश]

शिष्य : भन्ते के श्रीचरणों में अभिवादन ! महाराज हर्षवर्द्धन आश्रम में पधारे हैं ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिवाकर : **(सहसा उठकर)** महाराज हर्षवर्द्धन ! उनका स्वागत करो ! आयुष्मन् सुबन्धु और तारक ! तुम शीघ्र ही कमण्डल में पैर धोने का जल लाओ। वे स्वयं अमृतमय हैं।

[तारक और सुबन्धु का प्रस्थान]

[फिर शंखनाद। महाराज हर्षवर्द्धन का माधवगुप्त के साथ प्रवेश]

हर्ष : आचार्य दिवाकर मित्र को हर्ष का प्रणाम !

माधव : माधवगुप्त का अभिवादन स्वीकार हो !

दिवाकर : कल्याण हो, राजन् ! कल्याण हो ! मेरे आसन को सुशोभित करें।

हर्ष : भन्ते ! समस्त पृथ्वी को जीतने पर भी जिस सिंहासन पर हर्ष आसीन होगा, वह सिंहासन भी आपके आसन से नीचा ही रहेगा। आचार्य का आसन श्रद्धा का केन्द्र है। उस पर बैठकर हर्ष लांछित नहीं होगा। मेरे लिए तो पृथ्वी का आसन ही ऊँचा आसन है।

दिवाकर : राजन् ! आप वीरों में श्रेष्ठ हैं, पुरुष-सिंह हैं। आपके लिए तो गुणियों का हृदय ही आसन है।

हर्ष : नहीं, आचार्य ! जिस हर्ष के हृदय की अवस्था ऐसी है कि उसने श्री को शाप मान लिया है, पृथ्वी जिसे महापातक की भाँति ज्ञात हो रही है. राज्य जिसे रोग की भाँति घेरे हुए है, भोग जिसे भुजंग की भाँति ज्ञात होता है, घर जिसे नर्क की भाँति भयानक लगता है, जीवन अयश का केन्द्र और आरोग्य कलंक का विस्तार प्रतीत होता है, जिसके आहार में विष का स्वाद है, वह प्रत्येक आसन से गिर गया है। आपके पुण्य-दर्शन से उसे कुछ आधार मिले तो उसका सौभाग्य होगा !

दिवाकर : राजन् ! मैं आपके हृदय की स्थिति समझता हूँ। आप राज्य की धुरी धारण करनेवाले हैं। आप शान्त और सुखी हों। **(तारक और सुबन्धु का कमण्डल में जल लिये हुए प्रवेश)** तुम आ गये ? अपने मान्य अतिथि के चरणों का प्रक्षालन करो।

माधव : विन्ध्याटवी में कुश-कंटकों से महाराज के चरण क्षत-विक्षत हो गये हैं।

हर्ष : मेरा हृदय चरणों की अपेक्षा अधिक क्षत-विक्षत है, आचार्य !

दिवाकर : सौभाग्य आपके आश्रय में भाग्यवान् है। पौरुष आपके हृदय में धन्य है। क्षत-विक्षत होने पर भी हृदय में मंगल का विकास है। हाँ, सुबन्धु ! चरणों का प्रक्षालन करो। **[सुबन्धु जल लेकर बढ़ता है।]**

हर्ष : नहीं, आचार्य ! आपके संभाषण-रूपी अमृत से मेरा समस्त शरीर प्रक्षालित हो चुका, अब पैरों का प्रक्षालन व्यर्थ है। आप अपने आसन पर आसीन हों। मेरे-लिए यह पृथ्वी ही श्रेष्ठ आसन है। **[पृथ्वी पर बैठ जाता है।]**

दिवाकर : आप जैसे पुण्यात्मा को देखकर मोक्ष की इच्छा रखते हुए भी मुझे मनुष्य शरीर में श्रद्धा हो गयी है। यह आश्रम सब प्रकार से आपके सत्कार के लिए प्रस्तुत है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हर्ष : आचार्य ! हर्ष को किसी सत्कार की आवश्यकता नहीं है। दुर्भाग्य की साँसों ने ही उसे जीवन दिया है। महाप्रलय की भाँति पिता का मरण, उसके पूर्व ही जननी यशोमती का अग्नि-प्रवेश, फिर भगिनी-पति ग्रहवर्मा का वध, उसके अनन्तर ज्येष्ठ बन्धु राज्यवर्द्धन की हत्या और बहिन राज्यश्री को कारागृह। ये सब घटनाएँ उस दुर्भाग्य के चरण-चिह्न हैं जो मेरे जीवन के श्मशान में यात्रा कर रहा है। आचार्य ! दुर्भाग्य की यह यात्रा क्या मेरी जीवन-यात्रा से भी बड़ी हो गयी ?

दिवाकर : राजन् !......

हर्ष : जिस प्रकार एक लौह-दण्ड बार-बार पत्थर पर चोट मारकर चिनगारियाँ उत्पन्न करता है; किन्तु उस पत्थर को भस्म नहीं करता, उसी प्रकार दुर्भाग्य मुझे तिल-तिल कर जलाता है, भस्म नहीं करता !

दिवाकर : वह भस्म कभी नहीं कर सकेगा, राजन् ! अग्नि वायु का भक्षण कर प्रज्वलित होती है; किन्तु वही वायु जब आँधी बन जाती है तब अग्नि एक क्षण में समाप्त हो जाती है। आपके हृदय में साहस की वह आँधी है, राजन् !

हर्ष : वह आँधी उस समय से उत्पन्न हुई है, आचार्य ! जब जननी यशोमती ने अग्नि में प्रवेश किया। वैदेही की भाँति अपने पति के सामने ही उन्होंने अग्नि की शीतलता ग्रहण की ! वीर-जाया और वीर-जननी के साहस के समक्ष राज-परिवार और प्रजा-वर्ग के अनुरोध निर्बल सिद्ध हुए। मेरे आँसू भी जननी के दृढ़ निश्चय की शिला पर सूख गये। तब से उनका ही साहस मेरे प्राणों में समा गया है। कष्ट के तीखे काँटों को मैंने उन्हीं साहस की उँगलियों से उखाड़कर फेंका है और प्रधान अधिकारी अवन्ति द्वारा यह घोषणा करा दी है कि पृथ्वी से उदयाचल तक, सुवेल पर्वत तक, अस्ताचल तक, गन्धमादन पर्वत तक, राजाओं की मुकुट-मणियों के आलोक से बना हुआ लेप मेरे चरणों का कष्ट दूर करेगा। किन्तु, आचार्य ! इस समय मेरे चरणों का कष्ट तब दूर होगा, जब इस विन्ध्याटवी में खोयी हुई मेरी बहिन राज्यश्री मुझे मिल जाय ! आप इस विन्ध्याटवी के कण-कण से परिचित होंगे। आपको मेरी बहिन राज्यश्री की सूचना है ?

माधव : आचार्य ! महादेवी राज्यश्री के खो जाने से महाराज को बहुत कष्ट है।

दिवाकर : राजन् ! शत्रु से अपमानित होने के भय से ही राज्यश्री विन्ध्याटवी में आयी हैं, ऐसी सूचना अवश्य है। आपका साहस और मेरा विश्वास राज्यश्री को अवश्य ही आपके समीप ले आयेगा।

हर्ष : आचार्य ! मेरे सभी प्रिय स्वजन संसार छोड़ चुके हैं। एकमात्र छोटी बहिन राज्यश्री ही बची है। मुझे आशंका है कि पति की मृत्यु हो जाने के कारण कहीं वह भी अपने को अग्नि में समर्पित न कर दे। उसके सामने अपनी जननी का आदर्श है जिसने अपने पति के आसन्न-वियोग ही में अपने प्राणों की आहुति दे दी।

दिवाकर : आश्रम का यह कितना बड़ा सौभाग्य होता यदि वह आपको प्रिय संवाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का उपहार दे सकता; किन्तु इसी समय मैं आश्रम के सभी शिष्यों को आदेश दूँगा कि वे विन्ध्याटवी की चारों दिशाओं में बिखरकर महादेवी राज्यश्री का पता लगावें। सुबन्धु और तारक !

सुबन्धु : आज्ञा. प्रभु !

[**भिक्षु का प्रवेश**]

भिक्षु : आचार्य को प्रणाम। एक स्त्री आश्रम-द्वार पर है।

हर्ष : (**चीत्कार के स्वर में**) राज्यश्री !

भिक्षु : नहीं, राजन् ! वह स्त्री अभी कुछ देर हुए आश्रम से शीतल जल-पान करके गयी थी। वह आचार्य के दर्शन करना चाहती है।

दिवाकर : उसे शीघ्र ही भीतर लाओ।

भिक्षु : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

दिवाकर : वह चित्रक की पत्नी है। उसने दस्यु पर आक्रमण किया था और अपनी कृपाणी से उसके शरीर पर गहरा घाव कर दिया था। वह वीर नारी है।

[**शिप्रा का प्रवेश**]

शिप्रा : शिप्रा आचार्य के चरणों में प्रणाम करती है।

आचार्य : स्वस्ति !

शिप्रा : मेरा अपराध नहीं है, आचार्य ! मैंने अपनी ओर से अनेक प्रार्थनाएँ कीं; किन्तु उनका परिणाम कुछ नहीं हुआ। अब आप ही रक्षा करें !

आचार्य : मैं जानता हूँ, भद्रे ! किन्तु इसका निर्णय अटवी-सामन्त व्याघ्रकेतु करेंगे। दस्यु पर प्रहार करने में क्या अपराध हुआ, इस आश्रम से उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

शिप्रा : किन्तु, आचार्य ! व्याघ्रकेतु इसका निर्णय नहीं कर सकते। आपके प्रभाव से ही रक्षा हो सकती है।

आचार्य : भद्रे ! इस समय अवकाश नहीं है। उस पर फिर कभी विचार होगा।

शिप्रा : आचार्य ! इस समय अवकाश निकालना ही होगा। नहीं तो अनर्थ हो जायगा। बड़ी भयानक अग्नि की लपटें उठ रही हैं।

आचार्य : उन्हें शान्त करो, भद्रे ! इस समय दूसरी समस्या आश्रम के सामने है। हृदय की ज्वाला शान्त करो।

शिप्रा : आचार्य ! यह समस्या सर्वप्रथम होनी चाहिए। अग्नि की लपटें मैं शान्त नहीं कर सकती। सारा वन-प्रान्त उनसे झुलस रहा है।

आचार्य : क्या कल रात की लगी हुई आग अभी तक नहीं बुझी ?

शिप्रा : मैं यह तो नहीं कह सकती कि वह आग कल रात की लगायी हुई है; किन्तु लपटें आकाश तक उठ रही हैं।

आचार्य : इस समय हमारे अतिथि विराजमान हैं। हमें इनका सत्कार करना है।

शिप्रा : मैं अतिथि को प्रणाम करती हूँ और उनसे भी प्रार्थना करती हूँ कि वे एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अबला की रक्षा करें।

हर्ष : किन्तु तुम अबला नहीं हो, देवि ! तुम दस्यु पर प्रहार कर अपनी रक्षा कर सकती हो।

शिप्रा : मैं अपनी बात नहीं कर रही हूँ, देव ! एक बाला है जो किसी समय सौभाग्यवती रही होगी। न जाने किस दु:ख से अभिभूत होकर वह अग्नि में प्रवेश कर रही है।

हर्ष : **(विह्वल होकर)** वह राज्यश्री है ! कहाँ है, देवि ? वह कहाँ है ? शीघ्र चलो, आचार्य ! उसे बचाने की कृपा कीजिए।

दिवाकर : भगवान् तथागत की यही आज्ञा है। **(शिप्रा से)** भद्रे ! मार्ग बतलाओ। हम अभी चलेंगे। **(सुबन्धु और तारक से)** सुबन्धु ! तुम भी चलो। तारक ! तुम अन्य शिष्यों को लेकर शीघ्र ही आओ। विलम्ब न हो।

[हलचल होती है।]

शिप्रा : मैं उस अभागिनी बाला की सखियों से कह आयी हूँ कि जब तक मैं आचार्य के आश्रम से न लौटूँ तब तक किसी-न-किसी बहाने तुम उस बाला को चिता पर न चढ़ने देना।

हर्ष : **(शिप्रा से)** तुम बुद्धिमती हो, देवि ! फिर भी शीघ्र चलो, देवि ! कहीं राज्यश्री अपने को अग्नि में समर्पित न कर दे ! मेरा हृदय कहता है कि वह राज्यश्री ही है ! राज्यश्री ही है ! भगवान् आदित्य मुझे किरणों की गति प्रदान करें ! मैं वायु के वेग से जाऊँ !

माधव : मैं वाहन का शीघ्र ही प्रबन्ध करता हूँ। **[प्रस्थान]**

शिप्रा : तब शीघ्र ही चलिए, देव ! मैं अश्व भी दौड़ाना जानती हूँ। यदि अश्व हो तो...

हर्ष : अश्व दौड़ाना जानती हो ? अश्व तो अनेक हैं। तुम धन्य हो ! चलो, देवि ! **(आचार्य से)** आचार्य ! मैं आगे चल रहा हूँ। **[प्रस्थान]**

दृश्यान्तर

[वनप्रान्त—वृक्षाटवी के समीप चिता जल रही है। चिता के समीप एक स्त्री मंगल-पाठ कर रही है।]

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा न: पूषा विश्ववेदा:।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमि: स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।
शान्ति: ! शान्ति: ! शान्ति: !

[आरती करती हुई नारियों के कंठ से बीच-बीच में सिसकियाँ निकल आती हैं। राज्यश्री अनिमेष दृष्टि से चिता की ओर देखती हुई बैठी है। मंगल-पाठ की समाप्ति के बाद वह अपने आप गहरी साँस लेकर कहती है।]

राज्यश्री : मंगल-पाठ समाप्त हुआ। कितनी दिव्य ज्योति है चिता की इस मंगलमय

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवसर पर ! अग्नि का पूजन हो, मेनका !

मेनका : स्वामिनी ! अग्नि का पूजन तो सदैव हुआ है, किन्तु इस समय का पूजन कितना कठिन है, स्वामिनी !

राज्यश्री : अग्नि का पूजन सदैव ही मंगलमय है, मेनका ! विवाह के मंगल-पर्व पर मैंने वधू-वेश में भी तो इसी अग्नि का पूजन किया था। क्या जानती थी कि इस भाँति भी पूजन करना होगा ! [**सिसकी**]

मेनका : स्वामिनी ! यह स्मृति बड़ी कष्टकर है !

राज्यश्री : (**सिसकी रोककर**) मेरी स्मृति ने वधू-वेश ही धारण किया है, मेनका ! जिसमें अक्षय श्रृंगार है। उतना ही जितना इस चिता में है। तू भी चिता का यह दिव्य श्रृंगार देख ! कितना मोहक सिन्दूर लगा रखा है इसने अपनी लपटों में ! इन्हीं सिन्दूरी लपटों में मेरे सुहाग की रेखा भी तो छिप गयी है ! (**भावमय होकर**) देवि ! लौटा दो ! लौटा दो, देवि ! मेरे सुहाग की रेखा। तुम्हारे पास तो सुहाग का भंडार है जो कभी नहीं घटता। सदैव सरिता के जल की भाँति भरता ही रहता है। अरे ! तुम तो और भी प्रज्वलित हो उठीं ! नहीं लौटाओगी मेरा सिन्दूर ? जाने दो, मैं स्वयं तुम में प्रवेश करके अपना सिन्दूर खोज लूँगी या स्वयं सिन्दूर बनकर तुम्हीं में समा जाऊँगी।

[**आगे बढ़ती है।**]

मेनका : स्वामिनी ! आगे न बढ़ें।

राज्यश्री : मेनका ! मत रोक मुझे। इसी प्रकार मेरी जननी यशोमती भी तो आगे बढ़ी थीं। अश्रु से स्नान कर, पति की चरण-रज का तिलक लगाकर उन्होंने भी तो अग्नि का कौशेय धारण किया था ! उस समय मैं उनके दर्शन नहीं कर सकी। अब मैं उन्हें अग्नि की लपटों में पाकर पूछूँगी, 'माँ ! तुम राज्यश्री को उसी समय अपने साथ क्यों न ले आयीं !' [**सिसकी**]

विराजिका : विलाप न करें, महादेवी।

राज्यश्री : विलाप नहीं करती, विराजिका ! मृत्यु के पथ पर आँसू बहाकर उसका मार्ग कोमल बना रही हूँ। मृत्यु मेरी सहचरी बने। मैं भी तो उसी की तरह छायामात्र रह गयी हूँ। मैं भी तो अतीत की स्मृतियों की समाधि हूँ।

विराजिका : महादेवी ! आपको खोकर महाराज हर्षवर्द्धन भी जीवित नहीं रहेंगे।

राज्यश्री : (**स्मृति से बिलखकर**) मेरे हर्ष ! कहाँ हो तुम ! देखो, तुम्हारी छोटी बहिन राज्यश्री कितनी लांछित हुई है ! जिसे तुमने गोद में खिलाया, वही कारागार की बन्दिनी बनी। लौह-श्रृंखलाओं से उसके पैर कसे गये। हर्ष ! मुझे देखकर तुम लज्जित होगे। मैं अपना कलंकित मुख तुम्हें नहीं दिखलाऊँगी, नहीं दिखलाऊँगी ! [**सिसकियाँ**]

विराजिका : महादेवी ! इसमें आपका क्या दोष ? संसार की विषम परिस्थितियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभी को लांछित करती हैं।

राज्यश्री : लांछित होने की अपेक्षा मृत्यु अच्छी है, विराजिका ! दुर्भाग्य ने मृत्यु के मंच तक अनेक सोपान बनाये, किन्तु मेरे लिए मृत्यु एक पग भी नीचे नहीं उतरी, एक पग भी नहीं। जैसे नीच शत्रु की भाँति वह भी मुझे अपमानित कर रही है। जीवन के कारागार में डालकर वह दूर से ही मेरा परिहास कर रही है। मैं इसे सहन नहीं करूँगी, नहीं करूँगी। [**सिसकियाँ**]

विराजिका : महादेवी !......

राज्यश्री : मेरे भस्म हो जाने के बाद यदि मेरे हर्ष मिलें तो उन्हें यह कंठहार दे देना और कहना कि तुम्हारे दिए हुए उपहार के योग्य राज्यश्री नहीं हो सकी। वह अपने दुर्भाग्य के साथ इस कंठहार को नहीं जला सकी। प्यारे हर्ष का उपहार ! (**सिसकियाँ लेती है**) इसे सँभालकर रखना, विराजिका ! अब ये चिता की लपटें जननी यशोमती की गोद बनना चाहती हैं, मेनका ! चिता पर चढ़ने के लिए अपने हाथ का सहारा दे !

[**इसी समय अश्व के समीप आने का शब्द**]

शिप्रा : यही वह स्थान है, देव !

हर्ष : (पुकारकर) राज्यश्री !

मेनका : स्वामिनी ! महाराज हर्ष आ गये ! महाराज हर्ष आ गये !

राज्यश्री : (**उद्भ्रान्त होकर**) हर्ष ! हर्ष !! [**मूर्च्छित हो जाती है।**]

[**महाराज हर्ष शीघ्रता से दौड़कर आते हैं।**]

हर्ष : कहाँ है, कहाँ है मेरी राज्यश्री ? राज्यश्री ! राज्यश्री !! यह है मेरी बहिन राज्यश्री !

[**हाथों में उठाकर हृदय से लगा लेते हैं।**]

हर्ष : (**भरे हुए कंठ से**) राज्यश्री ! तू कहाँ रही ? नेत्रों की अश्रु-धारा से मेरे हृदय को शीतल कर दे !

विराजिका : (**गद्गद् कंठ से**) महाराज की कंठ-ध्वनि सुनकर महादेवी अचेत हो गयीं। महाराज की सेवा में प्रणाम ! महाराज ठीक समय पर आये। यह आपका कंठ-हार।

मेनका : महाराज की सेवा में प्रणाम ! महाराज ! यदि इसी समय न आते, तो स्वामिनी चिता में प्रवेश कर जातीं।

शिप्रा : (**विनोद से**) और तुम लोग महाराज का जयघोष करना भूल गयीं ?

[**छः नारियों का सम्मिलित कंठ**—महाराज हर्षवर्द्धन की जय !]

[**दिवाकर मित्र का शिष्यों सहित प्रवेश**]

शिप्रा : आचार्य भी आ गये।

दिवाकर : मैं प्रसन्न हूँ। आपका अनुमान सत्य था, राजन् ! राज्यश्री की रक्षा हुई। उसका और आपका कल्याण हो !

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हर्ष : आचार्य ! प्रणाम करता हूँ। यह आपके दर्शनों का फल है कि आज मेरी बहिन जीवित है। [**राज्यश्री को चेत होता है।**]

राज्यश्री : (चीखकर) मेरे भाई हर्ष ! मैं अनाथ हुई, पिता गये, माता गयीं, भाई गये। तुमने मुझे उस मार्ग से क्यों लौटा लिया ? मुझे जाने दो ! मुझे जाने दो ! मैं जाऊँगी ! [**सिसकियाँ**]

हर्ष : बहिन ! अब वर्द्धन-वंश में कौन रह गया। तुम जाओगी तो हर्ष के लिए इस संसार में क्या अवलम्ब रहेगा ? मुझे जीवित रहने दो, बहिन ! जीवित रहने दो। इसलिए कि मैं उस नराधम के वंश को धूल में मिला सकूँ, जिसने तुम्हें इस स्थिति में पहुँचाया है। मुझे जीवित रहने दो, इसलिए कि मैं तुम्हारे अश्रुबिंदुओं का मूल्य शत्रु के रक्त-बिंदुओं से चुका सकूँ, बहिन ! हमारे भाई राज्यवर्द्धन की हत्या जिस शशांक ने की है, उसके वंश को मैं परशुराम की भाँति इक्कीस बार काटना चाहता हूँ। देवि ! जीवित रहो और मुझे जीवित रहने दो।

राज्यश्री : यह कुछ न करो, भाई ! जीवन में तुम पुरुषार्थ करो, किन्तु जिस बहिन के जीवन में अब कुछ भी शेष नहीं है, उस बहिन को संसार में मत खींचो। जो फूल बिखर गया है, उसकी पंखुड़ियों को तुम फिर न जोड़ो। जो सरिता सूख गयी है, उसमें तुम अंजुलियों से जल मत भरो। चिता मेरी प्रतीक्षा कर रही है, उसे शान्त न होने दो !

हर्ष : बहिन ! मैंने अपनी माँ को ज्वाला में जलते देखा है, पिता को मृत्यु की कालिमा में छिपते देखा है। अब साहस नहीं है कि अपनी छोटी बहिन को जलते हुए देखूँ। मेरी बहिन ! मेरे हृदय में अनेक चिताएँ जल रही हैं, उनमें छोटी बहिन की चिता प्रलय उत्पन्न कर देगी। उस प्रलय में नष्ट होने से मुझे बचाओ, बहिन !

राज्यश्री : भाई हर्ष ! मैं कहाँ जाऊँ ? पति-हीना नारी को संसार में कौन-सी गति है ? मैं प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अपने पथ से विचलित न करो। मुझे धर्म-संकट में न डालो।

हर्ष : आचार्य ! आप धर्म के प्राण हैं। मेरी बहिन को मार्ग दिखलाइए !

दिवाकर : पुत्रि ! पति-स्मृति, पति-प्रेम से अधिक पवित्र है, पति का विरह पति के मिलन से अधिक शक्तिशाली है। तुम पति की स्मृति से जीवन को पवित्र बनाओ।

राज्यश्री : मैं प्रणाम करती हूँ, भन्ते ! मैं आपसे भी चितारोहण की अनुमति चाहती हूँ।

दिवाकर : पुत्रि ! अपने संकल्प का परित्याग करो, क्योंकि तुम्हारे संकल्प से दो जीवन नष्ट होंगे—तुम्हारा और तुम्हारे एकमात्र भाई हर्षवर्द्धन का। अतः दूसरे के कल्याण के लिए विचरण करो ! आत्मसंतोष का उतना महत्त्व नहीं, जितना दूसरे की प्राण-रक्षा का। अतः अपने शोक का परित्याग करो !

राज्यश्री : शोक का परित्याग करूँ ? तब मुझे काषाय-ग्रहण की आज्ञा प्रदान कीजिए।

हर्ष : (हर्षोल्लास से) साधु ! आचार्य के चरणों में प्रणाम ! बहिन ! तुम धन्य हो !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काषाय-ग्रहण मैं भी करूँगा। किन्तु मेरी एक प्रार्थना है। मैंने शत्रुओं का नाश करने की प्रतिज्ञा की है। वर्द्धन-वंश के प्रताप को आर्यावर्त में प्रतिष्ठित करने की शपथ ली है। जब तक मेरी यह प्रतिज्ञा पूरी न हो, तब तक मेरी बहिन मेरे समीप रहे। जब हर्षवर्द्धन अपना कार्य समाप्त कर ले, तब अपनी बहिन के साथ वह भी काषाय ग्रहण करे।

राज्यश्री : आचार्य की क्या आज्ञा है ?

दिवाकर : पुत्रि ! यद्यपि तुम्हारा दुःख बहुत दूर तक पहुँच गया है, फिर भी इस समय पिता और गुरु के समान बड़े भाई की आज्ञा मान्य है। पुनीत रहकर अपना कर्तव्य पालन करना ही जीवन-यज्ञ है। इस जीवन-यज्ञ में संसार का कल्याण है।

हर्ष : आचार्य ! आपसे मेरा एक निवेदन है। जब तक मेरी बहिन मेरे समीप रहे, आप धार्मिक कथाओं और विमल उपदेशों से इसे प्रतिबोध कराते रहें। आज से आप मेरे राज्य के आचार्य हुए।

दिवाकर : सत्य की विजय हो !

हर्ष : और शिप्रा ! तूने मुझ पर अत्यन्त उपकार किया है। तू मेरी बहिन राज्यश्री की अंगरक्षिका नियुक्त हुई।

शिप्रा : मैं कृतार्थ हुई, महाराज ! यह मेरा भी जीवन-यज्ञ होगा !

हर्ष : मैं सबसे यथास्थान लौटने की प्रार्थना करता हूँ और यह प्रण करता हूँ कि स्थाण्वीश्वर का वर्द्धन-वंश आर्य-गौरव को स्थिर करने में भी जीवन-यज्ञ की पूर्ति समझेगा। जय आदित्य !

सम्मिलित स्वर : महाराज हर्षवर्द्धन और आर्या राज्यश्री की जय !

[यवनिका]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 14 :

भाग्य-नक्षत्र

पात्र-परिचय

महाराज पृथ्वीराज चौहान—दिल्ली और अजमेर के अधिपति
महारानी संयोगिता—महाराज पृथ्वीराज की नवीन रानी
चामुंडराय—महाराज पृथ्वीराज के भाई
महाराज वियाणा, महाराज अलवर—महाराज पृथ्वीराज के सहयोगी
जयानक—महाराज पृथ्वीराज के राजकवि
रूपा, पुष्पा—परिचारिकाएँ

काल— 1192 ई०
स्थान—दिल्ली के राजकक्ष में मंत्रणा-गृह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाग्य-नक्षत्र

[नेपथ्य में वाद्य-संगीत और उसके अनन्तर ही नृत्य की ध्वनि। फिर महाराज पृथ्वीराज की गूँजती हुई हँसी।]

पृथ्वीराज : (हँसते हुए) तो ऐसा है तुम्हारा नृत्य, रूपा ! तुम्हारे नुपूरों की झनकार में चरणों के नीचे संगीत का एक-एक कमल खिल उठता है, कमल...जिसकी पंखुड़ियाँ वायु में झंकृत होती हैं...संगीत-कमल !

रूपा : वह कमल तो आपके अनुराग का कमल है, महाराज !

पृथ्वीराज : नहीं, रूपा ! आकाश में रजनी ने भी नृत्य किया। उसके चरणों के नीचे एक ही कमल खिल सका—पूर्णिमा का चन्द्र, एक ही कमल—जहाँ तुम्हारे नृत्य के संगीत से अनेक कमल खिलते हैं। तुम्हारे नृत्य से लज्जित होकर उसने नूपुर तोड़कर सारे आकाश में बिखरा दिये। वे ही बिखरे हुए नुपूर तो तारे हैं तारे, रूपा !

रूपा : यह तो महाराज की सुन्दर कल्पना है ! महाराज कवि भी हैं।

पृथ्वीराज : कवि तो रूपा ! चन्द्रक है जो महारानी संयोगिता की प्रशंसा में एक 'रासो' लिख लाया था। ओह ! कैसी कल्पनाएँ उसने की हैं। एक स्थान पर लिखता है "सेत वस्त्र सोहै सरीर, नख स्वाति बूँद जस।" संयोगिता के नख स्वाति की बूँद की शोभा लिए हुए हैं। स्वाति की बूँद जिससे मोती की रचना होती है। नख जैसे मोती की आदिशोभा लिये हुए हैं। कहाँ हैं महारानी संयोगिता ?

रूपा : आपकी सेवा में आती ही होंगी। वह श्रृंगार कर रही थीं। श्रृंगार करते हुए उन्होंने आज्ञा दी थी कि उनके आने तक मैं आपके सामने नृत्य करूँ।

पृथ्वीराज : तो नृत्य उनके आगमन का अग्रदूत है, अग्रदूत ! तुम सत्य कहती हो, रूपा ! मुझे स्मरण हो रहा है कि राजकुमारी संयोगिता जब स्वयंवर में आ रही थीं तब उनके नूपुरों की ध्वनि ने मुझे पहले ही सूचना दे दी थी कि राजाओं की उत्सुकता और उमंग के बीच रूप और लावण्य की कोई देवी शोभा के अवगुंठन में छिपी हुई आ रही है। संगीत निश्चय ही उनके आगमन का अग्रदूत है।

[एक परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका : महाराज की जय ! महारानी सेवा में आ रही हैं।

पृथ्वीराज : (उत्साह से) स्वागत ! स्वागत ! पुष्पे ! उनसे निवेदन करो कि उनके प्रत्येक चरण के नीचे भूमि पर जो लाल प्रतिबिम्ब पड़ता है वह पृथ्वीराज का

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हृदय ही है, हृदय जो उनके स्वागत के लिए प्रति पद पर उपस्थित है ।

पुष्पा : जो आज्ञा । [**प्रस्थान**]

पृथ्वीराज : महारानी आ रही हैं तो रूपा, नृत्य करो ! महारानी संयोगिता के आगमन को नृत्य की भूमिका चाहिए । उनके आगमन की तरंग में तुम्हारे नृत्य का कल्लोल हो और मेरा हृदय......मेरा हृदय स्वागत करने के लिए सरिता का कूल बन जाए...सरिता का कूल ।

रूपा : जो आज्ञा ! [**नृत्य का आरम्भ**]

पृथ्वीराज : (**बीच में ही**) स्वागत...स्वागत...(**नृत्य का रुकना**) लावण्य की लक्ष्मी, सौभाग्य की सरस्वती संयोगिता !

[**संयोगिता का प्रवेश**]

संयोगिता : महाराज की जय !

पृथ्वीराज : तुम्हारे मुख से मेरी जय का उच्चारण कितना मोहक है, संयोगिता ! जैसे बाल-प्रभात में मन-समीरण की लहरों पर तरंगित होती हुई सरस्वती-वीणा की झंकार हो !

संयोगिता : तब तो महाराज, आपकी जय ही उषाकाल है जिसमें प्रत्येक स्वर संगीत का रूप धारण करता है ।

पृथ्वीराज : महाकवि चन्द्रक की भाँति तुम्हारे कंठ में भी कविता है, संयोगिता ! (**रूपा से**) रूपा, तुम जाओ और मेरे भाग्य-नक्षत्रों की भाँति उन कुंद-कलियों को एकत्र करो जिनकी मालाएँ महारानी संयोगिता के कंठ में ही अपनी सुगंधि प्राप्त करें—उस कंठ में जिसमें कविता संगीत बनकर निवास करती है ।

रूपा : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

पृथ्वीराज : जिस प्रकार स्वर-लहरी में मूर्च्छना सहायक रहती है, उसी भाँति संयोगिता! रूपा तुम्हारी सहायिका है । यह कन्नौज-कन्या तुम्हारी इच्छाओं से पूर्ण परिचित है ।

संयोगिता : हाँ, महाराज ! वह मेरी सेवा में बहुत दिनों से है । यही रूपा है जिसने ऐसी व्यवस्था की थी कि मैं द्वार पर रखी हुई आपकी प्रतिमा के गले में जय-माला डाल सकी । आपकी प्रतिमा के गले में जब जयमाल पड़ी...

पृथ्वीराज : (**बीच ही में**) अच्छा, तो तुमने यह जान लिया था कि द्वार पर मेरी प्रतिमा रखी हुई है ।

संयोगिता : महाराज ! मेरे हृदय में रखी हुई प्रतिमा कोई कहीं भी रख दे, मुझे सूचना तो मिल ही जाएगी । फिर रूपा भी यह जानती थी कि पिता आपका अपमान करने के लिए आपकी प्रतिमा द्वारपाल के स्थान पर रखना चाहते हैं । उसने मुझसे धीरे से कह दिया था कि जिस जगह वह आपकी प्रतिमा देखेगी वहीं अपने पायल से गहरी झंकार उत्पन्न कर देगी और मैं आपकी प्रतिमा के गले में जयमाला डाल दूंगी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वीराज : अच्छा, तो इसके लिए पूरा विधान रचा था तुम लोगों ने ! मैं तो साधारण वेश में प्रतिमा के समीप ही था। जब तुम और रूपा मेरी प्रतिमा को पहचानती थीं तब तो मेरे कंठ में भी जयमाल पड़ सकती थी।

संयोगिता : अवश्य पड़ सकती थी। मैंने तो आपको साधारण वेश में भी पहचान लिया था, किन्तु उस स्थान पर एकत्र राजाओं को तो सूचना नहीं थी कि आप उस स्थान पर साधारण वेश में हैं। मैं आपके गले में जयमाल डालती तो वे लोग समझते कि मैंने किसी चारण के गले में माला डाल दी है।

पृथ्वीराज : (हँसकर) चारण के गले में ! जब चारण तुम्हें अश्व पर चढ़ाकर ले जाता तब वे लोग सम्भवत: समझते कि मैं किसी दरबार में तुम्हें कवित्त पढ़वाने ले जा रहा हूँ। क्यों ? [हँसते हैं।]

संयोगिता : (हँसते हुए) तब मैं कवित्त के साथ भाग्य भी पढ़ सकती और अपने चारण को दिल्ली और अजमेर का नरेश भी बना सकती।

पृथ्वीराज : दिल्ली और अजमेर ही क्यों, संयोगिता ! जहाँ तक सौन्दर्य का राज्य है वहाँ तक मेरा भी राज्य होता क्योंकि सौन्दर्य की देवी संयोगिता ही मेरी है, केवल मेरी। केवल पृथ्वीराज चौहान की।

संयोगिता : मैं सौभाग्यशालिनी हूँ, देव ! आप जैसे पराक्रमी वीर को स्वामी के रूप में प्राप्त कर, मुझे तो भय लग रहा था कि कहीं आपके जीवन और यश के दो किनारों के बीच मैं दुर्भाग्य की लहर तो नहीं बन रही हूँ !

पृथ्वीराज : नहीं, संयोगिता ! वे दो किनारे नहीं, वे मेरे दोनों भुजदंड थे जिनके बीच तुम सुरक्षित थीं और पृथ्वीराज के भुजदंड दधीचि की हड्डियों से बने हैं जिन पर कोई भी प्रहार कुंठित हो सकता है।

संयोगिता : मुझे इसका विश्वास है, महाराज !

पृथ्वीराज : इसी विश्वास को अमर करने के लिए मैं विवाह की स्मृति में एक आनंद-पर्व मनाना चाहता हूँ। इसीलिए मैंने तुम्हें इस बाहरी मंत्रणा-गृह में ही आने का कष्ट दिया। यहीं मैं अपने सामन्तों से परामर्श कर सकूँगा।

संयोगिता : मैं आपके संकेत पर कहीं भी जा सकती हूँ, महाराज ! वायु की लहर सरिता के प्रवाह में चाहे जिस दिशा से तरंग उठा सकती है।

पृथ्वीराज : मैं इन्हीं तरंगों में बहा करता हूँ, देवि ! तब इस विवाह-पर्व की भूमिका किस प्रकार हो ?

संयोगिता : कहते हैं, महाराज के वंश की उत्पत्ति यज्ञ से हुई है। यज्ञ में महर्षि वसिष्ठ की आहुति से ही चहुवान का—चार भुजाओं वाले दिव्य पुरुष से प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार महाराज में अपने पूर्व पुरुष चहुवान की चार भुजाओं वाली शक्ति है। वह उस शक्ति से सहज ही अपने पर्व की भूमिका बना सकते हैं।

पृथ्वीराज : किन्तु कवि जयानक ने प्रमाणित किया है कि मैं सूर्यवंशी हूँ।

संयोगिता : सूर्यवंशी ? तब तो और भी अच्छा है, महाराज ! सूर्य की गति सर्वत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। विस्तृत आकाश में भी वह उषा के रंगों से अपने समारोह की भूमिका सुसज्जित करता है !

पृथ्वीराज : **(प्रसन्नता से)** ओह, तुमने यह कितनी अच्छी बात कही ! कितना अच्छा संकेत किया ! महारानी ! कल उषाकाल में ही यह पर्व मनाया जाये। तुम उषा बनकर विविध रंग के बादलों की तरह वस्त्र धारण करो। लालिमा की तरह अंगराग से तुम्हारा शरीर चर्चित हो। शुक्र तारे की भाँति तुम्हारे मस्तक पर हीरक-ज्योति हो और तुम्हारे सामने समीर की भाँति सामन्तों की पंक्ति बढ़ती चली जाए। पक्षियों की तरह...पक्षियों की तरह चारण तुम्हारा यशोगान करें और मैं...सूर्य की तरह...मैं...तुम्हारे ही समीप उदित होकर तुम्हारी मंगल-श्री में विभोर हो उठूँ !

संयोगिता : महाराज ! आपमें कितना जीवन है, कितना उत्साह है ! उषा की भाँति कुछ क्षणों तक रहनेवाली मेरी शोभा को महाराज कितना महत्त्व दे रहे हैं !

पृथ्वीराज : आकाश की उषा तो क्षणिक है, देवि ! किन्तु मैं अपनी उषा को वर्षों तक सुरक्षित रखना चाहता हूँ...वर्षों तक...! तब यही हमारे विवाह का स्मृति-पर्व हो, संयोगिता ! तुमने एक ही संकेत में मेरे कार्यक्रम की रूपरेखा बना दी। तुम इस सूर्यवंशी चौहान की अमर उषा बनो, जिसके दर्शनमात्र से हमें प्रकाश का संदेश मिले, जागरण की ज्योति मिले, जीवन-संग्राम के लिए बल मिले !

संयोगिता : तो फिर मेरे लिए क्या आज्ञा है, महाराज !

पृथ्वीराज : उषा को कोई आज्ञा नहीं दे सकता, महारानी ! वह सौभाग्य-लक्ष्मी की तरह उदित होती है, बादलों के समूह चारों ओर से एकत्र होकर उस पर अरुणिमा की पुष्प-वर्षा करते हैं। एक-एक क्षण उसके मार्ग पर प्रकाश की स्वर्ण-धूल बिखराता है। तुम्हारा कार्य तो बस इतना ही है...इतना ही है, संयोगिता, कि तुम अपने अधरों में एक तरल मुसकान भरकर संसार की ओर कल्याण-कामना से देख लो। तुम्हारी उस मुसकान में दिल्ली और अजमेर का राज्य क्षितिज की सीमा तक फैल जाएगा और पश्चिम के बादल भी आकर उस अरुणिमा की छाया में......

[नेपथ्य में तुमुल]

[महाराज कहाँ हैं...उन तक संदेश पहुँचाना आवश्यक है...। महाराज कहाँ हैं...? बहुत विलम्ब हो रहा है...! महाराज की जय ! आदि का सम्मिलित स्वर]

संयोगिता : यह कैसा कोलाहल हो रहा है, महाराज !

पृथ्वीराज : उषा का स्तव-गान अभी से आरम्भ हो गया ! **(हँसी)** जागरण की ज्योति अभी से फैलने लगी ! अच्छा मैं देखता हूँ। तुम विश्राम करो। मैं तुम्हें अभी सूचित करूँगा। **(पुकारकर)** पुष्पे !

[पुष्पा का प्रवेश]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुष्पा : (**प्रणाम करते हुए**) आज्ञा, महाराज !

पृथ्वीराज : महारानी को विश्राम-कक्ष तक पहुँचा आओ ।

पुष्पा : जो आज्ञा !

संयोगिता : महाराज का प्रम अमर हो ! प्रणाम !

[**संयोगिता का पुष्पा के साथ प्रस्थान**]

पृथ्वीराज : (**सोचते हुए**) चौहान-वंश की उषा...उषा...लालिमा की तरह अगराग... शुक्र तारे की भाँति मस्तक पर हीरक-ज्योति...समीर की भाँति सामन्तों की पंक्ति...पक्षियों की तरह चारणों के गीत...!

जयानक : (**प्रणाम करते हुए**) महाराज की जय !

पृथ्वीराज : कौन ? जयानक ! महाकवि ! तुम्हारे स्वर में कम्पन है । क्या भारती की वीणा तुम्हारे कंठ में अधिक झंकृत हुई ?

जयानक : महाराज अनेक दिनों के अनन्तर आपको इस बाहरी मंत्रणा-गृह में पाने का सौभाग्य हम लोगों को प्राप्त हुआ है । किसी को साहस ही नहीं हुआ कि वह आपकी सेवा में सूचना पहुँचाए ।

पृथ्वीराज : सूचना ? किस बात की सूचना ?

जयानक : महाराज, इस बात की सूचना कि पश्चिम आकाश में बादल......

पृथ्वीराज : (**बीच में ही**) अरुणिमा में अपना शृंगार कर रहे हैं ! (**प्रसन्नता से**) ओह, महाकवि ! तुम सचमुच ही प्रतिभाशाली हो । सरस्वती के वरदान से पवित्र महाकवि ! यह तुमने कैसे जाना कि विवाह-पर्व की उषा महारानी संयोगिता हैं ? वे पश्चिम आकाश में भी बादलों को राग-रंजित करने जा रही हैं ? ओह, अंगराग से उनका शरीर चर्चित है, मस्तक पर शुक्र तारे की हीरक-ज्योति है, समीर की भाँति सामन्तों की पंक्ति बढ़ रही है और तुम...तुम महाकवि, पक्षिवृन्दों के समान मंगल-राग का कूजन कर रहे हो और दिल्ली और अजमेर का राज्य क्षितिज की सीमा तक फैल रहा है और पश्चिम आकाश के बादल उस अरुणिमा में......

जयानक : महाराज......

पृथ्वीराज : (**गिरते हुए स्वर में**) उस अरुणिमा में...(**गिरते हुए स्वर से**) अपना शृंगार कर रहे हैं । क्यों ? तुम्हारे मुख पर सन्देह की रेखा ! सन्देह की रेखा कैसी ? तुम प्रसन्न नहीं हो रहे ?

जयानक : महाराज ! यह विवाह-पर्व नहीं है, युद्ध-पर्व है ।

पृथ्वीराज : युद्ध-पर्व ? जयानक ! महाकवि ! तुम भी तो पश्चिम आकाश के बादलों की बात कह रहे थे ?

जयानक : हाँ, महाराज ! पश्चिम आकाश में बादल उठ रहे हैं, और उन बादलों में युद्ध का गर्जन है, तलवारों की बिजली......

पृथ्वीराज : (**सशंकित स्वर में**) युद्ध का गर्जन ? तलवारों की बिजली ?

जयानक : हाँ, महाराज ! युद्ध का गर्जन, तलवारों की बिजली । चंडपुंडीर को सीमा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रान्त से युद्ध-संदेश मिला है कि मुहम्मद गोरी एक बार फिर......

पृथ्वीराज : **(बीच में ही)** मुहम्मद गोरी ?...शहाबुद्दीन गोरी ?

जयानक : हाँ, महाराज ! शहाबुद्दीन गोरी।

पृथ्वीराज : उसने तो तारायण के युद्ध में राजपूतों की तलवार का पानी पिया है। ऐसा पानी जिसकी प्यास उसे फिर कभी नहीं लगेगी। वह तो पराजय को भारत की भेंट समझकर अपने देश ले गया। कवि ! तुम अपनी कल्पना में अतीत के चित्र को सजीव तो नहीं करना चाहते ? सजीव ? [**अट्टहास करते हैं** ।]

जयानक : महाराज ! आपके बल और पराक्रम के सागर में किसी भी शत्रु की वीरता डूब सकती है। कुल-देवता सूर्य ने आपको नागौर में छिपा हुआ इतना स्वर्ण-कोष दिया है मानो सोने के सिक्कों में सत्तर लाख सूर्य आपकी सेना का बल बढ़ाने के लिए एकत्र हो गये हैं। कन्नौज और गुजरात के नरेश जानते हैं कि चौहान पृथ्वी-राज से युद्ध-दान लेने में उन्हें शूद्र बनना पड़ा है।

पृथ्वीराज : और शहाबुद्दीन गोरी को क्या बनना पड़ा ?

जयानक : शहाबुद्दीन गोरी ने अपने जीवन में इतनी बड़ी हार का कभी अनुभव नहीं किया होगा, महाराज ! पराजित होने पर वह लाहौर नहीं ठहरा, सीधे गोर चला गया। उसे भय था कि कहीं लाहौर ही उसके लिए तारायण का युद्धक्षेत्र न बन जाये। वह महाराज की शक्ति जानता है। जब उसने चामुंडराय के मुख पर भाला मारा तो महाराज की तलवार ने उसके कंधे से रक्त की धारा बहा दी। वह तो खिलजी सैनिक ने उसकी सहायता कर दी, नहीं तो...नहीं तो......

पृथ्वीराज : किन्तु गोरी के भाले से चामुंडराय का दाँत तो टूट गया, मेरी तलवार से उसका कंधा नहीं कटा, कंधा नहीं कट सका।

जयानक : यदि उसका कंधा कट जाता तो महाराज ! वह दूसरी बार युद्ध में आपको किस प्रकार गौरव दे सकता और चामुंडराय के बत्तीस दाँतों में एक दाँत टूटने से क्या कमी आ सकती है ?

पृथ्वीराज : चामुंडराय के दाँत मोती जैसे हैं। गोरी ने समझा होगा कि चामुंडराय के मुख में मोती भरे हैं और सुलतान का मोतियों के लिए लालच करना स्वाभाविक है, महाकवि !

जयानक : किन्तु चामुंडराय कुछ और कहते थे।

पृथ्वीराज : क्या ?

जयानक : वे कहते थे कि यदि शहाबुद्दीन को मेरे दाँतों से इतना प्रेम है तो उसे मुझ से बत्तीस बार युद्ध करके हारना पड़ेगा क्योंकि मेरे मुख में बत्तीस दाँत हैं।

पृथ्वीराज : एक युद्ध के लिए एक दाँत ! **(हँसते हुए)** एक युद्ध के लिए एक दाँत ! गणित तो ठीक है।

जयानक : किन्तु महाराज ! इस बार सीमा-प्रान्त से जो संदेश मिला है, वह बहुत ही भयानक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वीराज : पृथ्वीराज के लिए भयानक ? जयानक के मुख से भयानक बात ?

जयानक : हाँ, महाराज ! चंडपुंडीर ने सूचना दी है कि इस बार गोरी अपरिमित सैनिक बल लेकर आक्रमण करने आ रहा है। उसने एक लाख बीस हजार सैनिक इकट्ठे किये हैं, जिसमें अफगान, तुर्क और फारस के लोग हैं। दस-दस हजार की अश्व-सेना के चार विभाग उसके आक्रमण में सबसे अधिक भाग लेंगे।

पृथ्वीराज : तुम गोरी के राजकवि नहीं हो, जयानक ! जो उसकी प्रशस्ति के वर्णन में अपनी वाणी को विस्तार दो।

जयानक : महाराज, क्षमा करें ! मैं सूचना-मात्र दे रहा हूँ।

पृथ्वीराज : मैं सूचना सुन चुका। मैं अपने विवाह-पर्व की योजना पहले बनाना चाहता हूँ।

जयानक : महाराज ! युद्ध की सूचना चिन्ताप्रद है। चामुंडराय ने मुझे आपकी सेवा में......

पृथ्वीराज : (**चीखकर**) चामुंडराय...! चामुंडराय से कहो कि वे जाएँ। मैं इस समय युद्ध की बात नहीं सुनना चाहता।

जयानक : महाराज ! चामुंडराय भी बहुत आतंकित हैं।

पृथ्वीराज : आतंकित ? किस बात से आतंकित हैं ? युद्ध से तो वे कभी आतंकित होते नहीं हैं और न युद्ध की भयानकता को वह कोई महत्त्व देते हैं।

जयानक : ठीक है, किन्तु महाराज......!

पृथ्वीराज : सुनो ! चामुंडराय से पूछो कि युद्ध-पर्व के पूर्व वह विवाह-पर्व में योग दे सकते हैं ?

जयानक : जो आज्ञा ! [**जाना चाहता है।**]

पृथ्वीराज : सुनो ! (**जयानक लौटता है**) चामुंडराय इस समय कहाँ हैं ?

जयानक : वे मंत्रणा-गृह के बाहर आपके आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

पृथ्वीराज : उन्हें भेजो। मैं उनसे परामर्श करूँगा।

जयानक : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

पृथ्वीराज : (**स्वगत**) युद्ध-पर्व ! मुहम्मद गोरी ! जिसे तारायण में पराजित किया क्या वह फिर कभी युद्ध की कामना मुझसे करेगा ? जैसे जीवन में एक युद्ध ही तो शेष रह गया है ! आखेट में युद्ध, विवाह में युद्ध, राजनीति में युद्ध !...युद्ध... युद्ध...युद्ध ! संयोगिता के साथ विवाह का उषाकाल भी समाप्त नहीं हुआ और युद्ध !

[**चामुंडराय का प्रवेश**]

चामुंडराय : महाराज की जय ! [**प्रणाम करता है।**]

पृथ्वीराज : कहो, चामुंड ! क्या जीवन-भर मुझे युद्ध ही करना है, गोरी से युद्ध ! कन्नौज से युद्ध...! गुजरात से युद्ध...! फिर गोरी से युद्ध ! जैसे मेरे जीवन के क्षेत्र में युद्ध ही सर्प की तरह कुंडली मारकर बैठ गया है और चारों ओर का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वातावरण केवल युद्ध की विषाक्त फूत्कार से दूषित हो रहा है ! क्या उसमें प्रेम और आनन्द के अमृत के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह गया ?

चामुंडराय : महाराज !

पृथ्वीराज : सुनो, चामुंड ! युद्ध की विभीषिका में मैंने भैरव के समान युद्ध किया। शिव की तरह तांडव किया। मध्याह्न के सूर्य की किरणों की भाँति तलवार की धार गिराई। यज्ञ की लपटों की तरह आग बरसाई। फिर भी मेरे लिए युद्ध करना शेष है ? मैं विवाह की शीतलता का अनुभव करना चाहता हूँ। विवाह का पर्व मनाना चाहता हूँ।

चामुंडराय : महाराज ! आप सूर्यवंशी चौहान हैं। उषा के कोमल सूर्य की भाँति उदित होकर आपने मध्याह्न के सूर्य की प्रखरता प्राप्त की है। क्या मध्याह्न का सूर्य फिर से बाल-रवि होना चाहता है ? क्या पानी चढ़ी हुई तलवार मखमली म्यान की कोमलता में शयन करना चाहती है ? क्या युद्ध का रक्त इतने शीघ्र महारानी के शरीर का अंगराग होना चाहता है ?

पृथ्वीराज : **(चीखकर)** चामुंड !

चामुंडराय : महाराज, क्षमा करें ! आपको परामर्श देने में यदि आपकी तलवार मेरा मस्तक काट दे तब भी पृथ्वी पर पड़ा चामुंड का सिर महाराज को सच्चा परामर्श देगा। निकालिए, अपनी तलवार, महाराज ! मेरा मस्तक पृथ्वी पर गिरने के लिए तत्पर है। उस पृथ्वी पर जिस पर चारों दिशाओं में राज्य करते हुए आप पृथ्वीराज चौहान हैं।

पृथ्वीराज : चामुंडराय ! तुम क्या परामर्श देना चाहते हो ?

चामुंडराय : महाराज ! आपने अनेक राज्यों पर विजय प्राप्त की है। अनेक राजपूत आपकी युद्ध-ध्वजा की छाया में विश्राम कर रहे हैं। पिछले तारायण के युद्ध से दस गुनी अधिक सेना हमारे अधिकार में है। हमारे पक्ष में एक सौ पचास राजपूत सामन्त हैं जिनकी वीरता सारे राजस्थान में प्रसिद्ध है। हमारे पास तीन लाख घुड़-सवार हैं, और तीन हजार हाथी।

पृथ्वीराज : यह ठीक है किन्तु...

चामुंडराय : किन्तु, महाराज ! आप विवाह-पर्व में सुख की नींद लेना चाहते हैं। उधर अलवर और वियाणा के राजाओं में परस्पर ईर्ष्या है और पश्चिमी क्षितिज पर युद्ध के बादल घिर रहे हैं। शहाबुद्दीन गोरी एक लाख बीस हजार सैनिक इकट्ठे कर बिजली की गति से बढ़ रहा है। क्षमा करें, महाराज ! अनेक दिनों से आप अन्त:पुर से बाहर नहीं आये। प्रजाजनों में असंतोष है। वे समझते हैं कि इस परिस्थिति में कहीं राजवंश में भय......

पृथ्वीराज : **(तीव्रता से)** भय ? चामुंड ! अपनी जिह्वा वश में रखो। तुम मेरे भाई हो, नहीं तो मेरे लिए इस शब्द के कहनेवाले की जिह्वा कभी की पृथ्वी पर गिर पड़ती। भय ! इस शब्द से पृथ्वीराज का परिचय नहीं है। यह शब्द उसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समीप वायुमंडल में गूँज ही नहीं सकता। प्रजाजनों के सामने घोषणा कर दो कि राजवंश युद्ध के लिए प्रस्तुत है। पहले युद्ध-पर्व होगा, उसके बाद विवाह-पर्व। युद्ध के नगाड़ों पर चोट दो और उस चोट की प्रत्येक धमक से यह शब्द निकले कि पृथ्वीराज किसी भी समय युद्ध के लिए तैयार है, सदैव तैयार है।

चामुंडराय : मैं धन्य हूँ, महाराज ! मैं अभी चंडपुंडीर को सूचना भेजता हूँ कि वह युद्ध की तैयारी करे। अधिक समय नहीं है, महाराज ! आप युद्ध-पर्व में अधिक विलम्ब न करें। एक प्रार्थना और निवेदन करना चाहता हूँ।

पृथ्वीराज : मैं सुनूँगा।

चामुंडराय : महाराज ! पिछले युद्ध में राजपूतों में परस्पर आत्मीय भाव था। इस युद्ध में वे आपकी छत्र-छाया में रहते हुए भी एक दूसरे से द्वेष रखते हैं।

पृथ्वीराज : **(सोचते हुए)** हाँ, इसकी सूचना दबे कंठ से मुझे भी सुनाई गई थी। यह द्वेष किस प्रकार का है और किनमें है ?

चामुंडराय : महाराज ! अलवर और वियाणा के राजाओं में परस्पर प्रतिस्पर्धा है। महाराज वियाणा इस बात पर कटिबद्ध हैं कि युद्ध में सर्वप्रथम नगाड़े उन्हीं के बजाये जाएँ, इसके बाद युद्ध का तूर्य घोषित हो।

पृथ्वीराज : और महाराज अलवर क्या चाहते हैं ?

चामुंडराय : महाराज अलवर का कथन है कि नगाड़ों पर चोट पड़ने से पूर्व युद्ध की घोषणा उन्हीं के तूर्य से हो।

पृथ्वीराज : इन दोनों के हृदय में युद्ध की इच्छा है। फिर प्रथम और द्वितीय का प्रश्न क्यों उठना चाहिए ?

चामुंडराय : महाराज, मैं दोनों को अपने साथ लाया हूँ। यदि आप आज्ञा दें तो मैं उन्हें आपकी सेवा में...

पृथ्वीराज : **(बीच ही में)** हाँ, अवश्य ही। **(पुकारकर)** जयानक !

[जयानक का प्रवेश]

जयानक : **(प्रणाम करते हुए)** महाराज की जय !

पृथ्वीराज : जयानक ! महाराज वियाणा और महाराज अलवर को इसी समय सूचना दो कि वे यहाँ आने की कृपा करें।

जयानक : जो आज्ञा। **[प्रस्थान]**

पृथ्वीराज : इस युद्ध के अवसर पर परस्पर का विद्वेष ऐसी चिनगारी है जो वीरता के लाक्षागृह को एक क्षण में भस्मीभूत कर सकती है। राजपूतों में यदि विद्वेष न होता तो संसार की कोई भी शक्ति उन्हें पराजित न कर सकती, किन्तु जो फूल जितना शोभा-सम्पन्न और सुगन्धित होता है उसमें उतने ही तीक्ष्ण काँटे भी होते हैं।

चामुंडराय : सत्य है, महाराज !

पृथ्वीराज : मुझे तो आशंका है कि महाराज वियाणा और महाराज अलवर के मेरे

पास आने में भी प्रथम और द्वितीय की स्पर्धा न हो !

चामुंडराय : महाराज, यह हमारा दुर्भाग्य है।

[दोनों महाराजाओं का साथ-साथ प्रवेश]

दोनों : (**एक साथ**) महाराज पृथ्वीराज की जय !

पृथ्वीराज : मैं कृतज्ञ हूँ कि दोनों की सम्मिलित मंगल-कामना मुझे मिल रही है। इसी प्रकार मैं चाहता हूँ कि दोनों की सम्मिलित सहायता भी प्राप्त हो सके। विशेषकर उस समय जब हम फिर विदेशी शत्रु से युद्ध करने जा रहे हैं, महाराज वियाणा !

महाराज वियाणा : महाराज ! मैं सब तरह से सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ, किन्तु मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि हमारे राजवंश की परम्परा बहुत प्राचीन है। स्वयं भृगु ऋषि ने हमारे वंश को अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा दी थी और भृगु ऋषि शस्त्र-विद्या के सर्वप्रथम आचार्य हैं। इसीलिए हमें युद्ध-घोषणा का सर्वप्रथम अधिकार है।

पृथ्वीराज : और महाराज अलवर ! आपका क्या कथन है ?

महाराज अलवर : हिन्दूपति ! हमारे राज्य ने सर्वप्रथम अग्नि से शक्ति प्राप्त की है और अग्नि जगद्गुरु ब्रह्मा ने उत्पन्न की। पंचमुख शिव भी अपने मुख में अग्नि-शिखा धारण करते हैं। अतः शक्ति का प्रतीक तूर्य सबसे प्रथम हमारे वंश में है। तूर्य के पूर्व किसी भी युद्ध-वाद्य की घोषणा ब्रह्मा और शिव का अपमान है। हम अपनी शक्ति से ब्रह्मा और शिव का अपमान नहीं होने देंगे।

महाराज वियाणा : महात्मा भृगु तो शिवस्वरूप ही हैं, अतः आपको हमारी दुंदुभि की मान्यता स्वीकार करनी चाहिए।

महाराज अलवर : नहीं। यह स्वीकार नहीं की जा सकती। शिवस्वरूप तो संसार है, इसी रूप में वह पशुपति हैं। तब आपकी दुंदुभि क्या किसी की भी ढपली स्वीकार की जा सकती है।

महाराज वियाणा : ढपली ? आप मेरा अपमान नहीं कर सकते, महाराज अलवर !

महाराज अलवर : मैं सत्य कथन ही करता हूँ। यदि आप इसे अपना अपमान समझते हैं तो मैं आपको द्वंद्व के लिए आमंत्रित करता हूँ।

महाराज वियाणा : मैं स्वीकार करता हूँ।

[दोनों तलवार निकालते हैं।]

पृथ्वीराज : शान्त ! महाराज अलवर ! शान्त ! महाराज वियाणा ! मुझे हार्दिक दुःख है कि परम्परा हमारे शत्रुओं का बल बढ़ाने में सहायक हो रही है। आप दोनों ही वीर हैं और दोनों ही नीतिज्ञ हैं। किसी की दुंदुभि या किसी का तूर्य पहले या पीछे ध्वनित होने में हमारे-आपके वंश का नहीं हमारी वीरता का अपमान है, और मैं चाहता हूँ कि शत्रु से युद्ध करने में इस बात का ध्यान रखा जाए कि किसका मस्तक रणदेवी को प्रथम समर्पित हो। इसी वीरता के व्रत में परस्पर प्रतिस्पर्धा चाहिए, इसमें नहीं कि किसकी दुंदुभि पहले बजती है और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किसका तूर्य पहले युद्ध-घोषणा करता है।

महाराज वियाणा : फिर भी, महाराज ! परम्परा की रक्षा होनी चाहिए। हमारे वंश के लोग क्या कहेंगे कि युद्ध में हम प्रथम घोषणा नहीं करते। यदि हमारे नगाड़े पर चोट पड़ने से पहले किसी के तूर्य की घोषणा हुई तो हमारी सेनाएँ रणक्षेत्र छोड़ देंगी।

महाराज अलवर : तब आपकी सेना से पहले मेरी सेना युद्ध करेगी। मैं पहले आप से द्वंद्व युद्ध करूँगा, बाद में मुहम्मद गोरी से।

पृथ्वीराज : राजस्थान के वीरो ! हम जितनी सरलता से पहला युद्ध जीत सके हैं, इस परस्पर के विरोध से हमारे लिए यह युद्ध जीतना उतना ही कठिन प्रतीत होता है। मैं चाहता हूँ कि यह विरोध दूर हो। हमारे कुछ शत्रुओं ने विदेशियों को पहले से ही निमंत्रण दे रखा है। वे लोग तो शत्रु की सहायता ही करेंगे। इस अवसर पर यदि आप दोनों वीर परस्पर द्वंद्व में लग गये तो शत्रु का कार्य कितना सरल हो जाएगा, यह आप जानते हैं।

चामुंडराय : महाराज ! आप कुछ निर्णय अवश्य करें, नहीं तो राजपूत जाति विनाश के पथ पर है। वह हिंसा और विद्वेष के ज्वालामुखी पर बैठकर प्रतिक्षण मृत्यु को निमंत्रण दे रही है।

पृथ्वीराज : तब मैं यह निर्णय करता हूँ कि महाराज अलवर का तूर्य और महाराज वियाणा की दुंदुभि एक ही साथ—एक ही क्षण—युद्ध की घोषणा करें। दोनों का महत्त्व एक समान है। मेरा निवेदन है कि आप केवल अपने वंश की ओर न देखें, समस्त देश की रक्षा का ध्यान रखें। क्यों महाराज वियाणा ! आपको मेरा निर्णय स्वीकार है ?

महाराज वियाणा : मुझे स्वीकार है, किन्तु एक क्षण पर दोनों वाद्य बजाए जाएँगे।

पृथ्वीराज : और महाराज अलवर ! आपको मेरा निर्णय स्वीकार है ?

महाराज अलवर : मुझे भी स्वीकार है किन्तु मेरी भी यही मान्यता है कि दोनों वाद्य एक ही क्षण पर घोषित हों।

पृथ्वीराज : ठीक है। मुझे यह सुनकर प्रसन्नता है कि राजपूत जाति विरोध करना ही नहीं, मेल करना भी जानती है। अपने-अपने वंश की मर्यादा रखते हुए भी आप लोग कम-से-कम एक बात में तो सहमत हैं कि युद्ध की घोषणा दोनों के वाद्यों से एक साथ हो। (**चामुंड से**) चामुंड ! क्या तुम इस बात का उत्तरदायित्व ले सकते हो कि दोनों महाराजाओं के वाद्य एक ही क्षण—एक ही निमेष—में घोषित हों ?

चामुंडराय : मैं यह उत्तरदायित्व स्वीकार करता हूँ, महाराज !

पृथ्वीराज : मैं सुखी हुआ। दोनों महाराज पूर्ण आश्वस्त हो युद्ध की तैयारी करें ! आप लोग मेरे साथ कहें—जय राजपूत !

सब : (**सम्मिलित स्वर में**) जय राजपूत !

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वीराज : अब आप दोनों ही विश्राम करें।

महाराज अलवर : महाराज की जय ! [**प्रस्थान**]

महाराज वियाणा : महाराज की जय ! [**प्रस्थान**]

पृथ्वीराज : यह परस्पर का द्वेष है। इसमें राजपूत-वंश ने अपनी शक्ति और वीरता को हिंसा की वेदी पर चढ़ा दिया है, चामुंड ! हमारी सेना की शक्ति शत्रु की शक्ति से भले ही अधिक हो किन्तु इस आपस के द्वेष से हमारी ही हानि है। यदि एक क्षण पूर्व तूर्य की घोषणा हुई तो महाराज वियाणा रणक्षेत्र छोड़ देंगे और यदि एक क्षण पूर्व दुंदुभि की घोषणा हुई तो महाराज अलवर महाराज वियाणा से ही युद्ध करेंगे।

चामुंडराय : आप कुछ भी खेद न करें, महाराज ! मैंने वचन दिया है कि दोनों वाद्यों के बजने में एक पल और विपल का भी अन्तर न होगा। इस सम्बन्ध में आप निश्चिन्त रहें।

पृथ्वीराज : मुझे तुम पर विश्वास है, चामुंड !

चामुंडराय : महाराज का निर्णय बहुत ही उपयुक्त और संतोषप्रद रहा।

पृथ्वीराज : किन्तु अभी तक मुझे पूर्ण संतोष नहीं है, चामुंड ! (**सोचते हुए**) अच्छा, तुम जाओ। युद्ध की तैयारी बड़ी सतर्कता से हो। मैं भी महारानी संयोगिता से एक बात कहना चाहूँगा।

चामुंडराय : जैसी आज्ञा। (**महाराज को प्रणाम कर**) महाराज की जय ! [**प्रस्थान**]

पृथ्वीराज : राजपूतों का दुर्भाग्य जैसे आकाश के क्षितिज पर घिरता आ रहा है और गोरी से पहले मुझे इस दुर्भाग्य से युद्ध करना है। (**सोचते हुए पुकारकर**) पुष्पे !

[**पुष्पा का प्रवेश**]

पुष्पा : (**प्रणाम करते हुए**) महाराज की जय !

पृथ्वीराज : पुष्पे ! तुम महारानी से निवेदन करो कि वे यहाँ आने का कष्ट करें।

पुष्पा : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

पृथ्वीराज : (**सोचते हुए**) राजपूतों का दुर्भाग्य ! यदि मुझे ज्ञात होता कि राजपूतों के वंश-वृक्ष में ईर्ष्या और द्वेष का कीटाणु प्रवेश कर रहा है तो मैं सदैव ही युद्ध-भूमि में रहता.. युद्धभूमि में। अन्त:पुर की दिशा की ओर देखता भी नहीं। किन्तु मैं...मैं विलासी बनकर इन्द्र के नन्दन-कानन में शयन करता रहा और मेरे सामन्तों की वीरता प्रतिहिंसा में परिणत होती रही। (**ठंडी साँस लेकर**) ओह ! भाग्य-नक्षत्र ! मेरे भाग्याकाश में तुम्हारा उदय और अस्त आज संदेह का विषय बन रहा है।

[**संयोगिता का प्रवेश**]

संयोगिता : (**प्रणाम करते हुए**) महाराज की जय !

पृथ्वीराज : आओ, संयोगिता ! क्षमा करना। संगीत तुम्हारे आगमन का अग्रदूत नहीं बन सका।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संयोगिता : महाराज ! आपका स्वागत ही मेरे जीवन का सबसे सुन्दर संगीत है, सबसे सुन्दर ! सब समय वह मेरे जीवन में गूंजता रहे । विवाह-पर्व की रचना में......

पृथ्वीराज : विवाह-पर्व ! विवाह-पर्व का शृंगार मैं युद्ध-पर्व से करना चाहता हूँ।

संयोगिता : ऐसा विवाह-पर्व केवल क्षत्रियों के यहाँ मनाया जा सकता है ।

पृथ्वीराज : हाँ, केवल क्षत्रियों के यहाँ और किसी जाति में इतना साहस और संयम नहीं है । विवाह-पर्व में तुम उषा बनकर तब विविध रंग के बादलों की तरह वस्त्र धारण कर सकोगी, जब मैं विविध रंग के बादलों की तरह वीरों के वस्त्रों को युद्धभूमि में रक्तरंजित कर लूंगा। तुम्हारे शरीर में लालिमा का अंगराग तब चर्चित हो सकेगा जब वीरों के शरीर रक्त की धारा से स्नान कर चुकेंगे। शुक्र तारे की भाँति तुम्हारे मस्तक पर हीरक-ज्योति तब चमक सकेगी जब समस्त रणभूमि में गज-मुक्ताओं के ढेर लग चुकेंगे......!

संयोगिता : महाराज......

पृथ्वीराज : तुम्हारे विवाह-पर्व में सामन्तों की पंक्ति के पूर्व ही शत्रु के सामन्तों की पंक्ति मेरे कृपाण की अग्नि में प्रवेश करेगी और पक्षियों की तरह चारणों के गीत कराहते हुए शत्रुओं के कण्ठ में डूबेंगे, फिर वे तुम्हारे विवाह-पर्व के गीत गा सकेंगे। तुम्हें स्वीकार है, देवी !

संयोगिता : आरम्भ से युद्ध-पर्व ही तो मेरे विवाह-पर्व का अग्रदूत रहा है, स्वामी ! मेरे स्वयंवर की घटना फिर एक बार नई बनकर आ जाएगी । यह तो मेरे लिए सुख का संवाद है । मुझे अभी रूपा से सूचना मिली कि शहाबुद्दीन गोरी फिर से आक्रमण के लिए प्रलय-बादलों की तरह उठना चाहता है ।

पृथ्वीराज : हाँ, ग्रीष्मकाल की उषा से ही वर्षाकाल में बादलों के समूह आते हैं। मेरी प्रखर युद्ध-श्री ने ही इन प्रलय-बादलों को निमंत्रण दिया है । मैं एक बार फिर उन बादलों को छिन्न-भिन्न करूँगा, देवी ! मेरे कवच की एक भी शृंखला ढीली न हो ! मेरे शिरस्त्राण का अंकुश और भी पैना किया जाए और मेरी म्यान में नया कृपाण रखा जाए, प्रिये !

संयोगिता : आक्रमण की बात सुनकर मैं अपने साथ ही नया कृपाण ले आई हूँ, स्वामी ! मैं अपने हाथ से ही मंगल तिलक-करूँगी और आपकी म्यान में नया कृपाण रखूंगी । **(पुकारकर)** रूपा !

[रूपा का प्रवेश]

रूपा : **(प्रणाम करती हुई)** आज्ञा, महारानी !

संयोगिता : मंगल-तिलक की सामग्री शीघ्र ले आ ।

रूपा : जो आज्ञा ! **[प्रस्थान]**

पृथ्वीराज : मैं प्रसन्न हूँ, संयोगिता ! तुम सचमुच ही वीर नारी हो। संसार के इतिहास में यह अमोघ अक्षरों से लिखा जाएगा कि इस देश में नारियाँ विवाह-

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर्व की उषा में युद्ध-पर्व के रक्तिम रंग से अपना श्रृंगार करती हैं।

संयोगिता : यह तो अपने देश की परम्परा है, स्वामी ! यदि विवाह-पर्व रक्त का अभिषेक ही चाहता है तो उसे युद्ध-भैरवी का नृत्य भी दीजिए। मेरी स्फूर्ति का नया कृपाण आपके हाथ में हो और मेरी मंगल-कामनाओं की ढाल आपकी रक्षा में आपके सामने रहे, स्वामी ! शक्ति का आह्वान आप इसी नारी की दृढ़ता से करें, इसी ज्योति से शिवजी ने कामदेव को भस्म किया था।

पृथ्वीराज : क्षत्राणी ! तुम्हारे व्रत से ही हमारा युद्धस्थल सदैव क्रीड़ा-भूमि बना है। क्षत्रियों के कृपाण में युद्ध-भैरवी के नृत्य की ही गति है। उसके प्रतिबिम्ब में सारा समरांगण आन्दोलित होता है, जिसमें शत्रुओं के सिर उल्कापिंड की तरह भूषित होते हैं। यह युद्ध तो एक निष्प्रभ चिनगारी का युद्ध है जो हमारी फूट की संधियों में प्रवेश कर दावानल का रूप धारण करता है। किन्तु, देवि! उसे बुझाने की शक्ति तुम्हारी मंगल-कामनाओं के पारावार में है।

[रूपा का मंगल-सामग्री सहित प्रवेश]

पृथ्वीराज : मंगल की सामग्री भी लेकर आ गई ? यह तुम्हारी सच्ची सहचरी है, संयोगिता !

संयोगिता : इस मंगल-तिलक के अरुणबिन्दु में अपनी समस्त कामनाएँ केन्द्रित करती हूँ, स्वामी !

[मंगल-तिलक करती है।]

पृथ्वीराज : देवी ! तुम्हें भूलकर अब युद्धक्षेत्र में युद्ध-भैरवी का नृत्य ही देखूँगा।

संयोगिता : हाँ, स्वामी ! उस युद्ध-भैरवी के नृत्य में भारतीय नारीत्व ही है—भारतीय नारीत्व जिसके लिए जीवन अमर है और मृत्यु ? मृत्यु क्षणभंगुर है।

पृथ्वीराज : **(दुहराते हुए)** जीवन अमर है और मृत्यु क्षणभंगुर है !

संयोगिता : **(रूपा से)** अच्छा ! यह तुम्हारे हाथ में और क्या है, रूपा !

रूपा : महाराज ने आज्ञा दी थी कि मैं भाग्य-नक्षत्रों की भाँति कुंद-कलियों को एकत्र करूँ जिसकी मालाएँ विवाह-पर्व में महारानी संयोगिता के कंठ से ही अपनी सुगन्धि प्राप्त करें। उन्हीं कुंद-कलियों की यह माला है।

पृथ्वीराज : भाग्य-नक्षत्रों की भाँति कुंद-कलियों की माला ? तो इस माला का स्थान अब कहाँ है, यह तुम जानती हो, संयोगिता !

संयोगिता : हाँ, महाराज ! अब इसका उपयुक्त स्थान आपका कृपाण है ! रूपा ! ला, इस माला से महाराज का कृपाण सुसज्जित करूँ।

पृथ्वीराज : प्रिये ! तुम वीर नारी हो।

संयोगिता : और आप इस देश के वीर पुरुष हैं, भाग्य-नक्षत्र हैं ! भाग्य-नक्षत्र, जिसका कभी अस्त न हो, जिसकी प्रत्येक किरण युद्ध-भैरवी को निमंत्रण दे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वीराज : और यह रूपा के भैरवी-नृत्य में साकार हो ! भैरवी नृत्य में !

संयोगिता : रूपा ! तुम्हारा भैरवी-नृत्य आरम्भ हो, जो स्वामी के कृपाण के भैरवी-नृत्य का अग्रदूत हो।

रूपा : जैसी आज्ञा।

[रूपा भैरवी-नृत्य आरम्भ करती है। उसके नृत्य का संगीत चारों ओर गूँज उठता है।]

[पटाक्षेप]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 15 :

तैमूर की हार

•

पात्र-परिचय

तैमूर

जफ़रअली—तैमूर का सरदार

अलीबेग, मुबारक—तैमूर के सिपाही

कल्याणी—एक ग्रामीण स्त्री

बलकरन—कल्याणी का पुत्र

पहला ग्रामीण

दूसरा ग्रामीण

तीसरा ग्रामीण

•

काल—1398 ई०

समय—प्रातःकाल 8 बजे

स्थान—दीपलपुर के समीप वन-प्रान्त में एक छोटा-सा गाँव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तैमूर की हार

[मिट्टी का एक छोटा-सा घर। दाहिनी ओर एक दरवाज़ा है जिससे घर के भीतर प्रवेश किया जाता है। सामने की दीवार में एक खिड़की है। बायीं ओर के दरवाज़े से अन्दर पहुँचते हैं जहाँ से तलघर की ओर मार्ग है। दूसरा मार्ग गुप्त रूप से बाहर की ओर जाता है। कमरे में हर्षवर्धन, विक्रमादित्य और पृथ्वीराज चौहान आदि की कुछ तसवीरें हैं। बायीं ओर के कोने में एक अँगीठी है जिस पर कुछ खाने की सामग्री पक रही है। उसके समीप ही कुछ बरतनों में खाने की चीज़ें और मिठाइयाँ सजी हुई हैं। कमरे के बीचों-बीच एक तख्त है जिस पर एक मोटी-सी दरी बिछी है। उसके समीप ही बैठने का एक मोढ़ा है।

कल्याणी अँगीठी के पास बैठी हुई कोयले डालकर आग तेज़ कर रही है। साथ ही एक गीत गुनगुनाती जा रही है। उसका लड़का बलकरन तख्त पर बैठा हुआ एक पत्थर के टुकड़े पर अपना चाकू तेज कर रहा है।]

कल्याणी : [गुनगुनाती हुई गाती है]

अब मत जाना तुम दूर...दूर।
उठ रही है पच्छिम में धूर,
उठ रही है पच्छिम में धूर,
आ गया तुरक...आ गया तुरक,
नशे में चूर—नशे में चूर...चूर
अब मत जाना तुम दूर...दूर!

बलकरन : (चाकू तेज़ करते हुए) यह तुम क्या गुनगुना रही हो, माँ? इस पत्थर पर मेरा चाक़ू तेज़ नहीं हो रहा।

कल्याणी : क्या तेरा चाक़ू भी मेरा गाना सुन रहा है? (पास आकर मोढ़े पर बैठते हुए) पर आज चाक़ू तेज़ करने की तुझे क्या सूझी! आज तो तेरी वर्षगाँठ है।

बलकरन : वर्षगाँठ! मेरी वर्षगाँठ पर तो हथियारों की पूजा होनी चाहिए, माँ! पूजा! हाँ, तो माँ, क्या यह वर्षगाँठ वैसी ही होगी जैसे पार-साल हुई थी? [चाकू रोक देता है।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कल्याणी : हाँ, बिलकुल वैसी ही। इस वर्षगाँठ पर तू पूरे बारह वर्ष का हुआ। बेटा, मैं तो आशीर्वाद देती हूँ कि इसी तरह तेरी बहुत-सी वर्षगाँठें मनायी जायें। तू दिन दूना, रात चौगुना बढ़े।

बलकरन : इसीलिए तू गाना गा रही थी! (**फिर चाकू तेज़ करता है**) माँ! कैसा है वह गाना?

कल्याणी : यों ही बहुत पुराना गाना है।

बलकरन : (**रुककर**) कितना पुराना?

कल्याणी : बहुत पुराना। जब मैं तेरे बराबर थी, मेरी माँ गाया करती थी।

बलकरन : तब माँ, मुझे भी सिखला दे यह गाना। जब मेरे बच्चे हो जायेंगे, तो मैं भी उनके सामने गाऊँगा।

कल्याणी : (**हँसकर**) गायेगा? वाह मेरे बलकरन! भगवान् करे, तेरी बात सच निकले! पर, बच्चे! यह गाना अच्छा नहीं है।

बलकरन : वाह, जब तेरी हर एक बात अच्छी है तो गाना क्यों अच्छा नहीं होगा?

कल्याणी : डर का गाना है। अब तो वह ज़माना बीत गया। बहुत बरस हुए, एक तुरक आया था।

बलकरन : तुरक कौन?

कल्याणी : तुरक जो हमारा धरम नहीं मानता। कोई दूसरा धरम मानता है। और वह तुरक ऐसा था जो लोगों का ख़ून बहाता था, उन्हें लूटता था, उनका घर जला देता था।

बलकरन : ये भी कोई धरम है, माँ?

कल्याणी : हाँ, वह तुरक तो कहता था, हमारा यही धरम है। कहता था, जो हमारा धरम नहीं मानता, उसको मारने के लिए ही हमने जनम लिया है।

बलकरन : अच्छा! क्या नाम था उस तुरक का?

कल्याणी : महमूद। कहते हैं, ग़ज़नी से आया था। उसने सोमनाथ का मन्दिर तोड़ा और बहुत-से आदमियों का ख़ून बहाया। फिर बहुत-सा धन लेकर वह यहाँ से चला गया।

बलकरन : माँ, अगर मैं उस जगह होता तो देखता।

कल्याणी : तू? तू देखता? बेटा! वह तुझे भी...

बलकरन : मुझे? मुझे मारता? और यह चाक़ू किस दिन काम आता? इस चाक़ू से देख लेता।

कल्याणी : अरे बेटा, उसके पास बड़ी-बड़ी तलवारें थीं। वह जिधर से निकल जाता आग और मौत बरसाता जाता था। इसीलिए महमूद का नाम लोगों ने डराने के लिए रख छोड़ा था।

बलकरन : किसको डराने के लिए?

कल्याणी : बच्चों को डराने के लिए। जब कोई बच्चा नटखटी होता था तो लोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहते थे—'देखो, वह महमूद आ रहा है ! तुरक आ रहा है ।' तभी का तो यह गाना है । मेरी माँ भी यही गाना कभी-कभी गाती थी :

अब मत जाना तुम दूर...दूर ।
उठ रही है पच्छिम में धूर !

तुरक पच्छिम से आया था न ? तो कहते हैं :

उठ रही है पच्छिम में धूर ।

उसकी बड़ी सेना साथ आ रही थी, उसके चलने से रास्ते की धूर ऊपर उड़ने लगती थी :

आ गया तुरक—आ गया तुरक
नशे में चूर—नशे में चूर...चूर

लोगों का खून बहाना ही उसका नशा था, इसलिए माँ अपने बच्चे से कहती थी :

अब मत जाना तुम दूर...दूर...!

बलकरन : (**सोचता हुआ**) माँ, मैं यह गाना नहीं सीखूँगा । तू भी यह गाना मत गा ।

कल्याणी : नहीं गाऊँगी, बेटा ! वह तो तेरी वर्षगाँठ के दिन मुझे बहुत-सी पुरानी बातें याद आ गयीं तो यह गाना भी याद आ गया, गुनगुनाने लगी ।

बलकरन : नहीं, माँ ! अब वह बात नहीं रही । मैं इस चाक़ू के साथ बड़े-बड़े हथियार लेकर बड़ी दूर जाऊँगा, और तुरक को देखूँगा कि वह कैसे अपने नशे में चूर रहता है ।

कल्याणी : ठीक है, बेटा ! यह तो आगे की बातें हैं, जब तू बड़ा हो जायेगा । आज तो तेरी बारहवीं वर्षगाँठ ही है ।

बलकरन : तो इससे क्या हुआ ? मैं तुरक से नहीं डरता । ये विक्रमादित्य, हर्षवर्धन और पृथ्वीराज चौहान के चित्र मुझ में उत्साह भरते हैं ।

कल्याणी : ठीक है, बेटा ! ये चित्र ऐसे ही उत्साह भरने वाले हैं ।

बलकरन : इसीलिए मैं तुरक से नहीं डरता ।

कल्याणी : तेरे पिता भी नहीं डरते थे, बेटा ! आज वे होते ! [**आँख में आँसू**]

बलकरन : अरे, माँ ! तेरी आँखों में आँसू ? अच्छा मैं अब ऐसी बातें नहीं करूँगा । मुझे माफ़ कर दो ! मुझे माफ़ कर दो !

कल्याणी : बेटा ! तू तो मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारा है तुझे माफ़ करने की बात ही क्या ! मैं तो गीत गाकर और तुझे देखकर ही सब कुछ भूलना चाहती थी ।

बलकरन : तो सब कुछ भूल जाओ, माँ ! बतलाओ, आज वर्षगाँठ में क्या-क्या करोगी ?

कल्याणी : क्या करूँगी ? अपने प्यारे बेटे को नहलाऊँगी, चन्दन लगाऊँगी, फूलों की माला पहनाऊँगी ! फिर, आज मैंने तेरे लिए बहुत अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ बनायीं हैं । देख, उस कोने में रखी हुई है । मिठाइयों के साथ खीर खिलाऊँगी, तुझे असीस दूँगी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बलकरन : पर माँ, मेरे साथ तुझे भी खाना पड़ेगा। तुझे भी अपनी वर्षगाँठ आज ही मनानी पड़ेगी, अभी ही, मेरे साथ। मैं अकेले इतनी मिठाइयाँ नहीं खा सकता।

कल्याणी : तेरे खाने के बाद खा लूँगी। बस, दूध-भर आ जाये। खीर बनने में देर ही क्या लगती है। पानी उबल ही रहा है।

बलकरन : अभी दूध नहीं आया ?

कल्याणी : सूरज चढ़ आया, अभी तक सुजान दूध लाया ही नहीं। जाने क्यों नहीं लाया ?

बलकरन : मैं ले आऊँ ?

कल्याणी : सुजान आता होगा, बेटा ! तू कहाँ जायेगा ?

बलकरन : 'मत जाना तुम दूर...दूर' की बात तू सोच रही है। मैं तो बड़ी दूर जा सकता हूँ और फिर, सुजान का घर है ही कितनी दूर। रास्ते से ज़रा हटकर उत्तर की तरफ है न ? उस शीशम के पेड़ के नीचे ही तो उसकी झोंपड़ी है। मैं अभी ले आऊँगा। इसी गुप्त-मार्ग से बाहर चला जाऊँगा।

कल्याणी : तू ऐसी बातें करता है तो जा ! पर जल्दी ही लौटना। आज तेरी वर्ष-गाँठ है।

बलकरन : मैं अभी लौटकर आया। **(उठता है)** मुझे एक बरतन दे दो। मैं अभी लाता हूँ। और...यह चाक़ू अब काफ़ी तेज़ हो गया है, इसे मैं अपने पास रखूँगा।

कल्याणी : चाक़ू तेरे किस काम आयेगा ? अच्छा, यह ले बरतन। **(बरतन देती है)** बेटा, जल्दी ही लौटना !

बलकरन : अच्छा, माँ ! मैं अभी आया।

[बायीं ओर के गुप्त-मार्ग से प्रस्थान]

कल्याणी : **(बलकरन के जाने की दिशा में देखती हुई)** मेरा भोला बच्चा ! बलकरन! अभी से कैसी वीरता की बातें करता है ! **(सन्तोष से)** बलकरन...मेरा बेटा ! **(फिर अँगीठी के पास आकर आग ठीक करती है। फिर गुनगुनाती है)** 'तुम मत जाना...' **(सम्हलकर)** नहीं......यह गाना अब नहीं गाऊँगी। बलकरन को अच्छा नहीं लगता। मेरा साहसी बच्चा ! **[फिर आग ठीक करती है। थोड़ी देर तक स्तब्धता रहती है। फिर भयानक शोर और भगदड़। कल्याणी झिझककर खिड़की से बाहर देखने लगती है। फिर शोर और भगदड़ की आवाज़। शीघ्रता से एक ग्रामीण प्रवेश करता है।]**

हिन्दू ग्रामीण : **(घबराये हुए स्वरों में)** तुरक आ गया ! तुरक आ गया ! भागो, भागो......तुरक आ गया, भागो !

कल्याणी : **(आगे बढ़कर, दृढ़ता से)** पागल हो गये क्या ? तुरक कहाँ से आ गया ?

हिन्दू ग्रामीण : नहीं, नहीं, तुरक आ गया।

कल्याणी : अरे, तुरक जब आया था, तब से वर्षों बीत गये। अब तुरक कहाँ है ? वह आया भी और चला भी गया। तुरक...**(व्यंग्य से)** हूँ !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दू ग्रामीण : नहीं, सबको लेकर जंगल में छिप जाओ। वह आ रहा है। वह आ रहा है। [**भाग जाता है।**]

[**फिर भगदड़ की आवाज़ होती है।**]

कल्याणी : यह भगदड़ कैसी मच रही है ? [**आगे बढ़ती है।**]

[**दूसरे ग्रामीण का प्रवेश**]

मुसलमान ग्रामीण : बहन, भाग चलो ! जल्दी-जल्दी। वह तैमूर आ गया। मैंने अपनी आँखों से देखा है। लूटते हुए आ रहे हैं वे लोग। हम लोग मरे...चलो बहन !

कल्याणी : अरे, कैसा तैमूर ? कहाँ का तैमूर ?

मुसलमान ग्रामीण : (**नेपथ्य में देखते हुए**) तुम नहीं चलोगी ? वह आया ! वह आया !

[**भाग जाता है।**]

कल्याणी : क्या सचमुच ही फिर तुरक आ गया ? अरे, उसको मरे तो सैकड़ों बरस हो गये होंगे। क्या अपनी क़ब्र से उठकर आ रहा है ? लेकिन कहते हैं तैमूर आया है। तैमूर कौन ? (**पुकारकर**) बलकरन···बलकरन !

[**फिर भगदड़ की आवाज़ होती है। चीख और पुकार।**]

[**तीसरे ग्रामीण का प्रवेश**]

तीसरा हिन्दू ग्रामीण : बहन कल्याणी, सब कुछ छोड़कर जल्दी से भागो, तभी जान बचेगी। जंगल में छिप जाओ, नहीं तो घर के तलघर में ही चलो। चलो मेरे साथ...समय नहीं है।

कल्याणी : (**घबराहट से**) बलकरन ! मेरा बलकरन तो अभी नहीं आया। उसे छोड़कर मैं कहीं भी नहीं जाऊँगी।

तीसरा ग्रामीण : कहाँ गया बलकरन ?

कल्याणी : (**घबराहट से**) वह...वह...दूध लेने गया है, सुजान के घर।

तीसरा ग्रामीण : सुजान के घर ? बहुत अच्छा है। तब तो उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा। सुजान का घर खास रास्ते से बहुत हटकर दूर कोने में है। वे लोग सीधे रास्ते से ही चले आ रहे हैं।

कल्याणी : कौन ? कौन आ रहा है ?

तीसरा ग्रामीण : तुरक—इस बार तैमूर तुरक आया है। बड़ी भारी फ़ौज लिए हुए है।

कल्याणी : (**डरकर**) तैमूर तुरक ? बड़ी भारी फ़ौज ?

तीसरा ग्रामीण : हाँ, पर अब समय बिलकुल नहीं रहा। बलकरन का कुछ नहीं होगा। तुम जल्दी से चलकर तलघर में छिप जाओ।

कल्याणी : नहीं, बलकरन को आने दो। मैं बलकरन के बग़ैर नहीं जाऊँगी। (**पुकारती है**) बलकरन...बलकरन...बेटा बलकरन...!

तीसरा ग्रामीण : बहन, चुप रहो ! तुरक सुन लेगा। जल्दी चलो...चलो जल्दी !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[हाथ पकड़कर वेग से ले जाता है, कल्याणी का स्वर 'बलक...र...न' धीरे-धीरे गूँजकर शान्त हो जाता है। स्तब्धता! फिर भगदड़। उसकी आवाज़ समाप्त होते ही वेग से तीन सैनिक घर में घुस आते हैं। उनके हाथ में तलवारें हैं, वे घर के सामान को तोड़ते-फोड़ते आते हैं। सरदार, जिसका नाम जफ़रअली है, लात से मोढ़ा उलट देता है। दोनों सिपाही तख्त के नीचे देखते हैं।]

जफ़र : कोई नहीं ? कमबख्त सब भाग गये।

पहला : तख्त के नीचे भी कोई नहीं है।

जफ़र : मुबारक! इस वक्त आदमियों को क़त्ल करने का हमारा उतना मक़सद नहीं है जितना सोना-चाँदी लूटने का है। इस घर में देखो, कहीं है ?

मुबारक : **(देखते हुए)** कहीं कुछ नहीं है, सरदार! मामूली-सी झोंपड़ी है। इसमें सोना-चाँदी कहाँ ?

जफ़र : बेवकूफ़ हो तुम! इन तसवीरों को पलटो। इनके पीछे दीवाल में कुछ होगा। ये लोग अपना सोना-चाँदी दीवालों में रखते हैं।

[मुबारक और उसका साथी अलीबेग तलवार से सब तसवीरों को उलटता है। कुछ नहीं दीख पड़ता।]

अलीबेग : कहीं कुछ नहीं है, सरदार!

मुबारक : सरदार! अगर सोना-चाँदी उन लोगों के पास होगा भी तो वे लोग अपने साथ लेकर भाग गये होंगे।

जफ़र : देखो, उस कोने में क्या है ?

अलीबेग : कुछ बरतन मालूम होते हैं, सरदार! **(बरतनों के पास जाकर उन्हें खोलता है)** सरदार! है, ये है।

जफ़र : **(खुशी से)** शाबाश! क्या है, सोना ? चाँदी ?

[अलीबेग उठाकर लाता है।]

अलीबेग : सरदार! सोना-चाँदी तो नहीं लेकिन उससे भी ज्यादा क़ीमती चीज़ है जिसकी आपको और हमको सख्त ज़रूरत है।

जफ़र : क्या ?

मुबारक : **(अलीबेग के पास आकर)** सरदार! बढ़िया खाना। तरह-तरह की मिठाइयाँ। ओह! **(छूकर)** बिलकुल ताज़ी। गरम।

अलीबेग : सरदार! आप बहुत भूखे हैं। कुछ खा लीजिए। फिर तो दिन-भर हम लोगों को लूट और क़त्ल करना ही है।

जफ़र : नहीं...नहीं...फेंक दो! **(रुककर)**...एँ...अच्छा, इधर लाओ!

मुबारक : सरदार! मालूम होता है, जल्दी में लोग खाना भी नहीं खा सके। वैसा ही रखा छोड़ गये।

जफ़र : **(हाथ से छूकर)** हाँ, गरम मिठाइयाँ हैं। लो, तुम लोग भी लो, भूखे होंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुबारक : सरदार नोश फ़रमायें ।

जफ़र : मैं खाऊँगा । लो, तुम लो ! **(मुबारक को देता है । वह प्रसन्न होकर लेता है)** अच्छी मिठाइयाँ हैं । लो, अलीबेग ! तुम भी लो ।

अलीबेग : **(आगे बढ़कर)** सरदार तो क़बूल करें । **(हाथ फैलाता है)** दर-असल ताज़ी हैं ।

[शेष मिठाई से भरी थाली जफ़र मोढ़े को तलवार से सीधा कर उस पर रखता है । फिर तख्त पर बैठता है ।]

जफ़र : **(खाते हुए)** बहुत लज़ीज़ । दो दिनों से खाना नसीब नहीं हुआ । अब जाकर ये मिठाइयाँ सामने आयी हैं ।

अलीबेग : **(खाते हुए)** खुदा का फ़ज्ल है, सरदार !

मुबारक : **(सहसा)** लेकिन, सरदार ! रुक जाइए ।

जफ़र : **(चौंककर)** क्यों ?

मुबारक : कहीं इन मिठाइयों में ज़हर न मिला हो ?

जफ़र : बेवक़ूफ़ हो तुम । मुबारक ! यहाँ के लोग इतने सीधे हैं कि वे ये बातें करना जानते ही नहीं । और फिर, हमने अपना धावा इतने जल्दी बोला है कि किसी को ऐसा करने का—सोचने का—वक्त ही नहीं मिल सकता ।

अलीबेग : सरदार सच फ़रमाते हैं ।

जफ़र : और फिर, दो दिनों के बाद इतना अच्छा खाना नसीब हुआ है । भूख-प्यास से बुरा हाल है । और अगर इस तरह मरना ही है, तो मिठाई खाकर क्यों न मरें ?

अलीबेग : सरदार ने क्या बात कही है ? मिठाई खाकर क्यों न मरें ? वाह, वाह...!

मुबारक : सच बात है, सरदार ! भूख से तो मरना ही है, तो यह चीज़ फिर क्यों छोड़ी जाये ?

जफ़र : इसीलिए मैं खा रहा हूँ । **(खाते हुए)** वाह ! क्या कहना है । यहाँ के लोग मिठाइयाँ बनाना भी खूब जानते हैं ।

अलीबेग : सरदार ! मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि वे लोग हम लोगों के लिए ही ये मिठाइयाँ बनाकर छोड़ गये हैं ।

मुबारक : ये कैसे ?

अलीबेग : यें ऐसे कि उन्होंने यह समझा होगा कि ये मिठाइयाँ खाकर हम लोगों का गुस्सा कम हो जायेगा । लूट-मार कम करेंगे ।

जफ़र : **(हँसते हुए)** ह, ह, ह, ह, ह ! हम लोगों का गुस्सा कम हो जायेगा ! लूट-मार कम करेंगे !

[सब लोगों की जोर से सम्मिलित हँसी]

[नेपथ्य में : (तीव्र आवाज से) चुप रहो, कमबख्तो !]

[तैमूर लंग का प्रवेश । वह लँगड़ाते हुए आगे बढ़ता है । उसे देखते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही सब चौंक पड़ते हैं; मिठाइयां जमीन पर फेंककर फ़ौजी ढंग से तनकर खड़े हो जाते हैं। सन्नाटा छा जाता है। तैमूर लंग बारी-बारी से तीनों को घूरता हुआ आगे बढ़ता है।]

तैमूर : (**तीव्र स्वर में**) तुम लोग ! बदबख्तो ! इसी तरह तुम हिन्दोस्तान की दौलत ग़ाज़ी तैमूर के ख़ज़ाने में भरोगे ? जब तुम्हें क़त्ल करना चाहिए, तब तुम आराम से तख्त पर बैठते हो। जब तुम्हें जवाहरात ढूंढ़ने चाहिए तब तुम नाश्ता करते हो और जब तुम्हें धावा बोलना चाहिए, तब तुम लोग मिलकर कहकहे लगाते हो। जवाब दो ?

[**कोई कुछ नहीं बोलता—निस्तब्धता**]

तैमूर : (**फिर तीव्र स्वर में**) मैंने अफ़ग़ानिस्तान के बाद हिन्दुस्तान पर रुख़ इसलिए किया था कि मेरे सिपाही दौलत लूटने के बदले आराम से खाना ढूंढ़ते फिरें ? मैं बिना जतलाये देखना चाहता था कि तुम किस तरह मेरे हुक्म को अंजाम दे रहे हो। इसीलिए मैंने अपने सब सिपाहियों को बाहर छोड़ दिया है। मैं देखता हूँ कि तुमने मेरे जिहाद को नफ़्स-परवरी (इन्द्रिय-लोलुपता) का एक अदना तमाशा बना दिया है। तुम यहाँ मौज से खाना खाओ और ग़ाज़ी तैमूर तीन दिन से भूखा रहे, और रात-दिन हुक्म देता रहे ! मैंने तुम्हें क्या हुक्म दिया था, सरदार ?

जफ़र : (**सैनिक ढंग से**) बुलन्द-इक़बाल ने हुक्म फ़रमाया था कि आज शाम तक अमरकोट पहुँच जाना है।

तैमूर : तो अमरकोट पहुँचने का यह रास्ता है ? बदबख्त ! ग़ाज़ी तैमूर के सिपाहियों को रास्ता दिखलाने की ज़िम्मेदारी क़िस पर है ? तुम पर। और तुम ऐश करते हुए अमरकोट का रास्ता खोजोगे ?

[**फिर सन्नाटा**]

तैमूर : मेरे हुक्म को किसने अंजाम दिया ? तुमने ? तुम्हारे सिपाहियों की तलवारों पर खून का एक धब्बा भी नहीं है। तुम लोग सिपाही हो ? तैमूर को मुंह दिखलाने के क़ाबिल भी नहीं हो। बोलो, क्या चाहते हो ? खाना खाने के बाद तुम्हारे लिए नाच-गाने का इन्तज़ाम भी किया जाये ?

जफ़र : हम लोग आलीजाह की माफ़ी के ख्वास्तगार हैं। माफ़ी अता फ़रमायी जाये।

तैमूर : हरगिज़ नहीं ! ग़ाज़ी तैमूर क़ुसूर को माफ़ करना नहीं जानता। सरदार ! तुमने जो हुक्म-उदूली की है, उसकी सज़ा तुम्हें मिलेगी। मैं तुम्हारा नाम... तुम्हारा नाम...

जफ़र : ज़फ़र अली !

तैमूर : ज़फ़र अली ! तुम ग़ाज़ी तैमूर की ख़िदमत नहीं कर सकते। आज शाम को तुम्हारी सज़ा तजवीज़ की जायेगी। अभी मैं तुम्हें तुम्हारे मरतबे से खारिज करता हूँ, समझे !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जफर : बुलन्द-इक़बाल का हुक्म !

तैमूर : जाओ, शाम तक अमरकोट पहुँचने का मेरा हुक्म पूरा हो ! **(तीव्रता से)** जाओ !

[**तीनों सैनिकों का शीघ्रता से प्रस्थान**]

तैमूर : **(बड़बड़ाता हुआ)** दोज़ख के कुत्ते !...खाना-पीना, क़हक़हे ! सिपाहियों में आरामतलबी ! मेरे सामने हिन्दोस्तान की यह फ़िज़ा नहीं रहेगी। **(गला बैठ जाता है। धीरे से)** नहीं रहेगी...**(ओठ चाटता है)** गला सूख रहा है। तीन दिनों से खाना नहीं मिला...कल से पानी भी नहीं नसीब हुआ। गला सूख रहा है। **(ज़मीन पर गिरा हुआ बरतन देखता है। चौंकता है। फिर तलवार से लुढ़काकर उसे सीधा करता है)** सब खाली ? कमबख्तों ने कुछ भी नहीं छोड़ा ? लेकिन कोई बात नहीं। ग़ाज़ी और मुजाहिदों (धार्मिक योद्धाओं) की क़िस्मत में आराम कहाँ ?

[**बलकरन का दूध लिये हुए बायीं ओर के गुप्त मार्ग से प्रवेश**]

बलकरन : **(पुकारते हुए)** माँ, माँ ! मैं यह दूध ले आया।

तैमूर : **(चौंककर)** दूध ?

बलकरन : **(उजाड़ घर को देखकर चौंकते हुए)** यह सब क्या ? **(तैमूर को देखकर)** एँ, तुम कौन ? **(पुकारता है)** माँ...माँ ! **(कुछ उत्तर न पाकर)** मेरी माँ कहाँ हैं ? **(तैमूर ग़ौर से बलकरन को देखता है)** इस तरह मेरे...घर में घुस आने वाले तुम कौन हो ?

तैमूर : **(ज़ोर से)** ख़ामोश ! ग़ाज़ी तैमूर से यह नाचीज़ सवाल करता है कि तुम कौन हो। कमबख्त ! अगर बात पूछने की तमीज़ नहीं है तो ख़ामोश रह !

बलकरन : **(धीरे से दोहराता हुआ)** ग़ाज़ी तैमूर ?

तैमूर : इस नाम से वाक़िफ़ नहीं है ? दुनिया का ज़र्रा-ज़र्रा जिसके क़दमों को चूम चुका है, उससे सवाल करता है, 'तुम कौन हो ?' कमबख्त बच्चे ! मेरी तलवार से पूछ ! यह तेरे ख़ून में डूबकर तुझे मेरा नाम बतलायेगी। लेकिन ठहर...यह दूध इधर ला...इस वक़्त ख़ुदा ने मेरे लिए भेजा है।

बलकरन : यह दूध...यह दूध मेरी वर्षगाँठ के लिए है।

तैमूर : साफ़ ज़बान में बात कर, जो समझ में आये। सामने दूध हाज़िर कर !

बलकरन : नहीं, मैं माँ के सिवाय किसी को नहीं दे सकता।

तैमूर : क्या ? लेकिन मैं ले सकता हूँ। **(बलकरन से छीनकर ज़ोर से अट्टहास करता है)** दूध मेरा है कि नहीं ? अब तुझे इस तलवार से काट दूँ ?

बलकरन : **(हिचकते हुए)** क्या...क्या तुम तुरक हो जो ख़ून बहाना चाहते हो ? मेरी माँ यही कहती थीं।

तैमूर : तू बड़ा निडर मालूम होता है। सामने आ ! मेरी तलवार से कटने का फ़ख्र हासिल कर !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बलकरन : मेरे पास सिर्फ़ एक चाक़ू है। मेरे हाथ में भी एक तलवार दो।

तैमूर : ओफ़ ओह ! तू मुझसे दो हाथ लड़ने का हौसला भी रखता है ? अच्छा ! पहले दूध पिऊँगा। गला सूख रहा है।

[**तख्त पर तलवार रखकर दोनों हाथों से दूध का बरतन मुँह में उलट देता है। बलकरन दौड़कर तैमूर की तलवार उठा लेता है।**]

तैमूर : (**सहसा**) मेरी तलवार...

बलकरन : तुम्हारी तलवार अब मेरे हाथ में है। अब तुम मुझ से लड़ सकते हो। सामने आओ !

तैमूर : (**दोहराकर**) सामने आओ ? शाबाश ! लेकिन मेरी तलवार तुझ से सँभल नहीं सकेगी, बच्चे ! इधर ला !

बलकरन : जैसे दूध छीन लिया था, वैसे तलवार भी छीन लो !

तैमूर : छीन लूँ ?

बलकरन : हाँ, लेकिन लड़ने वाले तलवार नहीं छीनते, वार करते हैं।

तैमूर : तेरा कहना सही है। मालूम होता है तू बहादुर है। मेरी फ़ौज में भरती होगा ?

बलकरन : (**दृढ़ता से**) नहीं।

तैमूर : नहीं ? इस्लाम क़ुबूल करेगा ?

बलकरन : (**अधिक दृढ़ता से**) नहीं।

तैमूर : तो अब तुझे ज़्यादा देर तक ज़िन्दा नहीं रखूँगा। (**पैंतरा बदलकर तलवार छीन लेता है**) यह रही मेरी तलवार।

बलकरन : छीन ली ? लेकिन यह बहादुरी नहीं है। मेरे पास यह चाक़ू है। इसी से लड़ूँगा।

तैमूर : चाक़ू से लड़ेगा, चाक़ू से ! (**अट्टहास करता है**) ह् ह् ह् ह् ह !

बलकरन : हाँ, थोड़ी देर पहले मैंने इसे तेज़ किया है। देखो, यह इतना तेज़ है—मेरी उँगली से खून निकाल सकता है।

[**उँगली में चुभाकर खून की बूँदें दिखलाता है।**]

तैमूर : शाबाश ! तैमूर के दिल में रहम नहीं है लेकिन तेरी बातें सुनकर मैं......

बलकरन : इन बातों से क्या ! चलाओ अपनी तलवार, मैं भागूँगा नहीं।

तैमूर : भागेगा नहीं ! तू बहादुर शेर है। मैं तुझ पर तलवार नहीं चला सकता। तू मुझ से भी ज़्यादा बहादुर मालूम होता है। चाक़ू वाला बहादुर ! तेरा नाम क्या है ?

बलकरन : दुश्मन नाम नहीं पूछता, वार करता है।

तैमूर : लेकिन तेरी बहादुरी देखकर मैं तुझे अपना दुश्मन नहीं मानता। तेरा नाम क्या है, चाक़ू वाले ?

बलकरन : बलकरन।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तैमूर : **(दोहराता हुआ)** बलकरन ! बलकरन ! हिन्दुस्तान की दौलतों में तू भी एक दौलत है। बलकरन, ग़ाज़ी तैमूर एहसान नहीं भूलता। जो उसकी थकावट दूर करने के लिए दूध हाज़िर कर सकता है, उसके खून से वह अपनी तलवार नहीं रंगेगा। नहीं तो अभी तक मैंने तुझे साफ़ कर दिया होता।

बलकरन : लेकिन दूध मैंने हाज़िर नहीं किया, तुमने छीन लिया।

तैमूर : एक ही बात है। दूध मैंने पाया। मैं तेरी जान बख्शता हूँ और तेरी एक मुराद पूरी कर सकता हूँ।

बलकरन : मुझे कुछ नहीं चाहिए।

तैमूर : नहीं, तू मेरा छोटा-सा बहादुर दोस्त है, चाक़ू वाला ! और इस हैसियत से तेरा मुझ पर हक़ है।

बलकरन : तो, मेरी माँ कहाँ है ?

तैमूर : मैं नहीं जानता। मेरे सिपाहियों ने तेरी माँ को क़त्ल भी न किया होगा; क्योंकि उनकी तलवारों पर खून का एक भी धब्बा नहीं था।

बलकरन : आप मेरी मुराद पूरी करेंगे ? तो फिर आपसे मैं यही चाहता हूँ कि आप हमारे गाँव से बाहर चले जायें।

तैमूर : **(दुहराकर)** गाँव से बाहर चले जायें ? **(सोचकर)** मंजूर ! मैं दूसरे गाँव जाऊँगा। अपने छोटे बहादुर दोस्त की मुराद पूरी करूँगा। तेरा दूध और चाक़ू मुझे हमेशा याद रहेगा।

बलकरन : धन्यवाद !

तैमूर : मैं कुछ समझा नहीं। ख़ैर, तैमूर की ज़िन्दगी में एक नयी बात हुई। तैमूर के सामने कम लोग आते हैं—तू आया। तैमूर कम लोगों को माफ़ करता है, आज किया। वह काफ़िरों का खून पीता है, आज तुझ से छीनकर दूध पिया। यह एक मोजिज़ा (करामात) है।

बलकरन : मैं कुछ समझा नहीं।

तैमूर : **(अट्टहास कर)** तैमूर की बराबरी करना चाहता है ? लेकिन तू तैमूर से भी बड़ा है। तेरा चाक़ू उसकी तलवार से भी तेज़ निकला। तैमूर खूँख्वार है लेकिन बहादुरी को सलाम करता है। बहादुर बच्चे को तैमूर का सलाम ! **[फौजी ढंग से सलाम करता है।]**

बलकरन : **(उसी तरह)** सलाम !

तैमूर : तेरे गाँव को हाथ नहीं लगाऊँगा। सिपाहियों को हुक्म देकर वापस कर दूंगा। **(हाथ उठाकर)** खुदा हाफ़िज़ ! **[शीघ्रता से प्रस्थान]**

बलकरन : **(उसके जाने की दिशा में देखता हुआ)** तैमूर...बहादुरी को सलाम करता है ! **(फिर लौटता है। चारों ओर देखकर पुकारता है)** माँ...! माँ...! म...ाँ...ाँ...? **[शीघ्रता से कल्याणी का प्रवेश। वह अति शीघ्रता से बलकरन को हृदय से लगा लेती है।]**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कल्याणी : बेटा...बेटा...बलकरन ! [**सिसकने लगती है।**]

बलकरन : एँ, माँ ! तू रोती क्यों है ? तू कहाँ थी ?

कल्याणी : बेटा, तैमूर के सिपाही आये थे। उनसे बचाने के लिए ठाकुर दादा मुझे तलघर में खींच ले गये थे। तुझे तो कुछ नहीं हुआ, बेटा ! कहीं चोट तो नहीं आयी ? देखूं !

[**ग़ौर से बलकरन के शरीर को देखती है।**]

बलकरन : नहीं, माँ ! कहीं चोट नहीं आयी।

कल्याणी : तैमूर के सिपाहियों ने तो तुझे हाथ नहीं लगाया ?

बलकरन : जब ख़ुद तैमूर हाथ नहीं लगा सका, तो तैमूर के सिपाही कैसे हाथ लगायेंगे ?

कल्याणी : तैमूर हाथ नहीं लगा सका ? क्या तैमूर यहाँ आया था ? तुरक तैमूर ?

बलकरन : हाँ, माँ ! आया था। वह सारा दूध पी गया।

कल्याणी : सारा दूध पी गया ?

बलकरन : मैं सुजान के घर से दूध लाया था न, वही दूध सब पी गया।

कल्याणी : बेटा, वे लोग तो ख़ून पीते हैं।

बलकरन : पीते होंगे। लेकिन तैमूर ने तो सारा दूध पी लिया।

कल्याणी : तैमूर ने ? तुरक ने ?

बलकरन : हाँ, माँ ! तूने तो मुझे झूठ बोलना नहीं सिखलाया।

कल्याणी : नहीं, बेटा ! कैसा था तैमूर ?

बलकरन : तैमूर ? सिपाही की तरह, रोबीला चेहरा, मोटे-मोटे हाथ ! ऊँची नाक, हाथ में तलवार ! लेकिन माँ, मेरे पास भी चाक़ू था। मैंने सबेरे ही से उसे तेज़ किया था।

कल्याणी : उसकी तलवार के सामने तेरा चाक़ू किस काम आता ?

बलकरन : उसी चाक़ू ने तो उसे चौंका दिया। मुझे वह चाक़ू वाला बहादुर कहता था।

कल्याणी : (**आश्चर्य से**) अच्छा !

बलकरन : मैंने कहा, यह चाक़ू बड़ा तेज़ है। मैंने सवेरे ही उस पर धार रखी है। माँ ! उसे मैंने अपनी उँगली चीरकर दिखला दी। देखो, यह ख़ून !

कल्याणी : (**चीखकर**) ओह, यह ख़ून !

बलकरन : उसने नहीं निकाला। मैंने ही उँगली चीरकर गिराया है।

कल्याणी : (**घबराकर**) तेरी उँगली से ख़ून तो अभी तक निकल रहा है, बेटा !

बलकरन : उसकी कुछ चिन्ता नहीं है, माँ ! तैमूर कहता था कि तेरा चाक़ू मेरी तलवार से भी तेज़ निकला।

कल्याणी : क्या तूने चाक़ू से उस पर वार किया था ?

बलकरन : नहीं, माँ ! मैं तो लड़ना चाहता था पर वही मीठी-मीठी बातें करने लगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस तरह चलता था लँगड़ाकर। (**लँगड़ाकर चलता है और हाथ फैलाकर कहता है**) 'तैमूर खूंख्वार है, लेकिन बहादुरी को सलाम करता है। बहादुर बच्चे को तैमूर का सलाम !' [**फौजी ढंग से सलाम करता है।**]

कल्याणी : (**आश्चर्य और प्रसन्नता से**) वाह ! तू तो बिलकुल तैमूर ही बन गया।

बलकरन : मैं लँगड़ा नहीं बनना चाहता, माँ !

कल्याणी : (**हँसकर**) हाँ, लँगड़ा कभी न बने ! तू सब तरह से फले-फूले ! तेरी उमर दिन-दूनी रात-चौगुनी हो ! भगवान् को हज़ार-हज़ार धन्यवाद है कि उसने मेरे बच्चे की तैमूर से रक्षा की।

बलकरन : यह सब तेरा आशीर्वाद है, माँ !

कल्याणी : हाँ, बेटा, आज तेरी वर्षगाँठ है न ! (**चारों तरफ देखकर**) तुरक के सिपाहियों ने सारा घर तोड़-फोड़ डाला। तेरे लिए मैंने कितनी अच्छी मिठाइयाँ बनायी थीं, सब नष्ट हो गयीं। अब तेरी वर्षगाँठ कैसे मनाऊँ ?

बलकरन : अपना आशीर्वाद-भर दे दे, माँ ! और...

कल्याणी : और क्या ?

बलकरन : और, तू चन्दन लगाने के लिए कहती थी न ! मेरी उँगली के खून का रक्त-चन्दन बना ले।

कल्याणी : ओह, बेटे ! तू क्या कहता है ? आज मैं अकेली हूँ। [**सिसकती है।**]

बलकरन : अकेली क्यों ? भगवान् है और मैं हूँ, माँ !

कल्याणी : जुग-जुग जियो, मेरे लाल ! मैं तुझे भगवान् का अंश ही समझती हूँ। (**चौंककर खिड़की से देखती हुई**) यह पश्चिम में धूल कैसी उड़ रही है ? क्या फिर कोई आ रहा है ?

बलकरन : तैमूर और उसके सिपाही गाँव से बाहर जा रहे होंगे !

कल्याणी : वे तो गाँव लूट रहे होंगे और आदमियों का खून बहा रहे होंगे ?

बलकरन : नहीं, वे गाँव से बाहर जायेंगे, मैंने जो कह दिया है।

कल्याणी : तूने कह दिया है ? तेरा हुक्म वे क्यों मानने लगे ?

बलकरन : उनको मानना तो पड़ेगा ही, माँ ! तैमूर ने मेरी बहादुरी से खुश होकर मेरी एक बात पूरी करने को कहा।

कल्याणी : (**आश्चर्य से**) अच्छा !

बलकरन : मैंने कहा—आप और आपके लोग, इसी समय हमारे गाँव के बाहर चले जायें। तैमूर ने सोचा; फिर कहा, मंजूर ! मैं दूसरे गाँव जाऊँगा। अपने छोटे-से बहादुर दोस्त की मुराद पूरी करूँगा।

कल्याणी : धन्य ! मेरे लाल ! (**हृदय से लगाती है**) घर-घर में ऐसे लाल हों !

बलकरन : (**खिड़की से देखता हुआ**) हाँ, पश्चिम में तो बहुत धूल उड़ रही है। वे लोग बड़ी तेज़ी से वापस जा रहे हैं।

कल्याणी : हाँ, बेटे ! वापस जा रहे हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बलकरन : वह पश्चिम की धूल वाला तेरा कैसा गीत है ?

कल्याणी : अब तो उस गीत को बदलना पड़ेगा, मेरे बेटे, आज तेरी वर्षगाँठ के दिन।

बलकरन : तब मेरी उँगली से खून लेकर मुझे तिलक करके उसे बदलकर गाओ।

कल्याणी : उँगली के खून का तिलक लगाऊँ ? यही सही, मेरे लाल ! वीर बालक की वर्षगाँठ है। तेरी बारहवीं वर्षगाँठ ऐसे ही मनायी जाये !

[कल्याणी बलकरन की उँगली से खून लेकर तिलक करती है। फिर पहले गीत को बदलकर गाती है। बीच में फिर रक्त का तिलक लगाती है।]

गीत

तुम जाना घर से दूर...दूर...!
उठ रही है पश्चिम में धूर...
उठ रही है पश्चिम में धूर...
फिर गया तुरक—भग गया तुरक
नशे में चूर...चूर...!
तुम जाना घर से दूर...दूर...!

[बलकरन गम्भीर है। कल्याणी रक्त-चन्दन लगाती है।]

[धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 16 :

दीप-दान

•

पात्र-परिचय

कुँवर उदयसिंह — चित्तौड़ के स्वर्गीय महाराणा साँगा का सबसे छोटा पुत्र। राज्य का उत्तराधिकारी। आयु 14 वर्ष।

पन्ना (धाय माँ) — खीची जाति की राजपूतानी। कुँवर उदयसिंह का संरक्षण करनेवाली धाय। आयु 30 वर्ष।

सोना — रावल सरूपसिंह की लड़की। अत्यन्त रूपवती और नटखट। कुँवर उदयसिंह के साथ खेलनेवाली। आयु 16 वर्ष।

चन्दन — धाय माँ का पुत्र। साहस और स्नेह का प्रतीक। आयु 13 वर्ष।

सामली—अन्तःपुर की परिचारिका। आयु 28 वर्ष।

कीरत—जूठी पत्तल उठानेवाला बारी। आयु 40 वर्ष।

बनवीर — महाराणा साँगा के भाई पृथ्वीराज का दासी-पुत्र। क्रूर और विलासी। आयु 32 वर्ष।

•

काल—1536 ई०

समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

स्थान—कुँवर उदयसिंह का कक्ष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दीप-दान

निर्देश—पूरी सजावट है। दरवाजों पर रेशमी परदे पड़े हैं। एक पार्श्व में उदयसिंह की शैया है। सिरहाने पन्ना (धाय माँ) के बैठने का स्थान है।

[नेपथ्य में नारियों की सम्मिलित नृत्य-ध्वनि। मृदंग और कड़खे की रमक। फिर नारियों का सम्मिलित कण्ठ से गान]

कङ्कण बंधन रण चढण, पुत्र बधाई चाव।
तीन दिहाड़ा त्याग रा, काँई रंक काँई राव।
काँई रंक काँई राव।
काँई रंक काँई राव।।

[फिर नृत्य की ध्वनि]

घर जाताँ ध्रंम पलटताँ, त्रिया पडंता ताव।
ए तीनहु दिन मरण रा, काँई रंक काँई राव।
काँई रंक काँई राव।
काँई रंक काँई राव।।

[यह संगीत नेपथ्य में धीरे-धीरे हलका सुनाई पड़ता है।]

उदयसिंह : (**दौड़ता हुआ आता है, पुकारता है**) धाय माँ, धाय माँ! (**कोई उत्तर नहीं मिलता। अपने-आप**) धाय माँ कहाँ हैं? (**फिर पुकारकर**) **धाय माँ!**

पन्ना : (**भीतर से आती हुई**) क्या है, कुँवर! (**देखकर**) अरे! साँझ हो गई और तुमने अभी तक अपनी तलवार म्यान में नहीं रखी?

उदयसिंह : धाय माँ, देखो न कितनी सुन्दर-सुन्दर लड़कियाँ नाच रही हैं। गीत गाती हुई तुलजा भवानी के सामने नाच रही हैं। चलो न! देखो न!

पन्ना : मैं नहीं देख सकूँगी, लाल!

उदयसिंह : नहीं, धाय माँ, चलो न! थोड़ी देर के लिए चलो न?

पन्ना : नहीं, कुँवर! मुझे इस समय नाच देखना अच्छा नहीं लगता।

उदयसिंह : क्यों नहीं अच्छा लगता? मैं तो उन्हें बड़ी देर तक देखता रहा। और वे भी...वे भी तो मुझे बड़ी देर तक देखती रहीं, धाय माँ! मैं कितना अच्छा हूँ, धाय माँ!

पन्ना : बहुत अच्छे हो। तुम तो चित्तौड़ के सूरज हो। महाराणा साँगा जी के छोटे

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुँवर। सूरज की तरह तुम्हारा उदय हुग्रा है। तभी तो तुम्हारा नाम कुँवर उदयसिंह रखा गया है।

उदयसिंह : (**हँसकर**) ग्रच्छा, यह बात है। पर क्या रात में भी सूरज का उदय होता है ? मैं तो रात में भी हँसता-खेलता रहता हूँ।

पन्ना : दिन में तो तुम चित्तौड़ के सूरज हो, कुँवर ! ग्रौर रात में तुम राजवंश के दीपक हो, महाराणा साँगा के कुल-दीपक।

उदयसिंह : कुल-दीपक ! कहीं तुम मुझे दान न कर देना, धाय माँ ! वे नाचने वाली लड़कियाँ तुलजा भवानी की पूजा में दीप-दान करके ही नाच रही हैं। वे दीपक छोटे-से कुंड में कैसे नाचते हैं, धाय माँ ! (**मचले हुए स्वर में**) चलो न, धाय माँ ! तुम उनका दीप-दान देख लो। जिस तरह उनके दीपक नाचते हैं उसी तरह वे भी नाच रही हैं।

पन्ना : मैं इस समय कुछ नहीं देखूँगी, कुँवर !

उदयसिंह : (**रूठकर**) तो जाग्रो, मैं भी नहीं देखूँगा। मैं उदयसिंह भी नहीं बनूँगा, ग्रौर कुल-दीपक भी नहीं। कुछ नहीं बनूँगा।

पन्ना : रूठ गये, कुँवर ! रूठने से राजवंश नहीं चलते। जाग्रो, विश्राम करो। देखो, तुम्हारे कपड़ों पर धूल छा रही है। दिन-भर तुम तलवार का खेल खेलते रहे, थक गये होगे। जाग्रो, शैया पर सो जाग्रो। मैं तुम्हारी तलवार ग्रलग रख दूँगी।

उदयसिंह : (**रूठे हुए स्वर में**) तब तो मैं तलवार के साथ ही सो जाऊँगा।

पन्ना : ग्रभी वह समय नहीं ग्राया, कुँवर ! चित्तौड़ की रक्षा में तुम्हें कई दिनों तक तलवार के साथ ही सोना पड़ेगा।

उदयसिंह : (**रूखे स्वर में**) तुम्हें तलवार से डर लगता है, जो बार-बार तलवार रखने को कहती हो ?

पन्ना : तलवार से डर ? चित्तौड़ में तलवार से कोई नहीं डरता, कुँवर ! जैसे लता में फूल खिलते हैं न, वैसे ही यहाँ वीरों के हाथों में तलवार खिलती है......तलवार चमकती है।

उदयसिंह : (**उसी तरह रूखे स्वर में**) ग्रब मेरा मन बहलाने लगी ? तुम नाच देखने नहीं चलती तो मैं ही ग्रकेला चला जाऊँगा। मैं जाता हूँ। [**जाने को उद्यत होता है।**]

पन्ना : नहीं, कुँवर ! तुम कभी रात में ग्रकेले नहीं जाग्रोगे। चारों तरफ जहरीले सर्प घूम रहे हैं। किसी समय भी तुम्हें डँस सकते हैं।

उदयसिंह : सर्प ? कैसे सर्प ?

पन्ना : तुम नहीं समझोगे, कुँवर ! जाकर सो जाग्रो। थक गये होगे। भोजन के लिए मैं जगा लूँगी।

उदयसिंह : नहीं, माँ ! ग्राज न मैं भोजन करूँगा ग्रौर न ग्रपनी शैया पर ही सोऊँगा।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[प्रस्थान के लिए उद्यत]

पन्ना : **(रोकते हुए)** सुनो, सुनो कुँवर !

[उदयसिंह का प्रस्थान]

पन्ना : चले गये ! कुँवर का रूठना भी मुझे अच्छा लगता है। मना लूँगी। नाच-गान, दीप-दान ! इसी से चित्तौड़ की रक्षा होगी ? चित्तौड़ में यह बहुत हो चुका, बहुत हो चुका। और अब तो बनवीर का राज्य है।

[नूपुर-नाद करते हुए एक किशोरी का प्रवेश]

किशोरी : धाय माँ को प्रणाम !

पन्ना : कौन ?

किशोरी : मैं हूँ, सोना ! रावल सरूप सिंह की लड़की। कुँवर जी कहाँ हैं ?

पन्ना : वे थक गये हैं, सोना चाहते हैं।

सोना : सोना चाहते हैं, तो मैं भी तो सोना हूँ ! **[अट्टहास]**

पन्ना : चुप रह, सोना ! कुँवर जी रूठकर सोने चले गये हैं। तुम लोग कुँवर को नाच-गाने की ओर खींचना चाहती हो !

सोना : क्या तुलजा भवानी के सामने नाचना कोई बुरी बात है ? आज हम लोगों ने दीप-दान किया और मन-भर कर नाचा—यों **(नाचती है)**। कुँवर जी भी तो बड़ी देर तक हमारा नाच देखते रहे। मैं भी उनको देखकर बहुत नाची। उनको हमारा नाच बहुत अच्छा लगा, बहुत अच्छा ! देखो, पैरों की यह ताल ! **[नूपुर की झनकार]**

पन्ना : बस-बस, सोना ! अगर तू रावल जी की लड़की न होती तो...

सोना : कटार भोंक देतीं ? कटार ! **(अट्टहास करती है)** धाय माँ, तुमने उदयसिंह के सामने तो अपने पुत्र चन्दन को भी भुला दिया। तुम्हारे मातृत्व में उदयसिंह ऐसे समाये हैं, जैसे कटार को अपने हृदय में रखने के लिए म्यान ने अपना हृदय खोखला कर दिया हो। **(हँसती है)** खोखला !

पन्ना : यह कविता रहने दे। जानती नहीं बनवीर का राज्य है।

सोना : ओहो, बनवीर ! उन्हें श्री महाराजा बनवीर कहो। बागड़ के इलाके से वे हाथी-घोड़ों की झूल लाये थे...हाँ, झूल। इतनी बड़ी। हमारे लिए भी तो वे एक रेशम की झूल लाये थे। उन्हें सिर से ओढ़कर नाचने से ऐसा लगता था, ऐसा लगता था, जैसे मकड़ी के जाले के आर-पार चन्द्रमा की किरणें थिरक रही हैं। हाँ......

पन्ना : बहुत नाचती हो, बनवीर की तुम पर बड़ी कृपा है।

सोना : द्रौपदी के चीर की तरह। आज प्रातःकाल उन्होंने मुझे बुलाया और कहा... धाय माँ ! तुम बुरा तो नहीं मानोगी ?

पन्ना : मैं क्यों बुरा मानूँगी ?

सोना : उन्होंने कहा, महल में धाय माँ अरावली पहाड़ बनकर बैठ गई है। अरावली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहाड़। (**हँसती है**) तो तुम लोग बनास नदी बनकर बहो न! खूब नाचो, गाओ। यों आज कोई उत्सव का दिन नहीं था, फिर भी उन्होंने कहा, मेरे बनवाये हुए मयूर पक्ष कुंड में दीप-दान करो। मालूम हो, जैसे भवसागर में आत्माएँ तैर रही हों, या जैसे मेघ पानी-पानी हो गये हों और बिजलियाँ टुकड़े-टुकड़े हो गई हों।

पन्ना : बड़ी उमंग में हो आज?

सोना : दीपकों के साथ उमंगें भी लौ देने लगी हैं, धाय माँ! सारा जीवन ही एक दीपावली का त्योहार बन गया है।

पन्ना : तो यही त्योहार मना रही हो तुम?

सोना : मैं ही क्या, सारे नगर-निवासी यह त्योहार मना रहे हैं, नहीं मना रही हो तो तुम! धाय माँ, तुम! पहाड़ बनने से क्या होगा? राजमहल पर बोझ बन कर रह जाओगी, बोझ! और नदी बनो तो तुम्हारा बहता हुआ बोझ पत्थर भी अपने सिर पर धारण करेंगे, पत्थर भी! आनन्द और मंगल तुम्हारे किनारे होंगे, जीवन का प्रवाह होगा, उमंगों की लहरें होंगी जो उठने में गीत गायेंगी, गिरने में नाच नाचेंगी। गीत और नाच, धाय माँ! गीत और नाच! जैसे सुख और सुहाग एक साथ हँस रहा हो। और जब दीप-दान का दीपक अपने मस्तक पर लेकर चलोगी, धाय माँ, तो ज्ञात होगा, धाय माँ, जैसे शुक्र तारे को मस्तक पर रखकर उषा आ रही है।

पन्ना : बनवीर के अनुग्रह ने तुम्हें पागल बना दिया है, सोना!

सोना : धाय माँ! पागल कौन नहीं है? महाराणा विक्रमादित्य अपने सात हजार पहलवानों के साथ पागल हैं। मल्ल-क्रीड़ा ही तो उनका पागलपन है। महाराज बनवीर महाराणा विक्रमादित्य की आत्मीयता से पागल हैं। वे विक्रमादित्य के अन्तःपुर में प्रलाप करते हैं। यह आनन्द ही उनका पागलपन है। सारा नगर आज के त्योहार में पागल है। तुम कुँवर उदयसिंह के स्नेह में पागल हो और मैं? (**हँसकर**) मेरी कुछ न पूछो, धाय माँ! मैं तो इन सब के पागलपन में पागल हूँ। तुम चाहे जो कहो। हाँ, तो कुँवर उदयसिंह कहाँ हैं?

पन्ना : कुँवर उदयसिंह को छोड़ो, सोना! वे बहुत थक गये हैं। अब सो रहे होंगे। तुम जाओ। यहाँ कहीं तुम्हारा पागलपन कम न हो जाय?

सोना : मेरा पागलपन? धाय माँ, पागलपन कहीं कम होता है? पहाड़ बढ़कर कभी छोटे हुए हैं? नदियाँ आगे बढ़कर कभी लौटी हैं? फूल खिलने के बाद कभी कली बने हैं? सब आगे बढ़ते हैं। नहीं बढ़ती हो तो सिर्फ तुम, सदा एक-सी। तुम्हारा पागलपन भी सदा एक-सा। मैं रावल की बेटी हूँ, शायद सामन्त की बेटी बनूँ, शायद महाराज की बेटी बनूँ! कुछ बढ़कर ही बनूँगी। और तुम धाय माँ! सिर्फ धाय माँ ही रहोगी।

पन्ना : सोना! मुझे किसी से ईर्ष्या नहीं है। मैं जैसी हूँ अच्छी हूँ। राजसेवा में जीवन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जा रहा है—यही मेरे भाग्य की बात है।

सोना : भाग्य ! भाग्य तो सबके होता है, धाय माँ ! ये नूपुर मेरे पैरों में पड़े हैं तो इनका भी भाग्य है। मेरे पैरों की गति में गीत गाते हैं, तो वह भी इनका भाग्य है। मेरे आगमन का संदेश पहले ही पहुँचा देते हैं, तो वह भी इनका भाग्य है। और जब मेरे पैर रुक जाते हैं तो ये मौन हो जाते हैं, वह भी इनका भाग्य है। भाग्य तो सबके होता है, धाय माँ ! तुम नगर के उत्सव में भाग नहीं ले रही हो, न लो। महाराज बनवीर का साथ नहीं दे रही हो, न दो। मैं कौन होती हूँ बीच में बोलने वाली ?

पन्ना : तो क्या मेरे उत्सव में जाने और न जाने का सम्बन्ध बनवीर की इच्छा से है ?

सोना : फूल कुछ कहता है ? अपनी सुगन्धि भेज देता है। दीपक कोई संदेश भेजता है ? पतंगे आप-से-आप आ जाते हैं।

पन्ना : मैं जानती हूँ इस दीपक की आग में मैं जल जाऊँगी।

सोना : तो कुँवर को भेज देतीं। उनको तो कोई आग न छू सकती ?

पन्ना : कैसे भेज देती ? इतने आदमियों के बीच उसे कैसे भेज देती ? महाराज साँगा के वंश के एक वही तो उजाले हैं। महाराणा रतनसिह तीन ही वर्ष राज करके सूर्य लोक चले गये। विक्रमादित्य भी बनवीर की कूटनीति से अधिक दिनों तक...

सोना : धाय माँ, तुम विद्रोह की बातें करती हो।

पन्ना : आँधी में आग की लपट तेज ही होती है, सोना ! तुम भी उसी आँधी में लड़खड़ाकर गिरोगी। तुम्हारे ये सारे नूपुर बिखर जायेंगे। न जाने किस हवा का झोंका तुम्हारे इन गीत की लहरों को निगल जायेगा। यह सुख और सुहाग पास-पास उठे हुए दो बुलबुलों की तरह बिना सूचना दिये फूट जायेगा। चित्तौड़ राग-रंग की भूमि नहीं है, जौहर की भूमि है। यहाँ आग की लपटें नाचती हैं, सोना जैसी रावल की लड़कियाँ नहीं।

सोना : (**क्रोध से चीखकर**) धाय माँ !

पन्ना : तोड़ो ये नूपुर ! बनवीर की आग की कलियो ! तुम्हारे पीछे काली राख है—यह मत भूल जाना। ये अतृप्त इच्छाओं की चिनगारियाँ अधजली होकर चिटकेंगी और चित्तौड़ की आँखों में किरकिरी बनकर कसकेंगी। यह आग की ज्वाला हवनकुंड को भी जला देगी, सोना ! इसे बुझा दो। तुम्हारे इस त्योहार से चित्तौड़ परिचित नहीं है। यहाँ का त्योहार आत्म-बलिदान है। यहाँ का गीत मातृभूमि की वन्दना का गीत है। उसे सुनो और समझो।

सोना : (**शान्त स्वर में**) समझ लिया, धाय माँ !

पन्ना : तो यहाँ से जाओ। देखना, इस त्योहार के पीछे कोई कूटनीति न हो। बनवीर से पूछना, इस रास-रंग का क्या अर्थ है ?

सोना : वह मेरी समझ में नहीं आवेगा, धाय माँ !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पन्ना : तो जाग्रो, दिशाग्रों की तरह उसकी हँसी में डूबी रहो। तुमसे प्रतिध्वनि भी न निकल सके।

[सोना का धीरे-धीरे प्रस्थान। उसके नूपुर धीरे-धीरे बजते हुए दूर तक सुन पड़ते हैं।]

पन्ना : ग्रँधेरी रात ! यह रास-रंग ! नगर के सब लोगों का जमाव ! कुँवर उदयसिंह के लिए बुलावा ! यह सब क्या है ?

[चन्दन का प्रवेश]

चन्दन : **(दूर से पुकारते हुए)** माँ ! माँ !

पन्ना : क्या, मेरे लाल ?

चन्दन : माँ ! इतनी कविता बनाने वाली, इतने गीत गाने वाली, इतना नाचने वाली सोना धीरे-धीरे कैसे जा रही थी ? गुम-सुम, जैसे किसी ने साँप का ज़हर खींच लिया हो।

पन्ना : साँप का ज़हर ?

चन्दन : हाँ, ज़हरीली तो है ही। जब बोलती है तो बातों की ऐसी चोट करती है कि कुछ कहते ही नहीं बनता। वह तो हमेशा उछलती-कूदती जाती थी। ग्राज तो जैसे उसके पैर में मोच ग्रा गई हो ?

पन्ना : ग्राई थी कुँवर को बुलाने, ग्रपना नाच दिखलाने। मैंने कुँवर को नहीं जाने दिया तो बुरा मान गई।

चन्दन : हाँ, माँ ! कुछ दिनों से कुँवर हमारे साथ नहीं खेलते, इसी के यहाँ चले जाते हैं। मैं भी उनके पीछे जाता हूँ। वह कुँवर की ग्रोर देखती है ग्रौर कुँवर उसकी ग्रोर देखते हैं। कहते तो कुछ नहीं, बस देखते हैं। पता नहीं इस तरह देखने से क्या होता है। देखने से क्या होता है, माँ ?

पन्ना : कुछ नहीं। लोग देवता के दर्शन करते हैं न, तो उन्हें ग्रानन्द मिलता है। मैं कुँवर से कह दूँगी कि वे भी देवता की तरफ देखा करें, सोना की तरफ नहीं।

चन्दन : तो सोना बुरा न मान जायगी, माँ ?

पन्ना : लोगों के बुरा मानने से क्या होता है। भगवान् को बुरा नहीं मानना चाहिए। तुम तो किसी को नहीं देखते, चन्दन ?

चन्दन : देखता हूँ, माँ ! पहाड़ी खरगोश को। ग्रोह, कैसी छलाँग भरता है, माँ ! जैसे उसमें बिजली भरी हो। पलक मारते ही पहाड़ की इस चोटी से उस चोटी पर पहुँच जाता है। पहाड़ी खरगोश से बढ़कर ग्रौर कौन-सी चीज़ है यहाँ ? उसे देखकर फिर किसी को देखने की इच्छा नहीं होती।

पन्ना : पहाड़ी खरगोश का क्या कहना है, चन्दन ! उसी तरह वीरों को भी धावा करना चाहिए।

चन्दन : हाँ, मैं भी उतनी ही तेजी से दौड़ सकूँगा—ज़मीन से ग्रासमान तक।

पन्ना : ज़मीन से ग्रासमान तक कोई नहीं दौड़ता। हाँ, तू नाच देखने तो नहीं गया था ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्दन : माँ, धावा करने वाले कहीं नाच देखते हैं ? मुझे तो वह अच्छा नहीं लगता। हाँ, कुँवर को अच्छा लगता है। कुँवर कहाँ है, माँ !

पन्ना : रूठ कर सो गये हैं।

चन्दन : क्यों, भोजन करने में ? उन्होंने भोजन कर लिया ?

पन्ना : नहीं। पर कुँवर तुम्हारे उठाने से न उठेंगे। तुम भोजन कर लो। मैं थोड़ी देर बाद उन्हें उठाकर, बहलाकर भोजन करा दूँगी।

चन्दन : मुझे अकेले भोजन करना अच्छा न लगेगा, माँ !

पन्ना : भोजन कर लो, मेरे चन्दन ! मेरे लाल ! सज्जा ने तुम्हारे लिए अच्छा भोजन बनाया है। वह तुम्हें अच्छी-अच्छी बातें सुनाती हुई भोजन करा देगी। मैं भी अभी आती हूँ। तुम्हारी माला टूट गई थी, उसी को ठीक कर रही हूँ। बस, थोड़े दाने और रह गये हैं।

चन्दन : माँ ! कल कुँवर की माला भी ठीक कर देना। वह भी टूट रही है। सोना ने उसे पकड़कर खींच दिया था।

पन्ना : अच्छा, चन्दन ! वह भी ठीक कर दूँगी।

[चन्दन का प्रस्थान]

पन्ना : (**सोचते हुए**) मेरा भोला लाल ! जब पूछा कि तुम तो किसी को नहीं देखते, तो कहता है, देखता हूँ, माँ ! पहाड़ी खरगोश को। (**हँसते हुए**) पहाड़ी खरगोश को ! वाह रे मेरे चन्दन ! कहता है, धावा करनेवाले कहीं नाच देखते हैं। वह तो दौड़ते हैं जमीन से आसमान तक...जमीन से आसमान तक।

[एकाएक घर की कुछ चीज़ों के गिरने की धमक। शीघ्रता से सामली का प्रवेश]

सामली : (**चीखकर पुकारती हुई**) धाय माँ ! धाय माँ !

पन्ना : कौन ? कौन सामली ?

सामली : (**बिलखते हुए**) धाय माँ, धाय माँ। कुँवर कहाँ हैं ? कुँवरजी कहाँ हैं ?

पन्ना : क्यों कुँवरजी को क्या हुआ ?

सामली : उनका जीवन संकट में है।

पन्ना : कहाँ ? कैसे ? यह तुम क्या कह रही हो ?

सामली : उनका जीवन बचाओ, धाय माँ !

पन्ना : (**चीखकर**) सामली ! कहाँ है कुँवरजी ?

[अन्दर की तरफ भागती है।]

सामली : (**बिलखते हुए**) हाय ! सर्वनाश हो रहा है। क्या मेवाड़ को ऐसे ही दिन देखने थे ? क्या चित्तौड़ के साके का यही फल होना था ? हाय ! क्या हो रहा है ? तुलजा भवानी ! तुम चित्तौड़ की देवी हो। कैसे कहूँ कि तुम्हारे त्रिशूल में अब शक्ति नहीं रही। मेवाड़ का भाग्य...

पन्ना : (**फिर प्रवेश कर**) सो रहा है। मेरा कुंवर सो रहा है। कहीं तो कुछ नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ । कुँवरजी रूठ गये थे । वे तलवार लिए हुए भूमि पर ही सो गये । तलवार उनके हाथों से खिसक गई है, पर वे तो शान्ति से सो रहे हैं। मेरे कुँवर को कुछ नहीं हुआ ।

सामली : कुँवर अच्छे हैं । तुलजा भवानी कुशल करें ! पर, धाय माँ ! महाराणा विक्रमादित्यजी की हत्या हो गई ।

पन्ना : (**चीखकर**) महाराणा की हत्या हो गई ? किसने की ?

सामली : बनवीर ने । महाराणा सो रहे थे । उसने अवसर पाकर उनकी छाती में तलवार भोंक दी ।

पन्ना : (**चीखकर**) हाय ! महाराणा विक्रमादित्यजी ! यह मैं पहले ही जानती थी। [**सिसकने लगती है ।**]

सामली : बनवीर ने नगर-भर में आज नाच-गान का त्योहार मनवाया, जिससे नगर-निवासियों का ध्यान नाच-रंग में ही रहे । मौका देखकर वह राजमहल गया । अन्तःपुर में वह आता-जाता था । किसी ने रोका नहीं । उसने महाराणा के कमरे में जाकर उनकी हत्या कर दी । [**सिसकियाँ लेने लगती है ।**]

पन्ना : (**स्थिर होकर**) आज कुसमय नाच-रंग की बात सुनकर मेरे मन में शंका हुई थी । इसीलिए मैंने कुँवर को वहाँ जाने से रोक दिया था । संभव था कि कुँवर वहाँ जाते और बनवीर अपने सहायकों से कोई कांड रच देता ।

सामली : इसीलिए मैं दौड़ आयी हूँ, धाय माँ ! लोगों ने बनवीर को कहते सुना है कि वह कुँवर उदयसिंह को भी सिंहासन का अधिकारी समझकर जीवित रहने नहीं देगा । वह निष्कंटक राज्य करेगा, धाय माँ !

पन्ना : विलासी और अत्याचारी राजा कभी निष्कंटक राज्य नहीं कर सकता ।

सामली : लेकिन रक्त से भीगी तलवार लेकर वह सीना ताने हुए अपने महल में गया है ।

पन्ना : लोगों ने उसे पकड़ा नहीं ? सैनिक चुपचाप देखते ही रहे ?

सामली : सैनिकों को उसने अपनी तरफ मिला लिया है । लोग उससे डरते हैं । महाराणा विक्रमादित्य का राज्य भी तो ऐसा नहीं था कि लोग उनसे प्रेम रखते । उनके पहलवानों की सहायता से राज्य नहीं चल सकता । सभी सामन्त महाराणा से असन्तुष्ट थे ।

पन्ना : अब क्या होगा ?

सामली : थोड़ी देर बाद ही वह कुँवरजी को मारने आयेगा । आज की रात बहुत अँधेरी है । आज की रात में ही वह अपने को पूरा महाराणा बना लेना चाहता है । किसी तरह से हो, कुँवरजी की रक्षा होनी चाहिए, धाय माँ !

पन्ना : कुँवरजी की रक्षा...(**सोचते हुए**) कुँवरजी की रक्षा ? अवश्य होगी...अवश्य होगी । अब मेवाड़ का उत्तराधिकारी एक यही तो राजपूती-रक्त है । दासी-पुत्र बनवीर को चित्तौड़ सहन नहीं कर सकेगा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामली : यह तो आगे की बात है, पर तुम कुंवरजी की रक्षा किस तरह करोगी ?

पन्ना : मैं ? मैं इस अँधेरी रात में ही उसे लेकर कुंभलगढ़ भाग जाऊँगी।

सामली : और चन्दन कहाँ रहेगा ?

पन्ना : जहाँ भगवती तुलजा उसे रखेंगी। मेरे महाराणा का नमक मेरे रक्त से भी महान् है। नमक से रक्त बनता है, रक्त से नमक नहीं।

सामली : धन्य हो, धाय माँ ! पर तुम अँधेरी रात में नहीं भाग सकोगी।

पन्ना : क्यों ? अँधेरी रात में मुझे कौन जानेगा ? कौन पहिचानेगा ?

सामली : तुम महलों से निकल भी न सकोगी। आते समय मैंने देखा था कि बनवीर के सैनिक तुम्हारा महल घेरने को आ रहे थे। एक ओर से तो तुम्हारा महल घिर ही चुका था।

पन्ना : हा ! भगवान् एकलिंग ! अब क्या होगा ?

सामली : जैसे भी हो, कुंवरजी की रक्षा तुम्हें करनी ही है।

पन्ना : मुझे सैनिकों की सहायता नहीं मिल सकती ?

सामली : सैनिक तो उसके हैं, धाय माँ !

पन्ना : और सामन्त ?

सामली : उनमें अभी इतना साहस नहीं है।

पन्ना : तब मैं स्वयं तलवार लेकर कुँवर की रक्षा करूँगी। भैरवी बनकर युद्ध करूँगी। मरते-मरते मैं उसकी तलवार के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगी। उसके और मेरे कुँवर के बीच में मेरे खून का समुद्र लहराएगा जिसे वह इस जीवन में पार भी न कर सकेगा।

सामली : उसके साथ सैनिक भी हो सकते हैं, धाय माँ ! युद्ध में तुम्हारे प्राण जायेंगे और कुँवरजी भी न बचेंगे।

पन्ना : तो फिर क्या करूँ ? सामली ! घुटने टेककर कुँवर की जीवन-भिक्षा माँगूंगी। बनवीर मनुष्य है। उसके मन में कुछ तो दया होगी।

सामली : राजा की हत्या करने के बाद दासी-पुत्र मनुष्य है ? वह जंगली पशु से भी गया-बीता है।

पन्ना : फिर मेरे कुँवर कैसे बचेंगे ? कैसे बचेंगे मेरे कुँवर ?

[सिसकी]

सामली : इसका उपाय मैं क्या बताऊँ, धाय माँ ! मैं तो महल की एक परिचारिका हूँ। मैं क्या कहूँ ? पर इतना कहे जाती हूँ कि वह क्रूर और अत्याचारी बनवीर आता ही होगा। सर्प की तरह उसकी भी दो जीभें हैं जो एक रक्त से नहीं बुझेंगी। उसे दूसरा रक्त भी चाहिए। और वह कुँवर का...तुम कुछ बोल नहीं रही हो, धाय ! आँखें बन्द कर क्या सोच रही हो ?

पन्ना : भगवती तुलजा का ध्यान कर रही हूँ कि वे मुझे शक्ति दें कि मैं कुँवर की रक्षा कर सकूँ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामली : इस समय कुँवर की रक्षा शक्ति से नहीं हो सकेगी। कोई युक्ति ही काम दे सकती है। (**चौंककर**) कौन आ रहा है ?

पन्ना : (**ज़ोर से**) दरवाज़े पर कौन है ?

[**कीरत बारी का प्रवेश**]

कीरत : अन्नदाता ! कीरत बारी हौं। धाय माँ के चरन लागों।

पन्ना : कीरत ! तुम हो। आ गये। बाहर तो कोई नहीं है ?

कीरत : अन्नदाता ! बाहर सिपाहियों का डेरा लग रहा है। जान नहीं पड़ता अन्न-दाता कै आधी रात कौ जे का हो रहा है। पैंडें में किसी का भी पैसारा नहीं हो पाता। मैं तो बारी हौं इससे कोई कुछ बोला नहीं।

पन्ना : तो तुम बेखटके चले आये ?

कीरत : अन्नदाता ! मैं तो जूठी पत्तल उठाता हूँ। कोई मालमत्ता तो मेरे पास है नहीं। टोकनी है और उसमें पत्ते हैं। कुँवर जू ने व्यारू कर ली, धाय माँ ? मैं जूठन पा लूं।

पन्ना : नहीं।

कीरत : कुँवर जू जुग-जुग जिएँ, धाय माँ ! जब से कुँवर जू बूंदी से आये हैं तब से सगर महल में उजियारा फैल गया है। राना विक्रमाजीत जब हर भजन करेंगे तो धाय माँ, अपना चौंर छत्तर कुँवर जू को ही तो सौंपेंगे। और जब कुँवर जू राना होयेंगे तो सगर जहान उनको बन्दगी करने आयेगा। सच जानो, धाय माँ ! कुँवर जू के सरूप दर्शन दाखिल हैं। मैं तो उनके लिए अपनी जान तक हाजिर कर सकता हूँ। (**ठहरकर**) धाय माँ, कुछ सोच रही हैं ?

पन्ना : (**चौंककर**) एँ ! हाँ, मैं सोच रही हूँ। (**सामली से**) तुम बाहर जाके देखो सिपाही कहाँ-कहाँ खड़े हैं और कितने सिपाही हैं।

सामली : बहुत अच्छा, धाय माँ ! मैं जाती हूँ। [**प्रस्थान**]

पन्ना : तो कीरत ! तुम कुँवरजी को बहुत प्यार करते हो ?

कीरत : अन्नदाता ! प्यार कहने में जबान पर कैसे आवे ? वो तो दिल की बात है। मौके पै ही देखा जाता है। और कहने को तो मैं कही चुका हूँ कि उनके लिए अपनी जान तक हाजिर कर सकता हौं।

पन्ना : जान तक हाजिर कर सकते हो ?

कीरत : ऐसी बातों में तीन तिर बाचा नई हराते, धाय माँ ! मौके पै ही देखा जाता है।

पन्ना : तो वह मौका आ गया है, कीरत !

कीरत : मौका ? कैसा मौका ?

पन्ना : कुँवरजी को बचाने का।

कीरत : कौन के सिर पै भैरू बाबा की आँख चढ़ी है जो कुँवरजी का बाल भी बाँका कर सके ? और कीरत के रहते ? धाय माँ ! हँसी तो नहीं कर रही हैं, अन्नदाता ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पन्ना : नहीं, कीरत ! हँसी का समय नहीं है। कुँवरजी के प्राण संकट में हैं।

कीरत : कौन है जिसने सूरज पै धूर उछाली है ?

पन्ना : बनवीर।

कीरत : अरे, वो बनवीर जो महाराना विक्रमाजीत के दरबार में बन्दर सरीखा नाचता है ?

पन्ना : बहुत बातों का समय नहीं है, कीरत ! बोलो, कुँवरजी को बचाओगे ?

कीरत : तो मैं तलवार ले आऊँ ?

पन्ना : तलवार लाने का समय नहीं है। इस समय लड़ने से काम नहीं चलेगा। एक तरकीब करना होगा।

कीरत : हुकुम दें, अन्नदाता !

पन्ना : भवानी तुलजा ने मेरे मन में सब उपाय सुझा दिये हैं।

कीरत : हाँ, ध्यान तो कर रही थीं आँख मूँद के। तो भवानी ने कौन-सा हुकुम करा ?

पन्ना : उसे मानोगे ?

कीरत : अन्नदाता ! सिर माथे। सिर चढ़ा के मानूंगा।

पन्ना : अच्छा, तो सुनो। तुम बारी हो। तुम्हें बाहर जाने से कोई नहीं रोकेगा। तुम तो टोकरी में जूठी पत्तल उठा के जाते ही हो।

कीरत : ठीक कहती हैं, अन्नदाता ! आते वक्त भी किसी ने नहीं रोका।

पन्ना : तो तुम कुँवरजी को टोकरी में लिटाकर उन पर गीली पत्तलें डाल कर महल से बाहर निकल जाओ।

कीरत : वाह ! अन्नदाता ने खूब सोचा, खूब सोचा। मैं ऐसे निकल जाऊँगा कि सिपाही लोग मुँह देखते ही रह जायेंगे। तो कुँवरजी कहाँ हैं ?

पन्ना : सो रहे हैं। आज भूमि पर ही सो गये। उन्हें धीरे से उठाकर अपनी टोकरी में सुला लेना। वे जागने न पावें।

कीरत : अन्नदाता ! उनको पता भी नहीं चलेगा कि वे कहाँ से कहाँ सो रहे हैं।

पन्ना : **(गहरी साँस लेकर)** चित्तौड़ का राजकुमार पत्तल ओढ़ के सोयेगा, कौन जानता था ?

कीरत : यह सब भाग की बात है, अन्नदाता ! आज पत्तल ओढ़ के सोयेंगे कल साल-दुशाला ओढ़ेंगे।

पन्ना : तो तुम जाओ, जल्दी करो !

कीरत : बहुत अच्छा, अन्नदाता ! कुँवरजी कहाँ हैं ?

पन्ना : मेरे कमरे में नीचे ही सो गये हैं। तुम उन्हें उठा के तो ले जा सकोगे ?

कीरत : अन्नदाता ! अगर हुकुम दें तो बनवीर तक को सिर पै उठा के ले जा सकता हूँ।

पन्ना : ठीक है। तुम्हारी टोकरी तो काफी बड़ी है ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कीरत : अन्नदाता ! आपके जस ने ही तो मेरी टोकरी बड़ी कर दी है। सारे राजमहल की पत्तलें छोटी टोकरी में कैसे आ सकती हैं ? और अन्नदाता ! आज तो बनवीर के साथ बहुत सामन्तों ने खाया है। मैंने भी सोचा आज बड़ी टोकरी ले चलूं। सो वो ही लाया हूँ।

पन्ना : तो चलो, मैं तुम्हारी मदद कर दूं।

कीरत : अन्नदाता ! आप तकलीफ न उठायें। मैं सब कर लूंगा।

पन्ना : और हाँ, कुंवरजी को लेकर तुम बेरिस नदी के किनारे मिलना। वहाँ जहाँ श्मशान है।

कीरत : ठीक है, अन्नदाता ! वहीं मिलूंगा। वहाँ मुझ पै किसी भी आदमी की नजर न पड़ेगी।

पन्ना : तो जाओ, कीरत ! आज तुम जैसे एक छोटे आदमी ने चित्तौड़ के मुकुट को सम्हाला है। एक तिनके ने राजसिंहासन को सहारा दिया है। तुम धन्य हो !

कीरत : अन्नदाता ! धन्य तो आप हैं कि मुझ को आपने ऐसी सेवा करने का काम सौंपा है। तो मैं चलूं ?

[सामली का प्रवेश]

सामली : धाय माँ ! महल चारों तरफ सिपाहियों से घिर गया। उत्तर की तरफ ही सात सिपाही हैं, बाकी तीनों तरफ बीस-बीस सिपाही पहरा दे रहे हैं। शायद उत्तर की तरफ के सिपाही बनवीर को लेने गये हैं।

पन्ना : कोई चिन्ता की बात नहीं, सामली ! तुम यहीं ठहरना, मैं अभी आती हूँ।

सामली : देख के क्या करोगी ? मैं तो देख आयी हूँ। कुंवर को बचाने का कोई उपाय सोचो।

पन्ना : मैं अभी आती हूँ। **(कीरत से)** चलो, कीरत !

[दोनों का प्रस्थान]

सामली : न जाने धाय माँ क्या सोच रही हैं ? कीरत बारी भी तब से यहीं बना है। क्या होगा ? हाय ! बनवीर ने महाराणा को रक्त में नहला दिया। दुष्ट बनवीर !......तुझे नर्क में भी चैन न मिलेगा। कुंवर उदयसिंह पर आँख लगाई है। भवानी ! कुंवर की रक्षा करो। रक्षा करो......।

[पन्ना का प्रवेश]

पन्ना : अब ठीक है। कुंवर की रक्षा हो गयी।

सामली : **(प्रसन्नता से)** हो गयी ! हो गयी ! हो गयी ! कैसे ?

पन्ना : कीरत ने अपनी टोकरी में कुंवर को सुला दिया। ऊपर से पत्तलें ढक लीं और उन पर पानी छिड़क दिया। वह उन्हें लेकर बेखटके महल से बाहर हो जायगा। कोई उससे कुछ पूछेगा भी नहीं। कुंवरजी बच गये ! कुंवरजी बच गये !

सामली : वाह, वाह, धाय माँ ! बहुत अच्छा सोचा, बहुत अच्छा सोचा। सिपाही समझेंगे कि कीरत बारी जूठी पत्तलें ले जा रहा है। कोई इससे कुछ पूछेगा भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं। कुँवरजी बच गये !

पन्ना : चित्तौड़ के भाग्य से ही वे बचेंगे।

सामली : जरूर बचेंगे। पर धाय माँ ! यह सब तुम्हें किसने सुझाया ?

पन्ना : भवानी ने। मैंने आँख बन्द कर उनका ध्यान किया। उसी समय कीरत बारी आया। उसने कहा......मैं तो जूठी पत्तल उठाता हूँ। कोई मालमत्ता तो मेरे पास है नहीं। टोकरी है और उसमें पत्ते हैं। बस, भवानी ने यही बात मुझे सुझा दी।

सामली : पर एक बात है, धाय माँ !

पन्ना : क्या ?

सामली : बनवीर यहाँ ज़रूर आयेंगे। वे तुम्हारे महल में कुँवरजी की खोज करेंगे। जब वे कुँवरजी को न पावेंगे और तुमसे पूछेंगे तो तुम क्या उत्तर दोगी ?

पन्ना : कह दूँगी कि मैं नहीं जानती।

सामली : इससे वे नहीं मानेंगे। क्रोध में आकर अगर उन्होंने तुम्हारे ऊपर तलवार चला दी तो कुँवरजी तुम्हारे बिना कैसे जिएँगे ?

पन्ना : मैं अपने प्राणों की भिक्षा माँगूंगी जो चित्तौड़ की किसी नारी ने नहीं माँगी। ऐसी विचित्र भिक्षा वे अवश्य दे देंगे।

सामली : बनवीर के सिर पर खून चढ़ गया है। वह दैत्य बन गया है। कुँवरजी को न पाकर वह तुम्हें ज़रूर मार डालेगा।

पन्ना : मुझे उसकी चिन्ता नहीं है, सामली !

सामली : पर चिन्ता कुँवरजी की है। तुम्हारे बिना वे भी तो जीवित नहीं रहेंगे। फिर तुम्हारा बलिदान चित्तौड़ के किस काम आयेगा। कुँवरजी को तो जीना ही चाहिए।

पन्ना : सचमुच कुँवरजी मेरे बिना नहीं जियेंगे। थोड़ी-सी बात पर तो रूठ जाते हैं। मुझे न पाकर उनका क्या हाल होगा ?

सामली : किसी तरह बनवीर को धोखा नहीं दे सकतीं ?

पन्ना : दे सकती हूँ।

सामली : किस तरह ?

पन्ना : कुँवरजी की शैया पर किसी और को सुला दूंगी। वह क्रोध में अन्धा रहेगा ही। पहिचान भी नहीं सकेगा कि यह कौन सोया है।

सामली : तो कुँवरजी की शैया पर किसे सुला दोगी ?

पन्ना : किसे सुला दूंगी ? (**सोचकर**) सामली ! मेरे हृदय पर वज्र गिर रहा है। मेरी आँखों में प्रलय का बादल घुमड़ रहा है। मेरे शरीर के एक-एक रोम पर बिजली तड़प रही है।

सामली : धाय माँ ! सम्भल जाओ। ऐसी बातें न कहो। कुँवर की शैया पर......

पन्ना : सुला दूंगी। उसी को, उसी को सुला दूंगी जो मेरी आँखों का तारा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है......चन्दन !......चन्दन को सुला दूंगी, सामली ! (सिसकियाँ) चन्दन को सुला दूंगी । उस नन्हें-से लाल को हत्यारे की तलवार के नीचे रख दूंगी । कह दूंगी कि इसके नन्हें-से कलेजे पर हलकी-सी चोट करना । बेचारा अभी बालक है । भीषण प्रहार से मेरा लाल चौंक उठेगा ।

सामली : धाय माँ ! धाय माँ ! ऐसा मत कहो...ऐसा मत कहो । ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी । महल के किसी कोने में छिप रहूँगी । हाय ! तुम क्या कह रही हो । ऐसा मत करना, धाय माँ ! ऐसा मत करना । मैं जाती हूँ । ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी... ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी । [**प्रस्थान**]

पन्ना : चली गई । कहती है, ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी । जो मुझे करना है, वह सामली सुन भी न सकेगी । भवानी ! तुमने मेरे हृदय को कैसा कर दिया ? मुझे बल दो कि मैं राजवंश की रक्षा में अपना रक्त दे सकूं । अपने लाल को दे सकूं । यही राजपूतनी का व्रत है । यही राजपूतनी की मर्यादा है । यही राजपूतनी का धर्म है । मेरा हृदय वज्र का बना दो ! माता के हृदय के स्थान पर पत्थर रख दो, जिससे ममता का स्रोत बन्द हो जाये । भवानी ! मैं चित्तौड़ की सच्ची नारी बनूं । खीची राजपूतनी अपने रक्त से मंगल-तिलक करे ।

[**नेपथ्य में चन्दन का स्वर माँ !...माँ !...माँ !**]

[**चन्दन का प्रवेश**]

चन्दन : माँ ! देखो, मेरे पैर में चोट लग गई । यह रक्त निकल रहा है ।

पन्ना : कहाँ रक्त निकल रहा है ? लाओ देखूं, मेरे लाल ! ओहो ! अँगूठे में यह चोट कैसे लगी ? रक्त निकल रहा है । कितना रक्त निकल रहा है । लाओ । इसे बाँध दूं । (**अपनी साड़ी से कपड़े का टुकड़ा फाड़ती है**) सीधा पैर करो ! हाँ, ठीक......इसे बाँध देती हूँ । (**बाँधते हुए**) यह चोट कैसे लगी, लाल !

चन्दन : मैं जैसे ही भोजन कर के उठा, माँ ! सज्जा ने कहा कि महल के चारों तरफ सिपाही इकट्ठे हो रहे हैं । मैं देखने के लिए ऊपर के झरोखे में चढ़ गया । अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं दिया । जैसे ही मैं नीचे कूदा एक टूटा हुआ शीशा अँगूठे में चुभ गया । कोई बात नहीं है, माँ ! रक्त तो निकला ही करता है । पर ये सिपाही महल के चारों तरफ क्यों इकट्ठे हो रहे हैं ?

पन्ना : आज नाच-रंग का दिन है न । वही सब देखने के लिए आये होंगे । या फिर सोना ने उन्हें बुलाया होगा । वह नीचे नाच रही होगी ।

चन्दन : माँ ! सोना अच्छी लड़की नहीं है । मैं कल उससे कहूँगा, माँ, कि कुँवरजी को अपना नाच न दिखाया करे । उनका मन आखेट करने में नहीं लगता ।

पन्ना : मैं भी उसे समझा दूंगी, चन्दन !

चन्दन : कुँवरजी कहाँ हैं, माँ ! आज भोजन में भी साथ नहीं चले ।

पन्ना : कहीं सो रहे होंगे ।

चन्दन : तब से वे सो ही रहे हैं ? माँ ! कुँवरजी को ज्यादा नींद क्यों आती है ? मैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखूं, कहाँ सो रहे हैं।

पन्ना : बुरा मानकर कहीं सो रहे होंगे।

चन्दन : सोना ने ही उन्हें बुरा मानना सिखला दिया, माँ ! नहीं तो कुँवरजी पहले कभी बुरा नहीं मानते थे। खेल-खेल में भी बुरा नहीं मानते थे। साथ खेलते थे, साथ खाते थे। आज अकेले कुछ खाया भी नहीं गया, माँ !

पन्ना : तो चलो, चन्दन ! मैं तुम्हें जी-भर के खिला दूं।

चन्दन : अब कुँवरजी के साथ कल खाऊँगा, माँ ! कल हम दोनों साथ बैठेंगे...तुम प्रेम से परोस-परोस कर खिलाना। कल खूब खाऊँगा, माँ ! कुँवरजी से भी ज्यादा। कहते हैं कि मैं चन्दन से ज्यादा खाता हूँ। अब कल से यह कहना भूल जायेंगे। (**हँसता है**) क्यों न माँ ?

पन्ना : ठीक है, लाल !

चन्दन : माँ ! अच्छी तरह से क्यों नहीं बोलती ? और तुम्हारी आँखें...तुम्हारी आँखों में पानी कैसा ? माँ, एँ...तुम्हारी आँखों में...

पन्ना : कहाँ, चन्दन ! पानी कहाँ ? और तुम्हारे अँगूठे से रक्त की धार बहे, मेरी आँखों से एक बूंद पानी भी न निकले ?

चन्दन : ओह ! माँ, तुम तो बातें करने में बड़ी अच्छी हो। जब मैं बड़ा होकर बहुत-सी जागीरें जीतूंगा, माँ ! तो मैं तुम्हारे लिए एक मन्दिर बनवाऊँगा। देवी के स्थान पर तुमको बिठलाऊँगा और तुम्हारी पूजा करूँगा। तुम अपनी पूजा करने दोगी ?

पन्ना : तुझसे मुझे ऐसी ही आशा है, चन्दन !

चन्दन : यह मत समझना, माँ, कि मैं जागीरें नहीं जीत सकता। उस जंगली खरगोश की तरह तेजी से दौड़ सकता हूँ। आसमान तक धावा बोल सकता हूँ।

पन्ना : अब बहुत बातें न करो, चन्दन ! रात अधिक हो रही है, सो जाओ !

[**कुछ आहट होती है।**]

चन्दन : माँ...माँ ! देखो, उस दरवाजे से कौन झाँक रहा है ?

पन्ना : कीरत बारी होगा। तुम्हारा भोजन उठाने आया होगा। मैं देखती हूँ।
[**उठकर देखती है।**]

चन्दन : कोई और हो तो मैं अपनी तलवार लाऊं ?

पन्ना : (**लौटती हुई**) कोई नहीं है। महल में किसका डर है ? लाल ! तुम सो जाओ !

चन्दन : कहाँ सोऊँ ? सज्जा तो अभी रसोई-घर में ही होगी। मेरी शैया ठीक न की होगी।

पन्ना : तो...तो...तो तुम कुंवरजी की शैया पर सो जाओ। शैया ठीक होने पर तुम्हें उस पर लिटा दूंगी।

चन्दन : और कुंवरजी बुरा मान गये तो ?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पन्ना : मैं कुंवरजी को समझा दूंगी। तुम्हारे लेटने से कुंवरजी की शैया मैली तो हो न जायगी।

चन्दन : तुम बहुत अच्छी हो, माँ ! आज कुंवरजी की शैया पर लेट कर देखूं। अब तो मैं भी राजकुमार हो गया। (**एकाएक स्मरण कर**) पर मेरी माला ? राजकुमार के गले में माला होती है न ? तुमने मेरी टूटी माला गूंथ दी ?

पन्ना : नहीं गूंथ पाई, लाल ! सामली आ गई थी।

चन्दन : कल गूंथ देना। भूलना नहीं, माँ ! (**शैया पर लेटता है**) आहा, माँ ! कितनी नरम शैया है। जी होता है, सदा इसी पर सोता रहूँ।

पन्ना : (**चीखकर**) चन्दन !

चन्दन : क्या हुआ, माँ ?

पन्ना : कुछ नहीं...कुछ नहीं...। आज मेरा जी कुछ अच्छा नहीं है। कभी-कभी कलेजे में शूल-सी उठती है। तुम सो जाओ तो मैं भी सो जाऊँगी।

चन्दन : मैं किसी वैद के यहाँ जाऊँ, माँ !

पन्ना : नहीं, वैद्य के पास इसकी दवा नहीं है। यह आप-से-आप उठती है और आप-से-आप शान्त हो जाती है। तुम सो जाओ...मैं भी कुंवर को खिलाकर जल्दी सो जाऊँगी।

चन्दन : अच्छा, माँ ! तुम्हारी आज्ञा नहीं टालूंगा। लो, मैं आँखें बन्द कर लेता हूँ।

पन्ना : सो जाओ ! चित्तौड़ की अच्छी कहानियों को सोचते-सोचते सो जाओ। अपनी मातृभूमि में कितने बड़े-बड़े वीर हुए हैं। बापा रावल जिन्हें हारीत ऋषि ने दर्शन दिये, जिन्होंने मेवाड़ की नींव डालकर विदेशों पर चढ़ाई की और उन्हें जीता। इन्होंने ही पहले-पहल अपने आराध्य देव एकलिंग का मन्दिर बनवाया। राजा नरवाहन जिन्होंने अपनी अकेली शक्ति से अनेक शत्रुओं को पराजित किया। राजा हंसपाल जिन्होंने अनेक राज्य जीतकर अपने राज्य में मिलाये। रावल सामन्त सिंह जिन्होंने गुजरात के सोलंकी राजा उदयपाल को युद्ध में पराजित किया। रावल जयसिंह, रावल समरसिंह...

चन्दन : (**चौंककर**) माँ ! मैं आँखें बन्द कर तुम्हारी बातें सुन रहा था कि एक काली छाया मेरे सिर के पास आई और उसने मुझे मारने को तलवार उठाई। माँ... वह काली छाया...काली छाया !

पन्ना : मैं तो तुम्हारे पास बैठी हूँ, लाल ! यहाँ कौन-सी काली छाया आयेगी ?

चन्दन : कोई छाया नहीं आयेगी, माँ ! पर न जाने क्यों नींद नहीं आ रही है। तुम मुझे कोई गीत सुना दो तो सुनते-सुनते सो जाऊँ।

पन्ना : अच्छी बात है, मेरे लाल ! मैं गीत ही गाऊँगी। अपने लाल को सुला दूं।

[**करुण स्वर में गीत गुनगुनाती है।**]

उड़ जा रे पँखेरुआ, साँझ पड़ी।
चार पहर बाटड़ली जोही,

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मेड्याँ खड़ी ए खड़ी।
उड़ जा रे पँखेरुआ, साँझ पड़ी ।।
डबडब भरिया नैन दिरिघड़ा,
लग रयी झड़ी ए झड़ी।
उड़ जा रे पँखेरुआ, साँझ पड़ी ।।
तेरी फिकर हूँ भयी दिवानी,
मुसकल घड़ी ए घड़ी। उड़ जा रे पँखेरुआ...

[धीरे-धीरे गान समाप्त होता है।]

पन्ना : (**फिर पुकारती है**) चन्दन !

[चन्दन के न बोलने पर पन्ना अलग हटकर जोर से सिसकी लेती है।]

पन्ना : मेरा लाल सो गया। मैंने अपने लाल को ऐसी निद्रा में सुला दिया कि अब यह न उठेगा। (**सिसकियाँ लेती है**) ओह पन्ना ! तूने अपने भोले बच्चे के साथ कपट किया है। तूने अँगारों की सेज पर अपने फूल-से लाल को सुला दिया है। तू सर्पिणी है सर्पिणी, जो अपने ही बच्चे को खा डालती है। जान-बूझ कर अपने पुत्र की हत्या कराने जा रही है। हाय ! अभागिनी माँ ! संसार में तेरा भी जन्म होने को था ? (**सिसकियाँ लेती है। फिर चन्दन को संबोधित करते हुए**) लाल ! तुम्हारी माला मैं नहीं गूँथ सकी। तुम्हारा जीवन अधूरा होने जा रहा है तो माला कैसे पूरी होती ? (**सिसकियाँ**) आज तुम भूखे ही रह गये, मेरे लाल ! आज अन्तिम दिन मैं तुम्हें अपने हाथों से भोजन भी न करा सकी ! तुम क्या जानो कि कल तुम और कुँवर साथ-साथ कैसे भोजन करोगे ! कहते थे...कल तुम परोसकर खिलाना। मैं अब किसे खिलाऊँगी, चन्दन ! (**सिसकियाँ**) तुम बड़ी-बड़ी जागीरें जीतोगे, मन्दिर बनवाओगे, देवी के स्थान पर मुझे बिठलाओगे और मेरी पूजा करोगे ! मैं ऐसी देवी हूँ कि अपने भक्त को ही खा रही हूँ। (**सिसकियाँ**) तुम्हारे अँगूठे से रक्त की धारा बही। अब हृदय से रक्त की धारा बहेगी तो मैं कैसे रोक सकूँगी। मेरे लाल ! मेरे चन्दन ! जाओ, यह रक्तधारा अपनी मातृभूमि पर चढ़ा दो ! आज मैंने भी दीप-दान किया है। दीप-दान ! अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है। ऐसा दीप-दान भी किसी ने किया है ? एक बार तुम्हारा मुख देख लूँ। कैसा सुन्दर और भोला मुख है ! **[सिसकियाँ लेती है।]**

[एकाएक भड़भड़ाहट की आवाज होती है। हाथ में तलवार लिए बनवीर आता है।]

बनवीर : (**मद्य पीने से उसके शब्द लड़खड़ा रहे हैं**) पन्ना !

पन्ना : महाराज बनवीर !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनवीर : सारे राजपुताने में एक ही धाय माँ है पन्ना ! सबसे अच्छी ! मैं ऐसी धाय माँ को प्रणाम करने आया हूँ। (**रुककर**) एँ, धाय माँ की आँखों में आँसू ?

पन्ना : नहीं...आँसू नहीं हैं। आज मेरे कुँवर बिना भोजन किये ही सो गये।

बनवीर : आज के दिन भोजन नहीं किया ? अरे, आज तो उत्सव का दिन है। आनन्द का दिन है। (**अट्टहास करता है**) मेरे महल में तीन सौ सामन्तों ने भोजन किया। आज कीरत वारी की टोकरी देखती ! भोजन उठाते-उठाते वह जिन्दगी-भर के लिए थक गया होगा, (**हँसता है**) जिन्दगी-भर के लिए ! तो कहाँ हैं कुँवर उदयसिंह ? मैं उन्हें अपने हाथ से भोजन करा दूँ ?

पन्ना : कुँवर सो गये हैं। वे किसी के हाथ से भोजन नहीं करते, मैं ही उन्हें खिला दूँगी।

बनवीर : धाय माँ हो न। आज पन्ना ! आज तुमने सोना का नाच नहीं देखा ? ओह ! कितना अच्छा नाचती है ! मैंने उससे कह दिया था कि वह कुँवर उदयसिंह को और धाय माँ को अपना नाच दिखला दे।

पन्ना : वह आई थी। शायद तुम्हीं ने उसे भेजा था, पर कुँवरजी का जी अच्छा नहीं था, इसीलिए मैंने उन्हें नहीं भेजा।

बनवीर : जी अच्छा नहीं था, और आज का दीप-दान भी तुमने नहीं देखा ?

पन्ना : मेरे लिए दीप-दान देखने की बात नहीं है, करने की बात है।

बनवीर : ठीक है, धाय माँ तो मंगल-कामनाओं की देवी हैं। वे दीप-दान करके चित्तौड़ का कल्याण करेंगी। मैं भी चित्तौड़ का कल्याण करूँगा। एक बात कहूँ, पन्ना ! मैं तुम्हें मारवाड़ में एक जागीर देना चाहता हूँ। वहाँ तुम्हारे लिए तुलजा भवानी का मन्दिर बनेगा, मन्दिर। सारे लोग तुम्हें इतनी श्रद्धा से देखेंगे कि तुलजा भवानी में और तुम में कोई अन्तर भी न होगा। तुम्हीं देवी के उस मन्दिर में रहोगी। लोग तुम्हारी पूजा करेंगे।

पन्ना : (**चीखकर**) बनवीर ?

बनवीर : (**अट्टहास कर**) महाराज बनवीर नहीं कहा ? मेरे कहने-भर से तुम देवी हो गई ? महाराज बनवीर को बनवीर कहने लगी ! (**हँसता है**) देवी को प्रणाम ! देखा, अब तुम्हें मोह-ममता से दूर रहना होगा। तुम कुँवर उदयसिंह को मुझे दे दोगी। और मैं उसे यह तलवार दूँगा। [**तलवार खींच लेता है।**]

पन्ना : एँ ! यह तलवार ? इस पर रक्त क्यों लगा है ?

बनवीर : रक्त तो तलवार की शोभा है, पन्ना ! वह अनन्त सुहाग से भरी है। यह तो उसके सिन्दूर की रेखा है। बिना रक्त के तलवार भी कभी तलवार कहला सकती है ?

पन्ना : यह तलवार म्यान में रख लो, महाराज !

बनवीर : क्या तुम्हें भय लगता है ? चित्तौड़ में तलवार से किसी को भय नहीं लगता। धाय माँ होने पर तुममें इतनी ममता भर गई कि तलवार नहीं देख

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकती ? पन्ना ! तलवारें आसानी से म्यान के भीतर नहीं जातीं। जब म्यान में राज्यश्री भर जाती है तो तलवार बाहर निकल आती है।

पन्ना : आधी रात हो चुकी है, महाराज बनवीर ! विश्राम करो।

बनवीर : विश्राम मैं करूँ ? बनवीर ? जिसे राजलक्ष्मी को पाने के लिए दूर तक की यात्रा करनी है। मैं अपने साथ कुँवर उदयसिंह को भी ले जाना चाहता हूँ।

पन्ना : यह नहीं होगा...यह नहीं होगा, महाराज बनवीर !

बनवीर : जागीर नहीं चाहती ?

पन्ना : नहीं।

बनवीर : तो उदयसिंह के बदले जो माँगो वह दिया जायगा।

पन्ना : राजपूतनी व्यापार नहीं करती, महाराज ! वह या तो रणभूमि पर चढ़ती है या चिता पर।

बनवीर : दो में से किसी पर भी तुम नहीं चढ़ सकोगी। तुम्हारा महल सैनिकों से घिरा है।

पन्ना : सैनिकों को किसने आज्ञा दी ? महाराज विक्रमादित्य...

बनवीर : **(बीच ही में)** वे अब इस संसार में नहीं हैं, पन्ना ! उन्होंने रक्त की नदी पार कर ली है। उसी रक्त की लहर मेरी तलवार पर है।

पन्ना : ओह, बनवीर ! हत्यारा बनवीर !

बनवीर : महाराणा बनवीर को हत्यारा बनवीर नही कह सकती, पन्ना ! हत्यारा बनवीर कहनेवाली जीभ काट दी जायगी।

पन्ना : तो लो मेरी जीभ काट लो और यहाँ से चले जाओ। महाराणा विक्रमादित्य...

बनवीर : बार-बार विक्रमादित्य का नाम क्यों लेती है ? प्रेतों और पिशाचों को वह नाम लेने दो। यदि मेरा नाम लेना है तो जयकार के साथ नाम लो।

पन्ना : धिक्कार है, बनवीर ! तुम्हारी माँ ने तुम्हें जन्म देते ही क्यों न मार डाला ?

बनवीर : चुप रह, धाय ! बच्चे की पालनेवाली, लोरियाँ सुनानेवाली एक साधारण दासी महाराणा से बात करती है ? कहाँ है उदयसिंह ?

पन्ना : तू उदयसिंह को छू भी नहीं सकता। नीच नारकी ! महाराणा विक्रमादित्य की हत्या के बाद तू उदयसिंह को देख भी नहीं सकता।

बनवीर : मैं नहीं देखूँगा, मेरी तलवार देखेगी। विक्रम के रक्त से सनी हुई तलवार अब उदयसिंह के रक्त से धोई जायगी।

पन्ना : ओह, क्रूर बनवीर ! तुम तो उदयसिंह के संरक्षक थे। रक्षा के बदले क्या तुम उसकी हत्या करोगे ? नहीं-नही, यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकता। महाराणा बनवीर ! तुम राज्य करो, चित्तौड़ पर, मेवाड़ पर, सारे राजपूताने पर राज्य करो। पर कुँवर उदयसिंह को छोड़ दो। मैं उसे लेकर सन्यासिनी हो जाऊँगी। तीर्थों में बास करूँगी। तुम्हारा मुकुट तुम्हारे माथे पर रहे, पर

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मेरा कुँवर भी मेरी गोद में रहे। बनवीर ! महाराणा बनवीर, मुझे यह भिक्षा दे दो।

बनवीर : दूर हट दासी ! यह नाटक बहुत देख चुका हूँ। उदयसिंह की हत्या ही तो मेरे राजसिंहासन की सीढ़ी है। जब तक वह जीवित है तब तक सिंहासन मेरा नहीं होगा। तू मेरे सामने से हट जा !

पन्ना : मैं नहीं हटूँगी ! अपने कुँवर की शैया से दूर नहीं हटूँगी।

बनवीर : उदयसिंह को सुला दिया है जिससे उसे मरने का कष्ट न हो। उसका मुख भी ढक दिया है ! वाह री धाय माँ ! बालक के मरने में भी ममता का ध्यान रखती है। (**तीव्रता से**) शैया से दूर हट, पन्ना ! मैं उसे चिर-निद्रा में सुला दूँ।

पन्ना : (**साहस से**) नहीं, ऐसा नहीं होगा, क्रूर नराधम, नारकी ! ले, मेरी कटार का प्रसाद ले [**आक्रमण करती है, उसकी चोट बनवीर की ढाल पर सुन पड़ती है।**]

बनवीर : (**क्रूर अट्टहास करता है**) ह ह ह ह ! दासी क्षत्राणी ! कर लिया कटार का वार ? यह कटार मेरे हाथ में है। अब किससे वार करेगी ? अब तुझे भी समाप्त कर दूँ ? लेकिन स्त्री पर हाथ नहीं उठाऊँगा।

पन्ना : अबोध सोते हुए बालक पर हाथ उठाते हुए तेरा हृदय तुझे नहीं धिक्कारता ? पापी !

बनवीर : (**शैया के समीप जाकर**) यही है, यही है, मेरे मार्ग का कटक ! आज मेरे नगर में स्त्रियों ने दीप-दान किया है। मैं भी यमराज को इस दीपक का दान करूँगा। यमराज ! लो इस दीपक को। यह मेरा दीप-दान है।

[**उदय के धोखे में चन्दन पर जोर से तलवार का प्रहार करता है। पन्ना जोर से चीख कर मूर्च्छित हो जाती है। कमरे में मन्द लौ से दीपक जलता रहता है।**]

[यवनिका]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 17 :

दुर्गावती

•

पात्र-परिचय

दुर्गावती—गढ़ामण्डला की महारानी
वीरनारायण—महारानी दुर्गावती के पुत्र
दीवान अधारसिंह—महारानी दुर्गावती के महामात्य
हैदर अली—नवाब आसफ़खाँ का दूत
कर्णसिंह—महारानी दुर्गावती का सेनापति
पाण्डवी—महारानी दुर्गावती की अंग-रक्षिका
गण्डासेन—कुबेर गज का महावत
सैनिक

•

काल—1564 ई०
समय—प्रातःकाल 8 बजे
स्थान—राजमहल के कक्ष के सामने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुर्गावती

[नेपथ्य में हाथियों के चलने का शब्द। उनके दोनों ओर झूलती हुई घण्टियाँ बारी-बारी से ध्वनि दे रही हैं। यह ध्वनि क्रमशः दूर होती जा रही है। दीवान अधारसिंह और वीरनारायण बातें कर रहे हैं।]

वीर० : **(हल्की हँसी हँसकर)** बड़े सुन्दर हाथी हैं, महामात्य ! प्रातःकालीन उज्ज्वल सूर्य-किरणों में ये काले हाथी कितने भले मालूम देते हैं, जैसे सहसा प्रकाश के आ जाने से अन्धकार गोल चक्रों में सिमिटकर धीरे-धीरे क्षितिज की ओर बढ़ता जा रहा है। **[फिर हल्की हँसी]**।

अधार० : **(चिन्ता के स्वर में)**...हूँ...

वीर० : **(दूर जाते हुए हाथियों को गिनते हुए)** एक...दो...तीन...चार...पांच... पाँच...छः...सात...आठ ! आठ हाथी ! भूमि का बोझ सँभाल चुकने के बाद जैसे ये आठों दिग्गज अब आकाश का बोझ सँभालने के लिए भूमि पर आ गये हैं। **(हँसी)** और इन्हें कितनी सुन्दर पत्रावलियों की चित्रकारी से सजाया गया है, महामात्य ! रक्तचन्दन, शंख-भस्म, गेरू और राम-रज के रंगों से कानों पर कमल की कलियाँ, गण्डस्थलों पर लहरों की हिलोरें और सूँड़ों पर गोल पत्तों के बीच में कुमुद के फूल कितनी सुन्दरता के साथ बनाये गयें हैं, जैसे ये हाथी अपने मस्तक पर मानसरोवर की शोभा सँवारे हुए जा रहे हैं। इन हाथियों के महावतों को उनकी चित्रकला पर पुरस्कार देना चाहिए, महामात्य !

अधार० : **(चिन्ता भरे स्वर में)**...हूँ...

वीर० : इनमें पाँचवाँ और आठवाँ हाथी ! क्या नाम है इनका ?......शायद कुबेर गज और कुमारगज।

अधार० : **(वैसे ही चिन्ता भरे स्वर में)**...हूँ...

वीर० : इन दोनों हाथियों की आँखों के चारों ओर कितने सुन्दर कमल बनाये गये हैं ! ऐसा ज्ञात होता है जैसे कमलों के बीच में हाथियों की आँखें भ्रमर बनकर उन कमलों का मकरन्द पान कर रही हैं।

अधार० : **(अन्यमनस्कता से)**...हूँ...

वीर० : आपका ध्यान किसी दूसरी ओर है, महामात्य ! आप इस प्रकार उदासीनता से क्यों बोल रहे हैं ?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधार० : राजकुमार ! आप बुरा न मानें। मेरा ध्यान इस समय इन हाथियों की शोभा की ओर नहीं है।

वीर० : वाह, इतने सुन्दर हाथी ! जो पर्वत की भाँति विशाल होकर भी आँखों में झूलते हैं। भारी होकर भी इतने हलके ! इनकी शोभा से तो आँखें खिल उठती हैं जैसे काले बादलों की शोभा में बिजली चमक उठती है।

अधार० : ठीक है, राजकुमार ! आपकी कविता की कल्पनाओं से मेरी राजनीति की गुत्थियाँ नहीं सुलझ सकतीं। इस समय प्रश्न यह है कि इन आठ हाथियों के बाद नवाँ हाथी महेन्द्रगज कहाँ है !

वीर० : महेन्द्रगज ? वह माँ की सेवा में होगा। वह उनका प्रिय हाथी है।

अधार० : वह महारानी की सेवा में नहीं है। चार दिन पहले मैंने आदेश दिया था कि आज प्रातःकाल महारानी के नवों हाथियों को स्नान कराकर सुसज्जित किया जाये और मेरे समक्ष उनका प्रदर्शन हो।

वीर० : तब तो आपकी आज्ञा के अंकुश से कोई हाथी बहक नहीं सकता। महेन्द्रगज को आपके समक्ष अवश्य ही आना चाहिए।

अधार० : किन्तु न वह इन आठ हाथियों में है और न इनके बाद।

वीर० : यह तो स्पष्ट है क्योंकि महेन्द्रगज का रंग कपूर की भाँति सफ़ेद है। वह इन तमालवर्णी हाथियों में तो स्पष्ट ही देखा जा सकता था।

अधार० : (गम्भीरता से)......हूँ......

वीर० : फिर महेन्द्रगज कहाँ जा सकता है ?

अधार० : मुझे इसमें किसी षड्यन्त्र की दुर्गन्ध मिल रही है।

वीर० : षड्यन्त्र की ?

अधार० : हाँ, किसी भयानक षड्यन्त्र की। ऐसे षड्यन्त्र की जिसमें राज्य के किसी विशेष कर्मचारी का हाथ है।

वीर० : महामात्य ! कविता की कल्पना की भाँति मेरी तलवार की धार भी बहुत पैनी है। आप पता लगाइए कि किस कर्मचारी ने षड्यन्त्र की योजना की है। मेरी तलवार एक क्षण में उसके रक्त से महाकाल भैरव का अभिषेक करेगी।

अधार० : इस बात का विश्वास है, राजकुमार ! किन्तु इन कार्यों में शक्ति की अपेक्षा बुद्धि की अधिक आवश्यकता हुआ करती है। षड्यन्त्र के मुख और उद्गम-स्थान की दूरी में न जाने कितने विषैले जन्तु छिपे रहते हैं। मस्तक की पीड़ा केवल मस्तक की व्याधि नहीं है, उसका उद्गम उदर-विकार में है। उदर में बीज है, उसका विष-फल मस्तक में है। षड्यन्त्र भी व्याधि-विकार की भाँति बढ़ने में विश्वास रखता है।

वीर० : तो महेन्द्रगज किस प्रकार षड्यन्त्र का केन्द्र हो सकता है ?

अधार० : महेन्द्रगज की भाँति सफ़ेद हाथी बिरले हैं। शक्ति, शोभा और स्वभाव में वह अद्वितीय है। महारानी को वह अपने आत्म-सम्मान की भाँति प्रिय है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वीर० : यह तो मैं जानता हूँ, महामात्य !

अधार० : तो महारानी के आत्म-सम्मान की भाँति वह हाथी भी राजाओं और नवाबों की आँखों में खटक रहा है।

वीर० : इसकी भी मुझे सूचना है।

अधार : किन्तु मेरा अनुमान है कि इस सूचना ने षड्यन्त्र का रूप ले लिया है।

वीर० : कैसे ?

अधार० : कड़ा-मानिकपुर का पंजहज़ारी सूबेदार आसफ़ख़ाँ इसके पीछे है।

वीर० : सूबेदार आसफ़ख़ाँ ?

अधार० : हाँ, सूबेदार आसफ़ख़ाँ। पिछले पद्रह वर्षों में महारानी ने जिस योग्यता से गढ़ामण्डले का शासन किया है उससे आसफ़ख़ाँ के मन में द्वेषाग्नि जल सकती है।

वीर० : यह द्वेषाग्नि ही उसे समाप्त करेगी, महामात्य !

अधार० : महारानी ने अपने त्रैलोक्य-विश्रुत यश तथा हिमालय के समान उत्तुंग स्वर्ण-मन्दिरों के निर्माण-द्वारा पृथ्वी का रूप ही परिवर्तित कर दिया है। हमारे राज्य में रत्न-खानियों के समान बहुमूल्य रत्न जहाँ-तहाँ फैले हुए हैं और इन्द्र के ऐरावत की भाँति अनेक मत्त मतंगज हमारे द्वार पर झूला करते हैं। नवाब आसफ़ख़ाँ के लिए यह सब असह्य हो गया है।

वीर० : तो इससे हम डरनेवाले नहीं हैं, महामात्य !

अधार० : ठीक है। आपकी ही बात मुझे याद आ रही है, कहीं काले बादलों से आकाश डर सकता है ? किन्तु इसकी पूर्ण व्यवस्था करनी आवश्यक है। आसफ़-ख़ाँ के विचार गढ़ामण्डले के सम्बन्ध में अत्यन्त कलुषित और पतित हैं। वह समझता है कि एक निस्सहाय नारी के हाथों से इतनी बड़ी सम्पदा आसानी से छीनी जा सकती है।

वीर० : वह आक्रमण करके देख क्यों नहीं लेता ?

अधार० : उसी की यह भूमिका है कि आज महेन्द्रगज अन्य आठ हाथियों के साथ नहीं दीख पड़ा। नवाब आसफ़ख़ाँ ने एक बार यह प्रस्ताव किया था कि महारानी महेन्द्रगज को भेंट-स्वरूप भिजवाने की व्यवस्था करें।

वीर० : नवाब आसफ़ख़ाँ कब से अपने को भेंट का अधिकारी समझने लगा ?

अधार० : जब से उसने इस सम्बन्ध में मुग़ल-सम्राट् जलालुद्दीन अकबर की स्वीकृति प्राप्त कर ली है।

वीर० : अच्छा ! किन्तु मुग़ल-सम्राट् की स्वीकृति हमारे लिए मान्य नहीं हो सकती।

अधार० : नहीं हो सकती, राजकुमार ! हमारा राज्य सब प्रकार से स्वाधीन है और हम अपने राज्य के नियमों से ही शासित हो सकते हैं। बाहरी कोई नियम हमारे लिए आदेश का रूप नहीं ले सकते। इसीलिए महारानी ने इस प्रस्ताव पर कोई ध्यान नहीं दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वीर० : तो महेन्द्रगज कहाँ है ?

अधार० : गढ़ामण्डले की सीमा पर कुछ उपद्रव हुए हैं। कुछ यवन सैनिक छद्मवेश में हमारे राज्य में अशान्ति मचा रहे हैं। कल मैंने ऐसे सात षड्यन्त्रकारियों को बन्दी बनाकर उनके दण्ड की व्यवस्था दी है किन्तु अभी और भी छद्मवेशी यवन होंगे। उनसे सम्भवतः हमारे यहाँ के कुछ कर्मचारी भी मिले हों और उन्हीं लोगों के षड्यन्त्र से महेन्द्रगज ग़ायब कर दिया गया हो। मुझे चिन्ता इस बात की है कि कहीं महेन्द्रगज कड़ा-मानिकपुर न भेज दिया गया हो !

वीर० : क्या इसकी सम्भावना हो सकती है ?

अधार० : सम्भावना तो कम है किन्तु हमारी प्रजा के लोग अपनी सरलता में दूसरे पर सहसा विश्वास कर लेते हैं। यह सरलता मनुष्य को जितना ऊपर उठाती है शत्रुओं को उतना ही अधिक उग्र बना देती है।

[नेपथ्य में कोलाहल होता है—'आप कौन हैं ?'
—'आप कहाँ से आये हैं ?'
—'जनाब, मैं दीवान साहब से मिलना चाहता हूँ।'
—आप दीवान साहव से क्यों मिलना चाहते हैं ?
आदि सम्मिलित बातें सुनायी पड़ती हैं।]

[एक सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : महाराज की जय हो ! एक दूत सेवा में आने की आज्ञा चाहता है।

अधार० : दूत ? कहाँ से आया है ?

सैनिक : महाराज ! वह कड़ा-मानिकपुर से सेवा में उपस्थित हुआ है।

वीर० : कड़ा-मानिकपुर से ?

अधार० : क्या नवाब आसफ़ख़ाँ की ओर से आया है ?

सैनिक : हाँ, महाराज !

अधार० : क्या चाहता है ?

सैनिक : पूछने पर भी नहीं बतलाता। महाराज की सेवा में आने की आज्ञा चाहता है।

अधार० : उसका नाम ?

सैनिक : हैदर अली।

अधार० : **(सोचते हुए)** हैदर अली !...कड़ा-मानिकपुर से !...नवाब आसफ़ख़ाँ ने भेजा है !

वीर० : **(उग्रता से)** वह किसलिए यहाँ आ सकता है ?

अधार० : शत्रुता का बहाना मोल लेने के लिए। **(सैनिक से)** सैनिक, उसे यहाँ भेजो।

सैनिक : जो आज्ञा ! **[प्रस्थान]**

वीर० : इसका सम्बन्ध भी षड्यंन्त्र से हो सकता है।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधार० : राजनीति में सब कुछ सम्भव है ।

वीर० : तब तो हमें प्रत्येक क्षण प्रस्तुत रहना चाहिए ।

अधार० : पिछले कुछ दिनों से जैसी घटनाएँ सामने आ रही हैं उनसे तो यही ज्ञात होता है कि यह किसी भयानक भविष्य की भूमिका है । यह तो महारानी के राज्य की सुदृढ़ता का प्रमाण है कि चिनगारी आग लगाने के पूर्व ही बुझा दी जाती है । चिनगारियों को फूंक मारकर लपट बनाने में यवनों की साँसें निरन्तर उग्र बनती जा रही हैं, किन्तु (**दूत का प्रवेश । उसे देखकर**) अच्छा... तुम...?

दूत : (**झुककर सलाम करता हुआ**) वज़ीरे-आज़म की ख़िदमत में हैदर अली आदाब बजा लाता है ।

अधार० : फ़रमाइये, आपने इधर का रुख कैसे किया ?

हैदर० : आलीजाह, बन्दा कड़ा-मानिकपुर से हाज़िर हुआ है । आला हज़रत नवाब आसफ़खाँ बहादुर ने हुज़ूर की ख़िदमत में मुझे हाज़िर होने का हुक्म दिया है ।

अधार० : नवाब आसफ़खाँ बहादुर ने ? किसलिए ?

हैदर० : हुज़ूर, शक करने की कोई बात नहीं है । नवाब साहब बहादुर के दिल में हुज़ूर ने जो जगह हासिल की है वह शायद दुनिया के किसी इन्सान को मयस्सर नहीं हो सकी । सुबहो-शाम जब आपका चर्चा चलता है तो हुज़ूर ! मालूम होता है गोया सारी फ़िज़ा हुज़ूर के नाम से गूँज उठी है । नवाब साहब बहादुर फ़रमाते थे कि अगर हुज़ूर जैसे दीवान उनकी सल्तनत में रौनक़-अफ़रोज़ होते तो वो दुनिया के हर सिम्त में हुकूमत का नक़्क़ारा बजवा सकते थे ।

अधार० : यह आपके नवाब बहादुर की इज़्ज़त-अफ़ज़ाई है मगर हमारे राज्य का जो कुछ भी नाम है वह सब महारानी दुर्गावती का प्रताप है ।

हैदर० : आफ़रीं ! सद आफ़रीं ! क्या कहना है, हुज़ूर दुर्गावती महारानी का ! वो तो नूर की देवी हैं ! जिस वक्त हाथी पै सवार होके वो मैदाने-जंग के लिए रवाना होती हैं तो क्या कहना है, हुज़ूर ! मालूम होता है कि गोया बिहिश्त है जो अपने हज़ार जल्वे से तमाम रूए-ज़मीन पर फैल गया है । हुज़ूर, अगर मुबालिग़ा न समझा जाये तो मैं अर्ज़ करूँगा कि अगर दमकती हुई बिजली इन्सान की शक्ल अख़्तियार करे तो शायद उसका नाम महारानी दुर्गावती हो सके !

अधार० (**मुस्कराकर**) सुन रहे हैं, राजकुमार ?

हैदर० : (**राजकुमार को देखकर**) ओहो, राजकुमार साहब हैं ! आदाब बजा लाता हूँ । (**दीवान अधारसिंह को सम्बोधन करते हुए**) आलीजाह ! क्या कहने हैं, राजकुमार साहब के । राजकुमार साहब के तेवर ऐसे हैं गोया तेज़ कटार है जो मख़मली म्यान में पोशीदा है । मुस्कराते हैं गोया मौसमे-बहार में हर शाख़ में फूल खिल उठते हैं । मैं तो सदक़े जाता हूँ जनाब राजकुमार साहब के ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधार० : तुम बहुत अच्छी बातें करते हो, हैदर अली ! किसलिए तुमने यहाँ तक आने की तकलीफ़ गवारा की ?

हैदर० : अब हुज़ूर ! क्या अर्ज़ करूँ ! हुज़ूर के जाहोजलाल के आफ़ताब के आगे क़िस्मत की तारीकी कभी ठहर सकती है ? हुज़ूर ! अच्छी तरह से यक़ीन रखें कि वह दिन जल्द आयेगा जब तमाम दुनिया में हुज़ूर का नाम रौशन हो जायेगा। उसी रोशनी की एक किरन पाने के लिए बन्दा ख़िदमत में हाज़िर हुआ है।

अधार० : अच्छा ?

हैदर० : हाँ, हुज़ूर ! कौन है जो बुलन्द-इक़बाल महारानी की अज़मत का जल्वा देखने का मुश्ताक़ नहीं है ? कौन है जो शहरयार वज़ीरे-आज़म अधारसिंह की क़दमबोसी करने में अपनी ख़ुश-क़िस्मती नहीं समझता ? बहादुरी, जाँनिसारी, वफ़ादारी तो हुज़ूर में तीन-तिरबेनी की शक्ल अख़्तियार कर रही हैं। कौन है हुज़ूर ! जो राजकुमार साहब के उरूज के लिए दुआएँ नहीं माँगता ?

अधार० : ठीक है, हैदर अली ! हम तुम्हारी शीरीं-ज़बानी से बहुत ख़ुश हुए लेकिन साफ़-साफ़ कहो कि तुम्हारे आने का क्या ख़ास मक़सद है ?

हैदर० : **(ख़ुशामदाना स्वर में)** हँहँहँहँहँ...हुज़ूर ! क्या अर्ज़ करूँ ! यों तो हुज़ूर की दोस्ती का ज़िक्र हमारे दरबारे-मुबारक में नवाब साहब बहादुर हमेशा ही करते रहते हैं और वो हर ख़ासोआम की ज़बान पर है लेकिन हुज़ूर ! दुनिया के लोग हैं कि सुनते हैं और भूल जाते हैं ! शायद इसलिए कि दरबारे-मुबारक में नवाब साहब बहादुर को बार-बार हुज़ूर का ज़िक्रे-ख़ैर करने का मौक़ा मिले।

अधार० : यह आपके नवाब साहब बहादुर की मेहरबानी है।

हैदर० : हुज़ूर, यह आपका अख़लाक़ है लेकिन यह जो हुज़ूर में और हमारे नवाब साहब बहादुर में मुहब्बत है, एकदिली है, अगर दुनिया पर उसके रौशन होने का कोई ज़रिया होता तो क्या कहना है, हुज़ूर ! यह हुज़ूर और नवाब साहब बहादुर के लिए ज़रूरी नहीं है, यह हमारे दुश्मनों के लिए ज़रूरी है।

अधार० : ठीक है, लेकिन यह तो बतलाइए कि वह ज़रिया क्या हो सकता है ?

हैदर० : निहायत बजा इरशाद है, हुज़ूरेवाला ! बिलकुल ठीक है, ग़रीब-परवर ! लेकिन ख़ता मुआफ़ हो। मैं क्या अर्ज़ कर सकता हूँ ! लेकिन नवाब साहब बहादुर ने अपनी तरफ़ से यह तजवीज़ फ़रमायी है कि............

अधार० : हाँ, हाँ, कहिये। रुक क्यों गये ?

हैदर० : हुज़ूर, नवाब साहब बहादुर ने यह फ़रमाया है कि अगर बुलन्द-इक़बाल महारानी दुर्गावती अपना सुफ़ेद हाथी महेन्दरगज अता फ़रमाने की मेहरबानी कर सकें तो......

वीर० : **(उग्रता से कड़े स्वर में)** हैदर अली !

अधार० : पूरी बात कहो, हैदर अली !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैदर० : हुज़ूर ! अगर इस नादान की ज़बान से कोई ग़लत जुमला निकले तो उसे तराश देने का हुक्म फ़रमायें लेकिन मुझ नाचीज़ के ज़रिये नवाब साहब बहादुर ने महज़ दोस्ती को मुस्तहकम करने के लिए एक अदना-सा सवाल पेश किया है।

अधार० : और कुछ ?

हैदर० : हुज़ूर, शहंशाहों की बात शहंशाह ही जान सकते हैं। इस ग़रीब को तो इस मामले के बाबत गुज़ारिश करने का ही हक़ है। ख़ता मुआफ़ हो, नवाब साहब बहादुर ने यह भी फ़रमाया है कि महेन्दरगज का इस्तक़बाल करने के लिए वो ख़ुद तीन दिन तक इन्तज़ार करने के बाद गढ़ा मण्डले के बाहर जल्वाअफ़रोज़ होंगे।

अधार० : अकेले या अपनी फ़ौज के साथ ?

हैदर० : अब हुज़ूर ! जिस तरह आफ़ताब के साथ रोशनी रहती है उसी तरह नवाब साहब बहादुर जिधर भी तशरीफ़ ले जायेंगे उधर ही उनकी फ़ौज जायेगी।

अधार० : (**दृढ़ता से**) हूँ ! तो इसके मानी यह हैं कि तुम्हारे नवाब साहब बहादुर को महेन्द्रगज भेंट किया जाये और अगर तीन दिन के बाद यह नहीं हुआ तो नवाब साहब बहादुर खुद फ़ौज लेकर गढ़ामण्डले पर चढ़ाई करेंगे ?

हैदर० : (**विनम्रता से**) अब हुज़ूर ! इसके मुतअल्लिक कुछ ज़ियादह अर्ज़ करना इस नाचीज़ के लिए मुनासिब न होगा।

वीर० : बात बिलकुल साफ़ और सीधी है। यह एक धमकी और चुनौती है। यह लड़ाई लड़ने का एक बहाना है।

अधार० : हैदर अली ! यह बात पहले भी नवाब साहब बहादुर की तरफ़ से कही जा चुकी है जब वो पंजहज़ारी मनसबदार नहीं थे। पहले इसका सिर्फ़ इशारा किया गया था। अब बात साफ़ ढंग से कही गयी है।

हैदर० : तब तो हुज़ूर ! उस पर ग़ौर करना लाज़मी है। बज़ाते-ख़ुद यह नाचीज़ सियासी मुआमलात में इशारे को ना-काफ़ी समझता है। हुज़ूर ने उस इशारे को नाक़ाबिले-ग़ौर समझकर अपनी सियासत की बहुत ऊँची मिसाल पेश की है। लेकिन इस वक़्त यह नाचीज़ अपने नवाब बहादुर की साफ़गोई की दाद का ख्वास्तगार है। जवाबे-मज़मून यह नाचीज़ ही लिख लेगा।

अधार० : हैदर अली ! तुम्हें और कुछ कहना है ?

हैदर० : और कुछ नहीं, हुज़ूर ! यह बन्दा हुज़ूर के अल्ताफ़ो-करम का मुहताज है।

[**एक सैनिक का प्रवेश**]

सैनिक : महाराज की जय हो ! कल महाराज ने जिस षड्यन्त्र को तोड़ा है उस सम्बन्ध में महाध्यक्ष कर्णसिंह आपकी सेवा में कुछ निवेदन करने की आज्ञा चाहते हैं।

अधार० : उन्हें शीघ्र ही यहाँ भेजो।

हैदर० : तो ग़रीबपरवर जो हुक्म फ़रमायें उसे ब-सरो-चश्म मैं नवाब साहब बहादुर

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की ख़िदमत में अर्ज़ करूँ।

अधार० : तुम अभी ठहरोगे हैदर अली ! बात अभी पूरी नहीं हुई।

वीर० : हैदर अली ! कल से महेन्दरगज का कहीं पता नहीं है। हमारे राज्य की व्यवस्था में कहीं भी किसी प्रकार की शिथिलता नहीं रही है। कुछ दिनों से, जब से तुम लोग यहाँ आने लगे हो, हमारे यहाँ कभी-कभी ऐसी बातें हो जाया करती हैं जिन्हें हम कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकते।

हैदर० : इस नाचीज़ से तो कोई गुस्ताख़ी कभी नहीं हुई, ग़रीबपरवर।

[महाध्यक्ष कर्णसिंह का प्रवेश]

कर्णसिंह : महामात्य की जय हो !

अधार० : महाध्यक्ष कर्णसिंह !

कर्णसिंह : हाँ, महामात्य ! आपकी सेवा में यह निवेदन करना चाहता हूँ कि कल आपने षड्यन्त्र के सात बन्दियों को दण्डित किया था। जब दुष्टसाध्य ने दण्ड देने की तैयारी की तो दण्डित व्यक्तियों में से एक ने मृत्यु-भय से अपना दोष स्वीकार कर लिया।

अधार० : दोष स्वीकार कर लिया ? इसीलिए मैंने मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था दी थी। ठीक है, कौन है वह ? उसका क्या नाम है ?

कर्णसिंह : उसका नाम गण्डासेन है, महामात्य !

वीर० : तुम काँप क्यों उठे, हैदर अली ?

हैदर० : **(सँभलते हुए)** अँअँअँअँअँ, काँपता नहीं हूँ, ग़रीबपरवर ! मेरे जिस्म का एक-एक रोयाँ हुज़ूर का नाम ले रहा है।

अधार० : **(कुछ हँसकर)** बहुत ख़ूब ! उस रोयें की ज़बान भी अभी खुल जायेगी। **(कर्णसिंह से)** हाँ तो महाध्यक्ष ! उसका नाम गण्डासेन है ?

कर्णसिंह : हाँ, महामात्य !

अधार० : अच्छा, वह कुछ समय तक कुबेरगज का महावत भी तो रह चुका है। उसने अपना दोष स्वीकार कर लिया ?

कर्णसिंह : हाँ, महामात्य !

अधार० : विवरण दो।

कर्णसिंह : विवरण देने में असमर्थ हूँ, महामात्य ! अनेक बार पूछने पर भी उसने अपना अपराध विस्तार से नहीं कहा। वह कहता है कि महामात्य के सामने ही वह अपना अपराध निवेदन करेगा।

अधार० : उसे तुम अपने साथ लाये हो ?

कर्णसिंह : हाँ, महामात्य ! वह यहीं द्वार पर उपस्थित है।

अधार : उसे मेरे सामने उपस्थित करो।

कर्णसिंह : जो आज्ञा ! **[प्रस्थान]**

अधार० : **(हैदर अली से)** तो हैदर अली ! तुम काँप नहीं रहे थे ? तुम्हारे जिस्म

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का एक-एक रोयाँ राजकुमार का नाम ले रहा था !

हैदर० : हुज़ूर, दरख़्त अपनी ग़िज़ा ज़मीन से ज़रूर लेता है मगर उसका सिर हमेशा आसमान के क़दमों के नीचे रहता है, उसी तरह हुज़ूर ! मेरा आबो-दाना जनाब नवाब साहब बहादुर के हाथों में ज़रूर है लेकिन मेरा सिर तो हुज़ूर के क़दमों के नीचे है । हँहँहँहँहँहँ, हुज़ूर के क़दमों के नीचे है !

वीर० : महामात्य ! इस षड्यन्त्र-उद्घाटन और अपराध-स्वीकार की सूचना मैं शीघ्र ही माँ को देना चाहता हूँ ।

अधार० : हाँ, अवश्य ही दे देनी चाहिए । इस समय तक उनकी पूजा भी समाप्त हो गयी होगी ।

वीर० : मैं जाता हूँ । प्रणाम ! [**प्रस्थान**]

अधार० : हाँ, जाइए । (**ठहरकर**) पर, हाँ, सुनिये राजकुमार ! महारानी को सेवा में यह भी निवेदन कर देना कि यदि उन्हें कुछ अवकाश हो तो कुछ देर के लिए यहाँ भी आने का कष्ट करेंगी ।

वीर० : अवश्य ही निवेदन कर दूंगा । प्रणाम ! [**प्रस्थान**]

अधार० : (**हैदर अली से**) हैदर अली, गण्डासेन को तुम जानते हो ?

हैदर० : ग़रीबपरवर, हुज़ूर के ख़ादिमों को जानना भी बायसे-फ़ख़्र है । यों तो यह नाचीज़ गण्डासेन की पहचान का हक़दार नहीं ; ताहम उसका नाम बहुत बार सुना है और हुज़ूर नाम भी कितना अच्छा है । गण्डासेन ! गण्डासेन ! हज़ारों में अच्छा नाम है, हुज़ूर, गण्डासेन !

[महामात्य कर्णसिंह का गण्डासेन के साथ प्रवेश । गण्डासेन के हाथ जंजीरों से कसे हुए हैं, अतः जब वह भावावेश में बात करता है तो हाथ हिलने से जंजीर का शब्द होता है । वह आते ही महामात्य के पैरों के पास गिर पड़ता है और उसकी जंजीरें झनझना उठती हैं ।]

गण्डासेन : (**करुण स्वर से**) महाराज ! महाराज ! मुझे बचाइये ! मुझे पाप से बचाइये ! मैं पापी हूँ, विश्वासघाती हूँ, मैंने आपका बहुत बड़ा अपराध किया है, मुझे नरक में भी जगह नहीं मिलेगी ! नहीं मिलेगी ! मैं पापी हूँ ! मैं पापी हूँ, महाराज ! [**सिसकने लगता है ।**]

अधार० : गण्डासेन !

गण्डासेन : महाराज ! मैंने महारानी दुर्गावती का नमक खाया, पर उस नमक का मैंने बड़ा अपमान किया । जिस माँ ने मेरी परवरिश की, उसी माँ की गोद में मैंने अंगारे भर दिये । महाराज ! ऐसा पापी दुनिया में कहीं न होगा । पूरब जनम के पापों से मेरी मति भ्रष्ट हो गयी । मुझे बचाइये ! मेरे पापों से मुझे बचाइये ! [**सिसकियाँ**]

अधार० : सावधान बनो, गण्डासेन ! (**गण्डासेन की सिसकियाँ बन्द होती हैं ।**)

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्पष्ट कण्ठ से अपनी बात कहो। **(महाध्यक्ष कर्णसिंह से)** इसे खड़े होने के लिए कहो, महाध्यक्ष !

कर्णसिंह : गण्डासेन ! खड़े होकर महामात्य के सामने अपना अपराध स्वीकार करो।

[गण्डासेन खड़ा होता है। उसकी जंजीरें बज उठती हैं।]

गण्डासेन : महाराज ! मैं माफ़ी नहीं चाहता। मौत से थोड़ा भी नहीं डरता। आप चाहें तो इसी दम तलवार से मेरा गला कटवा दें। पर मैं आपके सामने अपना पाप कहकर मर जाना चाहता हूँ जिससे मेरा प्रायश्चित्त हो जाये और मेरा परलोक न बिगड़ने पाये।

अधार० : हाँ, बोलो, तुम क्या कहना चाहते हो ?

गण्डासेन : महाराज ! आपके सामने अपना अपराध कह देना मुझे नरक से बचा देगा। दो दिनों तक लगातार जागने के बाद कल शाम को मुझे नींद आ गयी। मैंने सपने में देखा कि महारानी दुर्गावती महेन्दरगज हाथी पर बैठ के जा रही हैं। रेशमी कपड़े पहने हैं, सिर पर मुकुट, हाथ में तलवार, माथे पर रक्त-चन्दन की खौर, उनके उजले शरीर पर बड़ी भली मालूम दे रही थी। आप भी महाराज ! उनके साथ-साथ घोड़े पर सवार हो के जा रहे हैं।

अधार० : अपनी बातें संक्षेप में कहो।

गण्डासेन : महाराज, संक्षेप ही में कहूँगा। तो महारानी महेन्दरगज पर बैठकर आगे-आगे जा रही हैं। मैं महावत बनकर उनका हाथी चला रहा हूँ। महाराज, न जाने महेन्दरगज को क्या सूझा कि उसने अपनी सूँड से मुझे पकड़कर आसमान में फेंक दिया और मैं सितारों में उलझता हुआ जैसे ही ज़मीन पर गिरा तो मेरे हाथ-पैर टूट गये। मैं ज़ोर से कराहने लगा। आप घोड़े से उतर गये। महारानी भी महेन्दरगज से उतर पड़ीं और उन्होंने मुझे गोद में ले लिया। फिर अपने माथे का रक्त-चन्दन अपनी हथेली में लिया और मेरे टूटे हुए हाथ-पैरों पर अपना हाथ फेर दिया। मेरे हाथ-पैर बिलकुल अच्छे हो गये। महाराज ! उसी वक्त मेरी नींद खुल गयी। मैं रोने लगा और सोचने लगा कि जो महारानी अपनी प्रजा के साथ बच्चे की तरह ममता रखती हैं, उन्हीं महारानी के साथ मैंने विश्वासघात किया। महारानी के सामने जाने की मेरी हिम्मत नहीं है। इसलिए महाराज ! आपके सामने ही अपने पाप का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ ! फिर चाहे आप मुझे मौत की सज़ा क्यों न दे दें।

अधार० : अपने अपराध को साफ़ शब्दों में कहो, गण्डासेन !

गण्डासेन : महाराज ! वही बात कह रहा हूँ। मैंने घोर अपराध किया है। महेन्दरगज के ग़ायब करने में मेरा ही हाथ रहा है। आज जब मैं अपने चारों तरफ़ देखता हूँ तो मेरे सामने अँधेरा ही... **(उसकी नज़र हैदर अली पर पड़ती है)** एं ! क्या हैदर अली ? ये हैदर अली ?... महाराज, ये हैदर अली... हैदर अली ! तुम इधर पहुँच भी गये ? चोर...! दग़ाबाज़...! तुमने मुझे बरग़लाया और......

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रौर...तुम मुझे नवाब ग्रासफ़खाँ का सदर फ़ीलवान बनवाग्रोगे ?

हैदर० : ग्ररे, ग्ररे, भाई गण्डासेन ! तुम...तुम...वल्लाह...क्या कह रहे हो ?... मैं...मैं...

गण्डासेन : चुप रहो हैदर ग्रली !

हैदर० : ग्ररे...ग्ररे...वह हैदर ग्रली कोई दूसरा होगा। वह...वह...कोई दूसरा हैदर ग्रली होगा।...मैं...मैं तो तुम्हारा पुराना दोस्त...

गण्डासेन : महाराज ! यही हैदर ग्रली है। एक रोज़ रात में चुपके-से ग्राया ग्रौर मुझ से कहने लगा कि कड़ा-मानिकपुर के नवाब ग्रासफ़खाँ बहादुर को शहंशाह ग्रकबर बादशाह ने पंजहज़ारी मनसबदार बनाया है। उनकी शानो-शौक़त का नवाब दुनिया में कहीं देखने को नहीं मिलता।

ग्रधार० : (**तीव्रता से**) उसके बाद क्या हुग्रा ?

गण्डासेन : महाराज ! हैदर ग्रली ने मुझ से कहा कि महारानी जी के पास जो सफ़ेद हाथी महेन्दरगज है वह नवाब ग्रासफ़खाँ को बेहद पसन्द है। पंजहज़ारी मनसबदार के पास वैसा हाथी रहना भी चाहिए, इसलिए तुम उस हाथी को ग़ायब कर दो। तुम्हें नवाब साहब सदर फ़ीलवान बनाकर हमेशा ग्रपने साथ रखेंगे।

ग्रधार० : नवाब साहब का सदर फ़ीलवान ! फिर तुमने वह हाथी ग़ायब कर दिया ?

गण्डासेन : नहीं कर सका, महाराज ! हैदर ग्रली चाहता था कि वह हाथी मैं रातोंरात कड़ा-मानिकपुर ले जाऊँ लेकिन कोट के चारों दरवाज़ों पर कड़ा पहरा था इसलिए मैंने सिंगौरगढ़ के पच्छिम में साल वन में ले जाकर बाँध दिया है।

ग्रधार० : (**कर्णसिंह से**) महाध्यक्ष, ग्रश्व-साधनिक के पास साल वन जाने की सूचना भिजवा दो।

कर्णसिंह : जो ग्राज्ञा ! [**प्रस्थान**]

हैदर० : (**गिड़गिड़ाते हुए**) हुज़ूर के इक़बाल से...

ग्रधार० : तुम चुप रहो, हैदर ग्रली ! गण्डासेन की बात पूरी होने दो।

हैदर० : हुज़ूर ! ग्रगर ग्राफ़ताब को भी रोकना चाहेंगे तो हुज़ूर ! वह भी रुक जायेगा। मैं तो हुज़ूर की जूतियों की ख़ाक...

ग्रधार० : (**गण्डासेन से**) तो तुम इस तरह बहकाये गये, गण्डासेन ?

गण्डासेन : हाँ, महाराज ! हैदर ग्रली ने मुझ से यह भी कहा कि नवाब साहब बहादुर ने महेन्दरगज लेने का पक्का इरादा कर लिया है। पहले मैं चापलूसी करता हुग्रा नवाब साहब बहादुर का इरादा ज़ाहिर करूँगा। एक तो दीवान साहब महेन्दरगज ग्रासानी से देंगे नहीं, ग्रगर उन्होंने देने की बात कही भी तो महेन्दरगज के ग़ायब हो जाने से वे ग्रपना वायदा पूरा नहीं कर सकेंगे। दोनों हालतों में नवाब साहब बहादुर गढ़ामण्डले पर चढ़ाई करके न सिर्फ़ हाथी, बल्कि बहुत-सी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दौलत भी लूट सकेंगे। मुझ से कहा कि उस लूट में तुम्हारा भी हिस्सा होगा, नहीं तो गढ़ामण्डले के साथ तुम भी धूल में मिला दिये जाओगे। अपनी जान देने और सदर फ़ीलवान होने के साथ भारी दौलत पाने के बीच अपना फ़ैसला कर लो।

अधार० : और तुम सदर फ़ीलवान बनने के साथ भारी दौलत पाकर अपनी मातृ-भूमि को जलता हुआ देखते ?

गण्डासेन : महाराज ! महारानी दुर्गावती और आपका सपना देखने के बाद मुझे घोर पछतावा हुआ और मैं सारे समय आँसू बहाता रहा। महाराज ! मैंने घोर पाप किया है. मुझे इस पाप से बचाइये ! इस पाप से बचाइये ! नहीं तो मेरी आत्मा परलोक में भी तड़पती रहेगी ! मुझे बचाइये !

[महाध्यक्ष कर्णसिंह का प्रवेश]

कर्णसिंह : महाराज, अश्व-साधनिक को साल वन जाने की सूचना भिजवा दी गयी।

अधार० : महाध्यक्ष, गण्डासेन को इस समय बन्दीगृह भिजवाने की व्यवस्था करो। इसके दण्ड की उचित व्यवस्था बाद में होगी।

कर्णसिंह : जो आज्ञा ! (**गण्डासेन से**) गण्डासेन, बन्दीगृह चलो।

गण्डासेन : (**अधारसिंह से**) महाराज ! मैंने अपने मन का पाप आपसे कह दिया। अगर अब मौत की सज़ा भी मिले तो मैं सुख से मर सकूंगा। महारानी जी की सेवा में भी मेरा प्रणाम पहुँचे ! महाराज को प्रणाम ! अब मैं सुख से मर सकूंगा, मर सकूंगा।

[कर्णसिंह के साथ गण्डासेन का प्रस्थान]

अधार० : (**सोचते हुए**) तो षड्यन्त्र यह था ! जिसमें मुख्य रूप से भाग लेने वाले हैं हैदर अली और गण्डासेन ! (**हैदर अली से**) तो हैदर अली ! यह तुम्हारा ही काम था कि तुमने गण्डासेन की स्वामि-भक्ति में आग लगायी। तुमने ही उसे सुनहले सपने दिखलाये। उसे बहकाया और राजद्रोह किया और उसमें भाग लिया। तुम्हारे लिए बहुत भयानक दण्ड की व्यवस्था करनी होगी।

हैदर० : हुज़ूर का फ़ैसला सिर-आँखों पर होगा।

अधार० : गण्डासेन को तो बन्दीगृह भेजा गया, तुम्हें कहाँ भेजा जाये ?

हैदर० : जहाँ हुज़ूर के क़दमों का साया पड़े।

अधार० : तुम्हें अपने बारे में कुछ कहना है ?

हैदर० : यह नाचीज़ हुज़ूर का वक्त ज़ाया नहीं करना चाहता। दुनिया के लोगों को जो कुछ अच्छा लगता है, हुज़ूर ! वो लोग वही कहते हैं। आजकल किसी की बात काटना खुद अपनी ज़बान कटवाना है।

अधार० : तो अपनी ज़बान कटवाने में तुम्हें कोई एतराज़ नहीं है ?

हैदर० : हुज़ूर के हाथों ज़बान क्या सिर भी कट जाये तो यह मेरी खुशक़िस्मती का बायस होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधार० : जो कुछ गण्डासेन ने कहा उसके मुतल्लिक़ तुम्हें कुछ कहना है ?

हैदर० : हुज़ूर ! नमक से बढ़कर ज़बान की कोई ग़िज़ा नहीं है ! ज़बान जो नमक खाती है उसी नमक की बात बोलती है हुज़ूर ! अगर इसे क़ुसूर समझते हैं तो बन्दा दुनिया का सबसे बड़ा क़ुसूरवार है ।

अधार० : लेकिन नमक खाने वाली ज़बान जो कुछ भी कहे सचाई से कहे, तलवार की काट न करे ।

[अंगरक्षिका पाण्डवी का प्रवेश]

पाण्डवी : महामात्य की जय हो !

अधार० : कौन ? अंगरक्षिका पाण्डवी !

पाण्डवी : हाँ महामात्य ! आपकी सेवा में मुझे यह सूचना निवेदन करनी है कि महारानी अपनी पूजा समाप्त कर चुकी हैं । अन्तिम प्रार्थना शिव-ताण्डव-स्तोत्र सुन रही हैं । यहाँ शीघ्र ही आनेवाली हैं ।

अधार० : इस समय की घटनाएँ उनकी प्रतीक्षा भी कर रही हैं । हम महारानी का स्वागत करने के लिए प्रस्तुत हैं ।

[पाण्डवी का प्रस्थान । नेपथ्य में शिव-ताण्व-स्तोत्र नारी-कण्ठ के सम्मिलित स्वर में सुन पड़ता है ।]

जटाटवी-गलज्जल-प्रवाहपावितस्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्ग-तुङ्ग-मालिकाम् ।
डमड्-डमड्-डमड्-डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ।।

... ...

प्रचण्ड-वाडवानल-प्रभा-शुभप्रचारिणी
महाऽष्टसिद्धिकामिनी-जनावहूत-जल्पनी ।
विमुक्तवामलोचना विवाहकालिकध्वनिः
शिवेति मन्त्रभूषणं जगज्जयाय जायताम् ।।

[शंख-ध्वनि होती है । सम्मिलित स्वर से]

म हा रा नी दु र्गा व ती की ज य !

[अंगरक्षिका के साथ महारानी दुर्गावती का प्रवेश । पीछे वीर-नारायण हैं ।]

अंग० : महारानी दुर्गावती की जय !

अधार० : राजरानी दुर्गावती की सेवा में अधारसिंह का प्रणाम स्वीकार हो !

हैदर० : राजरानी दुर्गावती की सेवा में हैदर अली का परणाम ईकार हो ।

दुर्गावती : महामात्य ! भगवान् भैरव को आज पचास नवीन हाथियों ने दुग्ध से अभिषेक किया है ! इन नवीन हाथियों का विवरण मैं जानना चाहती हूँ ।

अधार० : महारानी, यह आपके शासन की समृद्धि है कि जन-साधारण चाँदी के

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिक्कों में भूमि-कर न चुका कर सोने की मोहरों और हाथियों में चुकाते हैं। कल तीन भूमिधरों ने अपना कर इन पचास हाथियों में चुकाया है।

दुर्गावती : इन हाथियों को भी सैनिक-शिक्षा दी जाये और भविष्य के युद्ध में ये हाथी मेरे साथ महेन्द्रगज के सहायक बनकर रहेंगे।

अधार० : जैसी आज्ञा !

दुर्गावती : किन्तु महेन्द्रगज के द्वारा आज भगवान् भैरव का अभिषेक नहीं हुआ ?

[**महामात्य चुप हैं।**]

दुर्गावती : महामात्य ! आप चुप क्यों हैं ? महेन्द्रगज के द्वारा आज भगवान् भैरव का अभिषेक क्यों नहीं हुआ ?

अधार० : महारानी ! महेन्द्रगज नहीं है।

दुर्गावती : (**तीव्रता से**) महेन्द्रगज नहीं है ? मेरा प्रिय हाथी महेन्द्रगज नहीं है ? (**वीरनारायण से**) नारायण ! भगवान् भैरव के पूजन में तुम आये थे। तुमने मुझे सूचना नहीं दी ?

वीर० : आप पूजन में व्यस्त थीं, माँ ! मैंने विघ्न डालना उचित नहीं समझा।

दुर्गावती : यह कोई रहस्य तो नहीं है ? महामात्य ! जिस राज्य में घटनाएँ रहस्य का अवगुण्ठन अपने मुख पर डाल लेती हैं, उस राज्य की दृष्टि अपने पैरों तक ही सीमित रह जाती है, अपने अंग भी नहीं देख सकती। मेरी राजनीति में रहस्य के लिए स्थान नहीं है। रहस्य कला के लिए वरदान हो सकता है, किन्तु राजनीति के लिए अभिशाप है।

अधार० : महारानी, कल से मैं इसी रहस्य का उद्घाटन करने में व्यस्त हूँ कि महेन्द्रगज कहाँ है।

दुर्गावती : कहाँ है ?

अधार० : साल-वन में।

दुर्गावती : साल-वन में ? क्यों ? दुर्गावती का सिंगौरगढ़ अन्न और वृक्षों से शून्य हो गया ?

अधार० : महारानी, यह सब एक भयानक भविष्य की भूमिका है। कड़ा-मानिकपुर का नवाब आसफ़ख़ाँ जब से पंजहज़ारी मनसबदार हुआ है तब से वह महेन्द्रगज को अपना हाथी समझना चाहता है।

दुर्गावती : (**बीच ही में**) महामात्य !

अधार० : क्षमा करें, महारानी ! वह उस हाथी को पाने के लिए इतना प्रयत्नशील है कि उसने हमारे राज्य में न केवल षड्यन्त्र करना प्रारम्भ किया वरन् हमारी प्रजा को भी पद-वृद्धि का लालच देकर बहकाना शुरू कर दिया है और उसी का यह परिणाम है कि महेन्द्रगज आज भगवान् भैरव का अभिषेक नहीं कर सका।

दुर्गावती : आपने उस रहस्य का उद्घाटन किया ?

अधार० : हाँ, महारानी ! सात षड्यन्त्रकारी पकड़े जा चुके हैं। एक षड्यन्त्रकारी ने

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। उसी से पता चला कि महेन्द्रगज को चोरी से कड़ा-मानिकपुर ले जाने की योजना थी किन्तु वह योजना सफल नहीं हो सकी और इसीलिए महेन्द्रगज को साल-वन में ही छिपा दिया गया।

दुर्गावती : षड्यन्त्रकारियों को प्राणदण्ड दिया जाये। अन्याय का दमन करने में राजनीति को कोमल नहीं होना चाहिए। ज़हर का नाश करने के लिए ज़हर की ही आवश्यकता पड़ती है। हाँ, जिसने अपना अपराध स्वीकार किया है उसका निर्णय कुछ कोमलता से अवश्य किया जा सकता है और यह निर्णय आप करेंगे।

अधार० : जैसी आज्ञा, महारानी !

दुर्गावती : और साल-वन की ओर किसी को भेजा गया ?

अधार० : महाध्यक्ष कर्णसिंह को आज्ञा दे दी गयी है कि वह अश्व-साधनिक को तुरन्त साल-वन भेजकर महेन्द्रगज को यहाँ ले आयें।

दुर्गावती : मैं आज संध्या के पूर्व ही महेन्द्रगज को देखना चाहती हूँ।

अधार० : वह इसके पहले ही आ जायेगा, महारानी ! पर अभी एक बात का निर्णय करना शेष है।

दुर्गावती : निवेदन करो !

अधार० : कड़ा-मानिकपुर के नवाब आसफ़खाँ की ओर से यह दूत आया है, हैदर-अली।

हैदर० : बुलन्द इक़बाल महारानी को परणाम !

दुर्गावती : क्या फिर नवाब साहब की ओर से किसी बात का इशारा किया गया है ?

अधार० : हाँ, महारानी ! इस दूत के द्वारा यह कहलाया गया है कि यदि तीन दिन के भीतर महेन्द्रगज कड़ा-मानिकपुर नहीं भेज दिया गया तो नवाब साहब गढ़ा-मण्डले पर चढ़ाई कर देंगे।

दुर्गावती : इस तरह का सन्देश तो शायद पहले भी भेजा गया था।

अधार० : सत्य है, महारानी ! पर पहले केवल संकेत से यह बात कही गयी थी, प्रार्थना के ढंग से प्रस्ताव किया गया था, अब समय की एक अवधि निश्चित कर दी गयी है और चढ़ाई करने की धमकी भी दी गयी है।

दुर्गावती : क्या प्रस्ताव है ?

अधार० : यदि तीन दिन के भीतर महेन्द्रगज मानिकपुर नहीं भेज दिया गया तो नवाब साहब गढ़ामण्डले पर चढ़ाई कर देंगे।

दुर्गावती : तीन दिन के भीतर ?

अधार० : हाँ, महारानी !

दुर्गावती : (दोहराते हुए) यदि महेन्द्रगज कड़ा-मानिकपुर नहीं भेज दिया गया तो नवाब साहब चढ़ाई कर देंगे।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधार॰ : हाँ, महारानी !

दुर्गावती : इस सम्बन्ध में हमारा रुख नवाब साहब को पहले ही समझ लेना चाहिए था लेकिन यदि वे न समझे हों तो यह कहला दीजिए महामात्य, कि नवाब साहब की शक्ति देखने की इच्छा हमारे मन में भी है। वे महेन्द्रगज के रूप में कोई बहाना खोजने की कोशिश न करें। वे बड़ी प्रसन्नता से गढ़ामण्डले पर आक्रमण करें। हम उचित ढंग से उनका स्वागत युद्ध-भूमि में करेंगे।

अधार॰ : सत्य है, महारानी !

दुर्गावती : और महेन्द्रगज दुर्गावती का ही महेन्द्रगज रहेगा, वह दुर्गावती के जीते-जी किसी दूसरे का नहीं हो सकता। नवाब साहब महेन्द्रगज के बहाने ही सही, सिंगौरगढ़ पर प्रसन्नतापूर्वक अपनी फ़ौज लेकर चढ़ाई करें। हम भी युद्ध के लिए तैयार रहेंगे।

अधार : आपका आदेश सर्वमान्य है, महारानी ! आपने दर्जनों बार कवच धारण कर महेन्द्रगज पर बैठकर सेना के आगे भगवती दुर्गा की भाँति युद्ध किया है। आपका शुभ नाम महारानी दुर्गावती सार्थक है। (**हैदर अली से**) तुमने महारानी का आदेश सुना, हैदर अली ?

हैदर॰ : बजाते खुद मैं अपने नवाब साहब बहादुर के इरादों से इत्तफ़ाक़ नहीं रखता। सदरे आली ! लेकिन अपने मालिक के रूबरू यह नाचीज़ क्या अर्ज़ कर सकता है ? [**सिर खुजलाता है।**]

अधार॰ : महारानी के सामने अपना सिर खुजलाने की बेअदबी न करो, हैदर अली !

हैदर॰ : मुआफ़ी का ख्वास्तगार हूँ, हुज़ूरे आली !

अधार : (**सहसा**) अच्छा ! तुम्हारी टोपी से गिरा हुआ यह रंगीन कागज़ कैसा ?

हैदर॰ : कुछ नहीं, हुज़ूर !

अधार॰ : (**अंगरक्षिका से**) अंगरक्षिका पाण्डवी ! वह कागज़ उठाओ।

पाण्डवी : जो आज्ञा ! यह लीजिये। [**कागज़ उठाकर महामात्य को देती है।**]

अधार॰ : अच्छा, इस पर नवाब आसफ़खाँ बहादुर पंजहज़ारी की मुहर भी है ?

दुर्गावती : नवाब आसफ़खाँ पंजहज़ारी की मुहर ?

अधार॰ : हाँ, महारानी ! मैं पढ़कर अभी आपको सुनाता हूँ।

दुर्गावती : अच्छा, तो सिर खुजलाने के बहाने यह पत्र हैदर अली द्वारा गिराया गया। राजनीतिक बातें स्पष्टता के साथ सामने क्यों नहीं लायी जातीं ? क्या नर्तकी की भाँति राजनीति भी छल-छन्दों के साथ अपना शृंगार करना आवश्यक समझती है ?

हैदर॰ : मलकए-आलम ! हुज़ूर ! आपके तेवर देखकर इस नाचीज़ को नवाब साहब बहादुर का खत पेश करने की हिम्मत नहीं पड़ी। मेरे सिर के खुजलाते ही शायद वह खत भी काँप कर ज़मीन पर गिर पड़ा।

दुर्गावती : काँपने की बात नहीं है, हैदर अली ! अपने नवाब साहब से जाकर कहो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि दुर्गावती ने अपने शासन के पन्द्रह वर्षों में केवल युद्ध में लड़ना ही सीखा है। हमारे सैनिकों को युद्ध का अभ्यास कराने की जो आवश्यकता पड़ती है उसके लिए नवाब साहब की चढ़ाई हमारी चिन्ता का विषय नहीं है, हमारे उत्साह का विषय है।

अधार० : **(क्रोध से काँपते हुए)** नीच, दुष्ट, नारकी, तेरी यह हिम्मत ! **(हैदर अली से)** हैदर अली ! इस कागज़ के साथ हम तुम्हें भी जला देंगे। **(महारानी से)** महारानी ! हम यह सहन नहीं कर सकेंगे, सहन नहीं कर सकेंगे। **[पत्र फेंक देते हैं।]**

दुर्गावती : शान्त, शान्त, महामात्य ! यह कैसा कागज़ है ! पढ़कर सुनाओ।

अधार० : महारानी ! मुझे क्षमा करें। मैं यह पत्र नहीं पढ़ सकूँगा। इसे पढ़ना मेरे शरीर में ज्वालामुखी की आग भड़का देना है।

दुर्गावती : पाण्डवी ! तुम यह पत्र पढ़ो।

पाण्डवी : जो आज्ञा ! **(पत्र उठाकर पढ़ती है)** 'गढ़ामण्डले की मलका महारानी दुर्गावती को आसफ़खाँ का सलाम क़ुबूल हो। अरसे से आपकी हुकूमत की शुहरत की रौशनी दूर-दूर तक फैली हुई है और उसे देखकर मुझे जो खुशी हो रही है उसका ज़िक्र बयान से बाहर है। आप जैसी मलका जिस मुल्क के तख्त पर रौनक़ अफ़रोज़ होंगी आफ़ताब भी उस मुल्क के जल्वे का मुहताज होगा। मुझे इस बात का अज़हद रंज है कि आपको खुद मुल्क का इन्तज़ाम करने में इतनी ज़हमतें गवारा करनी पड़ती हैं। अगर आप मुझे अपनी खिदमत करने का मौक़ा दें तो मैं दिलोजान से हाज़िर हूँ और आपके नूर से हमारे हरम को जो इज़्ज़त मिलेगी उसकी मिसाल......'

दुर्गावती : **(चीखकर बीच ही में)** सावधान ! **(दाँत पीसते हुए)** लम्पट और विलासी यवन ! अपने हरम को हज़ारों सतियों के खून से नहलाकर अब उसे आग से रंगना चाहता है ? महामात्य ! महाध्यक्ष को अभी सूचित करो कि युद्ध की तैयारी करे। सैनिकों को अभी आज्ञा दो कि वे अपने शस्त्र सँभालकर तैयार हो जायें और... और...

अधार० : हम इस अपमान का बदला निश्चय ही लेंगे, महारानी !

दुर्गावती : महामात्य ! सभी सैनिक महाकाल भैरव के समक्ष एकत्रित होकर युद्ध की शपथ लें और एक बार फिर रण-चण्डी का आवाहन हो !

अधार० : महारानी ! मैं आज अपने जीवन-भर की सेवाओं की शपथ लेकर आपके सामने यह प्रण करता हूँ कि महारानी के अपमान का प्रतिकार मैं अपने शरीर के रक्त की अन्तिम बूंद देकर भी करूँगा। अधारसिंह के पीछे उसकी अटूट राजभक्ति का ही आधार रहा है। जिस दिन इस आधार पर आँच आयेगी उस दिन अधारसिंह इस संसार में नहीं रहेगा। महारानी ! इस तलवार की साक्षी देकर **(तलवार निकाल लेता है)** मैं यह घोषणा करता हूँ कि गढ़ामण्डले के राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की सीमा इसी तलवार की भाँति अखण्ड और अविभाजित रहेगी और जब तक यह तलवार मेरे हाथ में है तब तक किसी भी आक्रमणकारी का प्रवेश महारानी के राज्य की सीमा में न होगा। हैदर अली ! तुम्हारे नवाब साहब ने एक सिंहनी को युद्ध का निमन्त्रण दिया है जिसके पास साहस का कवच है और शक्ति की तलवार है।

हैदर० : (**घबराकर**) मैं...मैं...मैं...इसकी ताईद करता हूँ, वज़ीरे-आज़म !

[**सैनिक का प्रवेश**]

सैनिक : (**प्रणाम कर**) महारानी जी की जय हो ! सेवा में महाध्यक्ष उपस्थित होने की अनुमति चाहते हैं।

दुर्गावती : इस समय उनकी आवश्यकता भी है। उन्हें शीघ्र ही यहाँ भेजो !

सैनिक : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

दुर्गावती : हैदर अली ! तुम्हारे नवाब साहब यह समझते हैं कि वे एक अकेली नारी को युद्ध में पराजित कर देंगे, पर यह उनकी भूल है। मेरी एक बाहु कोटि बाहु है और एक कृपाण कोटि कृपाण है। मैं अपनी प्रजा की जननी हूँ और जननी की शक्ति संसार में सबसे महान् है। तुम अपने नवाब साहब से कहो कि अपनी पंज़-हज़ारी शक्ति को वे जितनी भयानकता से एकत्रित कर सकते हैं, करें और युद्ध के मैदान में आयें और जो पत्र तुम लाये हो उसका उत्तर तलवार से दिया जायेगा, लेखनी से नहीं। तुम दूत हो, नहीं तो इस पत्र का सारा ज़हर तुम्हारे शरीर में भर दिया जाता।

[**महाध्यक्ष कर्णसिंह का प्रवेश**]

कर्णसिंह : महारानी की जय हो ! महेन्द्रगज शीघ्र ही साल-वन से आपकी सेवा में उपस्थित होगा।

दुर्गावती : उसे उपस्थित होना चाहिए। जैसे ही वह आये उसे युद्ध के लिए सुसज्जित करो। मैं इस बार फिर उसी पर बैठकर युद्ध करूँगी। मैं इस बार अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक युद्ध करना चाहती हूँ।

कर्णसिंह : जो आज्ञा !

दुर्गावती : सिंगौरगढ़, मण्डला, चौरागढ़ और गढ़ा की समस्त सेना अपने-अपने चतुर्व्यूह में एकत्रित हो। मेरे पन्द्रह सौ हाथी, आठ हज़ार घुड़सवार और बीस हज़ार सैनिक युद्ध-भूमि के लिए प्रस्तुत हों।

कर्णसिंह : जैसी आज्ञा !

दुर्गावती : जाओ ! सब प्रबन्ध पूर्ण हो और युद्ध-तूर्य की घोषणा हो !

कर्णसिंह : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

दुर्गावती : महामात्य ! मेरे विष के बुझे बाणों की पुनः परीक्षा हो और मेरे कृपाण पर फिर से पानी चढ़ाया जाये।

अधार० : यह शीघ्र ही होगा, महारानी !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुर्गावती : हैदर अली ! तुमने षड्यन्त्र में भाग लिया है और तुम कलंक-पूर्ण पत्र लाये हो। तुम्हारे दण्ड की क्या व्यवस्था की जाये ?

हैदर० : मलकए-आलम की सज़ा बसरोचश्म मंजूर होगी। यह नाचीज़ अपनी जान देकर भी महारानी का हुक्म बजा लाने में अपनी खुशकिस्मती समझेगा।

दुर्गावती : हैदर अली ! हम लोग मर्यादा-पालन में विश्वास रखते हैं। तुम राजदूत हो इसलिए तुम्हें इस समय दण्ड नहीं दूंगी। तुम स्वतन्त्र हो। जाओ और अपने नवाब साहब को यही उत्तर देना कि नारी की शक्ति उसकी तपस्या में है। दुर्गावती तपस्विनी है। उसे बहन समझोगे तो वह तुम्हें आशीर्वाद देगी; पर यदि अपनी दृष्टि मैली करोगे तो वह तपस्विनी अपनी आग में तुम्हें जला देगी। और अगर वह नहीं जला सकी तो स्वयं जलकर भस्म हो जायेगी। जाओ !

हैदर० : महारानी ! यह जल्वा हिन्दुस्तान का जल्वा है। मैं नवाब साहब बहादुर से यही अर्ज़ करूँगा कि वह मल्कए-आलिया को अपनी हमशीरा ही समझें। आपके अदल और मेहरबानी का हज़ार-हज़ार शुक्रिया ! बन्दा खिदमत में आदाब बजा लाता है। [**प्रस्थान**]

[**नेपथ्य में रण-वाद्य और तूर्य**]

[**वीरनारायण का प्रवेश**]

वीर० : माँ, महाध्यक्ष कर्णसिंह ने आपकी युद्ध-घोषणा प्रचारित करने के लिए अश्व-साधनिक को नगर में भेज दिया है। मैंने महेन्द्रगज और कुमारगज की रण-सज्जा के लिए आज्ञा दे दी है। युद्ध के मध्य में आपका महेन्द्रगज रहेगा और दाहिने भाग में मेरा कुमारगज।

दुर्गावती : नारायण ! महाकाल भैरव का अभिषेक हो। इस समय तुम्हारे पितामह और पिता नहीं हैं पर उनका सम्मिलित शौर्य तुम्हारे शरीर के प्रत्येक रोम में समा जाये और वंश की सारी मर्यादा तुम्हारे कृपाण की धार की तेजी बन जाये।

वीर० : माँ ! आपका आशीर्वाद सफल हो !

दुर्गावती : महामात्य ! सैनिकों को आज्ञा दो कि आज हम सब महाकाल भैरव की शक्ति का आवाहन करेंगे और सिंगौरगढ़ की रक्षा प्राण देकर भी होगी।

[**अधारसिंह और वीरनारायण का सम्मिलित स्वर**]

म हा रा नी दु र्गा व ती की जय !

[**नेपथ्य में रण-वाद्य**]

[**यवनिका**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 18 :

दीने-इलाही

[स्वोक्ति-रूपक]

पात्र-परिचय

सम्राट् अकबर

स्थान—फतेहपुर-सीकरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दीने-इलाही

अकबर : (सिंहासन से उठकर) रहमानुर्रहीम ! या हादी !!

दसवीं हिजरी में फ़तेहपुर सीकरी के इस इबादतख़ाने की पाक फ़िज़ा में फ़ैज़ी, अबुलफ़ज़ल, अब्दुर्रहीम और बीरबल जैसे रतन ! अमीर, सैयद, उलमा और शेख़ की जमाअत। इन सबके रूबरू आज हम अपने दिल की मुराद रखना चाहते हैं—दिल की मुराद जिसने न जाने कितने दिनों से फलने और फूलने की इजाज़त हमसे माँगी, लेकिन हम देने से इनकार करते रहे। सोचा, शायद उसमें कोई काँटा हो जो किसी के पाक दामन को चाक कर दे। लेकिन जब सुबह सूरज की किरन निकली तो हमने देखा कि हमारी मुराद चारों सिम्तों में फैले हुए एक बड़े फूल की शक्ल अख़्तियार कर चुकी है। आप लोगों के सामने लहराता हुआ यह अनूप तालाब उस पर शबनम की तरह झूल रहा है। उस फूल में काँटा नहीं है, उसमें खुशबू है—खुशबू जो चुभ सकती है लेकिन काँटे की तरह नहीं मुहब्बत की तरह, और वह सिर्फ़ दिल में—दिमाग़ में नहीं। और दिल में जो चीज़ चुभती है, वह बुरी नहीं होती। बीरबल ! वह बुरी नहीं होती।

हमारी कोई बात अगर अच्छी न लगे तो उलमा और शेख़ हमें रोक सकते हैं, अमीर और सैयद उठकर जा सकते हैं, लेकिन हमें यक़ीन है कि इस तरह की कोई बात नहीं हो सकती, नहीं हो सकती। हमें किसी की जबीं पर शिकन भी नहीं दीख पड़ती। तो हम अपने दिल की मुराद ज़ाहिर करेंगे।

यह इबादतख़ाना आखिर क्यों बना ? शेख़ अब्दुल्ला नियाज़ी की झोंपड़ी इस जगह क्या बुरी थी ? लेकिन जिस तरह मिट्टी से रतन निकलता है, उसी तरह शेख़ अब्दुल्ला नियाज़ी की झोंपड़ी से यह इबादतख़ाना उठ खड़ा हुआ। हमने इसे क्यों बनाया ? फ़ैज़ी ने मशवरा दिया कि हर जुम्मे को हम आप सबसे मिलकर इबादत का राज़ समझें। बंगाल का सुलेमान करारानी भी यही करता था—हमने उसे शिकस्त दी—ख़ुदा करे उसे दायमुल वजूद हासिल हो। उसकी तरह हम भी इबादत का राज़ समझें।

अबुलफ़ज़ल का कहना है कि हिन्दुस्तान में पहले भी इस तरह की जमायतें हुई हैं—अशोक, कनिष्क और हर्ष के ज़माने में। चीन में ताइसिंग ने एक जमाअत में मज़हबी तसफ़िए किए हैं। हज़रत कुबला ख़ान ने भी पेकिन में सभी मज़हबों के लोगों को इकट्ठा किया था और चीन के अँधेरे को दूर किया। सिकन्दर लोदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रौर सुलेमान करारानी की जमाश्रतें तो ताज़ी मिसालें हैं जिनमें दीनी मसले हल किए गये। तब यह ज़रूरी है कि हमारे इतने बड़े मुल्क में जहाँ बहुत-सी मज़हबी ग़लतफ़हमियाँ फैली हुई हैं, ऐसी कोई जमाश्रत हो। उसी के लिए यह इबादतखाना श्रापके सामने है। इस इबादतखाने के मुबाहसे में पहले सिर्फ़ सुन्नी शरीक होते थे, कुछ श्रर्से बाद शियाश्रों को भी शिरकत मिली श्रौर श्रब सुन्नी श्रौर शिया के साथ हिन्दू, पारसी, जैन, सिक्ख बौध, यहूदी श्रौर ईसाई भी यहाँ श्रपने मज़हब श्रौर धर्म का राज़ हमें समझाते हैं। कुछ सुन्नियों को यह पसन्द नहीं श्राया। क्यों बदायूनी ! तुम्हें भी शायद शिकायत होगी ? लेकिन इसे हम ग़लत समझते हैं। श्रब हिन्दुस्तान हमारा है, इसकी हरएक श्रच्छाई श्रौर बुराई हमारी है। श्रब इस मुल्क में श्रम्नो-श्रमान है। जूद श्रौर करम हमारी श्राँखें हैं। बाहर से श्राने वाले कितने श्रक्लमन्द लोगों से इसे श्रपना वतन बनाया है। इसकी हर एक फ़िज़ा हमारे चैन-श्रो-सुकून के लिए है। यह खुदा का नूर है। श्रौर बदायूनी ! हिन्दुस्तान ही क्यों, श्राप दुनिया पर नज़र डालें। समन्दर-पार के इन्सान भी बेदार हो उट्ठे हैं। इस्लाम में मेहदी फ़िरक़ा भले ही ग़लत हो, लेकिन वह श्रपने पूरे ज़ोर पर है, चीन में पिंग की तरफ़ श्राप श्रपनी नज़र उठायें। ईरान के सूफ़ियों की जमाश्रत दुनिया-भर में फैल गई है। तुर्किस्तान में सुलेमान के नूर का जल्वा है। फ़ारस में शाह इस्माइल का क्या श्रसर है, श्रौर चीन में युंग लों ने नई दुनिया क़ायम कर दी है तो हिन्दुस्तान में हज़रते तैमूर का खानदान ग़फ़लत की नींद में क्योंकर सो सकता है ! हिन्दुस्तान की तवारीख भी सूरज की किरन से लिखी जानी चाहिए, तारीकी की स्याही से नहीं, श्रबुल-फ़ज़ल हमारी 'श्राईन' लिखना चाहते हैं। वे भी इस बात को जानते हैं। इस बेदारी के श्रालम में हम खानदाने-तैमूरिया की हस्ती दुनिया को दिखलाना चाहते हैं।

श्रज़ पये हर गिरिया श्राखिर खन्दा ईस्त।
मर्द श्राख़िर बीं मुबारक बन्दा ईस्त।

श्रपनी ज़िन्दगी की श्राखिरी मंजिल पर जो नज़र रख सकता है वही बन्दा मुबारिक है। इस ज़िन्दगी की श्राखिरी मंज़िल क्या है ? हम कहते हैं, ज़िन्दगी की श्राखिरी मंज़िल है खुदा के क़रीब पहुँचना, जो दुनिया के हर ज़र्रे में मौजूद है।

सरा पर्दये चर्ख गर दन्दाँ बीं।
दरू शमहाए फ़रो ज़िन्दा बीं।

इस घूमते हुए श्रासमान के पर्दे के नीचे इस शमा को देख जो रौशन है। श्रगर हमें मुल्क के कामों से फ़ुरसत मिले श्रौर खुदा हमें एक दूसरी ज़िन्दगी बख्शे तो हमारी ख्वाहिश है कि हम इस पर पूरे तौर से कह सकें। तो यह शमा सब जगह रौशन है। इसी रौशनी की किरन बाँधने की कोशिश हर एक मज़हब ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की है। मंज़िल एक है रास्ते जुदे-जुदे है। कोई सीधा है, कोई टेढ़ा, कोई दाहिने है, कोई बाएँ। मंज़िले-मक़सूद एक है। तो यह रास्ते का झगड़ा है, मंज़िल का नहीं। हमने देखा है कि चीज़ वही है, बन्दिश जुदी-जुदी है, और इसी बन्दिश ने इन्सान के सैकड़ों टुकड़े कर दिए हैं। खुशबू को काट कर रख दिया है, किरन के हिस्से कर दिए हैं और फ़लक के दामन में धब्बे लगा दिए हैं। हम कहेंगे कि नफ़्स के दायरे में रूह को मिटा दिया है। हमारी इस बात से शेख़ फ़ैज़ी के ओंठों पर मुस्कराहट है। शायर है न! दुनिया के अजीबो-ग़रीब शायर। तो हम कह रहे थे कि दुनिया का वह सबसे बड़ा मज़हब समझा जाना चाहिए जो इन रास्तों को नहीं देखता, मंज़िले-मक़सूद को देखता है।

गर विसाले दोस्त मी दारी हवस।
नफ़्स रा बा रूह गरदाँ हम नफ़स।

अगर तू अपने दोस्त से विसाल की हविस रखता है तो तू रूह पर नफ़्स को लुटा दे। यही वजह है कि इस इबादतखाने में आप सब अपने दोस्त से विसाल की हविस रखते हैं और नफ़्स को रूह पर लुटाने के लिए आये हैं। जब रूह ही मुस्तक़िल है तो नफ़्स की कोई हस्ती नहीं। जो नफ़्स को तरजीह देते हैं वो रूह को पहिचानते नहीं। इसीलिए हम दूसरे को शक की निगाह से देखते हैं। हमने इस शक को मिटाने की दवा ईजाद की है। हमने अपने दीन को इलाही के जल्वे से रौशन किया है जिसमें रूह की कोई हस्ती नहीं है और रूह की कोई क़िस्म नहीं है और रूह की हस्ती के सामने नफ़्स की कोई हस्ती नहीं है। यह दीने-इलाही है। इलाही को पहिचानने का सबसे आसान रास्ता है।

बदायूनी! तुम समझते होगे, हमने इस्लाम के वसूलों के खिलाफ़ कुछ कहा। हरगिज़ नहीं। हम ख़ुदा के बन्दे हैं लेकिन हम ख़ुदा के नूर को रवायतों में महदूद नहीं करते। हम समझते हैं कि ख़ुदा के नूर ने इस दुनिया में कितने ख़ूबसूरत तरीकों से अपने को रौशन किया है।

बज़िल्ले रूह अज़ शौक़ ब हक्क़ोवसूल ब हज़रते करीम। शस्त और साफ़ नजर ही इस दीन की सबसे बड़ी सिफ़त है। अगर हम मरकज़ पर अपनी पाकीज़ा नज़र क़ायम रक्खें तो हम कभी इधर-उधर नहीं भटक सकते। हमारा रास्ता सीधा और साफ़ है। जो सूफ़ी है वह अपने सफ़ पर क़ायम है, वह चाहे सुफ़ पहिने या न पहिने।

हम कोई नई बात नहीं करना या कहना चाहते। जिस तरह बीरबल ने कहा—बिखरे हुए मनकों को जोड़कर एक खूबसूरत माला तैयार करना ही हमारा मक़सद है। इसीलिए अपने इस दीने-इलाही के लिए न हम किसी ख़ास क़िस्म की मस्जिद तैयार करना चाहते है, न कोई खास मुल्ला के मुज़ाहिद की ज़रूरत ही समझते हैं। क़ुरान हमारे लिए भी उतनी ही पाक है जितनी इस्लाम के सभी बन्दों के लिए। और यह भी हम कह देना चाहते हैं कि दीने-इलाही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्या किसी भी दीन में शामिल होने के लिए किसी भी शख्स के लिए ज़ोरो-ज़बर्दस्ती की शर्त नहीं है। इस सिलसिले में हम एक बार फिर वही बात दोहराना चाहते हैं जो हमने सलीम से कही थी कि कुरान की ग्रायत है कि ग्रगर खुदा चाहता तो सारी दुनिया इस्लाम को ग्रपना दीन मानती, लेकिन जब खुदा न ऐसा नहीं चाहा तो बन्दे को क्या हक़ है कि वह लोगों को इस्लाम में ग्राने के लिए ज़बर्दस्ती मजबूर करे ? ग्रक्ल ग्रौर ग्रदब से जो इस्लाम में ग्राना चाहता है, ज़रूर ग्राये। ग्राप इसे समझें कि इस दुनिया में 100 में 80 ग्रादमी काफ़िर या हिन्दू हैं। ग्रगर मैं तलवार लेकर इन 80 ग्रादमियों को क़त्ल कर दूं तो यह खुदा का बन्दा ग्रबुलफ़तह जलालुद्दीन मुहम्मद ग्रकबर बादशाह गाज़ी क्या सिर्फ़ दुनिया के पाँचवें हिस्से को ही खुदा का नूर समझे ग्रौर सारी खिलक़त को जिसे खुदा ने इतनी खूबसूरती से रूह ग्रता फ़रमाई है, हमेशा के लिए ग़ारत कर दे ? इसीलिए दीने-इलाही की ज़रूरत है जिसमें किसी तरह की ज़ोर-ग्रो-ज़बर्दस्ती नहीं है। हमारे सीने में इस दीने-इलाही की रौशनी इसी इबादतख़ाने के मुबाहिसों से ग्राई है। जनाब मुबारक, फ़ैज़ी ग्रौर ताजुद्दीन ने इस रौशनी को तेज़ किया है ग्रौर दिल से ग्रँधेरा दूर किया है। ग्रब हम बीरबल की नज़र से भी खुदा देख सकते हैं, तानसेन के सुर में भी कायनात के जौहर का निखार पा सकते हैं। विश्वनाथ की तसवीरों से भी ज़िन्दगी का राज़ समझ सकते हैं ग्रौर शेख फ़ैज़ी के योगवशिष्ठ के तरजुमे से भी खिलकत की खूबी देख सकते हैं। इनके सिवाय ग्राप ज़ेंद-ग्रवेस्ता के जानकार दस्तूर महयर जी राना के ज़रिये ग्राफ़ताब और ग्रातिश में हक़ की परस्तिश कर सकते हैं। जैन जगद्गुरु हीर विजय ग्रौर बौध 'समन' की ग्रहिंसा में हम खुदा की रहमत देख सकते हैं। सिख गुरु उमरदास के जप में हम ज़िक्र का जल्वा महसूस करते हैं। दीने-इलाही में खुदा की रहमत हमने दिल के कोने-कोने में फूलती-फलती देखी है। हर दिल उसके लिए ग्रज़ीज़ है, हर शै उसके लिए तसवीर है।

हमें एक बात याद ग्रा गई। बदायूनी ने एक बार हमसे पूछा कि तसवीरों से हम नफ़रत क्यों नहीं करते ? हमने फ़ौरन ही जवाब दिया कि मुसव्विर ने खुदा को पहचानने का एक नया तरीक़ा ईजाद किया है। जब वह किसी की तसवीर खींचता है तो खूबसूरती का जाल बिछा देता है—ग्राँख, नाक, मुँह बनते चले जाते हैं लेकिन खूबसूरत तसवीर बना कर भी वह उसमें जान नहीं डाल सकता। ग्रौर खुदा छोटी-से-छोटी ग्रौर बड़ी-से-बड़ी खूबसूरत या बदसूरत शकल में जान डाल सकता है। तो मुसव्विर समझता है कि खुदा का जल्वा क्या है। बदायूनी चुप हो गये। हम बदायूनी की लियाक़त की इज्ज़त करते हैं लेकिन हमें ग्रफ़सोस है कि बदायूनी हँस नहीं सकते। खुदा के क़रीब पहुँचकर उनके लबों पर मुस्कुराहट के फूल क्यों नहीं खिलते ?

हम कहाँ से कहाँ पहुँच गये। हमें देर हो रही है। शायद ग्राप लोग भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाना चाहते हों लेकिन आज हम मुसर्रत महसूस करते हैं कि हमने अपने दिल में उठने वाले जज़्बात का इज़्हार किया। दीने-इलाही दुनिया का दीन है बशर्ते कि दुनिया ख़ुदा की ज़ात और सिफ़त समझे। आप पूछ सकते हैं कि दीने-इलाही का रास्ता क्या है? रास्ता आप अपने दिल से पूछिए और मुझे कामिल यक़ीन है कि हर एक इन्सान उस रास्ते को जानता है लेकिन उस पर अमल नहीं करता। हर एक दीन और धर्म के मुबाहिसों से हमने सिर्फ़ दस बातें चुनी हैं। सुनिये :—

पहली है, जूद और करम—दरियादिली और मेहरबानी। क़ुरान की हदीस है कि जब तक तुम अपनी सबसे प्यारी चीज़ कुर्बान नहीं कर सकते तब तक तुम हक़ीक़त से वाक़िफ़ नहीं हो सकते। इसीलिए हर एक को दरियादिल और मेहरबान होना ज़रूरी है।

दूसरी बात है, बुरे काम करने वाले को माफ़ कर देना और उसके गुस्से का जवाब शीरीं ज़बान से देना—अगर तुझे कोई जहर दे तो तू उसे शक्कर दे।

कम म बाश अज़ दरख़्त साया फ़ग़न।
हर कि संगत ज़नद समर ब बख़्शश।

तू साया देने वाले दरख़्त से कम न साबित हो। जो तुझे पत्थर मारे, उसे तू फल दे।

तीसरी बात है, दुनियावी ख़्वाहशात से तू परहेज़ कर। समझ ले कि दुनियावी ज़िन्दगी एक खेल और बाज़ी है।

अलहज़र अज़ हुब्बे दुनिया अलहज़र।
बहरे नानो ज़र मख़ुर ख़ूँने जिगर।

मुहब्बते-दुनिया से तू परहेज़ कर। रोटी और दौलत की ख़ातिर तू अपने जिगर का ख़ून मत पी।

चौथी बात है, दायमुल वजूद के लिए तू इस दुनियावी ज़िन्दगी की क़ैद से नजात हासिल कर।

पाँचवीं बात है, कामों को तू अक़्ल और अदब से अंजाम दे। इसका हम पहले ज़िक्र कर चुके हैं।

मर्द आख़िर बीं मुबारक बन्दा ईस्त।

छठी बात है, दुनिया में ख़ुदा का ऐजाज़ तू तभी देख सकता है जब तू होशियारी से काम ले। हमने पहले भी कहा कि—

सरापरदए चर्ख़ गर दन्दा बीं।
दरू शमहाए फ़रो जिन्दा बीं।

सातवीं बात है, सबके लिए नर्म-ज़बान और ख़ुशकलाम रखना ज़रूरी है।
आठवीं बात है, दूसरे की बात हमेशा अपनी बात से मुक़द्दम समझो।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इबादत बजुज़ खिदमते-ख़ल्क़ नेस्त ।
तसबीहो सज्जादह ब दल्क़ नेस्त ।

ख़ल्क की ख़िदमत से बढ़कर कोई इबादत नहीं है ।

नवीं बात है, दीन के लिए तू दुनिया को तर्क कर दे और अपने को खुदा पर छोड़ दे ।

दसवीं और आखिरी बात यह है कि ऐ बिरादर, अगर तू अपने दोस्त से वस्ल चाहता है तो तू रूह और नफ़स को एक में मिला दे ।

बस, इन्हीं दस बातों में दीने-इलाही है ।

ख़ुदा ने हमें यह मुल्क दिया । इसे हम शीरीं ज़बान दें, मुहब्बत दें, इबादत दें ।

अल्लाहो अकबर !

[परदा गिरता है ।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 19 :

शिवाजी

•

पात्र-परिचय

शिवाजी : महाराष्ट्र देश के अधिपति

आबाजी सोनदेव
मोरोपन्त
शंभूजी कावजी
रघुनाथ बल्लाल
मीनाजी
} : शिवाजी के सेनापति और सहायक

गौहरबानू : बीजापुर के सूबेदार मुल्ला अहमद की सुन्दर पुत्रवधू

काशीबाई : आबाजी सोनदेव की बहिन

सोना
गंगा
} : काशीबाई की प्रधान परिचारिकाएँ

अंजुमन : गौहरबानू की सेवा में नियुक्त परिचारिका

अन्य दो परिचारिकाएँ

•

काल

24 अक्तूबर, 1657 ई०

स्थान

उत्तर कोंकण का प्रदेश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिवाजी

[सात बजे संध्या का समय, कल्याण के समीप मराठों का एक शिविर, पश्चिम में सह्याद्रि पर्वत-श्रेणी की नीलिमा में डूबी हुई चोटियाँ हैं, जो उसी ओर खुलने वाली खिड़की से दीख रही हैं। नीली चोटियों के समीप उठती हुई चन्द्र की बंकिम कला, ज्ञात होती है जैसे किसी अवगुंठनमयी नववधू के केशपाश में पीछे की ओर उठती हुई चूड़ामणि है। वायु में शीतलता है! वातावरण शान्त है, किन्तु यह शान्ति जैसे अट्टहास के बाद की शान्ति है।

शिविर के खंभों में रूखापन है किन्तु सुनहले रंग से रंगकर उन्हें सुन्दर बनाने का आयोजन किया गया है। पत्थर की दीवारों के ऊपर ज़री का चंदोवा है, जिसमें स्थान-स्थान पर मोतियों की लड़ियाँ झूल रही हैं। सामने तीन महराबें हैं और उनके समाप्त होने पर दीवाल पर रेशमी परदे हैं। उनके दोनों ओर दो बड़ी मछलियों के आकार बने हुए हैं। ज़मीन पर मखमल का फर्श बिछा हुआ है। बग़ल की दीवाल पर ढाल, तलवार, तीर और धनुष टँगे हुए हैं।

बीच में एक ऊँचा मसनद है जिस पर एक आसन रखा हुआ है। बाघ के चमड़े पर मखमल की झालरदार गद्दी है, जिसकी बग़ल में नीले मखमल की म्यान में तलवार सजाई हुई है। उस आसन के दोनों ओर दो भालों पर भी दो मछलियों के चित्र झूल रहे हैं। सामने एक छोटे-से मृत्तिकास्तंभ पर पंच-प्रदीप जल रहे हैं। बीच के महराब के नीचे दरवाज़े के दोनों ओर घोड़ों की पूँछ के चँवर हैं। दाईं और बाईं ओर जाने वाले दोनों मार्गों के द्वारों पर दोनों बाजुओं में आम्र-पल्लवों से सजाये गये जल से भरे हुए मंगल-घट हैं, जिन पर स्वस्तिका के चिह्न बने हुए हैं। उनके समीप ही राजपताकाएँ हैं, एक ज़री की और दूसरी भगवा वस्त्र की, जो स्वामी रामदास के गेरुए वस्त्र की स्मृति में हैं।

कक्ष में जगमगाहट है। स्थान-स्थान पर दीप-कमल जल रहे हैं जिनमें अनेक रंगों के प्रकाश की व्यवस्था है। एक ओर शीतनिवारणार्थ अग्नि-पात्र है, जिसमें कभी-कभी लपट उठ जाती है, जो मराठों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तेजस्विता की परिचायिका ज्ञात होती है। थालियों में लावा के चक्र में धूप के धूम की लहरें उठ रही हैं। समस्त वातावरण में एक पवित्रता है। मसनद के समीप ही नीचे दो आसन और भी हैं। वे मखमल के न होकर कीमख्वाब के हैं। एक आसन पर गंगा (आयु 22 वर्ष) बैठी हुई एक फूल की माला गूँथ रही है। दूसरा आसन खाली है। सह्याद्रि की ओर खुलने वाली खिड़की के समीप ही सोना (आयु 20 वर्ष) खड़ी हुई चन्द्रकला को देख रही है।]

गंगा : (फूल की माला उठाते हुए) दो......तीन......चार......बस, केवल चार फूल चाहिए। सोना ! सुख के चार दिन की तरह चार फूल। फिर यह माला.........।

सोना : (खिड़की से चाँद की ओर देखते हुए) यह माला पूरी न हो सकेगी, गंगा !

गंगा : (माला गूँथते हुए) पूरी न हो सकेगी ? इतने फूल गूँथ लूं तो माला पूरी हो जाय। बस, अन्त में सिर्फ चार फूल चाहिए, उनका झुमका लगाना है।

सोना : (पूर्ववत् चाँद की ओर देखते हुए) यह माला पूरी न हो सकेगी। (गंगा की ओर मुड़कर) हमारे देश के कितने लाल राज्य की माला बनाने में बलि चढ़ गये, किन्तु आज तक राज्य की माला पूरी नहीं बन सकी। अभी और कितने ही फूल चढ़ेंगे।

गंगा : तू तो हमेशा इन्हीं बातों को सोचा करती है। खिड़की के पास खड़ी हुई रात-दिन प्रतीक्षा करती रहती है। सोना ! तेरा भाई अवश्य लौट आयेगा ; वह कितना वीर है, कितना साहसी है, कितना पराक्रमी !

सोना : वीर, साहसी, पराक्रमी ! गंगा ! वीर और पराक्रमी की आयु बहुत थोड़ी होती है। (स्वप्न देखने की भाँति)......आधी रात थी, मेरा भाई सो रहा था। भोंसले श्रीमंत शिवाजी की आज्ञा मिली कि रात ही में कल्याण पर आक्रमण हो। वह उठ खड़ा हुआ। तलवार ली और घोड़े पर सवार हो गया। उसने बाग मोड़ी और काली दिशाओं में तारे की भाँति डूब गया। गंगा ! मैं अपने भाई को अपने हाथों से तलवार भी नहीं दे सकी, मंगल-तिलक भी नहीं कर सकी।

गंगा : (माला गूँथते हुए) सच्चे वीरों को तिलक की आवश्यकता नहीं होती।

सोना : मैंने इसी में सन्तोष किया, गंगा ! किन्तु मैं डरती हूँ कि उसका मंगल-तिलक न होने से कहीं कुछ अनिष्ट न हो। मेरे मंगल-तिलक में बड़ा बल है। मैं पिछली लड़ाइयों में उसे अपने हाथ से तलवार और भाला देती थी। कहती थी कि महाराष्ट्र-जननी की लाज तुम्हारे हाथ में है, भैया ! कभी पीछे मत हटना। गंगा ! वह मेरी दी हुई तलवार को माथे से लगाकर कहता था, 'बहिन ! तुम्हारी आज्ञा श्रीमंत भोंसले की आज्ञा है, महाराष्ट्र-जननी की आज्ञा है।' मैं आरती

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उतारती और जब आरती-पात्र में मेरा एक स्नेहाश्रु ढुलक कर गिर पड़ता तो गंगा, वह मेरे नेत्रों में उलझे हुए आँसू को पोंछकर कहता था, 'बहिन ! इन आँसुओं से मेरा पथ गीला मत करो । मेरा घोड़ा आगे नहीं बढ़ सकेगा ।' उन आँसुओं में हँसने की चेष्टा करती हुई उसकी आरती उतारती थी । घूमती हुई आरती में दीप का आलोक उसकी परिक्रमा करता-सा जान पड़ता था । मैं समझती थी कि यह आलोक-मंडल भवानी का कवच है । लेकिन इस बार मैं अपने भाई की आरती नहीं कर सकी । इस बार यह नहीं हो सका, कुछ नहीं हो सका ।

गंगा : सोना ! तू इतना दुःख क्यों करती है ? महाराष्ट्र की बहिनें इतना दुःख कभी नहीं करतीं ।

सोना : नहीं करती, गंगा ! किन्तु जब (**खिड़की से बाहर की ओर देखती हुई**) इस सह्याद्रि की चोटी पर रात आती है तो जैसे अँधेरे में सारी भयानकता जाग उठती है, संग्राम में मरे हुए वीरों की मौत जाग उठती है, आकाश जगमगाता है तब एक काली-काली छाया यहाँ से वहाँ......वहाँ से यहाँ घूमने लगती है.........पेड़ कंकाल की तरह अकड़ जाते हैं......हवा...का एक शीत झोंका तलवार की तरह घूमकर इस खिड़की के पास तक चला आता है । उसके साथ वह काली छाया भी बहकर चली आती और खिड़की के समीप ठिठक कर कहती है, 'बहिन ! मेरा मंगल-तिलक करो, मेरा मंगल-तिलक करो, बहिन ! तुमने मुझे तिलक नहीं किया......मैं शत्रु के हाथों मारा गया.........ओह ! मेरा भाई !.........मेरा भाई !

[खिड़की पर सिर झुका लेती है । गंगा उठकर शीघ्रता से सोना के समीप जाती है और उसके कंधे पर हाथ रखती हुई सन्तोष देने की चेष्टा करती है ।]

गंगा : सोना, तू पागल तो नहीं हो गई ? कैसी-कैसी बातें करती है ? चल, इधर आ । रात-दिन खिड़की के पास खड़ी होकर न जाने क्या-क्या सोचा करती है। ऐसे भी कोई प्रतीक्षा करती है ? कितनों के भाई युद्ध में लड़ने के लिए नहीं जाते ! कितनों के भाई लौटकर नहीं आते । वीर-कन्याएँ कहीं इस प्रकार दुखी हुआ करती हैं ? क्या वे इस तरह प्रतीक्षा किया करती हैं ? तेरा भाई आयेगा तो क्या वह खिड़की के उस पार ही रह जायगा ? (**दूसरे आसन पर बिठलाती है**) यहाँ बैठ । तू महाराष्ट्र की बहिनों को लज्जित करती है ।

सोना : (**बैठते हुए**) मैं लज्जित नहीं करती, बहिन ! यदि मैं उसे अपने हाथों से विदा कर पाती ; उसकी आरती उतार लेती तो मुझे फिर किसी बात की चिन्ता न रह जाती ।

गंगा : (**दृढ़ता से**) तो समझ ले महाराष्ट्र-जननी ने उसकी आरती उतारी है । महाराष्ट्र-जननी ने, जो सह्याद्रि के सिंह पर बैठी है, कोंकण मुकुट धारण किये हुए

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। वह सोना नदी की मेखला से सारी दिशाओं को प्रतिध्वनित कर रही है। उसके चरणों में कृष्णा तरंगित हो रही है। ऐसी जननी ने तेरे भाई का मंगल-तिलक किया है। सोना! महाराष्ट्र-जननी ने तेरे भाई की आरती उतारी है।

सोना : **(शून्य दृष्टि से)** महाराष्ट्र-जननी ने.........मेरे भाई की............ आरती उतारी.........है! मेरा भाई धन्य.........है, गंगा!

गंगा : **(पूर्ववत् दृढ़ता से)** फिर तू इतना दुःख क्यों करती है? यदि तेरा भाई न लौटे तो वीरा बहिन की तरह अपने को धन्य समझ। उसकी कीर्ति में पोवाड़ा गाया जायगा। गोन्धाली उसके चरित्र का गान करेंगे। दक्षिण की समतल भूमि में, सह्याद्रि की गहरी तराई में, पहाड़ियों की ऊँची चोटियों पर तेरे भाई के गान होंगे।

सोना : **(सँभलकर)** मेरा भाई अमर होगा।

गंगा : **(दृढ़ता से)** निश्चय।

सोना : मेरा हृदय बहुत दुर्बल है। इसीलिए एक क्षण में भाई की ममता जाग उठती है, नहीं तो बहिन के लिए भाई का युद्ध अभिमान की बात है।

गंगा : यह बात तेरे ही योग्य है, सोना! तेरे इस दुःख करने में महाराष्ट्र की नारियों का अपमान होता है। अब तो तू इस तरह दुःख नहीं करेगी?

सोना : **(सँभलकर)** नहीं।

गंगा : **(प्यार से)** तू बहुत अच्छी है, सोना! **(अपने आसन पर बैठती हुई)** देख, मेरी माला अभी तक नहीं बन पाई। तेरे दुःख ने मेरी माला पूरी नहीं होने दी।

सोना : मैं सहायता करूँ, बहिन!

गंगा : रहने दे, मैं पूरी कर लूँगी। सिर्फ थोड़े से फूल और रह गये हैं। और काशी-बाई ने मुझे ही तो आज्ञा दी है कि मैं माला गूँथूँ। **(माला फिर गँथती है)** उन्हें मेरी माला बहुत् पसन्द आती है। तू जा, देख आबाजी सोनदेव के आने में कितना विलम्ब है।

सोना : **(अपने ही विचारों में)** तो क्या मैं माला भी नहीं गूँथ सकती?

गंगा : तू गूँथ क्यों नहीं सकती; किन्तु काशीबाई की रुचि इतनी सुकुमार है कि थोड़ी-सी भूल उनकी आँखों में चुभ जाती है। शृंगार की विशेषता तो महाराष्ट्र में केवल वही जानती हैं। वे कली की आयु के दिन बतला सकती हैं, वे फूल की अवस्था बतला सकती हैं, फूलों के हलके और गहरे रंगों के अनगिनत भेद बतला सकती हैं। स्नान करके वे आती ही होंगी।

सोना : तब तो मैं उन्हें प्रसन्न नहीं कर सकती।

गंगा : तभी तो मैं कहती हूँ कि तू जा। तेरी सहायता मेरे काम न आ सकेगी। जा देख, आबाजी सोनदेव के आने में कितनी देर है।

सोना : अच्छा बहिन, जाती हूँ। [**प्रस्थान**]

गंगा : बस, मेरी माला भी समाप्त हो गई। यह गाँठ लगा दूँ। **(माला में गाँठ**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगाती है) अब केवल झुमका रह गया है। **(नेत्र उठाकर सोना को न पाकर)** गई ! बेचारी सोना ! **(उठ खड़ी होती है)** युद्ध के सब सिपाही लौट आये, यदि नहीं लौटा तो उसका भाई, यादव रामचन्द्र ! **(स्वयं खिड़की के पास जाकर खड़ी होती है)** यादव......रामचन्द्र...... ! **(ठंडी साँस लेकर)** शायद लौट आये ! **[फिर खिड़की के बाहर देखती है ।]**

[काशीबाई (आयु 18 वर्ष) का प्रवेश । यौवन और सौन्दर्य की सम्पत्ति से परिपूर्ण । आँखों में सरसता और आकर्षण । माथे में लाल बिन्दी, केशों में लाल फूलों का शृङ्गार, गौर वर्ण और शरीर में कमनीयता । शरीर में आभूषणों के स्थान पर रंग-बिरंगे पुष्पों का शृङ्गार किये हुए है । ओठों पर मुस्कराहट । वह शिविर में प्रवेश करते ही एक नवीन वातावरण की सृष्टि करती है । हाथ में फूल की एक माला है जो उँगलियों में उलझी हुई है । सितार पर नाचती हुई रागिनी की भाँति वह रंगमंच पर प्रवेश करती है ।]

काशी : (भाव-मुद्रा में) सह्याद्रि की चोटी पर चन्द्रकला की शोभा किन आँखों का सपना है ? **(खिड़की के समीप जाकर और आकाश की ओर संकेत करते हुए)** गंगा ! यह चन्द्रकला मेरे जीवन की ऐसी सहचरी है, जो मुझसे आँखमिचौनी खेलना जानती है ।

गंगा : (सिर झुकाकर) सत्य है, देवी !

काशी : (उसी स्वर में) और जब मैं वीणा पर गीत गाती हूँ तो इस चन्द्रकला की किरणों में मेरी वीणा के तार संगीत की धारा के गूँजते हुए निर्झर जैसे मालूम पड़ते हैं । ओह !......मैं कितनी प्रसन्न हूँ इस चन्द्रकला को देखकर । तारों के बंदनवारों के बीच से चलकर यह जैसे आकाश-गंगा में स्नान करने जा रही है ।

गंगा : सत्य है, देवी ! अन्तर केवल यही है कि यह स्नान करने जा रही है और आप स्नान करके आ रही हैं । उसके लिए तारों के बंदनवार हैं, आपके लिए स्वागत की मालाएँ ।

काशी : (हँसकर) तू बहुत प्रियवादिनी है । तेरी माला बनी या नहीं ?

गंगा : माला तो तैयार है, केवल उसका झुमका नहीं बन सका, देवी !

काशी : तो बिना झुमके के माला कहीं अच्छी लगेगी ? बिना झुमके के माला तो वैसी ही है जैसे बिना कुंकुम की बेंदी के मैं । **(उत्तर की प्रतीक्षा)** ऊँ ? **[मुस्कान]**

गंगा : ठीक कहती हैं, देवी । झुमके के लिए लाल फूल चाहिए ; वे रात में तोड़े नहीं जा सकते ।

काशी : क्यों, रात में क्यों नहीं तोड़े जा सकते ?

गंगा : कहते हैं, रात में फूल तोड़ना ठीक नहीं होता ।

काशी : (शब्दों पर रुक-रुक कर) रात में......फूल......तोड़ना.........ठीक

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

......नहीं......होता। **(सोचकर)** शायद अपनी सुगन्ध की चादर ओढ़कर जब फूल रात में सपने देखते हैं तो उन्हें जगाना ठीक नहीं होता।

गंगा : सत्य है, देवी!

काशी : या चन्द्र की किरणों के रास्ते जब उनका मन कली के समीप जाकर लौट आता है तो उन्हें रास्ते से दूर करना ठीक नहीं है। क्यों गंगा?

गंगा : देवी, आप ठीक कहती हैं।

काशी : गंगा, मेरी मालाएँ देख! ऐसी हैं जैसे फूल की चलती-फिरती क्यारियाँ, सुगंध की रंगरेलियाँ, सुन्दरता की आकाश-गंगाएँ। ओह! इन्हें कोई पहने तो चाँदनी खिल जाये। हाथ में ले तो चन्द्रमा उतर आये और इन्हें यों भुलाये। **(मालाओं को झुलाती है)** तो महाराष्ट्र में पराक्रम बरसाने वाली बूंदें बरस जायें।

गंगा : सच है, देवी!

काशी : अच्छा देख गंगा, आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मेरे भाई आबाजी सोनदेव जीतकर लौटे हैं। पराक्रमी, वीर, साहसी! कहते हैं, वीर और पराक्रमी की आयु थोड़ी होती है। किन्तु मेरे भाई आबाजी चिरंजीवी हैं। श्रीमंत शिवाजी भोंसले ने बीजापुर के हाथ से कल्याण और भिवंडी नाम के शहर छीन लिये हैं न। महाराष्ट्र में अपार संपदा आई है, और उस संपदा के लाने वाले मेरे भाई आबाजी हैं। उन्होंने कल्याण का सारा खजाना लूट लिया है। उसी विजय के समारोह में तो मैंने यह कक्ष इतना सुन्दर सजाने का आयोजन किया है।

गंगा : आबाजी सोनदेव बहुत बड़े वीर हैं, देवी!

काशी : निस्सन्देह, मैंने उनके जाते समय आरती उतारी थी, उनके हाथ में तलवार दी थी, उनके सिर पर शिरस्त्राण बाँधा था और उनके लिए बहुत मंगल-कामनाएं की थीं।

गंगा : आपकी मंगल-कामनाओं ने ही उन्हें विजयी बनाया, देवी!...देवी...किन्तु...

काशी : कहो-कहो......रुक कैसे गई?

गंगा : एक ऐसी भी बहिन है देवी, जो अपने भाई की आरती नहीं उतार सकी, उसके हाथों में तलवार नहीं दे सकी। वह भाई भी वीर, साहसी और पराक्रमी है, किन्तु वह नहीं लौटा।

काशी : वह कौन है......और ऐसी कौन बहिन है?

गंगा : सोना। बेचारी सोना बहुत दुःखी है।

काशी : **(सोचकर)** हाँ, उसका भाई यादव रामचन्द्र लौटकर नहीं आया। मैंने भी सुना है। वह मेरे भाई आबाजी का बड़ा विश्वासी सिपाही था, बहुत पराक्रमी।

गंगा : सोना बहुत दुःखी थी। मैंने उसे अभी-अभी समझाया है। बड़ी कठिनता से उसके आँसू रुके और विजय के समारोह में तो उसे अपने भाई की याद और भी अधिक हो जाती है।

काशी : स्वाभाविक है। मैं उसे समझाऊँगी। महाराष्ट्र वीरों का युद्धक्षेत्र से न लौटना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोई विशेष बात नहीं है । कोई तारा उदय होता है, कोई तारा डूब जाता है। फिर भी भाई-बहिन की ममता का मूल्य कम नहीं है । मैं अपने भाई से कहूँगी कि वे यादव रामचन्द्र की खोज में अश्वारोहियों को भेजें ।

गंगा : आपकी बड़ी कृपा होगी, देवी !

काशी : शीघ्र ही पता लग जायगा । भाई आबाजी की आज्ञा में सारी महाराष्ट्र सेना है । तभी वे बीजापुर का खजाना लूट सके ।

गंगा : सुनते हैं, उस खजाने में अनेक बहुमूल्य रत्न हैं ।

काशी : **(प्रसन्नता से)** अनेक बहुमूल्य रत्न ! और गंगा, जानती है तू, एक रत्न तो बहुत ही बहुमूल्य है ।

गंगा : वह कौन-सा देवी ?

काशी : तू नहीं जानती । भाई आबाजी ने अरब जाति के रईस और कल्याण के सूबेदार मुल्ला अहमद की पुत्र-वधू को भी बन्दी कर लिया है । बड़ी सुन्दर है वह ।

गंगा : आपसे भी अधिक, देवी !

काशी : मुझसे ! **(हँसकर)** क्या कहूँ, तू ही देखकर निर्णय कर ले । किन्तु सारे दक्षिण में उसके रूप की चर्चा है । मैंने भूषण कवि से कहा, 'कवि ! गौहरबानू के सौन्दर्य में कुछ छन्द लिखो ।' कहने लगे, 'पंढरपुर में स्नान कर लूँ तब लिखूँगा ।' जैसे गौहरबानू की प्रशंसा करने के लिए धर्म-तीर्थ में स्नान करना आवश्यक है । **(हँसती है)** गंगा, ऐसी है वह गौहरबानू ।

गंगा : देवी, तब तो वह बहुत सुन्दर है ।

काशी : **(मुस्कान रोककर)** मुझसे भी अधिक ?

गंगा : आपसे अधिक नहीं हो सकती, देवी !

काशी : मैं तेरी बातों से प्रसन्न हूँ गंगा, किन्तु यह तब कह जब तू गौहरबानू को देख ले । **(उत्तर की प्रतीक्षा में)** एँ ! अच्छा तो मेरी माला कब पूरी होगी ? यह माला मैं गौहरबानू के लिए तैयार करा रही हूँ ।

गंगा : देवी, मैं तो समझती थी कि यह माला आपके कण्ठ की शोभा प्राप्त करेगी ।

काशी : नहीं, भाई आबाजी की इच्छा है कि आज गौहरबानू का श्रृंगार पूरा हो । वह आज रात की रानी बन जाय । तू यह माला जल्दी ही पूरी कर ।

गंगा : **(अस्थिर होकर)** किन्तु झुमके के लिए लाल फूल नहीं हैं, देवी !

काशी : लाल फूल चाहिए झुमके के लिए ?

गंगा : जी हाँ ।

काशी : सफेद फूल काम नहीं दे सकते ?

गंगा : आपकी आज्ञा से सफेद फूल भी काम दे सकते हैं ।

काशी : किन्तु सफेद फूल भी तो नहीं हैं ।

गंगा : जी, आपके श्रृङ्गार में सभी फूलों का सौभाग्य सजा दिया गया ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काशी : थोड़े से फूल भी नहीं हैं ?

गंगा : जी नहीं, संध्या होते हो शृंगार की मालाएँ बन गईं। कुछ तो श्रीमंत भोंसले की सेवा में भेज दी गईं और कुछ आपकी सेवा में। फूल भी आबाजी ने मँगवा लिये हैं। संभव है, श्रीमंत के स्वागत में उछालने के लिए।

काशी : (**टहलते हुए**) और लताओं के फूल सो रहे हैं।

गंगा : जी।

काशी : (**कक्ष में टहलते हुए खिड़की के समीप जाकर आकाश की ओर देखते हुए**) इस चन्द्र का ही झुमका बना ले। यह जाग रहा है। माला के स्थान पर चन्द्रहार हो जायगा। (**उत्तर की प्रतीक्षा में**) एँ!

गंगा : (**किंचित् हँसकर**) देवी, आप बहुत सुन्दर बातें करती हैं।

काशी : गंगा, तू मुझे बहुत प्रिय है। जहाँ जाऊँगी, अपने साथ तुझे भी ले जाऊँगी।

गंगा : कहाँ जायेंगी आप, देवी ?

काशी : (**कुछ संकुचित होकर**) अभी से सारी बातें बतला दूँ ? कुछ बातें तो मेरे मन में रहने दे। किन्तु गंगा, तुझे भी एकाकी न रहना पड़ेगा। तू वहीं जायगी जहाँ महाराष्ट्र का गौरव होगा।

गंगा : यानी आप श्रीमती काशीबाई......

काशी : अभी चाहे जो कह ले। और सुन ! हम लोगों के साथ जायगी यह चन्द्रकला। (**चन्द्रकला की ओर संकेत करती है**) किन्तु गंगा, यह चन्द्रकला बहुत भोली-भाली है। चाहो तो इसे निर्मल जल में उतार लो, चाहो तो इसे द्राक्षासव में उतार लो। इसे तो केवल नृत्य करना आता है, लहराना आता है। न वह जल पीती है, न द्राक्षासव।

गंगा : देवी, वह कुछ नहीं पीती।

काशी : ओह ! यदि यह चन्द्रकला एक-सी रहती तो शायद यौवन भी बुढ़ापे में कभी न बदलता। क्यों गंगा ?

गंगा : सत्य है, देवी !

काशी : (**गहरी साँस लेकर**) अच्छा, जाने दे इन बातों को। वह तो मैं चन्द्रकला को देखकर उमंग में भर जाती हूँ, नहीं तो युद्ध के अवसरों पर ऐसी बातें कहाँ सूझती हैं। गंगा, भाई आबाजी आने ही वाले हैं। गौहराबनू के सम्बन्ध में शायद वे मुझसे कुछ कहें। गौहर का शृङ्गार तो होना ही है। तू यह माला जल्दी से तैयार कर ले। ले, मेरे केश-पाश से लाल फूल निकाल ले। दूसरे फूलों को क्यों जगाती है।

गंगा : आपके केशों की शोभा बिगड़ जायगी, देवी ! [**प्रशंसा का अभिनय**]

काशी : क्या चिन्ता है !

गंगा : इन फूलों को आपके केश सजाने का आज जो सौभाग्य मिला है, वह इन्हें फिर कभी नहीं मिलेगा, देवी !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काशी : अधिकार के क्षणिक होने में ही उसका सौंदर्य है। ले, निकाल। **[गंगा की ओर पीठ देकर खड़ी हो जाती है।]**

गंगा : जो आज्ञा ! **[गंगा काशी की केशराशि से फूल चुनती है।]**

काशी : **(फूल चुनते हुए)** ये फूल भी कहते होंगे, 'हम काशी और गौहर की तुलना करेंगे, कौन अच्छी है !' इन फूलों की माला आज गौहर के गले में पड़ेगी, गंगा !

गंगा : **(फूल चुनते हुए)** गौहर के हृदय में पड़ने पर ये फूल मुरझा जायेंगे, देवी !

काशी : क्यों ?

गंगा : स्वदेश का व्यक्ति विदेश में जाकर उदास हो जाता है।

[सोना का प्रवेश। उसकी मुखमुद्रा पूर्ववत् मलीन है।]

सोना : **(प्रणाम करते हुए)** देवी, श्रीमान् आबाजी सोनदेव आ रहे हैं।

काशी : मैं भी उनकी प्रतीक्षा में हूँ। शायद वे श्रीमंत शिवाजी भोंसले के **दर्शन** करके आ रहे हैं। किन्तु सोना ! मैंने सुना है, तू बहुत उदास है ?

सोना : **(अवरुद्ध कण्ठ से)** देवी......! **[रुक जाती है।]**

काशी : मैं जानती हूँ कि यादव रामचन्द्र के न आने से तू उदास हो गई है। किन्तु महाराष्ट्र की अन्य बहिनों के सुख में तेरी उदासी काँटा बनकर न कसक जाय, इस बात का ध्यान रखना। तू क्या महाराष्ट्र के लिए इतना भी उत्सर्ग नहीं कर सकती, सोना ?

सोना : मैं जीवन तक उत्सर्ग करने के लिए प्रस्तुत हूँ, देवी !

काशी : साधुवाद ! मैं यह सुनकर प्रसन्न हूँ। किन्तु यह मत समझ कि मुझे यादव रामचन्द्र के न लौटने का दुःख नहीं है। मैं तो महाराष्ट्र के प्रत्येक वीर के लिए दीर्घायु होने की कामना करती हूँ, जिससे वह महाराष्ट्र और श्रीमंत शिवाजी भोंसले की सेवा अधिक-से-अधिक दिनों तक कर सके। मैं अभी भाई आबाजी से कहकर अश्वारोहियों को भिजवाऊँगी। वे देखें कि यादव कहाँ रह गया है।

सोना : आपकी बड़ी कृपा होगी।

काशी : कृपा की कोई बात नहीं है। गंगा, तू सोना को सांत्वना दे।

गंगा : जो आज्ञा, देवी !

काशी : सोना, तू जा। मैं अब अपने भाई से बात करूँगी।

सोना : जो आज्ञा, देवी ! **[प्रणाम कर प्रस्थान]**

काशी : गंगा ! भाई आबाजी आनेवाले हैं। यह लाल फूल मुझे दे दे, मैं स्वयं झुमका बनाऊँगी। यह माला भी यहाँ सिंहासन पर छोड़ दे, जब तेरे पास झुमका बनाने का समय नहीं है। तू सोना को सांत्वना दे।

गंगा : जो आज्ञा, देवी ! **[लाल फूल की अञ्जलि सामने फैला देती है, काशी फूल ले लेती है। इसके बाद वह माला सिंहासन के कोने में टाँग देती है तथा प्रणाम कर चली जाती है।]**

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काशी : (**अञ्जलि के लाल फूल देखती हुई**) स्वदेश का व्यक्ति विदेश में जाकर उदास हो जाता है ! मेरे स्वदेश के व्यक्ति......

[नेपथ्य में, 'आबाजी सोनदेव की जय !' काशी सजग हो जाती है और नेपथ्य की ओर देखती है। (आबाजी का स्वर) "सब खीमा में रहने की व्यवस्था ठीक है ?" (एक स्वर) "सब ठीक है, श्रीमान् !" (आबाजी का स्वर) "सैनिक अपना भोजन समाप्त कर चुके ?" (दूसरा स्वर) "कर चुके, श्रीमान् !" (आबाजी का स्वर) "श्रीमंत शिवाजी भोंसले के दर्शन के लिए तैयार रहो।" (तीसरा स्वर) "जो आज्ञा !" (आबाजी का स्वर) "अच्छा, मैं शिविर में चलता हूँ।" काशी ध्यान से सुनकर सिंहासन के समीप खड़ी हो जाती है। कुछ क्षणों में आबाजी सोनदेव (आयु 25 वर्ष) का प्रवेश। बलिष्ठ शरीर, चाल में गम्भीरता, महाराष्ट्र के गौरव-स्तंभ, बड़े-बड़े नेत्र, शक्ति और साहस के प्रतीक, रेशमी वेश-भूषा। लाल रंग का अंगरखा और नीले रंग का चूड़ीदार पैजामा। मराठी ढंग की पगड़ी, जिसमें एक कलंगी लगी हुई है। गेहुँआ रंग। माथे में त्रिपुण्ड और हाथ में तलवार। कमर में जरी की पेटी और वक्ष पर मोतियों की कुछ मालाएँ। साहस की गति की भाँति प्रवेश।]

आबाजी : काशी, तुम यहाँ हो ?

काशी : (**आगे बढ़कर**) भाई को प्रणाम।

आबाजी : (**हाथ बढ़ाकर**) सुखी रहो, काशी ! तुम यहाँ हो ? मैं तुम्हें अन्तःपुर के शिविर में खोज रहा था। श्रीमंत शिवाजी हमारी विजय-संपत्ति देखने की कृपा करेंगे। उसके लिए सब तैयारियाँ हो चुकीं। तुम्हारा यह कक्ष तो पूर्ण है ?

काशी : मेरी सब तैयारियाँ पूरी हो गईं। यह देखिये, यह कक्ष पूर्ण हुआ है या नहीं ?

आबाजी : (**कक्ष के चारों ओर दृष्टि डालते हुए**) बहुत सुन्दर है। (**एक-एक वस्तु का नाम लेकर प्रशंसात्मक शब्दों में रुकते हुए**) सिंहासन......दो बड़ी मछलियों के राजचिह्न......जरी और भगवा वस्त्र की पताकाएँ.........मंगलघट......लावा में धूप का धूम.........मृत्तिका-स्तूप पर पंच-प्रदीप.........भिन्न-भिन्न भाँति के शस्त्र.........चँवर.........सब ठीक है। (**सिंहासन पर टंगी हुई माला को देखकर**) अच्छा, यह सुन्दर माला भी है ? श्रीमंत के लिए मालाओं का प्रबन्ध तो प्रथम शिविर ही में है।

काशी : यह माला श्रीमंत के लिए नहीं है। यह माला है......

आबाजी : (**बीच ही में**) गौहरबानू के लिए। हाँ, स्मरण आया। कार्य की व्यस्तता में मैं इन बातों को भूल गया हूँ।

काशी : (**किंचित् मुस्कराहट के साथ**) किन्तु गौहरबानू तो नहीं भूली जा सकती।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आबाजी : नहीं भूली जा सकती, काशी ! उसी गौहरबानू के लिए तो मुझे यह सब प्रबन्ध करना पड़ा । यदि कल्याण-विजय में गौहरबानू मेरे हाथ न लगती तो सैनिकों के शिविरों में तुम लोगों की क्या आवश्यकता थी ? श्रीमन्त की आज्ञा है कि सेना के साथ न स्त्रियाँ रह सकती हैं और न दासियाँ । किन्तु गौहरबानू की मर्यादा-रक्षण के लिए मुझे इस शिविर में अन्तःपुर का प्रबन्ध भी करना पड़ा । मैंने श्रीमन्त से गौहरबानू के सम्बन्ध में तो कुछ नहीं कहा, किन्तु मैंने उनसे निवेदन किया कि कल्याण-विजय के समारोह में महाराष्ट्र की स्त्रियों का भी भाग हो । इस बहाने मैंने गौहरबानू के लिए पूरा वातावरण उपस्थित कर लिया ।

काशी : (**प्रशंसा के स्वरों में**) भाई, यह सब आपकी कार्यकुशलता है । इसीलिए तो आप अपने आक्रमणों में सदैव सफल होते हैं ।

आबाजी : वह भवानी की कृपा और तुम्हारी मंगल-कामना है, काशी !

काशी : (**उल्लास से**) महाराष्ट्र की ललनाओं के मंगल-तिलक में बड़ा बल है ; मेरी आरती निष्फल नहीं जा सकती ।

[**आबाजी मुस्करा देते हैं ।**]

काशी : इसीलिए इतना बड़ा आक्रमण करने के अनंतर आप लौट सके ।

आबाजी : निस्सन्देह ।

काशी : किन्तु भाई ! इस शिविर में एक बहिन ऐसी भी है जिसका भाई नहीं लौटा ।

आबाजी : कौन ? सोना ?

काशी : हाँ, भाई ! उसके भाई यादव की खोज होनी चाहिए ।

आबाजी : काशी, मैंने पहले ही दो अश्वारोहियों को यादव की खोज में भेज दिया है । जिस दल में यादव था वह दल का दल नहीं लौट सका । इसलिए यादव का विवरण ज्ञात नहीं हो सका । सोना के साथ अन्य बहिनें भी तो दुःखी होंगी । सोना तुम्हारे पास है, अतः तुम उसी का दुःख जानती हो ।

काशी : भाई, यादव के साथ अन्य सैनिकों की तुलना नहीं हो सकती ।

आबाजी : इसीलिए कि वह तुम्हारी सोना का भाई है ?

काशी : इसलिए भी कि वह एक पराक्रमी और साहसी योद्धा है ।

आबाजी : यदि कोई सैनिक वीर और पराक्रमी नहीं है तो वह महाराष्ट्र का सैनिक नहीं है । मेरे लिए सब सैनिक समान हैं ।

काशी : फिर तो उन सब का विवरण मिलना चाहिए ।

आबाजी : वह विवरण मुझे श्रीमन्त की सेवा में भी उपस्थित करना है ।

काशी : ठीक है, मैं सोना से कह दूँगी । इससे उसे अवश्य सन्तोष होगा ।

आबाजी : (**मुस्कराकर**) और तुम्हें तो सन्तोष है, काशी !

काशी : मुझे ? आप कुबेर की सम्पत्ति लूटकर लाये सकुशल और सानन्द, और सन्तोष न हो ? मैं तो फूली नहीं समाती । मेरे भाई ने महाराष्ट्र-गौरव को इतिहास में अमर कर दिया है ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आबाजी : केवल इस विजय-यात्रा की सम्पत्ति से ?

काशी : नहीं, महाराष्ट्र में जागरण उत्पन्न करने के कारण।

आबाजी : उसका एकमात्र श्रेय श्रीमन्त शिवाजी महाराज को है। शक्ति के अवतार, भवानी के भक्त। काशी ! देश के पुण्य से ही श्रीमन्त उत्पन्न हुए हैं। महारानी जीजाबाई के वरदान से ही श्रीमन्त महाराष्ट्र के संचालक हैं। जावली जीतने के बाद जब श्रीमन्त ने रायगढ़ का किला मोरे के हाथ से छीना तभी ज्ञात हुआ कि देश के पच्छिम में भी एक सूर्य उदय हो गया है। काशी ! मैं तो उस सूर्य की एक किरण-मात्र हूँ।

काशी : सत्य है, भाई ! उन्हीं से महाराष्ट्र में स्वाधीनता का प्रकाश फैला हुआ है। श्रीमन्त का यश हम लोगों के मंगल-तिलक से भी अधिक शक्तिशाली है।

आबाजी : हाँ, काशी ! श्रीमन्त भोंसले अवसर से लाभ उठाने वाले हैं। दो वर्षों से मुग़ल शहज़ादे दिल्ली के सिंहासन के लिए युद्ध कर रहे हैं—दारा, शुजा, मुराद और औरंगज़ेब। औरंगज़ेब मीर जुम्ला को दक्षिण का कार्य-भार सौंपकर उत्तर भारत चले गये हैं। उनकी ओर से श्रीमन्त भी पूर्ण रूप से निःशंक हैं। इधर बीजापुर मुग़लों की सेना से पराजित हो ही गया था। वहाँ राजनीतिक पराजय के साथ शासन की भी पराजय हो गई। बीजापुर के मन्त्री कहते थे कि सेनापतियों के दोष से बीजापुर का पतन हुआ और सेनापति कहते थे कि मन्त्री की अदूरदर्शिता से बीजापुर की सेना हार गई। बात यहाँ तक बढ़ी कि सेनापतियों ने बीजापुर के प्रधान मन्त्री खान मुहम्मद का खून कर दिया। काशी......खून कर दिया ! राजनीति रक्त में डूब गई। ऐसा अवसर श्रीमन्त हाथ से कब जाने दे सकते थे। उन्होंने सह्याद्रि पार कर उत्तर कोंकण लूट लिया और कल्याण और भिवंडी के दो शहर बीजापुर राज्य से छीन लिये। श्रीमन्त के इस आक्रमण में मेरा बहुत हाथ है, काशी !...ओह ! मैं तुमसे राज़नीति की बातें करने लगा।

काशी : नहीं, भाई ! महाराष्ट्र की स्त्रियाँ राजनीति को भी अपने जीवन का अंग समझती हैं।

आबाजी : (**सिर हिलाकर**) हाँ, यह बात तो है। तो मैंने इस आक्रमण में जो सम्पत्ति लूटी है वह आज तक श्रीमन्त के किसी आक्रमण में नहीं मिली। क्यों काशी, तुम्हें अपने भाई की इस वीरता पर अभिमान है ?

काशी : अपार रत्नराशि, अनगिनत वस्त्राभूषण, इतनी सम्पत्ति कौन एकत्रित कर सका है ? मेरे भाई की वीरता शब्दों में नहीं कही जा सकती। महाराष्ट्र की प्रत्येक स्त्री यह चाहती है कि उसे आबाजी सोनदेव जैसा भाई मिले। इस दृष्टि से मेरे भाग्य से अन्य बहिनों को ईर्ष्या हो सकती है।

आबाजी : काशी, यदि अन्य स्त्रियाँ चाहें तो वे भी मुझे अपना भाई समझ सकती हैं।

काशी : कितनी स्त्रियाँ आपको अपना भाई नहीं समझतीं ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आबाजी : यह उनकी उदारता है।

काशी : एक बात पूछूं, भाई !

आबाजी : प्रसन्नता से।

काशी : आप अप्रसन्न तो नहीं होंगे ?

आबाजी : बहिन से कोई भाई अप्रसन्न हो सकता है ?

काशी : यह गौहर......गौहरबानू कौन है ?

आबाजी : एक बार और यह प्रश्न पूछ चुकी हो, काशी !

काशी : किन्तु आपने सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया।

आबाजी : **(तीक्ष्णता से)** और मैं क्या उत्तर दूं ? वह कल्याण के सूबेदार मुल्ला अहमद की पुत्रवधू है।

काशी : देखिये, आप अप्रसन्न हो रहे हैं। **(बुरा मानकर)** अब मैं आपसे कोई बात नहीं पूछूंगी।

आबाजी : **(हँसकर)** बुरा मान गईं। अच्छा, पूछो क्या पूछना चाहती हो ?

काशी : अब मैं कुछ नहीं पूछूंगी।

आबाजी : अच्छा, काशी, मुझे क्षमा करो। अब सचमुच अप्रसन्न नहीं होऊँगा।

काशी : **(स्वस्थ होकर)** वह बहुत सुन्दर है।

आबाजी : **(मुस्करा कर)** हाँ, वह बहुत सुन्दर है।

काशी : **(सीधा प्रश्न न पूछ सकने के संकोच में हकलाकर)** तो......तो वह बहुत सुन्दर क्यों है ?

आबाजी : **(हँसकर)** यह कौन-सा प्रश्न है ? मैं जानता हूँ, तुम क्या पूछना चाहती हो।

काशी : **(लज्जित होकर)** अच्छा, तो बतलाइये कि आप उसे क्यों लाये हैं ? श्रीमंत भोंसले का तो कहना है कि केवल पुरुषों ही को क़ैद करो; स्त्रियों को क़ैद मत करो। क्या इस बात की आज्ञा भी आपने श्रीमंत से ले ली है ?

आबाजी : इस बात की आज्ञा तो नहीं ली, काशी ! किन्तु गौहर स्त्री नहीं, देवी है। उसकी सुन्दरता की कहानी समस्त दक्षिण भारत में प्रसिद्ध है। यदि चाँदनी पृथ्वी पर अवतार लेकर आये तो उससे सुन्दर नहीं हो सकती। इसके साथ ही वह महान् विदुषी है। वह तुम्हारी भाषा भी अच्छी तरह जानती है।

काशी : तो, मैं भी तो उसकी भाषा जानती हूँ।

आबाजी : तुमने उससे बातें कीं ?

काशी : बातें करने का अवसर तो नहीं मिला। हाँ, उसे देखा अच्छी तरह से है। वह बहुत कम बोलती है। ऐसा मैंने सुना है ; अंजुमन कहती थी।

आबाजी : वह सर्वगुण-सम्पन्ना है। मैंने अंजुमन को उसकी सेवा में नियुक्त कर दिया है। उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो।

काशी : यह तो आपने ठीक किया। किन्तु उसे आपने बन्दी कैसे किया ?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आबाजी : (हँसकर) बीजापुर के खज़ाने पर अधिकार कर चुकने के बाद मैंने अश्वारोहियों को आज्ञा दी कि वे सूबेदार का महल घेर लें। एक सिपाही ने मुझे सूचना दी कि सूबेदार मुल्ला अहमद भाग निकला है और उसके पीछे उसके विश्वस्त सेवकों के साथ उसका हरम है। मैंने खजाने पर कड़ा पहरा डालकर कुछ सैनिकों के साथ मुल्ला अहमद का पीछा किया। आगे बढ़ने पर हरम की डोलियाँ दीख पड़ीं। जब मुल्ला अहमद के सिपाहियों को हम लोगों ने देखा तो कुछ तो भाग निकले और कुछ डोलियों की रक्षा में खड़े हो गये। हम लोगों ने उन्हें एक ही धावे में समाप्त कर दिया। मैंने अन्य स्त्रियों की ओर देखा भी नहीं. गौहरबानू को बन्दी करने की आज्ञा देकर लौट आया।

काशी : गौहरबानू को उसके घरवालों से छीन लेने में बड़ी निष्ठुरता है, भाई !

आबाजी : तुम स्त्री हो, इसलिए ऐसा कहती हो। ये तो राजनीतिक मामले हैं।

काशी : गौहरबानू को आप मुक्त नहीं कर सकते ?

आबाजी : नहीं, मुक्त करने के लिए उसे बन्दी नहीं बनाया गया।

काशी : तो अब मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए कि आपने उसे बन्दी क्यों बनाया है ?

आबाजी : इस प्रश्न का उत्तर मैं तुम्हें नहीं दे सकता।

काशी : मैं स्वयं इस प्रश्न का उत्तर दूं ?

आबाजी : क्या ?

काशी : उस उत्तर को प्रश्न बनाकर कहूँ ?

आबाजी : कह सकती हो।

काशी : मैं उसे अपनी भाभी पुकार सकती हूँ ?

आबाजी : (तीक्ष्णता से) काशी ! कैसी बातें करती है। क्या तू अपने भाई को नहीं जानती ?

काशी : (डरकर) जानती हूँ, जानती हूँ, फिर.........फिर गौहरबानू का क्या होगा ?

आबाजी : तू राजनीति नहीं जानती, काशी ! अभी दो-चार वसंतों को और बीत जाने दे, तब तू राजनीति की बातों को समझ सकेगी ?

काशी : मैं राजनीति की बातें नहीं समझना चाहती ; किन्तु नारी के अपमान को समझती हूँ। मुझे बानू का बन्दी होना अच्छा नहीं लगा। [मुख फेर लेती है।]

आबाजी : इसमें नारी का क्या अपमान हुआ ? अपने अन्तःपुर के शिविर में उसे सुख की कितनी सुविधाएँ प्रदान की गई हैं। पथ में सुगंधित फूल, स्नान में गुलाबजल, भोजन में स्वादिष्ट व्यंजन, सेवा में अंजुमन-जैसी कुशल परिचारिका।

काशी : भाई ! स्त्री का सुख इन सब सुविधाओं में नहीं है।

आबाजी : वह मैं जानता हूँ, काशी ! लेकिन मैं राजनीति की एक कुशल चाल खेलना चाहता हूँ। मैं गौहरबानू का ऐसा उपयोग करूँगा कि राजनीति भी मुझ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से पराजित हो जाय ।

काशी : क्या आप बीजापुर को सदैव के लिए झुकाना चाहते हैं ?

आबाजी : मैं यदि तुम्हें सब बातें बतला दूँ तो राजनीति और साधारण वार्तालाप में अन्तर ही क्या रहा ?

काशी : मैं स्वयं आपकी ऐसी राजनीति नहीं सुनना चाहती ।

[उदासीन मुखमुद्रा]

आबाजी : (**मनाते हुए**) रुष्ट हो गई, काशी ! इस समारोह के अवसर पर तुम्हारा रुष्ट हो जाना मेरी सारी प्रसन्नता को नष्ट कर देगा । एक छोटी-सी बात पर तुम अपने भाई के सारे परिश्रम को धूल में मिलाना चाहती हो, काशी ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम मुस्कराओ ।

काशी : मैं नहीं मुस्कराऊँगी ।

आबाजी : न सही ।

[किन्तु इसी समय दोनों की दृष्टि परस्पर मिलने पर दोनों ही हँस पड़ते हैं ।]

आबाजी : अच्छा काशी, गौहरबानू कहाँ है ?

काशी : स्नान कर रही है ।

आबाजी : तो तुमने उसके लिए सुगन्धित फूलों की मालाएँ तो तैयार कराई ही हैं, आज उसका अच्छे-से-अच्छा शृंगार होना चाहिए । ज्ञात हो कि वह वन की अनुपम देवी है । और काशी, मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि मेरी ओर से गौहर के प्रति कोई अन्याय न होगा ।

काशी : अन्ततः आप मेरे ही भाई हैं । ऐसा क्यों न कहेंगे ! अब मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।

आबाजी : तो फिर गौहरबानू से कुछ बातें कर लो और उसके शृङ्गार की व्यवस्था भी कर लो ।

काशी : मैंने अंजुमन से कह दिया है कि जैसे ही वह स्नान कर ले, उसका फूलों से शृङ्गार हो । उसे अन्तिम माला पहनाने के लिए मैंने स्वयं गंगा से एक अच्छी माला गुँथवाई है । देखिये, वह सिंहासन पर है ।

आबाजी : (**माला देखकर**) बहुत सुन्दर है । और तुम भी बहुत बुद्धिमती हो । अच्छा, तो अब मैं चलूँगा । श्रीमंत के आने में अब अधिक देर नहीं है । मैं इस बीच में थोड़ा निरीक्षण और कर लूँ । गौहरबानू का उत्तरदायित्व अब तुम्हारे ऊपर है । अपने भाई के सम्मान की रक्षा करना ।

काशी : अच्छी बात है, आप जाइये ।

आबाजी : गौहर के शृङ्गार में भी शीघ्रता करना । [**प्रस्थान**]

काशी : (**आबाजी के चले जाने पर**) गौहर के शृङ्गार में भी शीघ्रता करना... भाई की राजनीति समझ में नहीं आती । (**पुकारकर**) गंगा !

गंगा : (**प्रवेश कर**) आज्ञा !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काशी : गौहरबानू के स्नान हुए ?

गंगा : जी, स्नान कर चुकीं ।

काशी : अंजुमन ने उनका शृङ्गार किया ?

गंगा : अंजुमन ने उनका शृङ्गार करने की चेष्टा की, किन्तु गौहरबानू ने अपना शृङ्गार नहीं कराया ।

काशी : क्यों ! क्या बहुत दुःखी है ?

गंगा : जी, अंजुमन ने बहुत समझाया, किन्तु गौहरबानू ने अपना शृङ्गार नहीं कराया ।

काशी : मैंने अंजुमन से कहा था कि शृङ्गार के बाद वह गौहरबानू को मेरे सामने लाये । मैं उससे बातें करना चाहूँगी ।

गंगा : मैं अभी जाकर देखती हूँ ।

काशी : देखो । [**गंगा का प्रस्थान**]

काशी : (**सोचती हुई**) गौहर शृङ्गार करना नहीं चाहती......क्यों करे ? फूल माला में क़ैद होकर मुरझाने लगता है । (**टहलती हुई सिंहासन के समीप आती है और धीरे से माला उठाती है**) इसका प्रत्येक फूल गौहरबानू की तरह है बन्द...... क़ैदी......(**माला तोड़ डालती है**) मैं उन्हें मुक्ति देती हूँ......ओह ! यदि मैं गौहर को भी मुक्त कर सकती ?...[**गंगा का प्रवेश**]

गंगा : देवि, गौहरबानू को लेकर अंजुमन इस ओर आने की आज्ञा चाहती है ।

काशी : आने दो !

गंगा : (**टूटी हुई माला को देखकर**) देवी, यह माला......

काशी : (**लापरवाही से**) हाँ, इसमें झुमका नहीं लग सका, तो मैंने इसे तोड़ दिया । बिना झुमके के माला ठीक नहीं है । जाओ तुम ......(**गंगा का प्रस्थान । काशी टहलते हुए**) क्या इसीलिए इस शृङ्गार की माला में झुमका नहीं लग रहा था ? माला में झुमका नहीं, गौहरबानू में सुख और सौभाग्य नहीं ।

[**अंजुमन का प्रवेश**]

अंजुमन : (**प्रणाम कर**) देवी ! गौहरबानू इधर आ गई हैं ।

काशी : अंजुमन, गौहरबानू इधर आ गई हैं, तो उन्हें यहाँ ले आओ ।

अंजुमन : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

काशी : भाई आबाजी की राजनीति, स्त्रियों की स्वतंत्रता से खिलवाड़ करने वाली राजनीति, इसका अन्त कहाँ जाकर होगा—मुल्ला अहमद की परतन्त्रता में या श्रीमन्त भोंसले शिवाजी की स्वतंत्रता में...?

[**गौहरबानू (आयु 18 वर्ष) का धीरे-धीरे प्रवेश, जैसे चन्द्र बादलों में से निकल रहा है । नीले रेशम की सलवार और प्याजी रंग की ओढ़नी, गले में गुलाबी रंग का दुपट्टा, पैरों में जरी की जूतियाँ, मुख**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर घूंघट, दुबला-पतला शरीर जैसे पुष्परहित लता हो, गौर वर्ण और शरीर का समस्त आकर्षण। पीछे अंजुमन है।]

काशी : (आगे बढ़कर) आओ, गौहरबानू !

[गौहरबानू दो कदम आगे बढ़ती है।]

काशी : बानू ! महाराष्ट्र में स्त्रियां घूंघट नहीं डालतीं। लाओ, मैं तुम्हारा मुख खोल दूं।

[काशी गौहर का घघट उलट देती है। गौहरबानू का सुन्दर मुख दीख पड़ता है। अत्यन्त सुन्दर विशाल नेत्र, नासिका उठी हुई, पतले ओठ, कपोलों में सौन्दर्य-कूप, केशों में केवल एक मुक्ता-माला, नाक में मोती की छोटी-सी बेसर जो ओठों पर झूल रही है जैसे संध्याकाल में एक तारा जगमगा रहा हो। सारे शरीर में लज्जा और संकोच, मुख पर उदासी छा रही है। घूंघट उलटते ही उसके नेत्र से दो आंसू ढुलक जाते हैं, जैसे स्मृतियाँ तरल होकर नेत्रों से बह गई हों।]

काशी : (सहृदयता से) आह ! आँसू ?......बानू, तुम्हारी आँखों में आँसू ? इन आंसुओं से तुम्हारी सुन्दरता धुलेगी नहीं और भी मैली हो जायगी......(रुककर अंजुमन से) गौहरबानू को कुछ कष्ट तो नहीं हुआ ?

अंजुमन : (नत होकर) नहीं, देवी ! मैंने इनकी इच्छानुसार ही काम किया है। आपकी आज्ञा से मैं इनका श्रृङ्गार करना चाहती थी। इन्होंने मुझे रोक दिया, मैंने इनका श्रृङ्गार नहीं किया। मेरा तो कोई अपराध......!

काशी : अच्छा, तो तुम जाओ।

अंजुमन : जो आज्ञा ! [सिर झुकाकर प्रस्थान]

काशी : (गौहर की ओर देखकर उद्विग्नता से) तुम्हें उदास नहीं रहना चाहिए, बानू ! [बानू कुछ उत्तर नहीं देती।]

काशी : (अस्थिरता से) मुझे यह अच्छा नहीं लगता, मैं भी स्त्री हूँ, बानू ! तुम्हारे आंसुओं से मुझे दुःख होता है। चाहे तुम शत्रु-पक्ष ही की क्यों न हो, किन्तु जातीय सहानुभूति तो मेरे हृदय से नहीं जा सकती। तुम्हारे आँसू मुझे दुःख पहुँचाते हैं।

[बानू की आंखों से अधिक वेग से आंसू निकलने लगते हैं। वह गुलाबी दुपट्टे में अपना मुख छिपा लेती है। काशी उसके निकट चली जाती है।]

काशी : (सांत्वना के स्वरों में) बानू ! तुम्हें धैर्य रखना चाहिए। नारी की मर्यादा रोने में नहीं है, दृढ़ता से दुःख को सुख बनाने में है। हमारे इतिहास में इसके अनेक उदाहरण हैं। हम लोगों ने अपना बलिदान कर दिया है, किन्तु आँखों में आंसू नहीं आने दिये। तुम्हारे आंसू देखकर मुझे लज्जा और क्लेश दोनों ही

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होते हैं। बोलो बानू, मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ ? [**बानू फिर भी मौन रहती है।**]

काशी : (**सोचते हुए**) आँसू......बीजापुर के सूबेदार मुल्ला अहमद बड़ी कठिनता से कुछ मोती इकट्ठे करे और उनकी पुत्रवधू गौहरबानू उन्हें आँखों से बेमोल लुटा दे ? (**बानू की ओर आग्रह से देखकर**) बानू, ये आँखें बहुत कीमती हैं। इन आँसुओं से किसी भी सल्तनत की नींव बह सकती है, और तुम इन्हें यों ही गिरा रही हो जैसे इस सह्याद्रि की चोटी पर ओस गिरा करती है। (**रुककर**) इधर देखो ! (**खिड़की की ओर संकेत करते हुए**) कितना सुन्दर दृश्य है। ये लताएँ चाँदनी में डूब गई हैं जैसे सारा वन-प्रांत निर्मल जल से भरा हुआ एक हम्माम है और ये लताएँ हमारी-तुम्हारी तरह स्नान कर रही हैं। [**बानू फिर भी मौन है।**]

काशी : (**उँगली से संकेत करते हुए**) और उधर देखो, वह तारिका तुम्हारी तरह अकेली खड़ी है लेकिन वह उदास नहीं है, हँस रही है। [**बानू अब भी मौन है।**]

काशी : तुम्हें ठंड तो नहीं लग रही है ? आओ, अग्निपात्र के समीप आ जाओ।

[**बानू को अग्निपात्र के समीप लाती है। उसके वस्त्र ठीक करती है।**]

काशी : बानू, तुम बोलती क्यों नहीं ? मैं तुमसे इतनी बातें कर रही हूँ और तुम चुप हो ? मैं तुमसे सहानुभूति रखती हूँ, मेरा नाम काशी है, मैं बहिन, महाराष्ट्र सेनापति आबाजी सोनदेव की......।

बानू : (**चौंककर, अस्फुट शब्दों में**) आबा......जी......?

काशी : (**प्रसन्न होकर**) हाँ, हाँ, महाराष्ट्र सेनापति आबाजी सोनदेव, वीर, साहसी, पराक्रमी। उन्होंने ही आज तुम्हें फूलों से सजाने...(**रुककर**) तुमने फूल-मालाएँ नहीं पहनीं ?

बानू : फूल-मालाओं से हथकड़ियाँ मुझे ज्यादा अच्छी मालूम देतीं, देवी !

काशी : (**मुस्कराकर**) ये हाथ और हथकड़ियाँ......? बानू ! इन हाथों में पड़कर लोहा भी सोना हो जाता। चाँदनी को भी कोई अंधेरे की कड़ियों से बाँध सकता है ? चाँद भी कभी अँधेरे बादलों में बाँधा गया है ?

बानू : (**गहरी साँस लेकर**) मेरे दर्द को अफसाना न बनाओ, देवी ! एक गिरे हुए महल की ईंट को ठोकर मारना ठीक नहीं है। मुझे मेरे घर के लोगों से जुदा कर तुम लोगों ने क्या पाया ? खुदा की खिलकत में क्या औरत इतनी गई-बीती चीज़ हो गई कि वह पत्थरों और कंकड़ों की भाँति लूट ली जाय ? बेजान चीज़ों के साथ इन्सान को बाँध लेना ज़िन्दगी की सब से बड़ी तौहीन नहीं है ?

काशी : (**उसी स्वर में**) सबसे बड़ी, लेकिन बेजान चीज़ों की कीमत कम नहीं है ; कभी-कभी तो जानदार चीज़ों से भी अधिक। जब बेजान बिजली गिरती है तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्सान भी जलकर खाक़ हो जाता है। जब बेजान पानी बढ़ आता है तो वह सैकड़ों इन्सानों को बहाकर ले जाता है। बेजान और इन्सान में अन्तर यही है कि बेजान को कोई दोष नहीं लगा सकता और इन्सान को लोग दोष लगा सकते हैं। काम दोनों का एक ही-सा है, लेकिन इसके माने यह नहीं हैं कि मैं बेजान चीज़ों के साथ तुम्हें रख रही हूँ। हज़ारों गौहर एक गौहरबानू के मुकाबिले में कुछ भी नहीं हैं।

बानू : इसका तुम्हें क्या जवाब दूँ, देवी ! लेकिन सोचो मैं कितने बड़े घर में पैदा हुई और कितने बड़े घर में गई। अपने बाप के घर में इशरत से सोई और शोहर के घर में जागी। लेकिन जागकर भी मैंने सुनहले सपने देखे, आबेहयात से सिंचे हुए और मोतियों से सँवारे हुए। चार दिन भी न हुए थे कि सुना कल्याण पर मराठों की घटा छा गई। श्रीमंत शिवाजी का नाम सैकड़ों बार सुना। उनकी बलन्दखयाली की तारीफ़ सुनी लेकिन क्या वह क़हर मेरे ही सिर पर गिरना था ?

काशी : भाग्य की बात।

बानू : आबाजी सोनदेव ने हम लोगों का पीछा किया। मराठों का एक दस्ता उनके साथ था। **(काँपकर)** ओह ! मराठे ! रात के डरावने सपने हैं। तलवार लेकर टूट पड़ते हैं, जैसे आँधी के हाथ में बिजली हो। हमारे सिपाहियों में और मराठों में जंग छिड़ गई। आबाजी ने हमारे सिपाहियों को परास्त कर मुझे क़ैद करने का हुक्म दिया और दूसरी सिम्त चले गये। ओह ! मैं दो रोज में अपनी माँ के पास जाने वाली थी।

काशी : **(सोचते हुए)** हुआ तो बहुत बुरा।

बानू : **(करुण स्वर में)** मेरी माँ बीमार है। सुना है, हर रोज सूरज निकलने पर वे मेरे आने के रास्ते पर आँखें बिछाये लेटी रहती हैं। खाना आता है तो यह कहकर लौटा देती हैं कि बानू आकर खिलाएगी तो बीमारी में दुबारा कैसे खा सकूँगी। ओफ! ......मेरी माँ ! **[कपड़ों में मुँह छिपा लेती है।]**

काशी : **(सांत्वना देते हुए)** बानू, इन बातों से अपनी तबियत मत खराब करो। श्रीमंत अवश्य तुम्हारी हालत पर ध्यान देंगे।

बानू : मुझे इसका भरोसा है, देवी ! तभी तो मैं अपने दर्द को इस तरह दबाये हूँ। लेकिन मैं समझती थी कि मराठों के पास भी औरत की कीमत है। वे उसकी अस्मत को ईश्वर की सुन्दरता समझते हैं। लेकिन आबाजी सोन......देव...।

काशी : बानू, आबाजी सोनदेव को बुरा क्यों कहती हो ? आपस की इस लड़ाई को बुरा क्यों नहीं कहती जिसने हिन्दू और मुसलमानों को आपस में लड़ा दिया है। दक्खिन में औरंगज़ेब की नीति को बुरा क्यों नहीं कहती, जिसने हिन्दुओं और मुसलमानों में भेद का बीज बो दिया है, दोनों को तलवार और ढाल की तरह लड़ा दिया है।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बानू : वाक़ई यह बहुत बुरा है, लेकिन न तलवार टूट सकती है और न ढाल कट सकती है।

काशी : दोनों ही न कटें, दोनों ही न टूटें, लेकिन वे दोनों चाँद और सूरज की तरह तो चमक सकते हैं। अगर मैं इस समय शाहंशाह की जगह दिल्ली की सुलताना होती तो कहती, (**आगे बढ़कर गौरवपूर्ण स्वर में**) 'हिन्दुओ और मुसलमानो, तुम हिन्दुस्तान में न्याय की तराजू के दो पलड़े हो, एक दूसरे को सँभाले रहो। इस तरह सधे रहो कि किसी के साथ किसी तरह का पक्षपात न हो। दोनों एक ही गीत के स्थायी और अन्तरा हो। इस तरह स्वर खींचो कि बेताल न हो सको। साँस के खींचने और छोड़ने की तरह तुम दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हो, ज़िन्दगी में कभी न रुकने वाले हमेशा साथ-ही-साथ चलने और रहने वाले ऐसे ही तुम दोनों हो।' (**बानू से**) क्यों बानू ?

बानू : आप ठीक कहती हैं, देवी ! लेकिन दिल्ली की यह किस्मत नहीं हो सकी कि आप सुलताना हों।

काशी : तभी यह सब कुछ हो रहा है। मैंने अपनी परिस्थितियों पर विचार किया है और मुसलमानों की हालत पर ग़ौर किया है।

बानू : (**सोचकर**) मैं एक बात कहूँ, देवी ?

काशी : अवश्य।

बानू : आप मुझे आज़ाद नहीं करा सकतीं, देवी ?

काशी : मुझे बहुत प्रसन्नता होती यदि मैं ऐसा कर सकती। लेकिन बानू मैं ऐसा नहीं कर सकती।

बानू : आप आबाजी की बहिन हैं, देवी ! बहिन होकर इतना भी नहीं कर सकतीं ?

काशी : यदि कर सकती तो तुम्हें इतना कहने की आवश्यकता भी नहीं होती। बानू, तुम नहीं जानती कि मैं तुम्हारे क़ैद हो जाने से अपने भाई से सन्तुष्ट नहीं हूँ। किन्तु भाई की आज्ञा के बाहर भी तो नहीं जा सकती। फिर भाई ने तुम्हें किस लिए क़ैद किया है यह भी नहीं जानती।

बानू : मैं जानती हूँ। ख़ूबसूरत होना दुनिया में सबसे बड़ा गुनाह है।

काशी : और इसकी सजा क्या है।

बानू : बदसूरत कर दिया जाना।

काशी : तुम ठीक कहती हो, बानू ! फिर भी आबाजी की आज्ञा टालने में मैं असमर्थ हूँ।

बानू : अपने को इतना कमजोर समझती हैं आप ?

काशी : कमजोर नहीं समझती, लेकिन परिवार और समाज की मर्यादा तोड़ी नहीं जा सकती और फिर यह तो राजनीति की बात है। राजनीति पुरुषों के हाथ में सौंप देना बुरा नहीं।

बानू : और अगर मेरी तरह कोई आपको भी क़ैद कर ले ?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काशी : (**लापरवाही से**) तो मैं भी क़ैद हो जाऊँगी। मैं भी चली जाऊँगी। लेकिन मेरी ग्रोर कोई देख नहीं सकता। देखती हो, (**कटार निकालती है**) यह ग्रमर-जीवन देने वाली ? (**गौहरबानू की ओर देखती है**) ग्रच्छा ! तुम्हारे पास भी है। [**बानू की कमर में लटकती हुई कट र की ओर संकेत करती है।**]

बानू : है तो, लेकिन चाहते हुए भी मैंने खुदकुशी नहीं की। मुझे कौन रोक सकता था ? लेकिन मैंने सुना है कि श्रीमंत शिवाजी बहुत बहादुर हैं। उनके दर्शन करना चाहती हूँ ग्रौर चाहती हूँ कि उनके सामने खुदकुशी करूँ।

काशी : तो क्या तुम श्रीमंत शिवाजी के सामने खुदकुशी करोगी ?

बानू : ज़रूर। ग्रगर श्रीमंत शिवाजी ने मेरे साथ ग्रच्छा बरताव नहीं किया तो उनके साथ लड़ूँगी। वे तो बहुत ताकतवर हैं, मैं उन पर क्या वार करूँगी खुद ही मरूँगी। देखूँगी कि मेरे कलेजे में छुरी चुभने पर एक बहादुर के दिल पर क्या ग्रसर होता है।

काशी : ग्रच्छा बानू, तो तुम बहादुर भी हो ?

बानू : क्यों ? क्या मैं कटार नहीं चला सकती ? क़ैद होने से पहले मैंने दो सिपाहियों को मौत के घाट उतारा था।

काशी : तो दो सिपाहियों को ग्राप मार भी चुकी हैं ?

बानू : (**कटार निकालती हुई**) ग्रभी शायद इस पर खून के दाग़ होंगे भी। (**देखकर**) ग्रभी तक दाग हैं, जैसे मराठों के तेज का सूरज मेरे खंजर में डूब रहा है।

काशी : या मराठों के तेज का सूरज उदय हो रहा है। लाली दोनों में बराबर है। (**सोचते हुए**) ग्रोह ! तुम बड़ी बहादुर हो। जो लोग कहते हैं कि स्त्रियाँ कमजोर होती हैं वे भूल करते हैं। बानू जैसी देवियों के दर्शन करें। बानू, तुमसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। ग्रब मुझे मालूम हुग्रा कि ग्राँसुग्रों के पीछे एक खंजर भी छिपा हुग्रा था। मेरा ध्यान उस पर ग्रभी तक नहीं गया था।

बानू : इस कुसूर की माफी चाहती हूँ।

काशी : कुसूर मेरा है या ग्रापका ? खैर, इन बातों पर मैं ग्रधिक ध्यान नहीं देती। ग्राप भूल जाइये कि ग्राप क़ैद में हैं। मेरे साथ रहिए, मेरी बहिन की तरह। कोई ग्रापकी ग्रोर ग्राँख उठाकर भी नहीं देख सकता।

बानू : ग्रापसे मुझे ऐसी ही उम्मीद है, देवी !

काशी : देखिए, यह चन्द्रकला काले पहाड़ से इस तरह निकलती है जैसे काले म्यान से खंजर। देखूँ तुम्हारा खंजर ! (**काशी पास जाकर कटार ले लेती है**) जिस तरह चाँदनी में चन्द्रकला दीख पड़ती है उसी तरह गौहरबानू के हाथ में यह खंजर। बहुत ग्रच्छा खंजर है, बानू ! इतनी चमक इसमें कहाँ से ग्राई ? [**बानू कुछ उत्तर नहीं देती।**]

काशी : बानू, मुझे माफ करना। यह खंजर मुझे ग्रापसे छीन लेना पड़ा। (**खंजर को देखती है**) ग्राप जैसी सुख-दु:ख की मानने वाली स्त्रियों के हाथ में खंजर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहना खतरे से खाली नहीं है। आबाजी ने कहा है कि आपकी जिम्मेदारी मुझ पर है।

बानू : स्त्री होकर आपने मुझे धोखा दिया है, देवी !

काशी : बानू, तुम ऐसा क्यों सोचती हो ? मैं तुम्हें धोखा नहीं दे सकती, लेकिन बानू मैं यह नहीं चाहती कि भूल से भी तुमसे खुदकुशी हो जाय। मैं तुम्हें प्यार करने लगी हूँ। क्या यह ठीक है कि एक बहिन अपनी दूसरी बहिन के हाथ में खंजर इसलिए रहने दे कि वह दुःख से पागल होकर आत्महत्या कर ले। मैं समझती हूँ कि बहुत बड़ी भूल करूँगी यदि तुम्हारी इस हालत में तुम्हें मृत्यु की इस दूती के साथ छोड़ दूं। यह ज़हर का काँटा असावधानी से शरीर में चुभ सकता है।

बानू : लेकिन देवी, मेरे पास ज़हर का एक काँटा और भी है। [**कंचुकी से दूसरी कटार निकलती है।**]

काशी : मैं जानती थी, बानू! इसलिए मैंने यह बात कही। हम लोग भी इसी तरह ज़हर के काँटों को अपने जिस्म में छिपाये रहती हैं। (**अपनी कंचुकी से एक कटार निकालती है**) देखिए ! लेकिन यह काँटा दूसरों के बदन में चुभाने के लिए है और सीने पर, पीठ पर नहीं। (**रुककर**) हाँ, तुमने तो दो सिपाहियों को क़त्ल भी कर दिया है।

बानू : हाँ, हसरत रह गई कि औरों को कत्ल नहीं कर सकी। लेकिन एक मराठा सिपाही बेकसूर मारा गया। वह मुझे बचाने आया, लेकिन धोखे से मैंने उस पर वार कर ही दिया, बेचारा यादव रामचन्द्र !

काशी : (**चौंककर**) यादव.........रामचन्द्र ?

बानू : हाँ, यादव रामचन्द्र। क्यों ? चौंक क्यों पड़ी ?

काशी : ओह ! सोना का भाई, यादव......रामचन्द्र......।

बानू : यह सोना कौन ?

काशी : आप नहीं जानतीं, यह मेरी सहचरी है। बेचारी बहुत दुखी है अपने भाई के न लौट सकने के कारण।

बानू : मुझे अजहद रंज है, देवी ! मुझसे बहुत बड़ी गलती हुई है।

काशी : लेकिन तुम उसका नाम कैसे जानती हो, बानू !

बानू : उसके साथियों ने उसे यादव रामचन्द्र के नाम से पुकार कर ललकारा था। क्या वह कोई खास सिपाही था ?

काशी : बहुत खास। वह तुम्हें बचाने आया और तुमने उसे मार डाला ?

बानू : धोखा हुआ, देवी !

काशी : आश्चर्य है, एक स्त्री ने असहाय होकर भी एक वीर सिपाही को मार डाला ?

बानू : वह सिपाही असावधान था। वह क्या जानता था कि उस पर वार किया जायगा !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काशी : कैसा हाथ था वह आपका, मुझे दिखला सकती हो ?

बानू : मुझे अधिक लज्जित न करो ।

काशी : लज्जित करने की बात नहीं है । मैं तुम्हारा वह हाथ देखना चाहती थी ।

बानू : उसे तुम अपनी कटार पर रोक सकोगी ?

काशी : हाँ, हाँ, तैयार हूँ । [**अपनी कटार सँभालती है । बानू शून्य में कटार तानती है और प्रहार करती है । काशी उसे अपनी कटार पर रोकती है । इतने में ही आबाजी सोनदेव की जय-ध्वनि । दोनों अपने को सँभालने की चेष्टा करती हैं, दूसरे ही क्षण आबाजी सोनदेव का प्रवेश ।**]

आबाजी : (**आश्चर्य से ठिठककर**) यह क्या......काशी ? (**बानू को देखकर**) गौहरबानू ?

[**बानू अपने सिर पर वस्त्र सरका लेती है ।**]

आबाजी : काशी ! तुम इस शिविर को ही क्या रणभूमि बना रही हो ? शिष्टता सीखो । मेहमान का स्वागत करो । श्रीमंत शिवाजी आने वाले हैं ।

काशी : (**हँसकर**) भाई, यह सचमुच का युद्ध नहीं । मैं बानू का वह हाथ देख रही थी जो इन्होंने यादव रामचन्द्र को मारने में दिखलाया था ।

आबाजी : हाँ, मुझे अभी सूचना मिली कि यादव रामचन्द्र स्वयं गौहरबानू की कटार से मारा गया ।

काशी : और वह कटार इनके पास अभी तक है ।

आबाजी : मैं उस कटार को चाहता हूँ । श्रीमंत अब आने ही वाले हैं । मुझे उनके सामने शस्त्रों का प्रदर्शन करना है । वे शस्त्र-पूजन करेंगे । (**काशी से**) काशी, तुम मुझे अपनी कटार दे सकती हो ?

काशी : (**प्रसन्नता से**) यह मेरी और यह गौहरबानू की । [**दोनों कटारें देती है ।**]

आबाजी : (**कटारें लेते हुए**) क्या इनके अतिरिक्त गौहरबानू के पास और भी कटार है ?

काशी : हाँ, भाई ! एक छोटी कटार और भी है ।

आबाजी : वह मुझे मिल सकेगी ? बानू ! वह कटार भी मैं चाहता हूँ। अब तो आपको उसकी कोई आवश्यकता नहीं । आपकी रक्षा करनेवाला यादव रामचन्द्र मर ही गया । श्रीमंत शिवाजी उसका क्या निर्णय करते हैं यह तो स्वयं श्रीमंत जानें किन्तु आपने तो उसका निर्णय कर ही दिया । सम्भव है, शत्रु पक्ष की रक्षा करने के कारण श्रीमंत भी उसे दंडित करते । अब शायद सोना को दण्ड भुगतना पड़े । अच्छा, जो हो । तो फिर वह कटार मुझे मिल सकेगी ? [**बानू मौन है ।**]

काशी : कटार आपको मिल सकती है, किन्तु बानू के सम्मान पर किसी प्रकार की आँच नहीं आनी चाहिए ।

आबाजी : नहीं आयेगी ।

काशी : और भाई, मैं यह बतला देना चाहती हूँ कि गौहरबानू का अपमान मेरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपमान होगा ।

आबाजी : वाह ! कुछ क्षणों के मेल-भिलाप में ही यह नाता जुड़ गया ?

काशी : सच्चे हृदयों के मिलने में देर नहीं लगती।

आबाजी : ठीक है, तब उनके और तुम्हारे सम्मान पर कोई आँच नहीं आयेगी, मैं वचन देता हूँ ।

काशी : **(बानू से)** बानू, अब अपनी कटार देने में क्या आपत्ति है ? **[बानू फिर भी मौन है ।]**

आबाजी : **(आगे बढ़कर)** गौहरबानू, मैं आपके सम्मान की रक्षा करूँगा । मैं वचन देता हूँ कि मैं आपके सम्मान को बढ़ाऊँगा और अपनी ओर से मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं आपका स्पर्श भी नहीं करूँगा । **[बानू फिर भी चुप रहती है ।]**

आबाजी : गौहरबानू, अगर मैं चाहूँ तो आपसे कटार छीन सकता हूँ । आप इस वक्त मेरी क़ैद में हैं, लेकिन महाराष्ट्र के लोग स्त्रियों की इज्जत करते हैं । वे आपके शरीर को हाथ भी लगाना नहीं चाहते । फिर आप किस बात से डरती हैं ? **(टहलते हुए)** आखिर आप अपने साथ कटार क्यों रखना चाहती हैं ? क्या मुझ पर या शिवाजी पर वार करेंगी ? अगर पीछे से वार करेंगी तो आपकी इज्जत नहीं बढ़ सकती और अगर सामने से वार करना चाहेंगी तो आपके हाथ में कटार दे दी जायगी । लेकिन ऐसा कोई मौका आपके सामने नहीं आयेगा । हम लोग स्त्रियों की इज्जत करते हैं । आपको क़ैद करने में आपके अपमान की भावना मेरे सामने नहीं है । जो कुछ भी होगा आपकी स्वीकृति से होगा । आपको अब भी अपनी कटार देने में कोई आपत्ति है ?

काशी : बानू, अब तो कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

[बानू फिर भी अचल और मौन है ।]

आबाजी : देखिए, गौहरबानू ! मैं श्रीमंत के शस्त्र-पूजन की व्यवस्था करने जा रहा हूँ । इस शिविर का प्रत्येक शस्त्र उनके हाथों से आज पूजित होना चाहिए । मैं आपसे थोड़ी देर के लिए आपकी कटार माँगता हूँ । मैं आपके सामने भवानी की शपथ लेकर कहता हूँ कि आपके सम्मान की रक्षा होगी । मैं श्रीमंत शिवाजी का पूजन-विधान के नाते आपसे आपकी कटार चाहता हूँ ।

[बानू अपनी कटार जमीन पर गिरा देती है ।]

काशी : **(प्रसन्नता से)** गौहर वास्तव में गौहर है । **[कटार उठाकर आबाजी को देती है ।]**

आबाजी : **(बढ़कर कटार लेते हुए)** धन्यवाद, गौहरबानू । आप सचमुच ही एक आदर्श रमणी हैं, देवी हैं । मुख की सुन्दरता के साथ-ही-साथ आपके पास हृदय की सुन्दरता भी है । **(कटार को देखते हुए)** यह कटार.........**(कटार को हाथ से ऊपर उठाते हुए)** तू बानू जैसी वीर रमणी के हाथों में रही, तू धन्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। अब तू श्रीमंत शिवाजी के हाथों में जा। मृत्यु के दाँत की तरह टेढ़ी होकर भी तू हृदय से लगाने योग्य है। **(गौहरबानू से)** गौहरबानू, आपको एक बार फिर धन्यवाद। अब आप जा सकती हैं। **(पुकारकर)** अंजुमन !

[अंजुमन का प्रवेश। वह आकर प्रणाम करती है।]

आबाजी : अंजुमन ! गौहरबानू अपने खेमे में जाना चाहती हैं। इन्हें कोई कष्ट न हो।

अंजुमन : जो आज्ञा। **(गौहरबानू से)** चलिए।

[अंजुमन के साथ गौहरबानू का प्रस्थान]

आबाजी : **(गौहरबानू को देखते हुए)** श्रीमंत शिवाजी के नाम पर इन्होंने कटार दी।

काशी : श्रीमंत शिवाजी के प्रति गौहर के हृदय में बड़ी श्रद्धा है। कह रही थीं कि वह श्रीमंत के दर्शन करना चाहती है।

आबाजी : फिर मैं उनकी इच्छा पूरी करूँगा।

काशी : किन्तु भाई, आपने एक भारी भूल की थी।

आबाजी : मैंने ! कौन-सी ?

काशी : आपने गौहरबानू के पास एक नहीं दो-दो कटारें रहने दीं। यदि वे अपने दुःख में आत्महत्या कर बैठतीं तो आपकी राजनीति अधूरी रह जाती। मैं आपके आने तक उन्हें बातों ही में उलझाये रखना चाहती थी। मैं नहीं चाहती थी कि इतनी अच्छी स्त्री आत्महत्या करे।

आबाजी : मैं तुम्हारी बुद्धिमत्ता से प्रसन्न हूँ, लेकिन तुम शायद यह नहीं जानतीं कि अंजुमन को मैंने गौहरबानू की सेवा में क्यों रखा था। उसे मेरा पूरा आदेश है कि वह गौहरबानू की सेवा करते हुए भी उन्हें कभी अपनी कटार का उपयोग न करने दे। अंजुमन छाया की भाँति गौहर के पीछे है। अंजुमन के बाद मैंने तुम पर सारा उत्तरदायित्व छोड़ दिया था। मुझे विश्वास था कि महाराष्ट्र की स्त्रियाँ अपना उत्तरदायित्व समझती हैं।

काशी : प्रशंसा के लिए धन्यवाद। किन्तु गौहरबानू ने मुझे वचन दिया है कि वे तब तक आत्महत्या नहीं करेंगी जब तक कि उनके साथ अच्छे व्यवहार में कमी नहीं आयेगी। उनके सम्मान पर किसी तरह की आँच नहीं आनी चाहिए, भाई !

आबाजी : मैं इस सम्बन्ध में तुम्हें पूर्ण आश्वासन देना चाहता हूँ। **(कुछ ठहरकर)** अच्छा काशी, श्रीमंत शिवाजी अब आने ही वाले हैं। मोरोपंत पेशवा उनके साथ होंगे। वे कल्याण की विजय-लक्ष्मी का निरीक्षण करेंगे। मैंने जितने भी रत्न इस विजय में एकत्रित किए हैं उन्हें एक स्वर्ण-थाल में सजाओ और श्रीमंत के आने पर प्रस्तुत करो।

काशी : बहुत अच्छा। **[जाने को प्रस्तुत होती है।]**

आबाजी : सुनो, काशी ! जब श्रीमंत इस शिविर में पदार्पण करें तो तुम्हें उनकी

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आरती उतारने के लिए तैयार रहना चाहिए।

काशी : और गौहरबानू की आरती कौन उतारेगा ?

आबाजी : तू मुझ पर व्यंग्य करती है, काशी !

काशी : फिर यह व्यवहार क्या है कि एक ओर तो भवानी की शपथ लेकर आपने उसे न छूने की प्रतिज्ञा की और दूसरी ओर उसकी कटार को माथे चढ़ा लिया ?

आबाजी : तेरे लिए राजनीति नहीं है, काशी ! तू आरती की व्यवस्था कर।

काशी : बार-बार राजनीति का नाम लेकर आप मुझे मूर्ख बना देते हैं। अच्छी बात है, अब मैं महाराष्ट्र के योग्य ही नहीं हूँ। गौहर क्या आत्महत्या करेगी, मैं आत्महत्या करूँगी। करा लीजिएगा आप गौहर से ही आरती श्रीमंत शिवाजी की या अपनी.........। [**बुरा मान जाती है।**]

आबाजी : बुरा मान गई ? नहीं, काशी तू बहुत बुद्धिमती है। तुझे अपनी बहिन के रूप में पाकर मैं गौरवान्वित हुआ हूँ। अच्छा, सुन ले तू भी राजनीति। कोई यहाँ है तो नहीं ? (**नेपथ्य की ओर देखकर**) शरीर-रक्षक, तुम जाओ। इस समय तुम्हारी आवश्यकता नहीं है।

बाहर से स्वर : जो आज्ञा। [**जाने की आवाज़**]

आबाजी : सुनो, काशी ! मैं तुम्हें अपनी राजनीति संक्षेप में समझा दूं। किन्तु तुम किसी से कहोगी तो नहीं ?

[**काशी नकारात्मक सिर हिला देती है।**]

आबाजी : वचन देती हो ?

काशी : हाँ।

आबाजी : मैं गौहरबानू को कल्याण-विजय की सबसे बड़ी विजयश्री के रूप में श्रीमंत शिवाजी की सेवा में भेंट करना चाहता हूँ।

काशी : क्या आप श्रीमन्त शिवाजी के चरित्र को जानते नहीं हैं ? क्या वे स्वीकार करेंगे ?

आबाजी : मुझे विश्वास है।

काशी : वे पर-स्त्री को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।

आबाजी : मैं यह जानता हूँ कि गौहरबानू का सौन्दर्य किसी भी आदर्श के विरोध में खड़ा किया जा सकता है। मैं यह भी जानता हूँ कि श्रीमन्त की आज्ञा स्त्रियों को क़ैद करने की नहीं है। किन्तु मैं एक ऐसा पाँसा फेंकना चाहता हूँ कि श्रीमन्त गौहरबानू के सौन्दर्य पर मोहित हो जायें और महाराष्ट्र में एक सुन्दरता की देवी आ जाय।

काशी : किन्तु भाई, इसका उद्देश्य क्या है ?

आबाजी : वह भी सुनना चाहती हो ? इस दैवी उपहार को पाकर श्रीमन्त मुझसे बहुत प्रसन्न होंगे और इसके फलस्वरूप जानती हो क्या होगा ?

काशी : (**उत्सुकता से**) क्या होगा ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आबाजी : आबाजी सोनदेव श्रीमन्त शिवाजी भोंसले के पेशवा होंगे। मोरोपन्त के स्थान पर समस्त महाराष्ट्र के पेशवा आबाजी सोनदेव !

काशी : मैं बहुत प्रसन्न होऊँगी, भाई ! पेशवा की बहिन कहलाऊँगी, किन्तु मुझे इस कार्य में सन्देह है।

आबाजी : तुम अभी बालिका हो, क्या समझो इन बातों को। किन्तु यह रहस्य किसी पर प्रकट न होने पावे, काशी !

काशी : फिर गौहरबानू के सम्मान की रक्षा ?

आबाजी : श्रीमन्त सभी परिस्थितियों को सँभाल लेंगे, मुझे आगे की चिंता नहीं है। गौहरबानू श्रीमन्त पर श्रद्धा रखती है ही, आगे चलकर वही श्रद्धा प्रेम का रूप ले सकती है। मुग़ल इतिहास में नूरजहाँ का उदाहरण तुम्हारे सामने है लेकिन यह सब होगा गौहरबानू की सम्मति से ही। हाँ, जब तक गौहरबानू श्रीमन्त की सेवा में उपस्थित नहीं की जातीं तब तक उनके सम्मान की रक्षा का प्रश्न मेरा है और मैं वचन देता हूँ कि मेरे संरक्षण में उनके सम्मान की रक्षा अवश्य होगी। हाँ, एक बात और......काशी, उसे तुम्हीं को पूरा करना है।

काशी : वह क्या ?

आबाजी : श्रीमन्त के सामने जिस समय मैं 'भवानी की जय' कहूँ उस समय तुम्हें गौहरबानू को द्वार तक पहुँचाना होगा।

काशी : जैसी महाराज पेशवा की आज्ञा।

आबाजी : (**किंचित् बनावटी क्रोध के साथ**) चुप, काशी ! अभी ऐसा कहने का समय नहीं है। यह रहस्य गुप्त रखना चाहिए, जब तक कि अभीष्ट-सिद्धि न हो जावे।

[काशी मौन स्वीकृति देती है।]

आबाजी : अच्छा, तो अब तुम जाओ। आरती-पात्र सुसज्जित रहे, साथ ही स्वर्ण-थाल में चुने हुए रत्न भी। और देखो, गौहरबानू को भी तैयार रखना। अच्छा, अब तुम मीनाजी को मेरे पास भेजो। वे यहीं पास के शिविर में होंगे।

काशी : बहुत अच्छा। **[चलने के लिए उद्यत होती है।]**

आबाजी : देखो, शरीर-रक्षक से कहला दो कि वह द्वार पर अपना स्थान ले।

[काशी सिर झुकाकर स्वीकार करती है और जाती है।]

आबाजी : (**एक क्षण काशी के जाने की दिशा में देखते हैं फिर लौटकर टहलते हुए**) काशी को मैंने अपने महान् उद्देश्य की सूचना दे दी। गुप्त तो रखेगी ही...... (**दृढ़ता से सिर उठाकर**) ठीक...समस्त महाराष्ट्र के पेशवा हो जाने का गौरव... मेरा होगा......मोरोपंत के स्थान पर आबाजी सोनदेव......(**फिर टहलते हुए**) गौहरबानू......तू देवी है, तू मेरे गौरव-शिखर की सोपान थी यह स्वयं मुल्ला अहमद नहीं जानता होगा......महाराष्ट्र का भाग्य...। **[टहलते हैं।]**

[मीनाजी का प्रवेश। साधारण सरदार जैसा वेश-विन्यास]

मीनाजी : (**प्रणाम कर**) आज्ञा, श्रीमान् की ?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आबाजी : मीनाजी ! श्रीमन्त भोंसले के इस शिविर-कक्ष में आने में अब देर नहीं है। वे इस कक्ष में आने के बाद विजय-सामग्री का निरीक्षण करेंगे। तुमने विजय की समस्त सामग्रियों को सुसज्जित कर लिया ?

मीनाजी : आज्ञानुसार सब सामग्री प्रस्तुत है, श्रीमान् !

आबाजी : 551 घोड़े अश्वारोहियों के निरीक्षण में हैं ?

मीनाजी : जी, श्रीमान् !

आबाजी : मखमली, रेशमी और जरदोजी कपड़ों का संग्रह रघुनाथ बल्लाल के निरीक्षण में है ?

मीनाजी : जी हाँ, उनकी सूची भी तैयार करा ली गई है।

आबाजी : और शस्त्रों का संग्रह ?

मीनाजी : वह भी रघुनाथ बल्लाल के निरीक्षण में है।

आबाजी : और रत्नों का संग्रह ?

मीनाजी : वह शंभूजी कावजी के पास हैं, किन्तु उन रत्नों में से कुछ चुने हुए रत्न श्री कुमारी काशीबाई के समीप भेज दिए हैं।

आबाजी : हाँ, जैसी मैं आज्ञा दे चुका हूँ वे रत्न एक स्वर्ण-थाल में सजाकर काशीबाई श्रीमन्त की सेवा में प्रस्तुत करेंगी......(**ठहरकर**) और देखो, श्रीमन्त के आने के मार्ग में बन्दनवार और पताकाएँ लगवा दो !

मीनाजी : उसके लिए गंगाबाई से कह दिया गया है।

आबाजी : और प्रतापगढ़ के किले में भवानी की पूजा की व्यवस्था सब ठीक है ?

मीनाजी : जी, सोनाजी पंडित वहाँ उपस्थित हैं और पंडितराव से दान के लिए दो हजार होंण भी निकलवा लिए हैं। ऐसी श्रीमन्त भोंसले ने इच्छा प्रकट की थी।

आबाजी : ठीक है। शिविर-द्वार पर मंगल-दीप के साथ दो परिचारिकाओं को खड़े होने की आज्ञा दो !

मीनाजी : ये सब प्रस्तुत हैं, श्रीमान् !

आबाजी : अब तुम जा सकते हो, सब बातों में सतर्कता हो।

मीनाजी : जो आज्ञा ! [**जाने को उद्यत होते हैं।**]

आबाजी : नहीं, तुम मेरे ही साथ रहोगे। परिचारिकाओं को ले आओ।

मीनाजी : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

[आबाजी सिंहासन के समीप जाकर सब चीज़ों का निरीक्षण करते हैं और गौहर की कटार ध्यान से हाथ से लेकर देखने लगते हैं। मीनाजी आते हैं और अपने साथ दो परिचारिकाओं को मंगल-दीप के साथ लाते हैं। परिचारिकाएँ दोनों द्वार पर खड़ी हो जाती हैं, आबाजी कटार को सिंहासन के समीप रखकर मुड़ते हैं। इसी समय नेपथ्य में 'श्रीमंत भोंसले शिवाजी महाराज की जय ! श्रीमंत भोंसले शिवाजी महाराज की जय !' की ध्वनि और तोप की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सलामी। बाहर बातचीत और हल्की कंठध्वनि।]

आबाजी : (सजग होकर और म्यान से तलवार निकालकर) मीनाजी, तुम सिंहासन के समीप अपने स्थान पर खड़े होओ।

[मीनाजी तलवार निकालकर सिंहासन की बायीं ओर खड़े होते हैं। नेपथ्य में फिर 'श्रीमंत भोंसले शिवाजी महाराज की जय!']

आबाजी : (सोनदेव और मीनाजी जय के स्वर में अपना कण्ठ मिला कर दक्षिण द्वार की ओर देखते हुए) स्वागत श्रीमन्त!

[नेपथ्य में दक्षिण द्वार से फूल उछाले जाते हैं। श्रीमन्त शिवाजी (आयु 30 वर्ष) का प्रवेश। सब का नत-मस्तक होना। श्रीमन्त शिवाजी गौर वर्ण के हैं, उनका शरीर बलिष्ठ और गठीला है, यौवन और शक्ति का सम्पूर्ण सौंदर्य उनके अंग-अंग से फूट रहा है। वे मझोले क़द के आदमी हैं। चलने-फिरने में तेजी और स्फूर्ति है, मुख पर एक हल्की-सी मुस्कुराहट। विशाल नेत्र, जिनमें तीक्ष्णता और चंचलता है। उनके बाल कानों के समीप लम्बे होकर उनकी दाढ़ी से मिले हुए हैं, जो नीचे जाकर नुकीली हो गई है, उनकी मूँछें भी पतली और गलगुच्छे के समीप तक आने वाली हैं। कानों में दो बड़े-बड़े मोती झूल रहे हैं। माथे पर हल्की रेखाओं का एक त्रिपुंड है। गले में अनेक मोतियों की मालाएँ हैं। शिवाजी मुग़ल ढंग की पगड़ी पहने हुए हैं, जिसके ऊपर मोतियों और रत्नों का सिरपेच लगा हुआ है। ऊपर बड़ी सुन्दर कलंगी है, वे वक्षस्थल पर गुणित चिह्न की पट्टियों का एक अँगरखा पहने हुए हैं, जिसमें रत्नों की राशि सजी हुई है। अँगरखे की दोनों बाँहें फूली हुई हैं किंतु कलाइयों के पास आकर चुस्त हो गई हैं, जहाँ मखमल की पट्टियाँ हैं। बगल में से होकर जाने वाले एक नीले रेशम का दुपट्टा है जो कमर की तलवार तक लटक रहा है। कमर में जरी की पेटी है जिनका रत्नों से जड़ा हुआ छोर घुटने तक झूल रहा है। जरी की पेटी में एक कटार सजी हुई है और दूसरी ओर नीली म्यान लटक रही है जिसकी तलवार इस समय श्रीमन्त शिवाजी के हाथ में है। शिवाजी सफेद रंग का चूड़ीदार पंजामा पहने हुए हैं और पैर में एड़ियों से बहुत ऊपर तक खिचे हुए नुकीले जूते हैं।

शिवाजी के पीछे रघुनाथ बल्लाल और शम्भूजी कावजी हैं। शिवाजी के साथ पेशवा मोरोपन्त हैं जिनका वेष-विन्यास महाराष्ट्र सेनापतियों के समान है। वे सब रेशमी अँगरखे और चूड़ीदार पंजामे पहिने हुए हैं। सभी के हाथों में तलवारें हैं और कमर से म्यानें झूल रही हैं, दो कमर की पेटियों से कसी हुई हैं। सिरों पर साधारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पगड़ियाँ और माथे पर त्रिपुण्ड है। एक-एक मोती की माला उनके गले में है। मोरोपन्त की पगड़ी जरी की है और वे मोती की चार मालाएँ पहने हुए हैं। श्रीमन्त शिवाजी के प्रवेश करते ही उन पर जयघोष के साथ फूलों और अक्षत की वर्षा होती है। शिवाजी रंग-मंच के मध्य में खड़े हो जाते हैं और तीनों सरदार उनके समीप ही फैलती हुई किरण के रूप में खड़े हो जाते हैं। मोरोपन्त शिवाजी की दाहिनी ओर हैं। उसी समय काशी आरती-पात्र लेकर प्रवेश करती है और आरती उतारकर प्रस्थान करती है।]

शिवाजी : (**चारों ओर दृष्टि डालकर गौरवपूर्ण शब्दों में**) वीरो ! महाराष्ट्र जननी जीजाबाई के आशीर्वाद की विजय-लक्ष्मी तुम्हें मंगलमय हो। स्वाधीन राज्य की स्थापना करने वालो ! तुम्हारी जाति का प्रण अमर हो। सैकड़ों बाधाओं और विपत्तियों को झेलकर फिर अपना सिर ऊँचा करने वाले वीरो ! तुम्हारी शक्ति से महाराष्ट्र-जननी सन्तुष्ट हैं।

सब : श्रीमन्त शिवाजी भोंसले की जय !

शिवाजी : (**मुस्कराकर**) नहीं, यों कहो, महाराष्ट्र सैनिकों की जय !

सब : (**उच्च स्वर से**) जय !

शिवाजी : शिवा भवानी की तलवार की चिनगारियों से ही दक्षिण में स्वतंत्रता का प्रकाश हो रहा है। बन्धुओ ! तुम्हारी वीरता का केन्द्रमंडल तुम्हारी महाराष्ट्र जननी है, जिसने सह्याद्रि के पर्वत से अपनी शक्ति-धारा के प्रवाह में तुम्हें आगे बढ़ने का वेग और बल प्रदान किया है। मोरोपन्त, कल्याण और भिवंडी नगरों को जीतने में किसकी प्रशंसा करनी चाहिए, जानते हो ?

मोरोपन्त : श्रीमंत की।

शिवाजी : नहीं। (**रघुनाथ की ओर देखकर**) रघुनाथ ?

रघुनाथ : बीजापुर की राजनीति की।

शिवाजी : नहीं। (**शम्भू की ओर देखकर**) शम्भूजी ?

शम्भूजी : आपके आक्रमण की नीति की।

शिवाजी : नहीं। (**आबाजी की ओर देखकर**) आबाजी ?

आबाजी : मुल्ला अहमद की व्यापार-लोलुपता की।

शिवाजी : (**दृढ़ता से**) नहीं, नहीं, नहीं। मैं इस जीत की सारी प्रशंसा देना चाहता हूँ औरंगज़ेब को या मुग़ल सिंहासन पर अधिकार करने की उसकी महत्त्वाकांक्षा को। शाहंशाह शाहजहाँ बीमार हैं; शाही बुलन्द इक़बाल दारा से लोहा लेने के लिए औरंगज़ेब दक्षिण छोड़कर उत्तर की ओर बढ़ गया है। वह नहीं जानता कि मीर जुमला सिर्फ़ खेत का धोखा है। औरंगज़ेब का यहाँ से चला जाना मुग़ल सल्तनत का दक्षिण से चला जाना है और यह विजय उसका एक नमूना है।

[**सब स्वीकारात्मक सिर हिलाते हैं।**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मोरोपन्त : यह आपकी दूरदर्शिता है।

आबाजी : यह आपकी नीति-निपुणता है।

शिवाजी : और इस अवसर से लाभ उठाने की दूर-दृष्टि हमारे वीरों की है। स्वयं प्रकृति देवी ने दक्षिण में हमारे लिए अनेक पहाड़ी किले तैयार कर दिये हैं, जिनमें अपनी शक्ति के व्यूह तैयार कर मराठे काल की तरह झपटकर शत्रुओं को तलवार के घाट उतार देते हैं। मैं इससे प्रसन्न हूँ। पहाड़ियों के ऊपर से गिराये जाने वाले पत्थर लुढ़कते हुए काल की तरह शत्रुओं को अपने साथ घसीट ले जाते हैं।

मोरोपन्त : और वे इस तरह घसीटते हैं कि उनका आकार ही बदल जाता है।

शिवाजी : उसी तरह जिस तरह प्रत्येक दिन सूरज उदय होकर देखता है कि कल जिस प्रान्त पर उसने प्रकाश डाला था उसका भी आकार बदल गया है। हमारे आक्रमण की शीघ्रता सूर्य की शीघ्रता से भी शीघ्र है। अँधेरी रातों में जिस तरह चाँद बढ़ता है उसी तरह तुम्हारे राज्य की सीमा बढ़ती है।

आबाजी : और औरंगज़ेब उस अँधेरे में एक तारे की तरह काँप कर यह सब देखता है।

शिवाजी : लेकिन आबाजी, यह तुम स्मरण रखो कि यह तारा किसी दिन मुग़ल सल्तनत पर पहुँचकर सूरज बन सकता है। इसलिए मैंने औरंगज़ेब से मित्रता करना बुरा नहीं समझा जब तक कि वह मेरे साथ विश्वासघात न करे। रघुनाथ बल्लाल को कोरडे भेजकर सम्मानपूर्ण सन्धि की तलवार से मैंने औरंगज़ेब के नाखून काट दिए हैं। रघुनाथ तो औरंगज़ेब का रुख भी देख आये हैं।

रघुनाथ : श्रीमंत, मुगल सेनाओं से जब बीजापुर पराजित हुआ तो उसने औरंगज़ेब से सन्धि कर ली। उसी समय मैं उसके पास पहुँचा। औरंगज़ेब बहुत चिढ़ा हुआ था लेकिन आपके सन्देश से उसे सन्तोष मिला। उसने कहा कि शिवाजी के साथ दोस्ती करना एक ऐसे शेर के साथ दोस्ती करना है जो किसी वक्त भी पैंतरा बदल सकता है, खून का प्यासा हो सकता है।

आबाजी : लेकिन सारे मराठा-प्रदेश पर उसने श्रीमंत का अधिकार तो स्वीकार कर लिया।

मोरोपन्त : हाँ, अधिकार तो स्वीकार कर लिया लेकिन उसने यह शर्त भी रखी कि श्रीमंत मुग़ल सीमा की रक्षा करेंगे।

शिवाजी : मुग़ल सीमा की? दक्षिण में मुग़ल सीमा पिघलती हुई पृथ्वी की सीमा है जो आज यहाँ बनती है, कल वहाँ बनती है। जब तक औरंगज़ेब खुद न्यायी है, शिवाजी भवानी की तलवार लेकर पंढरपुर में शपथ ले चुका है कि वह भी न्यायी रहेगा। लेकिन जब औरंगज़ेब विश्वासघात करेगा तो शिवाजी विश्वास-घात का बदला देना भी जानता है। दादाजी कोंडदेव की शिक्षा कभी अधूरी नहीं रही।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मोरोपन्त : उसने आदिलशाह को दिल्ली जाते समय लिखा भी था कि शिवाजी ने कितने ही किलों पर अधिकार कर लिया है। उनको इन सबसे हटा दो और अगर श्रीमंत शिवाजी से मित्रता करनी ही है तो उन्हें कर्नाटक में जागीर दे दो जिससे वे बादशाही राज्य से अलग रहें और उपद्रव न मचावें।

शिवाजी : क्या इस आज्ञा में मेरे साथ सन्धि होते हुए भी विश्वासघात की दुर्गन्धि नहीं है ? फिर भी मोरोपन्त, कल औरंगज़ेब को सूचना दो कि मैंने मुग़ल सल्तनत को न छूते हुए बीजापुर पर आक्रमण किया है और कल्याण और भिवंडी के किले जीत लिये हैं। उसे मेरी विजय से किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए और यदि इस विजय को वह अपनी राज्य-तृष्णा में बाधक समझता है तो मुझसे वह लोहा ले सकता है। मुग़ल सल्तनत का लालच छोड़कर वह दक्षिण चला आये; हमें भी मुग़ल सेना से लड़ने में आनन्द मिलता है। खुलकर लड़ने की इच्छा केवल औरंगज़ेब से होती है।

मोरोपन्त : इस समय औरंगज़ेब नहीं आ सकता। दारा की बुलन्दी से वह नाराज है। डरता है कि शाहजहाँ के बाद दिल्ली का तख़्त कहीं दारा के हाथ में न पहुँच जाय। उसे दारा के भाग्य से ईर्ष्या है।

शिवाजी : तो जो अपने भाई के ऐश्वर्य से जलता है वह मेरे ऐश्वर्य से क्यों न जले ? क्यों न वह नर्मदा से उत्तर में अपनी सीमा बढ़ाये और दक्षिण का राज्य हमारे हाथ सौंप दे ? हम दोनों दोस्त की तरह रहें और जिस तरह लड़ाई में हम लोग तलवारें बढ़ाना जानते हैं उसी तरह सन्धि में दोस्ती का हाथ बढ़ाना भी जानते हैं। लेकिन इसे भविष्य पर छोड़ो। आबाजी ! कल्याण की लूट का पूरा विवरण तुम दे सकते हो। तुम्हीं इस लूट के सेनापति थे, मैं उसे सुनना चाहता हूँ। **[सिंहासन पर बैठते हुए।]**

आबाजी : (**सिर झुकाकर**) जो आज्ञा, श्रीमंत ! आक्रमण-नीति तो आपने ही बनाई थी, मैंने उसे कार्य-रूप में परिणत करने की चेष्टा-मात्र की है। बीजापुर की राजधानी में ही प्रधान मंत्री खान मुहम्मद का ख़ून होने से जो गड़बड़ी फैल गई थी उससे सेनानायकों में कल्याण के लूटने का विचार एक दूसरे से होड़ ले रहा था। प्रजा भागना चाहती थी, लेकिन उसके लिए कोई मार्ग न था।

शिवाजी : यह मैं जानता था, इसीलिए मैंने अपनी सेना के एक बड़े भाग को उत्तर कोंकण में एकत्रित कर रखा था, जिससे भागने के लिए कोई मार्ग न मिल सके।

आबाजी : सत्य है, श्रीमंत ! आपके भय से प्रजा उस ओर भाग ही नहीं सकती थी। बीजापुर के सेनानायकों को कल्याण के लूट लेने का अवसर न देकर मैं पर्वत श्रेणी के बीच से ही निकलकर कल्याण के नगर में घुस गया और मैंने नगर के खजाने पर कब्जा कर लिया।

शिवाजी : तुम बहुत बहादुर हो, आबाजी ! फिर क्या हुआ ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आबाजी : प्रजा समझ रही थी कि बीजापुर का कोई सेनापति उन्हें लूट रहा है।

मोरोपन्त : ऐसा क्यों ?

आबाजी : बीजापुर के सेनापति मुस्तफा खाँ की फौज में मुसलमान और मावले ही अधिक संख्या में हैं, इसलिए मैंने अपनी जिस सेना से आक्रमण किया था उसमें मावले और मुसलमान ही अधिक रखे थे। प्रजा को मुस्तफा खाँ की सेना का पूरा भ्रम हुआ। वे डटकर मेरा विरोध भी नहीं कर सके। चुपचाप घरों से भाग निकले।

शिवाजी : तुम्हारी बुद्धिमत्ता सराहनीय है, आबाजी !

आबाजी : श्रीमंत ! फिर मैंने कुनबी घुड़सवारों की एक टुकड़ी लेकर कल्याण की सेना पर आक्रमण कर दिया। शम्भूजी कावजी मेरे साथ ही थे, सेना लापरवाह और बेखबर थी। शम्भूजी ने अस्त-व्यस्त सेना को ठिकाने लगाकर 551 घोड़ों पर घेरा डालकर उन्हें आपकी सेना के भीतर कर लिया। इस समय वे घोड़े आपके अश्व-निरीक्षकों के पास हैं।

शिवाजी : मैं उन घोड़ों का निरीक्षण करूँगा। **(शम्भू की ओर)** शम्भूजी ! तुम वीर हो, मैं तुम्हें प्रतापगढ़ का दबीर (सामन्त) नियुक्त करता हूँ। **(शम्भूजी दोनों हाथों में तलवार रखकर अभिवादन करते हैं)** और सुनो, उन 551 घोड़ों में से दो घोड़े अपने लिए चुनकर अपने वीर सिपाहियों में वितरित कर दो।

शम्भूजी : जो आज्ञा, श्रीमंत !

शिवाजी : **(आबाजी की ओर)** अच्छा आबाजी, आगे ?

आबाजी : श्रीमंत ! इसके बाद मैंने रघुनाथ बल्लाल के साथ शाही पोशाकखाने पर आक्रमण किया। रघुनाथ बल्लाल ने अपने दोनों हाथों से छुरे चलाकर एक ही बार में दोनों पहरेदारों को जमीन पर सुला दिया। रघुनाथ के छुरे चलाने की प्रवीणता सारे महाराष्ट्र में किसी के पास नहीं है। उस समय मुझे याद आया कि रघुनाथ ने जावली का मैदान साफ करते समय इसी प्रकार छुरे चलाने की चतुराई से चन्द्रराव मोरे और सूर्यराव मोरे को खत्म किया होगा। शाही पोशाकखाने के सारे बेशकीमती कपड़े और पगड़ियाँ इस समय हमारे कब्जे में हैं।

शिवाजी : **(रघुनाथ बल्लाल से)** रघुनाथ ! मैं उन पोशाकों को देखकर प्रसन्न होऊँगा। तुम जावली के शुरूनवीस (सचिव) नियुक्त किए गये। **(रघुनाथ दोनों हाथों में तलवार लेकर अभिवादन करता है)** शाही वस्त्रों में से दो पोशाकें अपने लिए चुनकर तुम अपनी इच्छानुसार सब पोशाकें बारगीरों में वितरित कर दो। **(कुछ स्मरण करते हुए)** हाँ, भिश्तियों और नालबन्दों को भी पोशाकों में से कुछ भाग मिलना चाहिए।

रघुनाथ : **(सिर झुकाकर)** जो आज्ञा !

आबाजी : श्रीमंत, इसके बाद मैंने अपना रुख शस्त्रागार की ओर किया और जितने

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बीजापुर के शाही हथियार थे वे सब अपने अधिकार में कर लिये। उनमें अनेक भाले, शिरस्त्राण, तलवार, तीर और धनुष हैं। वे इस समय प्रतापगढ़ के क़िले में रघुनाथ के संरक्षण में हैं।

शिवाजी : (**प्रसन्न होकर**) बहुत अच्छा! (**मोरोपन्त से**) मोरोपन्त! वे सब शस्त्र विजयादशमी के दिन तक सुरक्षित रखो और उस दिन सेना संगठन करते समय नेताओं के आधीन जितने भी 'पागादल' हों उनमें वितरित करने की घोषणा कर दो। जितने भी वर्गी, हवलदार, जुमलादार और एक हजारी हों उन सबका इस शस्त्र-संग्रह में भाग होगा। इसकी सूचना 'सर-ए-नौबत' को दे दो। हाँ, एक बात और। शरीर-रक्षक मावले प्यादों को भी इन शस्त्रों के पाने का अधिकार होगा।

मोरोपन्त : जो आज्ञा।

आबाजी : श्रीमंत, आपकी शक्ति का सहारा पाकर मैंने इस बार लूट के संग्रह में अतुल सम्पदा प्राप्त की है।

शिवाजी : आबाजी, मैंने तुम्हें अपना मजमुआदार अमात्य नियुक्त किया। मोरोपन्त! इस बात की घोषणा कल ही हो जानी चाहिए।

मोरोपन्त : जो आज्ञा।

[आबाजी घुटने टेककर तलवार को दोनों हाथों में रखकर अभिवादन करते हैं।]

आबाजी : (**उठकर**) श्रीमंत, मैं अपने को इस पद के योग्य सिद्ध करूँगा। आक्रमण में मैंने जो अतुल सम्पदा प्राप्त की है वह मैंने कल्याण के शाही खजाने से प्राप्त की है। सदर और मुहतसिब का सिर धड़ से जुदा कर मैंने ऐसे-ऐसे रत्न और क़ीमती जवाहिरात पाये हैं जो अभी तक की लूट में प्राप्त नहीं हो सके थे। श्रीमंत, बड़ी-बड़ी पेटियों में वे रत्न ऐसे बिखरे हुए थे जैसे आकाश में तारे। मैंने उन्हें एकत्रित कर सूर्य के समान चमकती हुई सोने की पेटी में डाल दिया है। उन रत्नों में से चुने हुए रत्न मैं आपकी सेवा में प्रस्तुत करना चाहता हूँ। (**कुछ जोर से पुकारकर**) काशी!

[स्वर्ण-थाल में रत्न लेकर काशी का प्रवेश। वह श्रीमंत शिवाजी के सामने घुटना टेककर उनके सामने स्वर्ण-थाल बढ़ाती है।]

शिवाजी : (**स्वर्ण-थाल की ओर देखकर, प्रसन्नता के स्वर में**) बहुत सुन्दर रत्न हैं। आबाजी! तुमने इन रत्नों का संग्रह कर महाराष्ट्र को बहुत सम्पन्न बना दिया है। अब वह अनेक वर्षों तक बड़ी-से-बड़ी शक्ति से मैदान ले सकता है। तुम्हें अनेक साधुवाद। काशी, उठो! इन रत्नों के पाने वाले अधिकारियों के नाम मैं लेना चाहता हूँ।

[काशी उठ खड़ी होती है।]

शिवाजी : सबसे पहले काशीबाई, आबाजी सोनदेव की बहिन जिसकी मंगल-कामना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से यह विजय पूर्ण हुई। [**एक रत्न चुनकर काशीबाई को देते हैं। काशीबाई बाएँ हाथ में थाल लेकर दाहिने हाथ से लेती है और प्रणाम करती है।**]

काशी : श्रीमंत भोंसले शिवाजी सदैव विजयी हों!

शिवाजी : (**मुस्कराकर**) जिससे तुम्हें सदैव ऐसे रत्नों की प्राप्ति हो। मुझे विश्वास है, तुम्हें सदैव अच्छे-से-अच्छे रत्नों की प्राप्ति होगी। सबसे श्रेष्ठ रत्न तो अभी तुम्हें मिलना है। आबाजी उस रत्न का ध्यान तुम रखना।

[**काशी लज्जित होकर संकुचित होती है।**]

आबाजी : श्रीमंत, मैं ध्यान रखूँगा।

शिवाजी : इन रत्नों के दूसरे अधिकारी का नाम श्री आबाजी सोनदेव है। महाराष्ट्र सेना के नायक आबाजी, इसे पारितोषिक रूप में स्वीकार करो!

आबाजी : (**झुककर**) श्रीमंत की कृपा। [**रत्न लेकर अभिवादन करते हैं।**]

शिवाजी : (**दो रत्न लेकर**) इन दो रत्नों के अधिकारी पेशवा मोरोपन्त हैं।

मोरोपन्त : (**रत्नों को हाथ में लेकर**) श्रीमंत की कृपा। [**अभिवादन करते हैं।**]

शिवाजी : मोरोपन्त! शेष रत्नों के दो भाग होंगे। एक भाग मेरी पूज्य जननी श्रीमती जीजाबाई की सेवा में प्रस्तुत किया जाय और दूसरा भाग राजकोष में जमा हो।

मोरोपन्त : जो आज्ञा, श्रीमंत! (**काशी से**) काशीबाई, यह रत्न-संग्रह पंडितराव को देकर राज्य-भांडार में जमा कर दो। शेष रत्न शम्भूजी कावजी जमा कर देंगे।

शम्भूजी : जो आज्ञा।

[**काशी पहले श्रीमंत शिवाजी को और बाद में अन्य सेनापतियों को प्रणाम करके जाती है।**]

शिवाजी : मैं इस आक्रमण के परिणाम से बहुत प्रसन्न हूँ। यह सब तुम लोगों की शक्ति से हुआ है। वीरो, सदैव शक्ति और साहस में विश्वास रखो। आत्म-सम्मान भवानी का दिया हुआ सबसे बड़ा वरदान है। उस वरदान को प्राप्त करने की चेष्टा सदैव करते रहो। तुमसे महाराष्ट्र-जननी बहुत प्रसन्न है। तुम सब श्रीमती जीजाबाई के चरणों में प्रणाम करने का यश प्राप्त करो। एक समय आवेगा जब मुग़ल सल्तनत को तुम लोगों के आतंक से सिर झुकाना पड़ेगा। तुम्हीं पर मेरी भावी आशाएँ निर्भर हैं। मेरे साथ कहो, "भवानी की जय।" (**भवानी की जय का नारा**) "श्रीमती जीजाबाई की जय।" (**जीजाबाई की जय का नारा**) मेरे साथ तुम सब लोग श्रीमती जीजाबाई के दर्शन करोगे और साथ-ही-साथ प्रतापगढ़ के क़िले में चलकर शिवा-भवानी की पूजा में उपस्थित रहोगे। मोरोपन्त! साथ-ही-साथ मैं शस्त्र-पूजा भी करूँगा। शस्त्रागार के समस्त शस्त्र उस समय मेरे सामने रहने चाहिए।

मोरोपन्त : जैसी श्रीमंत की आज्ञा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिवाजी : अच्छा, अब हम चलेंगे । आबाजी, तुमसे एक बात विशेष रूप से कहनी है । तुम मेरे साथ होगे । [**उठने के लिए प्रस्तुत**]

आबाजी : श्रीमंत, जो आज्ञा; किन्तु एक प्रार्थना और निवेदन करनी है । कल्याण के आक्रमण का एक उपहार और है ।

शिवाजी : अच्छा, उसे भी उपस्थित करो । आबाजी, मैं तुम्हारी वीरता से बहुत प्रसन्न हूँ । मेरे हृदय में तुमने वह स्थान बना लिया है जो आज तक किसी सैनिक ने नहीं बनाया । तुम्हें कल्याण का आक्रमण सौंपकर मैंने अपने युद्ध की नीति में सर्वश्रेष्ठ कार्य किया है । मुझे प्रसन्नता है कि तुम मेरे सेनापति और मजमुआदार (अमात्य) हो । वह श्रेष्ठ उपहार कौन-सा है जो मेरे सामने अन्त में प्रस्तुत करना चाहते हो ?

आबाजी : श्रीमंत, इस आक्रमण में जो वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं वे सब आपने अपने सैनिकों और सेनापतियों में वितरित कर दी हैं । मैं 'भवानी की जय' घोष के साथ कह सकता हूँ कि आपके सदृश सेनापति किसी भी जाति के युद्ध-क्षेत्र में नहीं मिला । आपने अपने से अधिक सैनिकों का मान रखा है । स्वयं अच्छी-से-अच्छी वस्तु अपने पास न रखकर आपने अपने सैनिकों में बाँट दी हैं । मेरी प्रार्थना है कि वह अन्तिम उपहार आप अपनी सेवा ही में रहने दें ।

शिवाजी : वह कौन-सा उपहार है, आबाजी ? मुझे किसी उपहार की आवश्यकता नहीं है । मेरे लिए तो एकमात्र शिवा-भवानी की तलवार के अतिरिक्त और कोई उपहार ही नहीं । फिर भी हमें उस उपहार को देखने में प्रसन्नता होगी ।

आबाजी : (**द्वार की ओर देखकर**) श्रीमंत, कल्याण प्रदेश के सूबेदार अरब जाति के रईस मुल्ला अहमद की पुत्रवधू, गौहरबानू । (**शिवाजी गम्भीर हो जाते हैं**) अपनी सुन्दरता में अद्वितीय और अपने शील में अनुपम । आपकी सेवा करने के लिए मैंने उसे बन्दी किया है ।

[**शिवाजी की मुस्कराहट ओठों में डूब जाती है । वे अधिक गम्भीर हो जाते हैं ।**]

शिवाजी : मुझे इस बात की सूचना है । मैं अभी तुमसे यह सब सुनता । (**मोरोपन्त से**) मोरोपन्त ! क्या मेरे सेनापति मेरे युद्ध की नीति नहीं जानते ?

मोरोपन्त : आश्चर्य ? आबाजी, आबाजी ? [**प्रश्नसूचक मुद्रा**]

आबाजी : 'स्त्रियों और बच्चों को क़ैद मत करो', आपकी इस आज्ञा को मानकर मैंने अपने आक्रमण में किसी स्त्री और बच्चे को छुआ भी नहीं । मैं सूबेदार मुल्ला अहमद के सब परिवार को बन्दी कर सकता था, किन्तु आपकी आज्ञा को समर्थ गुरु रामदास की आज्ञा की भाँति सिर-माथे चढ़ाकर मैंने किसी को बन्दी नहीं किया । किन्तु गौहरबानू स्त्री नहीं है, श्रीमंत ! देवी है । वैसा रूप मनुष्य-जाति में नहीं होता, जैसे आकाश से एक तारिका टूट आई हो और चाँदनी का शरीर बनाकर गौहरबानू हो गई हो ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिवाजी : मोरोपन्त, यह वही गौहरबानू है जिसके सौंदर्य की कीर्ति समस्त दक्षिण में है ?

मोरोपन्त : जी हाँ, श्रीमंत ! मुल्ला अहमद की पुत्रवधू गौहरबानू ।

शिवाजी : सौन्दर्य एक दैवी वरदान है, उसके लिए शब्दों की आवश्यकता नहीं है। अच्छा, मैं भी उसे देखूंगा । **(उठकर)** गौहरबानू......!

आबाजी : **(प्रसन्नता से)** श्रीमंत, मैंने गौहरबानू की कटार भी हस्तगत कर सिंहासन के चरणों में रख दी हैं । **(कटार उठाते हैं)** जिससे वे आप पर किसी अवसर पर आक्रमण न कर सकें । कटार रहने से वे या तो आप पर आक्रमण कर सकती थीं या आत्महत्या ।

शिवाजी : अच्छा, यह गौहरबानू की कटार है । मैं समझा कि यह कक्ष की सुन्दरता के लिए सिंहासन के नीचे सजा दी गई है । **(हाथ में लेकर)** यह गौहरबानू की कटार है । वे मुझ पर आक्रमण कर सकती हैं या आत्महत्या......**(सोचकर)** किन्तु श्रीमती जीजाबाई की कृपा से दोनों बातें नहीं हो सकतीं । **(फिर सोचते हुए)** हाँ, गौहरबानू की कटार से यादव रामचन्द्र मारा गया है । लेकिन शिवाजी यादव रामचन्द्र नहीं है......**(सोचते हुए)** पर वह यादव रामचन्द्र भी हो सकता है । **(कटार सावधानी से देखते हैं)** मुल्ला अहमद की पुत्रवधू गौहरबानू । सौंदर्य और शक्ति एक साथ ही शरीर में एकत्रित है जैसे चन्द्र और सूर्य एक साथ मिल गये हों । अच्छा,......मैं गौहरबानू को देखूंगा ।

आबाजी : **(जोर से)** गौहरबानू श्रीमंत की सेवा में उपस्थित हो !

[सोना के साथ गौहरबानू का प्रवेश । शिवाजी सिंहासन से उतरकर एक ओर खड़े हो जाते हैं और सब चकित हो जाते हैं ।]

शिवाजी : **(गौहरबानू की तरफ देखते हुए विस्मित मुद्रा में)** गौहरबानू ! यह दैवी वरदान......**(आबाजी प्रसन्न होते हैं)** आबाजी ! तुम यहाँ से जाओ ।

आबाजी : **(झुककर)** जो आज्ञा, श्रीमंत ! **[अभिवादन कर प्रस्थान]**

शिवाजी : **(सोचते हुए)** शम्भूजी कावजी, तुम भी जाओ ।

शम्भूजी : **(झुककर)** जो आज्ञा, श्रीमंन ! **[अभिवादन कर प्रस्थान]**

शिवाजी : रघुनाथ बल्लाल, तुम्हारी भी आवश्यकता नहीं ।

रघुनाथ : **(झुककर)** जो आज्ञा, श्रीमंत ! **[अभिवादन कर प्रस्थान]**

शिवाजी : मीनाजी, तुम भी जा सकते हो ।

मीनाजी : **(झुककर)** जो आज्ञा, श्रीमंत ! **[अभिवादन कर प्रस्थान]**

शिवाजी : अच्छा मोरोपन्त पेशवा, तुम भी मुझे एकाकी रहने दो ।

मोरोपन्त : **(झुककर)** जो आज्ञा, श्रीमंत ! **[अभिवादन कर प्रस्थान]**

[शिवाजी नीचा मस्तक कर टहलने लगते हैं । टहलते हुए सौम्य-भाव से सोना से कहते हैं ।]

शिवाजी : सोना, संसार में बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं जो अच्छी होकर भी बुरी हैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रौर बुरी होकर भी श्रच्छी हैं। मैं श्रपने मराठा वीरों को इस श्राक्रमण के बहाने ये दोनों बातें समझाना चाहता हूँ। **(ठहरकर)** तुम्हारा भाई यादव रामचन्द्र लौटकर नहीं श्राया। यह बुरा हुश्रा। लेकिन श्रच्छा यह हुश्रा कि उसके प्राण एक स्त्री की रक्षा करने में गये। उसने मेरे श्रादर्शों की रक्षा की। यदि वह जीवित रहता तो मैं उसे एक हजारी बनाता। उसका लौटकर न श्राना यदि तुम्हारे लिए बुरा हुश्रा तो सारे महाराष्ट्र के लिए श्रच्छा हुश्रा। यह श्रादर्श प्रत्येक महाराष्ट्र वीर के लिए श्रावश्यक है। तुम तो एक हजारी नहीं बन सकती, फिर भी तुम्हें प्रति वर्ष एक हजार होंण मिलेंगे। एक बात श्रौर सोचो। एक हजार होंण तुम्हारे भाई का स्थान नहीं ले सकते। इसलिए भाई की पूर्ति भी होना है। मैं इसका शीघ्र ही निर्णय कर दूंगा, तुम बाहर थोड़ी देर प्रतीक्षा करो।

सोना : **(घुटने टेककर विह्वल स्वर में)** श्रीमंत ! [**आगे कुछ नहीं कह सकी।**]

शिवाजी : **(आश्वासन के स्वर में)** उठो, सोना ! मुझे तुम्हारे दुःख के इतिहास की एक-एक बात मालूम हो गई। महाराष्ट्र की वीर-कन्या हो। मेरे निर्णय की शीघ्र प्रतीक्षा करो। तुम बाहर जाश्रो।

सोना : **(सिर झुकाकर)** जैसी श्राज्ञा। [**प्रस्थान**]

[**श्रीमंत शिवाजी थोड़ी देर तक टहलते रहते हैं। कभी वे गौहर-बानू की श्रोर देख लेते हैं और कभी सिंहासन की ओर।**]

शिवाजी : **(टहलते हुए)** सुबह के वक्त जब कोई सितारा डूबता है तो श्रासमान बद-रंग हो जाता है। सितारा श्रासमान से नहीं कहता कि तू बदरंग हो जा। क्यों ? इसलिए कि सितारा शाम को फिर निकलकर कहता है कि मेरी दुनिया फिर वैसे ही भरी-पूरी है। श्रासमान श्रगर जरा-सी बात पर बदरंग हो जाय तो तारे का कुछ बिगड़ता नहीं है। गौहरबानू, श्रापका कुछ नहीं बिगड़ा है। फर्क़ सिर्फ इतना ही है कि श्राप श्रासमान के एक कोने में न होकर सिर्फ़ दूसरे कोने में हैं। श्रापकी रोशनी में कोई फर्क़ नहीं है श्रौर शिवाजी उस रोशनी से श्रपनी ज़िन्दगी में उजेला करना चाहता है। **(गौहर को देखते हैं। गौहर चुप है)** श्राप चुप हैं तो मालूम होता है जैसे सुबह नहीं होना चाहती। श्रापके बदन पर फूलों की माला किस कदर हँस रही है श्रौर श्राप चुप हैं। श्राप श्रपनी सारी हँसी फूलों को दे देंगी तो ये उसे सँभाल भी न सकेंगे, मुरझा जायेंगे। **(ठहरकर)** श्राप डरती हैं। जिस दिन हमारे मुल्क की श्रौरतें डरना छोड़ देंगी उसी दिन हमारे मुल्क की तरफ कोई देख भी नहीं सकेगा। **(गौहरबानू की कटार हाथ में लेते हुए)** श्रापकी कटार इस वक्त मेरे हाथों में है। मैं उसे श्रापको वापस देना चाहता हूँ। श्राप श्रपनी कटार हाथ में ले लें। मैं स्त्री के हाथ में शस्त्र देखकर प्रसन्न होता हूँ। श्रौर जब मैंने सुना कि श्राप इस कटार से शिवाजी पर वार करना चाहती हैं या खुदकुशी करना चाहती हैं तो मुझे खुशी श्रौर रंज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोनों एक साथ हुए। खुशी इस बात से कि आप में शिवाजी पर वार करने का हौसला है और रंज इस बात से कि आप ख़ुदकुशी कर सकती हैं। ख़ुदकुशी तो वे करते हैं जो ज़िन्दगी को पहिचानते नहीं। जो ज़िन्दगी के फूल को काँटा समझते हैं। आपसे मुझे ऐसी उम्मीद नहीं है। लीजिए अपनी कटार और मुझ पर वार कीजिए। (**गौहरबानू के समीप कटार रखते हैं। सिंहासन के समीप एक कटार और देखकर**) यह एक कटार और है? (**उठाकर गौहरबानू के समीप रखते हुए**) उसे भी लीजिए, जिससे आप यह कह सकें कि मैंने, शिवाजी ने, महाराष्ट्र की देवी जीजाबाई के पुत्र ने, आपके साथ कोई धोखा नहीं किया।

[शिवाजी सिंहासन से कटार उठाने के लिए झुकते हैं। इसी बीच गौहरबानू मुख का घूँघट उलटकर सामने देखती है। गौहरबानू के खुले हुए मुख पर दृष्टि पड़ते ही शिवाजी एक कदम पीछे हट जाते हैं।]

शिवाजी : (**प्रशंसा के स्वरों में**) गौहर......बानू......देवी!

बानू : (**उसी स्वरों में**) श्रीमंत......!

शिवाजी : देवी, मेरे बग़ैर कहे तुमने अपने मुख से परदा उठा दिया?

बानू : (**सँभलकर**) श्रीमंत, बहुत दिनों से वीर शिवाजी को देखने की हसरत थी। जिस शिवाजी ने अपनी हिम्मत से मुग़ल सल्तनत से लोहा लिया, जिसने बीजापुर को कभी चैन न लेने दिया, जिसने अपनी अकेली ताक़त से पुरन्दर के क़िले को जीता, जिसने चद्रराव मोरे से जावली छीन ली; जिसने रायगढ़ के क़िले पर अपना झण्डा फहराया, जिसने कोंकण के मैदान को सर किया उस वीर शिवाजी को देखने की हसरत किसके दिल में न होगी?

शिवाजी : (**मुस्कराकर**) देखा, देख लिया?

बानू : जी हाँ, देखा और......समझा कि शिवाजी और रुस्तम में कोई फ़र्क़ नहीं है।

शिवाजी : गौहरबानू, आपकी नज़र से शिवाजी अपनी फ़तह इतनी जल्दी नहीं चाहता और अपनी नज़र से वह इतनी आसानी से पराजित भी नहीं हो सकता। आपकी सुन्दरता दक्षिण के गोंधालियों की कहानी बन रही है। सरदारों की नज़रों में आपकी सुन्दरता उनके हिर्सोहवस की आख़िरी सीमा है। लेकिन शिवाजी इस सुन्दरता से हार नहीं मान सकता, यद्यपि वह इसकी पूजा करना चाहता है।

बानू : मेरी सुन्दरता की पूजा? मैं जानती हूँ सुन्दरता का परिणाम क्या होता है।

शिवाजी : सुन्दरता का परिणाम होता है—आँखों का अपने सच्चे रास्ते पर आना। लेकिन ये आँखें इतनी हलकी होती हैं कि जरा से इशारे पर बहक जाती हैं। शिवाजी अपनी आँखों का रास्ता पहिचानता है। आपकी इस सुन्दरता में मुझे अपनी माँ जीजाबाई का मुख दीख पड़ता है, अपनी माँ जीजाबाई की मुस्कान

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दीख पड़ती है। आपके बोलने में मुझे जीजाबाई का आशीर्वाद सुन पड़ता है।

बानू : **(विह्वल होकर, आगे बढ़कर)** श्रीमंत...... !

शिवाजी : मैं सिर्फ़ यही सोचता हूँ कि अगर मेरी माँ जीजाबाई आपकी तरह खूबसूरत होतीं तो मैं भी एक खूबसूरत सरदार होता।

बानू : **(आत्मविभोर होकर)** श्रीमन्त, शिवाजी !

शिवाजी : मुझे श्रीमंत न कहें, शिवा कहें, जिस नाम से श्रीमती जीजाबाई मुझे पुकारती हैं।

बानू : **(मुख का वस्त्र पूरी तरह खोलकर)** ओह ! श्रीमंत शिवा !

शिवाजी : आप कुछ देर के लिए मेरे यहाँ मेहमान हैं। फिर आपको इज्ज़त के साथ सूबेदार मुल्ला अहमद की खिदमत में भेज दिया जायगा।

बानू : **(अस्फुट स्वर में)** ओह ! मैंने गुनाह किया है। मैंने गुनाह किया है। श्रीमंत शिवाजी के बारे में ग़लत खयाल सोचकर मैंने गुनाह किया है। मुझे माफ़ करो। मैं माफ़ी चाहती हूँ।

शिवाजी : मेहमानों को यह कहना शोभा नहीं देता। आपने कोई क़ुसूर नहीं किया, कोई गुनाह नहीं किया। गुनाह तो मैंने किया कि पूजा के एक फूल को देवता के मस्तक से उठा लिया। मैं उस फूल को वहीं रखना चाहता हूँ। और अपने अपराध के लिए सिर झुकाता हूँ।

[शिवाजी अपना मस्तक झुकाते हैं।]

बानू : आपने अपराध कहाँ किया ? अपराध तो आपके सरदार ने किया।

शिवाजी : मेरे सरदार का अपराध मेरा ही अपराध है। मैं उससे मुक्त नहीं हो सकता, देवी ! इस जीत में मेरी हार छिपी हुई है।

बानू : मैंने ऐसा बहादुर सिर्फ़ शिवाजी ही को देखा जो जीतकर भी नहीं जीतना चाहता, जो बन्दी को अपमान के बदले सम्मान देता है। जो क़ैदी को अपना मेहमान मानता है...... ।

शिवाजी : लेकिन बग़ैर मेहमान की खातिर किए मैं उसे यों ही नहीं जाने दे सकता। **(अपने अंगरखे के नीचे से एक कागज निकालते हैं और उसे गौहर-बानू के सामने करते हुए)** आप जानती हैं यह क्या है ?

[गौहर कुछ नहीं बोलती। अवाक् होकर रह जाती है।]

बानू : **(देखकर)** यह किसकी तसवीर है ?

शिवाजी : यह मैं आपको भेंट करता हूँ।

[शिवाजी गौहर के हाथ में वह कागज भेंट करते हैं।]

शिवाजी : महारानी जीजाबाई की। मेरी माँ की तसवीर है। मेरी ज़िन्दगी में मुझे यह सबसे प्यारी है। इस तसवीर की ताक़त से ही मैंने इतने क़िले फतह किये हैं। मेरी ताक़त कुछ भी नहीं है। मैंने आपके सामने यह शीशा पेश किया है जिसमें आप इतनी खूबसूरत होकर अपना अक्स देख सकें। मेरे सामने जीजाबाई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और गौहरबानू में कोई फर्क़ नहीं है।

बानू : **(तसवीर अपने सीने से लगाकर)** शिवाजी ! मैंने जैसा सुना था वैसा ही पाया।

शिवाजी : माँ, आप इस सिंहासन पर बैठें। **[सिंहासन की ओर संकेत करते हैं।]**

बानू : मैं इस आसन के लायक नहीं हूँ।

शिवाजी : दरअसल आप इस आसन के लायक नहीं हैं। आपके लिए तो इससे भी अच्छा आसन चाहिए। लेकिन कल्याण के खीमे में कोई खास इन्तज़ाम न होने के कारण आप शिवाजी को माफ़ करें। बैठिए, आप इस सिंहासन पर बैठिए। **(शिवाजी गौहरबानू को सिंहासन पर बिठलाते हैं)** आप देवी हैं। हमारे यहाँ देवी के हाथ में शस्त्र होता है। आप भी अपने हाथ में कटार लें। लीजिए अपनी कटार।

[गौहर कटार ले लेती है।]

शिवाजी : **(घुटने टेककर प्रणाम करते हुए)** जीजाबाई के सदृश अपनी माँ को शिवा प्रणाम करता है।

बानू : श्रीमंत शिवाजी का भाग्य हमेशा ऊँचा रहे। लेकिन शिवाजी उठो, मुझे इतने महापुरुष को झुकते देखकर शरम मालूम हो रही है ! मुझे......

शिवाजी : माँ ! आप अपने गौरव का अनुभव कीजिए। सेनापति की ग़लती के लिए मैं आपसे माफ़ी चाहता हूँ। **(पुकारकर)** आबाजी !

[आबाजी का प्रवेश। वह गौहरबानू को सिंहासन पर देखकर प्रसन्न हो जाता है।]

शिवाजी : आबाजी तुमने जीजाबाई को देखा है ?

आबाजी : श्रीमंत, मैंने अनेक बार जननी के दर्शन किये हैं।

शिवाजी : एक बार दर्शन और करो !

[आबाजी इधर-उधर देखते हैं, किन्तु जीजाबाई नहीं दीखतीं। वे शून्य दृष्टि से शिवाजी की ओर देखते हैं।]

शिवाजी : आसन पर शिवाजी की माता को देखकर भी नहीं पहिचान सकते ?

[आबाजी डरकर घुटने टेककर अभिवादन करते हैं।]

शिवाजी : **(गौहर से)** माँ ! सेनापति आबाजी को क्षमा कीजिए।

बानू : मैंने माफ किया। तुम हमेशा फ़तह हासिल करो। लेकिन **(रुककर)** कुछ सोच-समझकर।

शिवाजी : **(मुस्कराकर)** हाँ, सोच-समझकर, आबाजी ! आबाजी, अन्य सेनापतियों को स्वयं जाकर सूचना दो कि वे इसी समय आकर शिवाजी की माता गौहरबानू को प्रणाम करें। सोना को भी सूचना दो कि वह मेरे समीप उपस्थित हो।

आबाजी : **(सिर झुकाकर)** जो आज्ञा ! **[प्रस्थान]**

शिवाजी : देवी ! सोना का भाई यादव रामचन्द्र आपके हाथ से मारा गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बानू : शिवाजी, मुझे इस बात का सख्त अफ़सोस है कि ग़लती से मेरी छुरी उसकी तरफ़ उठ गई। वह बेचारा खुद नहीं जानता था कि मैं उसके सीने में कटार भोंक दूंगी। इसी वजह से वह बिलकुल ही निश्चित था। वह तो मुझे बचाने आया था। उसे अपनी तरफ़ आते देखकर मैं समझी कि वह भी मुझे क़ैद करने की गरज़ से आ रहा है। भाई बहिन की रक्षा करने आ रहा था और बहिन ने भाई के सीने में खंजर भोंक दिया। मुझे आप सज़ा दीजिए। कहिए, मैं इससे कैसे सुबुकदोश हो सकती हूँ ?

शिवाजी : आप चिन्ता न करें। मैं इसका भी इन्तज़ाम कर दूंगा।

[आबाजी सोनदेव के साथ मोरोपन्त, रघुनाथ बल्लाल, शम्भूजी कावजी, मीनाजी और सोना का प्रवेश। सब यथास्थान खड़े होकर शिवाजी को अभिवादन करते हैं।]

शिवाजी : **(मोरोपन्त से)** मोरोपन्त, मेरी माँ को प्रणाम करो।

[मोरोपन्त घुटने टेककर प्रणाम करते हैं।]

शिवाजी : **(गौहरबानू से)** देवी ! ये मेरे पेशवा मोरोपन्त हैं। **(और क्रमशः सेनापतियों को संकेत करते हुए)** ये रघुनाथ बल्लाल, जावली के गुरूनवीस **(बल्लाल अभिवादन करते हैं)**। ये शम्भूजी कावजी, प्रतापगढ़ के दबीर **(शम्भूजी अभिवादन करते हैं)**। ये मीनाजी, आबाजी के सहायक सेनापति **(मीनाजी अभिवादन करते हैं)**। इन सब को आशीर्वाद दीजिये।

बानू : **(हाथ उठाकर)** तुम सब फ़तह हासिल करो।

शिवाजी : **(आबाजी की ओर संकेत कर)** और इन्हें तो आप जानती ही हैं।

बानू : मैंने इनका क़ुसूर माफ़ किया।

शिवाजी : आबाजी ! तुम जानते हो कि सेना के आक्रमण में मेरा आदेश है कि शत्रुओं के देश की स्त्रियों का किसी तरह भी अपमान नहीं होना चाहिए—उन्हें माँ और बहिनों के समान आदरणीय और पूज्य समझकर उनकी इज्ज़त करनी चाहिए--बच्चों को कभी उनके माता-पिता से जुदा मत करो—गाय मत पकड़ो और ब्राह्मणों के ऊपर अत्याचार मत करो—आठ महीने बाद लौटकर छावनी में चले आओ—क़ुरान की उतनी ही इज्ज़त होनी चाहिए जितनी भवानी की पूजा की या समर्थ गुरु रामदास की वाणी की—मस्जिद का दरवाज़ा उतना ही पवित्र है जितना तुम्हारे मन्दिर का कलश। शिवा के लिए इस्लाम धर्म उतना ही पूज्य है जितना हिन्दू धर्म। जमीन पर गिरा हुआ क़ुरान का एक-एक पन्ना शिवा ने अपनी तलवार से उठाकर मौलवियों के सिर पर रख दिया है। मेरे लिए धर्म के ख्याल से हिन्दू और मुसलमान में कोई फ़र्क़ नहीं है। मैंने हमेशा इस बात का ख्याल रखा है कि पहले मेरे कलेजे में पड़ेगी बाद को मस्जिद की दीवाल में। फिर मेरे सेनापति होकर तुमने मेरे सिद्धान्तों के विरुद्ध ऐसा काम क्यों किया ? तुमने मुझे सदाचार की कसौटी पर कसना चाहा, मेरी परीक्षा

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ली या अपनी स्वार्थ-साधना का रास्ता तैयार करना चाहा ? तुमने समझा होगा कि गौहरबानू के सौन्दर्य के सामने शिवाजी का सिद्धान्त पानी हो जायगा। किन्तु भवानी का भक्त शिवाजी भवानी का भक्त होने की योग्यता रखता है। जीजाबाई का पुत्र शिवाजी शत्रु की स्त्री में भी जीजाबाई की तसवीर देखता है। बोलो, इस अपराध के लिए तुम्हें क्या दण्ड मिलना चाहिए ? यदि यह अपराध किसी साधारण सिपाही द्वारा होता तो उसे प्राण-दण्ड दिया जाता, लेकिन तुम मेरे सेनापति हो। और तुम्हें मैंने अभी अपना मजमुआदार नियुक्त किया है। बोलो, स्वयं तुम पसन्द करो कि तुम्हें किस प्रकार का दण्ड दिया जाय।

आबाजी : श्रीमान, मुझे भी प्राण-दण्ड दीजिये।

शिवाजी : नहीं, तुम्हें प्राण-दण्ड नहीं मिलेगा। शिवाजी उपकारों को स्मरण रखता है। वह एक भूल पर अपने सेवक की सच्ची सेवाओं को तुच्छ नहीं मान सकता। फिर भी तुम्हें एक पवित्र दण्ड दूंगा।

आबाजी : आज्ञा कीजिए, श्रीमंत !

शिवाजी : (**सोना की ओर संकेत कर**) सोना को तुम जानते हो ? यह बेचारी बहिन है जिसका भाई यादव रामचन्द्र लौटकर नहीं आया। यादव रामचन्द्र शिवा के आदेशों को स्मरण रखकर गौहरबानू की रक्षा में अपने प्राण खो बैठा है। वह स्वर्गीय बन्धु शिवा का प्यारा सैनिक था। यदि वह जीवित रहता तो उसे एक हजारी पद दिया जाता। किन्तु वह अब इस संसार में नहीं है। इसलिए सोना को प्रतिवर्ष एक हजार होंण राज्य की ओर से प्रदान किए जावेंगे।

मोरोपन्त : बहुत सुन्दर निर्णय किया श्रीमंत ने।

शिवाजी : किन्तु इस वार्षिक पुरस्कार से सोना के भाई की पूर्ति नहीं हो जाती। इसलिए आबाजी, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम जीवन-पर्यन्त सोना को अपनी बहिन मानकर उसका उत्तरदायित्व संभालोगे।

आबाजी : श्रीमंत शिवाजी महाराज की जय ! (**सोना से**) बहिन सोना ! तुम आज से मेरी और काशी की बहिन हो। (**शिवाजी से**) किन्तु यह दण्ड बहुत छोटा है, श्रीमंत !

शिवाजी : इससे भी अधिक दण्ड पाने की याचना देवी गौहरबानू से करो।

बानू : मैंने तो तुम्हें माफ़ कर ही दिया, आबाजी ! लेकिन श्रीमंत के कहने से मैं भी तुम्हें सज़ा दूँगी।

आबाजी : आज्ञा कीजिए।

बानू : वह यह कि तुम काशीबाई के साथ-ही-साथ सोनाबाई की शादी भी बराबर की हैसियत से करोगे। दोनों की शादी भी एक साथ होनी चाहिए।

आबाजी : जो आज्ञा। यह तो दण्ड नहीं मेरी प्रसन्नता का कारण है। मैं सोनाबाई का विवाह काशीबाई के विवाह के साथ ही करूँगा और अधिक समारोह से। जीवन-भर बहिन रहने वाली सोना के लिए जो कुछ भी मैं कर सकूँगा,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करूँगा।

शिवाजी : आबाजी, अब मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम्हें अभी एक कार्य और करना है।

आबाजी : आज्ञा, श्रीमंत ! भविष्य में मुझसे इस प्रकार का कोई अपराध न होगा इस बात का मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ। आगे जो आप आज्ञा करें।

शिवाजी : देवी गौहरबानू ने आज रत्नों से तो शृङ्गार नहीं किया किन्तु जितनी फूलमालाओं से शृंगार किया है उतने हीरे और मोतियों की मालाओं से उनका शृंगार किया जाय और तुम सूबेदार मुल्ला अहमद की सेवा में उन्हें सम्मान सहित पहुँचा दो।

आबाजी : (**सिर झुकाकर**) जो आज्ञा। ऐसा ही होगा।

शिवाजी : किन्तु इसके पूर्व कि देवी गौहरबानू यहाँ से जावें, वे मुझे क्या उपहार देंगी ? [**गौहरबानू की ओर दृष्टि डालते हैं।**]

बानू : (**संकुचित होकर**) जो आप कहें।

शिवाजी : (**मुस्कराकर**) माँ की एक हँसी।

बानू : (**हँसकर**) लीजिए, मैंने हँस दिया। लेकिन मैं अपनी तरफ से एक बात करूँगी।

शिवाजी : प्रसन्नता से।

बानू : महाराष्ट्र माताओं और बहिनों की तरह मैं आपका तिलक करूँगी।

शिवाजी : यह मेरा सौभाग्य है। (**सोना से**) सोना ! तिलक-सामग्री शीघ्र लाओ।

सोना : जो आज्ञा ! [**प्रस्थान**]

शिवाजी : देवी, शिवा ने आज तक दुश्मन की स्त्री को अपनी माँ और बहिन की तरह सम्मानित किया है। उसकी यह बात उसकी आख़िरी दम तक पूरी होगी। माँ जीजाबाई ने जो बात मेरे लिए आज्ञा के रूप में कह दी है वह सूरज की किरण की तरह कभी धुँधली नहीं हो सकती। आप जब-जब यहाँ आयें आपके लिए यह आसन...(**आसन पर दृष्टि डालते समय काशीबाई द्वारा तोड़ी हुई माला दीख पड़ती है**) यह माला (**हाथ में उठा लेते हैं**) अभी तक आपके हृदय की तरह ही टूटी है। इसे जुड़ जाना चाहिये। (**माला में गाँठ देकर उसे झुलाते हैं**) किन्तु इसमें झुमका नहीं है। (**शिवाजी अपने कंठ में पड़े हुए लाल रत्नों का हार लेकर झुमका के स्थान पर जोड़ते हैं**) यह प्रेम और अनुराग की सूचना देनेवाले लाल रत्नों से जुड़ी हुई माला शिवाजी की श्रद्धा-भेंट समझें।

[**माला गौहरबानू के गले में पहिनाते हैं, उसी समय काशी, सोना और गंगा तिलक-सामग्री लेकर प्रवेश करती हैं।**]

काशी : (**गौहर के गले में माला देखकर**) श्रीमंत, यह माला मैंने गंगा से गुँथवा-कर गौहरबानू के गले के लिए तैयार कराई थी, सिर्फ़ इसमें झुमका नहीं था। आज आपके हाथों से गौहरबानू के गले में माला पड़कर धन्य हो गई।

शिवाजी : ठीक है, काशी ! (**सोना से**) सोना ! आज से यादव रामचन्द्र के स्थान पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आबाजी सोनदेव तुम्हारे भाई हुए। तुम्हारे समस्त जीवन का उत्तरदायित्व अब से इन पर होगा। काशी ! तुम अपनी बहिन से मिलीं ?

काशी : ओह, सोना ! मेरी बहिन। [**आबाजी के हाथों में तिलक-सामग्री देकर सोना से मिलती है।**]

आबाजी : बहिन सोना ! श्रीमंत की आज्ञा से मैं तुम्हारे बिलकुल निकट आ गया हूँ। यादव के स्थान पर अब तुम मुझे समझो।

सोना : (**शिवाजी के सामने हाथ जोड़कर**) मैं कृतार्थ हुई।

शिवाजी : और मैं प्रसन्न हुआ।

बानू : अब मेरी प्रसन्नता का अवसर आने दीजिए।

[**गौहरबानू सिंहासन से उतरकर अपने हाथ में तिलक-सामग्री लेती है और श्रीमंत शिवाजी के सामने खड़ी होती है।**]

बानू : सिर झुकाइए, मैं आपका मंगल-तिलक करूँ ?

शिवाजी : आपके सामने मैं हमेशा सिर झुकाने में ही अपनी विजय समझूँगा।

[**मन्द हास्य। श्रीमंत शिवाजी थोड़ा सिर झुकाते हैं और गौहरबानू उन्हें मंगल-तिलक करती है।**]

बानू : श्रीमन्त भोंसले शिवाजी महाराज की जय !

सब सामन्त : श्रीमन्त भोंसले शिवाजी महाराज की जय ! जीजाबाई की जय ! गौहरबानू की जय !

सोना : (**थाली गौहर के हाथों से लेकर थाल में सजे हुए फूल श्रीमंत शिवाजी पर उछालकर**) श्री शिवा-भवानी की जय !

सब : श्री शिवा-भावनी की जय !

[**इस समय श्रीमंत शिवाजी के मुख पर अलौकिक ज्योति-समूह है, जैसे उनके मुख पर शिवा-भवानी का वरदान आलोकित हो उठा है।**]

[**धीरे-धीरे परदा गिरता है।**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 20 :

ध्रुव तारिका

●

पात्र-परिचय

राठौर दुर्गादास—मारवाड़ के यशस्वी सेनापति
(आयु 47 वर्ष)
अजीतसिंह—मारवाड़ के उत्तराधिकारी राजकुमार
(आयु 18 वर्ष)
सफ़ीयत-उन्-निसा—शाहज़ादा अकबर की पुत्री
(आयु 16 वर्ष)
आयशा—सफ़ीयत-उन्-निसा की परिचारिका
(आयु 16 वर्ष)

●

काल—1679 ई०
स्थान—ध्रुवनगर
समय—रात के साढ़े तीन बजे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्रुव-तारिका

[*स्थिति*—लूनी नदी के किनारे ध्रुवनगर के दुर्ग का एक सुरम्य कक्ष। चंद्रिका के प्रकाश में लूनी नदी के तट पर वह प्रकाशित कक्ष दूर से इस प्रकार ज्ञात होता है जैसे आकाश-गंगा के किनारे एक उज्ज्वल नक्षत्र हो। यह कक्ष राठौर वीर दुर्गादास के अधिकार में है। दुर्गादास ने इस दुर्ग में औरंगज़ेब के पुत्र अकबर की स्त्री और पुत्री के संरक्षण की व्यवस्था कर दी है। शाहज़ादे अकबर ने दुर्गादास से मिलकर औरंगज़ेब के विरुद्ध झंडा उठाकर नवीन राज्य की कल्पना की थी, किन्तु औरंगज़ेब की कुटिल नीति के कारण वह राजपूतों का विश्वासपात्र न बन सका। फिर भी दुर्गादास को अपनी आत्मीयता का परिचय देकर वह दक्षिण में संभाजी के पास बहुत दिनों तक रहा। औरंगज़ेब से उसे भय था। वह जानता था कि औरंगज़ेब के हाथों में पड़कर उसकी बड़ी दुर्दशा होगी। अतः उसकी पहुँच से बाहर होने के लिए वह दुर्गादास की सम्मति से सितंबर सन् 1686 ई० में एक जहाज़ लेकर ईरान चला गया और अपना परिवार दुर्गादास को सौंप गया। दुर्गादास ने अकबर की स्त्री और पुत्री के रहने की व्यवस्था इसी ध्रुवनगर के दुर्ग में मदार योगिराज के निरीक्षण में कर दी है।

अकबर की पुत्री का नाम सफ़ीयत-उन्-निसा है—अत्यन्त सुन्दर और सुकुमार। इस समय वह पूर्ण षोडशी है। सोलह वसंतों का प्रतिनिधित्व करने वाले सोलह कुसुम उसकी कुंचित केश-राशि में सजे हुए है। उसका शरीर इतना कोमल है जैसे उन कुसुमों की सुगंधि से ही निर्मित है; विशाल नेत्र, जिनकी तरुण मादकता में सौन्दर्य अरुण हो गया है; सरलता के साथ चंचलता की साकार प्रतिमा में जैसे प्रेम के प्राण स्पंदित हो रहे हैं। वह नीली रेशमी साड़ी और फूलों के आभूषण धारण किये हुए है—माथे में अरुण बिन्दी और सीमन्त में मोतियों की रेखा; कटि में किंकिणी और पैरों में नूपुर।

इस समय सफ़ीयत अपने कक्ष में बैठी हुई तुलसी की पूजा कर रही है। कक्ष में सजावट अपनी चरम सीमा पर है। ज्ञात होता है जैसे यौवन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने सौन्दर्य में रंग भर दिया है। विशाल कमरे के कोने में एक कलामय श्वेत वेदिका में तुलसी का हरा-भरा पौधा लगा हुआ है जिसके चारों ओर फूलों की मालाओं का बन्दनवार है। कमरे के बीचों-बीच मख़मली क़ालीन बिछे हुए हैं और दाहिने-बायें दरवाज़े पर रेशमी परदे हैं, जिन पर नाचते हुए मयूर की बड़ी आकृति काढ़ी गई है। कमरे के बीच में पीछे पश्चिम की ओर एक बड़ी खिड़की है जिससे लूनी नदी की उज्ज्वल धारा दिखलाई दे रही है। कमरे में दोनों ओर दो बड़े दर्पण लगे हुए हैं। दर्पण के पार्श्व में कुछ तैल-चित्र हैं जिनमें राठौर दुर्गादास, अकबर, तेजकुँअरि (सफ़ीयत की माँ) और सफ़ीयत की आकृति अंकित है। सफ़ीयत का आकृति-चित्र सबसे बड़ा है। उस चित्र के समीप ही एक सद्यः-प्रस्फुटित फूलों की सुगंधित माला है।

पूजा करने के अनन्तर वह हाथ जोड़कर आँखें बन्द कर लेती है। समीप ही उसकी सहचरी आयशा बैठी है। वह भी लगभग सफ़ीयत की अवस्था की है; एक साधारण साड़ी पहने है जिसमें नीली लहरों की रेखायें बनी हैं। उसके हाथों में एक स्वर्ण-थाल है जिसमें चन्दन, अक्षत, पुष्प, माला, सिन्दूर, आरती और घंटिका सजी हुई हैं। सफ़ीयत एक हाथ से घंटिका बजाती हुई श्रद्धा भाव से आरती करती है, फिर हाथ जोड़कर प्रणाम करने के अनन्तर आयशा से कहती है।]

सफ़ीयत० : आयशा ! तुलसी की पूजा करने में मुझे बहुत आनन्द आता है। तुझे भी आता है न ?

आयशा : जी, मुझे भी आता है।

सफ़ीयत० : मुसलमान होने से क्या हुआ, दिल तो नहीं बदल जाता।

आयशा : वह कैसे बदल सकता है, बानू !

सफ़ीयत० : और आयशा ! जब मैं तुलसी की पूजा करती हूँ तो मुझे मालूम होता है कि तुलसी मुझ पर प्रसन्न हैं। मंजरियों में रोमांच की तरह उठे हुए छोटे-छोटे फूल जैसे मुझे आशीर्वाद देने के लिए डंठल से सिर निकाल कर बाहर झुक आये हैं। तूने इन्हें देखा ?

आयशा : देखा, बानू !

सफ़ीयत० : आयशा ! कोई देखे कि सफ़ीयत्-उन-निसा बानू तुलसी की पूजा करती है, तो क्या कहे ? [**दबी हुई हँसी।**]

आयशा : कहेगा, बानू, कि शाहंशाह आलमगीर औरंगज़ेब की पोती और शाहज़ादा अकबर की लड़की सफ़ीयत-उन्-निसा बानू इस्लाम और हिन्दू धर्म में कोई भेद नहीं मानती और उसके सामने दुनिया के दो बड़े मज़हब अपना भेद भूलकर दो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सितारों की तरह एक दूसरे को देख रहे हैं।

सफ़ीयत० : दो सितारों की तरह ?

आयशा : और क्या। दोनों इतने पास हैं कि दोनों की किरनें आपस में मिल रही हैं।

सफ़ीयत० : या दो फूल हैं जो इतने पास खिले हुए हैं कि दोनों की खुशबू एक दूसरे को मस्त बना रही है ?

आयशा : यह और भी सही है, बानू ! लेकिन......

सफ़ीयत० : लेकिन क्या ?

आयशा : लेकिन...लेकिन...बानू...(**रुक-रुककर**) आलमगीर औरंगज़ेब के ख़ानदान में......

सफ़ीयत० : (**बीच ही में**) आलमगीर औरंगज़ेब का ख़ानदान क्यों कहती है, जलालुद्दीन अकबर का ख़ानदान कह। शाहंशाह अकबर ने पहिचाना था कि इंसान धर्म से ऊँचा है। हिन्दू और मुसलमान इंसानियत के लिबास हैं, इंसानियत के टुकड़े नहीं।

आयशा : बात तो आपकी बहुत अच्छी मालूम देती है।

सफ़ीयत० : आयशा ! अगर पिताजी अकबर जान पाते कि सफ़ीयत हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा करती है तो वे शायद मुझे अपने साथ ईरान ले जाते।

आयशा : क्यों ले जाते, बानू ? आपकी माँ भी पूजा करती हैं। उन्हें तो वे अपने साथ ले नहीं गये। जल्दी में वे कुछ कर ही नहीं सके। लेकिन बानू ! वे ईरान क्यों चले गये ?

सफ़ीयत० : अब मैं क्या बतलाऊँ कि वे ईरान क्यों चले गये। उस वक्त तो मैं बहुत छोटी थी। कुछ समझ नहीं सकती थी। लेकिन योगिराज जी, जो मुझे पढ़ाते हैं न, उन्होंने मुझे बहुत कुछ बतला दिया है।

आयशा : मैं वह बात सुन सकती हूँ, बानू ?

सफ़ीयत० : तू जानती तो सब कुछ है, मुझ से कहलाना चाहती है।

आयशा : नहीं, बानू ! मैं सचमुच कुछ नहीं जानती। मैं तो पिछले साल ही सेनापति दुर्गादास के हुक्म से यहाँ आई। मैं क्या जानूँ ? फिर मुझे बतलायेगा ही कौन ? और...फिर...एक बाँदी की हस्ती ही क्या ?

सफ़ीयत० : आयशा ! तू मेरे सामने बनने की आदत छोड़ दे। तू मेरी बाँदी है। मैं तो तुझे अपनी सखी समझती हूँ और तू बाँदी बनी चली जा रही है।

आयशा : यह मेरी ख़ुशक़िस्मती है, बानू ! ऐसी ख़ुशक़िस्मती किसे नसीब होती है ?

सफ़ीयत० : (**हँसकर**) तुझे। अच्छा सुन। पिताजी अकबर सच्चे अर्थ में जलालुद्दीन अकबर के ख़ानदान के हैं। उन्होंने नाडोल की लड़ाई में देख लिया कि राजपूत कितने सच्चे हैं, कितने बहादुर हैं, अपने देश की रक्षा के लिए सिर अपनी हथेली पर लेकर लड़ना जानते हैं। इनके सामने मुग़ल सिपाही क्या लड़ेंगे ? मुग़ल सिपाहियों के पीछे शाहंशाह आलमगीर की ताक़त है, शाही ख़ज़ाना है, लेकिन

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेचारे राजपूतों के पीछे क्या है ? वे हैं कितने ? मुट्ठी भर ! लेकिन उनमें सचाई है, आत्म-गौरव है, देश की रक्षा के लिए बड़े-से-बड़ा बलिदान करने की शक्ति है। अगर आज राजपूत मुग़ल सल्तनत के साथ होते तो दुनिया की कोई ताक़त मुग़ल सल्तनत को हिला भी न सकती। लेकिन आलमगीर ने इन सच्चे हिन्दुओं पर अत्याचार करके उन्हें अपना शत्रु बना लिया। मेरे पिता शहज़ादे अकबर ने इस सचाई को समझा और उन्होंने अपने पिता आलमगीर को सच्चे रास्ते पर लाने के लिए समझाया। जब वे नहीं समझे तो तहव्वर खाँ को भेजकर चाचा दुर्गादास से संधि कर ली।

आयशा : तो संधि से क्या बुराई हुई ?

सफ़ीयत० : चाचा दुर्गादास ने शहज़ादे अकबर को ही दिल्ली का बादशाह घोषित किया। लेकिन आलमगीर ने चाचा दुर्गादास और मेरे पिताजी में भेद की कपट-नीति से उन्हें अजमेर की लड़ाई में हरा दिया।

आयशा : यह तो बुरा हुआ।

सफ़ीयत० : पिताजी हम लोगों को लेकर जंगल-जंगल भटकते रहे। वे समझते थे कि अगर आलमगीर के हाथों में पड़ गये तो पूरी दुर्गति होगी, इसलिए जल्दी में मुझे और मेरी माँ को चाचा दुर्गादास के पास छोड़कर जहाज़ से ईरान चले गये।

आयशा : तो आप लोगों को अपने साथ क्यों नहीं ले गये ?

सफ़ीयत० : (हँसकर) अब यह मैं क्या जानूँ। लेकिन मैं तो समझती हूँ कि अगर ले जाते तो चाचा दुर्गादास का प्रेम—यह संस्कृत और हिन्दी का ज्ञान, यह दर्शन, मुझे कैसे मिलता ?

आयशा : यह तो ठीक है, लेकिन अगर शहज़ादा अकबर यहाँ रहते तो आपको क़ुरान तो ज़रूर ही पढ़ाते।

सफ़ीयत० : तो क्या चाचा दुर्गादास ने मुझे क़ुरान पढ़ने से रोक दिया है ? वे तो यही चाहते हैं कि मैं हदीस और क़ुरान पढ़ूँ, लेकिन मेरा मन ही नहीं लगता क़ुरान पढ़ने में। मैं तो संस्कृत पढ़ती हूँ और देवी-देवताओं को मानती हूँ। लेकिन यह सच है कि अगर मैं शहंशाह आलमगीर के पास रहती तो वे अपनी पोती को क़ुरान ज़रूर पढ़ाते और......

आयशा : और......और क्या ?

सफ़ीयत० : (हँसकर) और शायद मुझसे टोपियाँ सिलवाते। सुनती हूँ, आलमगीर शरीयत के ख्याल से टोपियाँ सिया करते हैं, और इस तरह सच्चे मुसलमान बन कर अपनी रोज़ी कमाते हैं। फिर क्या वे मुझसे भी टोपियाँ न सिलवाते ?

आयशा : (हँसकर) बानू ! अगर आलमगीर को मालूम हो कि आप उनके बारे में ऐसी हँसी की बात करती हैं तो वे शहज़ादे से ज्यादा आपको सज़ा देते।

सफ़ीयत० : मुझे सज़ा देते ? तो फिर मुग़लों के इतिहास में यह भी लिखा जाता कि शहंशाह अपनी पोती को महज़ हँसने पर सज़ा देते हैं। लेकिन...खैर...मुझे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना। मैं तो जैसे चाहूँगी वैसे रहूँगी। क़ुरान की तबीयत होगी तो क़ुरान पढ़ूँगी, नहीं तो भगवद्गीता और रामायण तो मेरी आत्मा के निकट हैं ही। तुर्की और फ़ारसी की जगह संस्कृत पढ़ती हूँ और पढ़ूँगी।

आयशा : आप ज़रूर पढ़ती जाइये। आपके साथ रहते-रहते मैं संस्कृत के बहुत से शब्द बोलने और समझने लगी हूँ। लेकिन बानू, वजह क्या है कि आपका मन क़ुरान पढ़ने में नहीं लगता ?

सफ़ीयत॰ : इतनी-सी बात नहीं समझती ? मेरी माँ को जानती है, वे कौन हैं ?

आयशा : कोटा के हाड़ावत वंश की राजकुमारी।

सफ़ीयत॰ : इसीलिए मेरा रक्त मुझे हिन्दू देवी-देवताओं और तुलसी के पास खींच लाता है। (**रुककर**) ओह ! मैंने तुलसी की आरती तो की ही नहीं, तेरी बातों में ऐसी उलझ गई।

आयशा : माफ़ कीजिए, बानू ! आरती तो मैं इसी थाली में सजाकर लाई थी।... यह है...[**आरती-पात्र सामने बढ़ाती है।**]

सफ़ीयत॰ : यह तो बुझने जा रही है। इतनी जल्दी बुझेगी यह ! (**आरती से**) अरे ! अभी तुझे वहुत देर तक जलना है, मेरी ही तरह। ले, अपना सिर उठा। (**बत्ती को लकड़ी की सींक से ऊपर उठाती है**) हाँ ! इसी तरह जल। (**आयशा से**) आयशा ! यह आरती कितनी पवित्र वस्तु है, लेकिन इसे भी जलना पड़ता है। क्यों आयशा, क्या पवित्र वस्तुएँ जलने के लिए ही होती हैं ?

आयशा : यह बात तो आप ही समझ सकती हैं, बानू ! इतनी ऊँची बात मैं कैसे समझ सकती हूँ ?

सफ़ीयत॰ : अच्छा, वतला, तू कभी जली है ?

आयशा : चिराग़ गुल करते वक़्त कई बार जली हूँ।

सफ़ीयत॰ : छिः ! तू बात नहीं समझती। जाने दे। मैं तो तुलसी को ही अपना सब कुछ मानती हूँ। उसी का ध्यान रखती हूँ।

आयशा : और बानू ! तुलसी के सिवाय......

सफ़ीयत॰ : तुलसी के सिवाय ? तुलसी के सिवाय क्या......? (**आयशा मौन रहती है**) बोलती क्यों नहीं ? तुलसी के सिवाय मैं किसका ध्यान करती हूँ ?

आयशा : (**हिचकते हुए**)......कुमार अजीत...

सफ़ीयत॰ : (**बीच ही में तीव्र स्वर से**) आयशा......

आयशा : (**घबराकर**) जी, बानू !

सफ़ीयत॰ : क्या कहा ? कुमार अजीतसिंह ?......तूने यह कैसे समझा कि मैं कुमार अजीतसिंह का ध्यान करती हूँ ?

आयशा : (**घबराकर**) तो...तो ध्यान करना बुरी बात तो नहीं है...बानू ! मन को अच्छे लगने वाले आदमियों...यानी...चीज़ों का सभी ध्यान करते हैं। (**अटकते हुए शब्दों में**) हाँ, ध्यान ही तो करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सफ़ीयत० : तेरे मन को अच्छी लगने वाली चीज़ें कौन-सी हैं ? (**आयशा कुछ नहीं बोलती**) मैंने पूछा तेरे मन को अच्छी लगने वाली चीज़ें कौन-सी हैं, जिनका तू ध्यान करती है ?

आयशा : मैं किसी का ध्यान नहीं करती।

सफ़ीयत० : अपनी आँखों से कभी पूछा है तूने ?

आयशा : अभी तक नहीं पूछा, बानू !

सफ़ीयत० : क्यों पूछेगी, वे स्वयं तुझसे कह देंगी। तो तू अभी किसी का ध्यान नहीं करती ?

आयशा : आप कहती हैं, तो स्वीकार करती हूँ।

सफ़ीयत० : मेरे सामने तो सच बात स्वीकार करनी ही होगी। अब बतला, किसका ध्यान करती है ?

आयशा : आपका।

सफ़ीयत० : मेरा ? (**मुस्कराकर**) मेरा ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है।...... यह सौभाग्य किसी और के लिए रहने दे। मैं पूछना चाहती थी...(**रुककर**) कुछ नहीं पूछना चाहती।

आयशा : अगर आपको कष्ट हुआ, तो मुझे माफ़ करें। मैं समझी नहीं।

सफ़ीयत० : क्या नहीं समझी ?

आयशा : (**भय और संकोच-मिश्रित**) मैं क्या बतलाऊँ ?

सफ़ीयत० : तो इस तरह पहेलियाँ क्यों बुझा रही है ?

आयशा : मैं पहेलियाँ क्यों बुझाऊँगी, बानू ! मुमकिन है आप उनका ध्यान न करती हों, लेकिन मैं कुछ समझती नहीं, बानू ! इस ध्रुवनगर के क़िले में आप पहले बिलकुल गुमसुम रहा करती थीं, लेकिन जब कुमार अजीतसिंह आये थे तो आप......

सफ़ीयत० : हाँ, तो मैं क्या हो गई ?

आयशा : आप हर एक कमरे की सजावट खुद अपने हाथों से किया करती थीं।

सफ़ीयत० : (**स्मिति-संयुक्त जिज्ञासा के साथ**) कैसी सजावट ?

आयशा : यही कि फूलदानों में फूल सजाना, रंगीन शमादानों में बत्तियों की कलियाँ खिलाना, चौकियों पर अगरबत्तियों के हलके बादल उठाना...और...और दरवाज़ों के परदों में अंदाज़ से सलवटें डालना...और...फिर...और फिर...

सफ़ीयत० : और...फिर...और फिर क्या ?

आयशा : मैं कैसे कहूँ। डरती हूँ...आप नाराज़ न हो जायँ।

सफ़ीयत० : (**किंचित् हँसकर**) अच्छा, नाराज़ नहीं होऊँगी।

आयशा : अच्छा तो कहती हूँ। लेकिन क्या कहूँ...कहते नहीं बनता।

सफ़ीयत० : (**तीव्र स्वर में**) और अभी तक क्या कह रही थी ? पहले छेड़ देती है, बाद में चुप हो जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आयशा : तो कहूँ ?

सफ़ीयत० : (**उसी स्वर में**) हाँ, हाँ, कहती क्यों नहीं ?

आयशा : देखिये, परदे की सलवटें ठीक करना तो हम लोगों का काम है; जब कुमार अजीतसिंह आये थे तो आप खुद अपने हाथों से करने लगीं।

सफ़ीयत० : तो क्या हुआ, मेहमान की सेवा करनी ही चाहिए। वे आयें और देखें कि हम उनके कमरे की सजावट नहीं करते, लापरवाही से परदे टेढ़े-सीधे पड़े रहते हैं, वे क्या कहेंगे, तू ही बतला।

आयशा : मैं बतलाती हूँ। आपने नाराज़ न होने का वचन दिया है, तो बतलाती हूँ। परदों की सलवटें ठीक करने का मतलब यह था कि आप...आप परदे के पास...

सफ़ीयत० : परदे के पास ? तो इससे क्या हुआ ?

आयशा : हुआ तो बहुत कुछ, बानू ! उस रोज रंगमहल के परदे की सलवटें ठीक कर आप परदे के पीछे खड़ी थीं। कुमार अजीतसिंह वहाँ से निकले। आप... आपने...अपने परदे की रेशमी डोरी...उनके हाथों में उलझा दी। वे हँसे और उन्होंने......

सफ़ीयत० : (**तीव्रता से**) चुप, आयशा ! यह क्या कहती है...?

आयशा : (**घबराकर**) बानू ! मुझे माफ करें। मुमकिन है, मैंने ख्वाब देखा हो।

सफ़ीयत० : (**दुहराकर**) ख्वाब देखा हो ? (**कुछ हँसकर**) तू बहुत शैतान है। उस वक़्त तू कहाँ थी ?

आयशा : मैं आप ही के कहने से तो कुमार अजीतसिंह को उसी कमरे से ला रही थी।

सफ़ीयत० : (**हाथों से माथा पकड़कर**) ओह !...तो तूने देख लिया। (**दरवाज़े की ओर देखती हुई**) कोई यहाँ है तो नहीं ?

आयशा : कोई नहीं है, बानू ! दो बाँदियाँ योगिराज के पास भोजन का सामान लेकर गई हैं।

सफ़ीयत० : क्या रात के बारह बज गये ?

आयशा : बानू ! इस समय तो रात के तीन बज रहे होंगे।

सफ़ीयत० : तीन ? इसीलिए इतना सन्नाटा है। हवा भी रुकी हुई है, जैसे वह किसी की प्रतीक्षा कर रही है। ये तारों के संकेत...ओह ! मैं क्या कहने लगी ? तो ये दासियाँ योगिराज के पास भोजन का सामान पहुँचाकर अभी नहीं लौटीं ?

आयशा : जी नहीं। आपने ही तो...

सफ़ीयत० : तो तूने शाम को दासियों से कह दिया था कि आज रात वे योगिराज के संरक्षण में रहने वाली स्त्रियों की सुविधाओं की जाँच करेंगी ?

आयशा : जी, मैंने उनसे कह दिया था कि वे वहीं रहेंगी और रात में भीतरी कमरों पर पहरा देने के लिए नहीं आवेंगी।

सफ़ीयत० : ठीक है। माताजी कहाँ हैं ?

आयशा : वे शीशमहल में हैं, सो रही होंगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सफ़ीयत० : सिर्फ़ मैं ही जाग रही हूँ और साथ-साथ तू भी। लेकिन तू मेरे साथ कब तक जागेगी ? तू भी सो जा।

आयशा : आप जब तक न सो जायेंगी तब तक मैं कैसे सो सकूँगी, बानू ! लेकिन क्या आप रात-भर जागेंगी ? (**सँभलकर**) याने...पूजा...करेंगी...याने...ध्यान ...करेंगी ?

सफ़ीयत० : (**रूखेपन से**) तुझे इस तरह प्रश्न करने का कोई अधिकार नहीं है।

आयशा : मैं माफ़ी चाहती हूँ।

सफ़ीयत० : (**चिढ़ाकर**) माफ़ी चाहती हूँ। (**और फिर चिढ़ाकर**) लेकिन क्या आप रात-भर जागेंगी...याने पूजा करेंगी...याने ध्यान करेंगी ? देख, आयशा ! ये बातें इस तरह से कहने की नहीं हैं। इन बातों से राज्य उजड़ जाते हैं, तलवारें म्यान छोड़ देती हैं और रूप और सौन्दर्य आग की लपटों में तड़पने लगता है। अगर चाचा दुर्गादास को यह बात मालूम हो......

आयशा : (**सँभलकर**) कैसे मालूम होगी ? मैंने आज तक यह बात किसी से नहीं कही, बानू ! मेरे और आपके सिवाय और जानता ही कौन है यह बात ? ख्वाब में भी यह बात मेरे मुँह तक नहीं आयेगी।

सफ़ीयत० : मुझे तुझसे ऐसी ही आशा है। भूल जा इन बातों को। दीवारें भी बातों की चोरी कर लेती हैं। तू समझती है कि मैं कुमार अजीतसिंह की पूजा करती हूँ, लेकिन मेरे किसी काम से तो भूलकर भी यह नहीं मालूम होता।

आयशा : सचमुच नहीं मालूम होता, कभी नहीं मालूम होता, लेकिन पूजा कहकर नहीं की जाती, बानू ! पलकों के उठने और गिरने में पूजा हो जाती है। साँसों के जाने की हलकी आवाज़ में पूजा हो जाती है। लेकिन यह मैं तभी से समझने लगी हूँ जब से मैंने कुमार अजीतसिंह के हाथों में रेशम की रस्सी......

सफ़ीयत० : तू चुप न रहेगी, आयशा ? यदि यह बात तूने ज़बान से बाहर निकाली तो तुझे इसी लूनी नदी में डुबा दूंगी...चाचा दुर्गादास से कहकर।

आयशा : सेनापति जी को तकलीफ़ देने की ज़रूरत ही क्या है ? अगर आप कहें तो मैं अभी जाकर डूब जाऊँ।

सफ़ीयत० : अच्छा जा, डूब जा। तुझसे पीछा छूटे।

आयशा : बड़ी खुशी से जाऊँगी...डूब जाऊँगी। किसी तरह आपको खुश तो कर सकूँगी। अच्छा, मैं जाती हूँ। जितने भी क़ुसूर मुझसे हुए हों, उन्हें माफ़ कीजियेगा। जाती हूँ, प्रणाम। [**जाने को उद्यत होती है।**]

सफ़ीयत० : अच्छा, सुन। (**खिड़की के पास जाते हुए**) यह लूनी नदी कितनी गहरी होगी ?

आयशा : (**लौटते हुए**) चाहे जितनी गहरी हो, मेरे डूबने के लिए काफ़ी है।

सफ़ीयत० : और अगर तू नहीं डूबी तो ? चाचा दुर्गादास कल पूछ सकते हैं कि यह आधी रात को लूनी नदी के किनारे क्यों गई थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आयशा : कह दूँगी कि बानू ने ही मुझे भेजा था।

सफ़ीयत० : क्यों भेजा था ?

आयशा : ऐसे ही...मैं क्या कहूँगी। कुछ नहीं कहूँगी।...कह दूँगी कि बानू का हार किनारे पर छूट गया था, उसी को खोजने के लिए...

सफ़ीयत० : आधी रात को ? तेरी आँखें क्या अँधेरे में खूब देख सकती हैं ?

आयशा : (**हँसकर**) तो आप ही बतला दीजिये, क्या कहूँगी।

सफ़ीयत० : कुछ न कहेगी। मैं तुझे डूबने के लिए भेजूँगी ही क्यों ? अपनी प्यारी सखी आयशा को ? तू हँसी भी नहीं समझती ?

आयशा : मैं आपके हुक्म के सिवाय कुछ भी नहीं समझती।

सफ़ीयत० : तो मैं हुक्म देती हूँ कि तू नहीं डूबेगी।

आयशा : बहुत अच्छा, नहीं डूबूँगी।

सफ़ीयत० : आयशा ! मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ। एक तू ही तो है जिससे मैं अपने मन की बातें कह-सुन सकती हूँ। अपनी प्यारी आयशा को मैं सचमुच डूबने को कहूँगी ? मैं खुद डूब जाऊँगी।

आयशा : तब आपके पीछे और लोगों को भी डूबना पड़ेगा।

सफ़ीयत० : अच्छा, तब कोई भी न डूबे। आयशा, बात यह है कि मुझे नींद नहीं आ रही है। बतला, क्या करूँ ? कैसे समय काटूँ ? तुझे कोई कहानी आती है ?

आयशा : आती है।

सफ़ीयत० : कह सकती है ?

आयशा : आपकी आज्ञा भी टाल सकती हूँ ?

सफ़ीयत० : अच्छा, तो सिर्फ घड़ी-भर की कहानी हो।

आयशा : अच्छा तो सुनिये। (**कहानी कहने के ढंग से**) बात पुरानी नहीं है, एक बहुत बड़ा राज्य था। उसके राजा एक बहुत बड़े महापुरुष थे। उन्होंने अपनी वीरता से सारे राजपूताने में उत्साह की लहर दौड़ा दी थी। उन्होंने बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़ीं। वे काबुल गये और एक लड़ाई में विजय प्राप्त करने के बाद एक बुरे समाचार से उनका हृदय टूट गया। जिस समय वे मरे उस समय उनकी रानी माँ होने जा रही थीं। कुछ दिनों के बाद एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम रखा गया, कुमार अजीतसिंह।

सफ़ीयत० : फिर वही बात ? तुझे इसके सिवाय कोई दूसरी कहानी नहीं आती ? रहने दे अपनी...कुछ नहीं आता-जाता तुझे। अगर कभी मन ऊबने लगे तो तू बहला भी नहीं सकती ? (**कमरे में इधर-उधर घूमने लगती है**) अच्छा, तू कोई गीत सुना सकती है ?

आयशा : जो आज्ञा। कौन-सी रागिनी सुनाऊँ ? विहाग ?

सफ़ीयत० : अच्छा...विहाग ही सही।...। नहीं रहने दे। कुछ मत गा। सुनने की तबीयत नहीं हो रही है। (**टहलती है। दीवाल पर टँगे हुए चित्र को देखकर**)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस चित्र का चित्रकार कौन है ?

आयशा : चित्रकार ? दिलीपराय।

सफ़ीयत० : उससे कह दो कि मेरा चित्र उसने अच्छा नहीं बनाया।

आयशा : बनाया तो बहुत सुन्दर है, बानू ! आँखें तो ऐसी हैं कि उनसे सुन्दरता और प्रेम की रागिनी निकल रही है। हाँ, एक बात की कमी है। इस समय आपके केशों में सोलह वर्षों के सोलह फूल सज रहे हैं जो इस चित्र में नहीं हैं।

सफ़ीयत० : बस, रहने दे। यह चित्र कल मेरे कमरे से हट जाय। समझी !

आयशा : जो आज्ञा।

सफ़ीयत० : तू किसी तरह मेरा मन स्थिर नहीं कर सकती। तू संस्कृत जानती है ? नहीं जानती। तू कुछ नहीं जानती। अच्छा जा, मेरी वीणा ले आ। वीणा बजाऊँगी। यहीं पास के कमरे में रखी है।

आयशा : जो आज्ञा। **[जाती है।]**

सफ़ीयत० : **(खिड़की के समीप जाकर लूनी नदी की ओर देखती है)** यह नदी इसी तरह बह रही है...और वे अभी तक नहीं आये...अभी तक नहीं आये...।

[आयशा का वीणा लेकर प्रवेश]

आयशा : यह वीणा उपस्थित है।

सफ़ीयत० : ला। **(लापरवाही से)** क्या बजाऊँ? **(तारों पर उँगलियाँ फेरती है। इतने में ही दूर से घोड़े के टापों की आवाज़ आती है। सफ़ीयत प्रसन्नता-मिली चंचलता से खिड़की के पास जाती है और ध्यान से देखती है। उसके मुख से अनायास निकल पड़ता है)**...ओह ! आ गये...आ गये...!

[वीणा को शीघ्रता से कोने में रख देती है।]

आयशा : बानू ! कौन आ गये ?

सफ़ीयत० : क्या तूने सुन लिया ? तू क्या समझे, कौन आ गये !

आयशा : मैं बाहर जाकर देखूं ?

सफ़ीयत० : तू क्या करेगी बाहर देखकर ? अच्छा जा, आरती सजा ला।

आयशा : अभी तो आप तुलसी की आरती कर चुकी हैं।

सफ़ीयत० : तू मुझसे प्रश्न क्यों पूछती है ? जा, आरती सजा ला।

आयशा : जो आज्ञा। **[शीघ्रता से प्रस्थान]**

सफ़ीयत० : **(आनन्द से विह्वल होकर)** आज रात-भर आरती उतारूँगी। **[प्रसन्नता में वीणा के तार झनझना देती है। फिर नाचने लगती है।]**

[आरती का थाल लिए आयशा का प्रवेश]

आयशा : यह आरती का थाल।

सफ़ीयत० : **(आयशा से लिपटकर)** आयशा ! तू बहुत अच्छी है। ओह ! तू बहुत अच्छी है। तू इतनी अच्छी है कि मैं तुझे इस दुर्ग की दीवाल से गिरा दूंगी।

आयशा : मैं आपकी बात समझी नहीं, बानू !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सफ़ीयत० : तूने कभी कोई बात समझी भी है ? तू कुछ मत समझ, सिर्फ़ मुझे ही समझने दे । मैं समझूँ और कोई न समझे ।

आयशा : यह आरती कहाँ रख दूँ ?

सफ़ीयत० : यहाँ, वहाँ, प्राणों में...हृदय में...सब जगह । कहीं भी रख दे ।

आयशा : कहाँ आपका मन नहीं लग रहा था, और अब आप इतनी खुश हैं ?

सफ़ीयत० : तू पूछेगी, कौन आ गया । बड़ी शैतान है न ? फिर पूजा वाली बात कहेगी? अब कहेगी तो सचमुच ही......

आयशा : **(गहरी सांस लेकर)** ओह ! बानू, तो यह बात है ! इसीलिए आप इतनी ख़ुश हैं । तो यह रही आरती । अब मुझे नींद आ रही है । मैं अब जाने की आज्ञा चाहती हूँ । **[आरती रखकर जाना चाहती है ।]**

सफ़ीयत० : सुन-सुन, आयशा !

आयशा : **(जाती हुई)** बानू ! मुझे नींद आ रही है। जाने की आज्ञा दे दीजिए। **[जाना चाहती है ।]**

सफ़ीयत० : अच्छा तो जा...इसी समय चली जा !...चली गई ! अब ?

[आयशा विनम्रता के साथ हलकी मुस्कान लिये चली जाती है ।]

[दूसरे दरवाजे से अजीतसिंह का प्रवेश]

[अजीतसिंह लगभग अठारह वर्षों का नवयुवक है । केश घुँघराले और आँखें बड़ी; प्रशस्त वक्षस्थल जिस पर मोतियों की एक बड़ी माला झूल रही है । वह हलके पीले रंग का एक अंगरखा और हलके गुलाबी रंग का चूड़ीदार पैजामा पहने हुए है । कमर के वस्त्र में तलवार बँधी है जिसे वह एक हाथ से सँभाले हुए है । पैर में जयपुरी जूते । राजस्थान का ऐश्वर्य उसके विस्तीर्ण ललाट पर अंकित है । अपने पिता महाराणा जसवंतसिंह की वीरता उसके भुजदंडों में सीमित है । उसकी चाल में मृगेन्द्र की मस्ती है । सफ़ीयत को देखते ही वह हाथ उठा देता है ।]

अजीत : जय राजस्थान ! तुम अब तक जाग रही हो, सफ़ीयत ?

सफ़ीयत० : **(लज्जित स्वर में)** आपके स्वागत में जीवन-भर जागूंगी ।

अजीत : और अगर मैं तुम्हारी आँखों में नींद बनकर समा गया तो ? **(हँसी)** नहीं, राजपूत की गति नींद में नहीं समा सकती । उसे भी ज़िंदगी-भर जागना पड़ता है ।...ओह ! थक गया । कुछ शीतल जल मिलेगा ?

सफ़ीयत० : प्रेम के सरोवर का ?

अजीत : उससे तो कभी प्यास न बुझेगी । **(हँसी)** लाओ, अपने हाथों से जल को अमृत बनाकर पिला दो ।

[सफ़ीयत पात्र में शीतल जल भर कर देती है ।]

अजीत : ओह ! शरीर ही नहीं, मन, चेतना, प्राण सब शीतल हुए । यह क्या करती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो ? आरती ? इन हाथों को विश्राम दो, सफ़ीयत ! इन हाथों से तुम्हें मारवाड़ की राजनीति सँभालनी है। और जिसे तुम्हारे नेत्रों की आरती मिल चुकी है, उसे इस आरती की आवश्यकता नहीं। लाओ, इसे अलग रख दूं। हमारे और तुम्हारे बीच में यह जलने वाली चीज़ क्यों रहे ?

सफ़ीयत० : जलने में ही प्रकाश होता है, राजकुमार !

अजीत : प्रकाश नहीं, आलोक। **(आरती-पात्र अलग रखता है)** मेरे चारों ओर तो तुम्हारी स्मृतियाँ ही आरती बनकर घूमा करती हैं। मैं उन्हीं आरतियों के आलोक में तुम्हारा रूप देखता हूँ। जानती हो, वह रूप कैसा है ?

सफ़ीयत० : मैं कैसे जानूं ?

अजीत : मेवाड़ की लक्ष्मी, जिसके मस्तक पर जौहर का पुनीत व्रत मंगल-तारे की ज्योति लेकर चमक रहा है, जिसके नेत्रों में गंगा की पवित्रता है, जिसकी वाणी में सरस्वती की कल्याणकारिणी वीणा है, जिसकी मुस्कान युद्ध में विजय प्राप्त करने की प्रेरणा है, ऐसा तुम्हारा रूप है, सफ़ीयत ! और उस रूप की मैं पूजा करता हूँ।

सफ़ीयत० : मैं इस योग्य नहीं हूँ, राजकुमार !

अजीत : क्या इसलिए कि तुम मुसलमान वंश में उत्पन्न हुई हो ? लेकिन सफ़ीयत ! सत्य और सौन्दर्य की कोई जाति नहीं होती। प्रेम और अनुराग किसी के वंश की संपत्ति नहीं हैं। मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम छोटे-बड़े उन नक्षत्रों की भाँति है जो एक दूसरे के स्वाभाविक आकर्षण में घूमते रहते हैं और कभी थकते नहीं हैं। राजकुमारी ! हम और तुम उस अमर ग्रंथि में बँधेंगे जो क्षितिज-रेखा की भाँति चारों ओर घूमकर सदैव के लिए आकाश और पृथ्वी को जोड़ देती है।

सफ़ीयत० : मैं कृतार्थ हुई। आप विश्राम कीजिए, थक गये होंगे।

अजीत : राजकुमारी ! कल ही अजमेर का युद्ध समाप्त हुआ है। शफ़ीखाँ ने संधि कर ली। युद्ध का अवसर रहते हुए भी युद्ध नहीं हुआ। इस समय मारवाड़ के लोगों से शीघ्र मिलना है। मैंने सोचा, तुमसे भी मिलता चलूं। मैंने चाचा दुर्गादास से प्रार्थना की थी, हम लोग मार्ग में ध्रुवनगर होते हुए चलें। चाचा ने यह बात मान ली। और राजकुमारी ! मैंने तुम्हें चुपके से पत्र भेज दिया। मेरा पत्र तो तुम्हें मिल गया होगा ?

सफ़ीयत० : हाँ, मिल गया था, राजकुमार ! तभी तो आज इतनी रात तक प्रतीक्षा करती रही। किन्तु आपका इतने शीघ्र चले जाना मुझे बहुत कष्ट पहुँचाता है।

अजीत : परिस्थितियों को देखते हुए कष्ट सहन कर लो, राजकुमारी ! फिर तो तुम मारवाड़ की साम्राज्ञी बनोगी। जब तुम और हम मारवाड़ के सिंहासन पर बैठेंगे तो जैसे वसंत में भ्रमरों के गुंजार से कलियाँ फूल बन जायेंगी, मलयाचल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से समीर अपना रास्ता भूलकर मारवाड़ तक चला आयेगा ।

सफ़ीयत० : (**गद्गद होकर**) तब तो भाग्य की लक्ष्मी बन जाऊँगी ।

अजीत : लक्ष्मी ही नहीं, सरस्वती भी । तुम्हारे प्रेम-संगीत से मेवाड़ की दिशायें गूंज कर कहेंगी कि हम भी साम्राज्ञी सफ़ीयत के कंठ से कंठ मिलाकर प्रेम-संगीत का स्वर भरेंगे । मेवाड़ की सरस्वती ! कहाँ है तुम्हारी वीणा ? अभी से मंगलाचरण का प्रारम्भ हो !

सफ़ीयत० : वीणा सुनेंगे आप ? इस समय ?

अजीत : अवश्य । तुम्हारी वीणा सुनने का सौभाग्य जीवन की स्मरणीय घटना है। फिर इस मिलन के मंगलमय अवसर पर मैं अवश्य सुनना चाहूँगा । दूं तुम्हारे हाथों में वीणा ? वह तो यहीं है । [**संकेत करता है** ।]

सफ़ीयत० : नहीं, मैं उठा लूंगी । आपके स्वागत में अभी से संगीत का बंदनवार चारों ओर से लग जाय ।

[**वीणा हाथ में लेती है** ।]

अजीत : तुम कवि भी हो गई ज्ञात होती हो । संस्कृत पढ़ने का प्रभाव तुम्हारी वाणी में कविता लाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । मुझ पर कविता लिख सकती हो ?

सफ़ीयत० : जीवन-भर प्रयत्न करूँ तब भी न लिख सकूं ।

अजीत : क्यों ?

सफ़ीयत० : (**मुस्कराकर**) क्योंकि जीवन छोटा है और आप बहुत बड़े हैं।

अजीत : (**हँसकर**) एक क्षण में मुझ पर कविता कह भी दी । मेवाड़ की साम्राज्ञी की यह प्रथम कविता है । अच्छा, कविता के बाद संगीत हो ।

सफ़ीयत० : वीणा में किस राग के स्वरों का संघटन हो ?

अजीत : मेरे लिए तो तुम्हारे स्वर जीवन-संगीत के अमर माधुर्य से परिपूर्ण हैं। फिर भी आज प्रेम की जय में 'जयजयवंती' का संधान हो।

सफ़ीयत० : (**उसी के स्वर सजाती हुई तारों को कसती हुई**) ये तार जब ढीले पड़े रहते हैं तो एक दूसरे के समीप रहकर भी बेसुरे रहते हैं । किन्तु जब कस जाते हैं तो एक ही स्वर से गूंजते हैं, जैसे वे एक दूसरे के कंठ-से-कंठ मिलाकर गाते हैं ।

अजीत : जब उनमें एक-सा आकर्षण रहता है तभी तो उनके कंपन से संगीत का संचार होता है ।

सफ़ीयत० : या यह कहिये कि इन तारों के परस्पर आत्म-समर्पण में ही संगीत है ।

अजीत : और राजकुमारी ! इन्हीं तारों में से कोई तार अजीत के हृदय का कंपन लेकर गूंजेगा, और कोई तार सफ़ीयत के हृदय का कंपन लेकर नृत्य करेगा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सफ़ीयत० : आपके चरणों में समर्पित होने वाली यह रागिनी सुनिये।

[सफ़ीयत थोड़ी देर तक जय-जयवंती रागिनी बजाती है। सहसा एक तार टूट जाता है। सफ़ीयत हलकी-सी चीख भर उठती है।]

अजीत : **(चौंककर)** क्यों, क्या हुआ ?

सफ़ीयत० : **(हताश स्वरों में)** यह तार टूट गया। मैंने तो उसे अधिक कसा नहीं था, न जाने कैसे टूट गया ?

अजीत : टूट भी जाने दो। इस तरह तो तार टूटा ही करते हैं।

सफ़ीयत० : नहीं, मेरे हृदय में आशंका हो उठी है। कौन जाने यह तार किसके हृदय का कंपन लेकर टूटा है, मेरे हृदय का या आपके हृदय का।

अजीत : **(हँसकर)** अरे, यह तो एक कल्पना थी। कल्पना के पंखों से जीवन उड़ नहीं सकता।

सफ़ीयत० : नहीं, राजकुमार ! मेरे हृदय में अमंगल की भावना उठ गई। जयजय-वन्ती रागिनी पूरी नहीं बज सकी।

अजीत : **(उमंग से)** वाह, राजकुमारी ! वीणा के तार के टूटने में कौन-सी अमंगल की बात है ? युद्ध में मेरी तलवार टूट जाती है, आकाश का कोई तारा टूट जाता है, इस लूनी नदी की कोई लहर टूट जाती है, इन बातों में अगर अमंगल हो तो संसार में अमंगल के सिवाय कुछ रह ही न जाय। रख दो वीणा को इस ओर। इतनी सुन्दर चाँदनी में अमंगल हो ही नहीं सकता, विशेषकर जब तुम मेरे सामने हो।

[सफ़ीयत अन्यमनस्कता से वीणा कोने में रख देती है। अजीत उसका हाथ पकड़कर वातायन की ओर ले जाता है।]

अजीत : चिन्ता की बात नहीं है। इधर आओ। देखो, राजकुमारी ! कितनी सुन्दर चाँदनी है ! लूनी नदी की धारा पर यह चाँदनी ऐसी बिखर रही है जैसे हमारे-तुम्हारे जीवन पर प्रेम की ज्योति बरस रही है। और यह नदी संसार की उपेक्षा करती हुई अपने ही रास्ते चली जा रही है।

सफ़ीयत० : **(सिर हिलाकर)** हूँ...

अजीत : और इन लहरों को देखो ! ये लहरें, जैसे हमारे और तुम्हारे मिलन की स्मृतियाँ हैं जो एक दूसरे में अपना आत्म-समर्पण किये हुए हैं और भावावेश में टेढ़ी-तिरछी होकर अनंत मिलन की पृष्ठभूमि पर बहती चली जा रही हैं।

सफ़ीयत० : **(सोचती हुई)** हूँ...

अजीत : और तुम्हें याद है, राजकुमारी ! उस रात जब हम लोग इस नदी के किनारे ठंडी हवा में झूमते हुए उस पेड़ की छाया के बीच कसमसाती हुई चाँदनी की चित्रशाला में बैठे हुए थे तो तुमने कहा था कि जब छाया और प्रकाश तक मिल सकते हैं तो क्या हम और तुम नहीं मिल सकते ?

सफ़ीयत० : याद है, राजकुमार ! किन्तु आज वीणा का तार जो टूट गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजीत : फिर वही वीणा का तार। उसके टूटने से और हमारे मिलन से क्या सम्बन्ध ? यह तो वैसी ही बात है कि किसी फूल के टूटकर गिर जाने से वसंत ऋतु ही न आये या किसी तारे के टूटने से पूर्णिमा की रात ही न हो ? तुम अपने भाग्य में इतना संदेह करती हो, राजकुमारी ?

सफ़ीयत० : जब आप मेरे पास हैं तो फिर मुझे कोई संदेह नहीं है।

अजीत : मैं सुखी हुआ यह बात सुनकर। अच्छा, एक बात बतलाओ। इस ध्रुवनगर में तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है ?

सफ़ीयत० : कष्ट ? चाचा दुर्गादासजी ने ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि इस क़िले की दीवालों तक को कोई कष्ट नहीं है।

अजीत : ठीक, उन पर कोई भी आक्रमण नहीं कर सकता। अच्छा, राजकुमारी, अब मुझे विदा दो। चाचा दुर्गादास के जागने का समय हो गया। मैं चुपचाप अपने कक्ष से ही चला आया था।

सफ़ीयत० : किस वाणी से कहूँ यह ? वर्ष में मेरे भाग्य की केवल एक ही पूर्णिमा होती है, वह भी इतने थोड़े समय के लिए ! ऐसा भाग्य अपनी स्मिति में दुर्भाग्य से भी अधिक कष्टकर है।

अजीत : ऐसा न कहो, राजकुमारी ! आगे चलकर तो हमारी प्रत्येक रात्रि पूर्णिमा की रात्रि होगी।

सफ़ीयत० : फिर आपके दर्शन कब होंगे ?

अजीत : कल तो मुझे चले ही जाना है। फिर कभी मिलेंगे।

सफ़ीयत० : फिर कब ?

अजीत : इसे भाग्य-लक्ष्मी पर छोड़ो। आज तो तुमसे मिलने का कोई अवसर नहीं था, किन्तु भाग्य ने साथ दिया और आज मैं तुम्हारे साथ हूँ। राजकुमारी, भाग्य छिपकर आता है और चुपके से कान में कह जाता है कि फूल की तरह खिलो और समुद्र की तरह आकाश तक चले जाओ।

सफ़ीयत० : (**विचारमग्न**) हूँ......

अजीत : मैं तुमसे मिला और तुम मुझसे मिलीं, जैसे भाग्य ही दो लहरों की तरह उठा और फिर मिलकर एक हो गया। अजीत और सफ़ीयत, और सफ़ीयत और अजीत। बोलो, ठीक है न ?

सफ़ीयत० : ठीक है, राजकुमार !

अजीत : इस तरह नहीं, आँखें मिलाकर कहो सफ़ीयत कि ठीक है।

सफ़ीयत० : (**आँखें नीचे कर इठलाते स्वर में**) मुझसे यह कुछ नहीं होता। यों तो कहे देती हूँ कि ठीक है।

अजीत : आँखें नीची करके कहने में इस बात की सचाई और भी अधिक स्पष्ट होती है। राजकुमारी ! कितना अच्छा होता कि कल दिन ही न होता। यह चंद्रमा कल सूर्य से कह देता कि तुम्हारे चमकने की आवश्यकता नहीं है। कल दिन-भर

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैं ध्रुवनगर में चमकूँगा, तो यह हमारी प्रेम की रात दुगुनी हो जाती। हो जाती न ?

सफ़ीयत० : लेकिन समय जितनी जल्दी बीतता है उसे देखते हुए तो वह रात आधी ही मालूम होती है।

अजीत : **(हँसकर)** तुम भी सच कहती हो, राजकुमारी ! तब तो विधाता को हमारे प्रेम-मिलन के लिए नई रात की सृष्टि करनी पड़ती। **(खिड़की की ओर देखकर)** प्रकृति कितनी शान्त है ! वृक्ष चुपचाप खड़े हैं, चाँदनी भी जैसे उनमें बसकर चुपचाप हम लोगों के प्रेम-मिलन को संतोष की आँखों से देख रही है। चारों ओर सुनसान और यहाँ प्रेम के भावों का कितना आन्दोलन ! यह विषमता देखती हो, राजकुमारी ? **(इसी समय बाहर क़िले के घंटे पर चार चोटें पड़ती हैं साथ ही गजर सुनाई देता है। अजीत और सफ़ीयत चौंककर एक दूसरे को देखते हैं)** ओह ! चार बज गये ! समय इतनी जल्दी बीत गया।

सफ़ीयत० : **(दीवाल पर टँगे हुए गजरे पर दृष्टि डालकर)** समय प्रेम नहीं करता, इसीलिए उसे ठहरने का अवकाश नहीं है। वह भागता चला जाता है।

अजीत : हम लोगों का प्रेम देखकर शायद वह भी प्रेम करना सीख जाय।

सफ़ीयत० : **(गजरे की ओर देखकर)** फूल सबसे अधिक प्रेम करना जानते हैं। वे अधिकतर रात ही में खिलना सीखते हैं।

अजीत : **(सफ़ीयत के दृष्टि-पथ पर देखकर)** ओह ! यह फूलों का गजरा ! अभी तक इसका उपयोग नहीं हुआ ? **(शीघ्रता से फूल का गजरा उतारता है। हाथ से फूल छूकर)** कितने कोमल फूल हैं ये ! **(सूँघकर)** कितनी मनोहर सुगंधि है इनमें ! मालूम होता है कि राजकुमारी सफ़ीयत-उन्-निसा के कमरे में पहुँचकर ये भी राजकुमारी के गुण सीख गये।

सफ़ीयत० : यह मेरी प्रेम की माला है। इसे मैंने ही न जाने कितनी बातों के साथ... न जाने कितने आँसुओं के साथ गूँथा है। लाइये, इसे मैं आपके गले में पहना दूँ।

[फूलों का गजरा अजीत के हाथ से ले लेती है।]

अजीत : ईश्वर करे, तुम्हारी माला ही क्षितिज-रेखा बनकर मेरे समस्त भाव-संसार को अपने में समेट ले। राजकुमारी ! तुम इस समय माला लिए हुए ऐसी ज्ञात होती हो जैसे स्वयंवरा हो। ठीक है, आज की रात ही हम लोगों के गंधर्व-विवाह से धन्य बने। मेरे पास तो फूलों की माला नहीं है। **(गले से मोतियों की माला उतारकर)** यह मोतियों की माला है जो मेरे स्वर्गीय पिता महाराज जसवन्तसिंह के कंठ को सुशोभित कर चुकी है। उनका भी आशीर्वाद इस माला के साथ है। मेरी मोतियों की माला ही तुम्हारी फूलों की माला का प्रतिदान बने।

[बाहर फिर गजर बजता है।]

अजीत : हम लोगों के गंधर्व-विवाह के इस पवित्र संस्कार में यह मंगल-वाद्य भी बज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहा है। ब्राह्म मुहूर्त में यह मंगल-कार्य सम्पन्न हो। किन्तु शीघ्रता करो, राजकुमारी ! चाचा दुर्गादास जाग उठे होंगे। उनके कक्ष के बाहर निकलने से पहले ही मैं लौट जाना चाहता हूँ। बढ़ो, राजकुमारी ! तुम्हारी फूलों की माला मेरे हृदय में हो और मेरी मोतियों की माला तुम्हारे हृदय में भाग्यशालिनी बने, साथ ही साथ। शीघ्रता करो, राजकुमारी ! **(सफ़ीयत एक कदम आगे बढ़कर रुक जाती है)** यह रहस्य अभी किसी पर प्रकट नहीं है। चाचा दुर्गादास भी इसे अभी नहीं जानते। हमारे तुम्हारे प्रेम की एकमात्र जानने वाली ये दो मालायें ही हों, जैसे दो आत्माएँ। आओ, ये मालायें साथ-साथ ही हमारे गले में पड़ें।

[दोनों ही एक साथ मालायें उठाते हैं और एक दूसरे के गले में डालना ही चाहते हैं कि नेपथ्य से एक तलवार उठकर दोनों मालाओं के बीच से होकर उन्हें ऊपर ही सँभाल लेती है।

सफ़ीयत और अजीतसिंह चौंककर ऊपर देखते हैं। राठौर दुर्गादास जी का प्रवेश।

दुर्गादास गंभीर व्यक्तित्व के सेनापति हैं—तेजस्वी नेत्र और निश्चयात्मक मुख-मुद्रा। 'पुरुष-सिंह' शब्द से ही उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हो सकती है। उभरा हुआ वक्षस्थल और सशक्त भुजदण्ड। इस समय वे केवल एक ढीला कुरता और चुस्त पैजामा पहिने हुए हैं। पैर में जयपुरी जूते हैं। कुंचित केशराशि उनके कंधों पर फैल रही है। माथे पर त्रिपुण्ड है जिसकी रेखाएँ कुछ हलकी पड़ गई हैं। उनकी कमर में छुरी कसी हुई है और हाथ में तलवार है।]

दुर्गादास : (तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए गंभीर स्वर में) मेवाड़ के उत्तराधिकारी राजकुमार अजीतसिंह...**(एक क्षण बाद सफ़ीयत को देखकर)** अकबर की शहज़ादी सफ़ीयत्-उन्-निसा !

[दोनों ही सिर झुकाये अपराधी की भाँति दुर्गादास के सामने खड़े हैं। दुर्गादास रोषपूर्ण नेत्रों से अजीत को देखते हैं।]

दुर्गादास : मेवाड़ के उत्तराधिकारी राजकुमार अजीतसिंह ! देश की परतंत्रता में तुम्हें प्रेम करने का अधिकार नहीं है और **(सफ़ीयत से)** सफ़ीयत ! युद्ध के दिनों में वीरों की पूजा होती है, प्रेमियों की नहीं।

अजीत : (नीचा सिर किये हुए) चाचा दुर्गादास ! आपको इस स्थान पर नहीं आना चाहिए था।

दुर्गादास : राजकुमार ! सैनिक दुर्गादास की गति सर्वत्र है। मैं यहाँ क्यों न आता ? अपने मित्र अकबर के परिवार की रक्षा का मुझे वैसा ही ध्यान है जैसा तुम्हारी रक्षा का, और तुम उस विश्वास में—यशस्वी राजपूती रक्त में—अपनी वासना का विष घोल दो, फिर भी मुझे यहाँ नहीं आना चाहिए था ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजीत : चाचा दुर्गादास ! आप मेरा अपमान कर रहे हैं।

दुर्गादास : अपमान नहीं, राजकुमार ! राजपूती परम्परा का स्मरण दिला रहा हूँ। बेटी सफ़ीयत ! तुम दूसरे कक्ष में जाओ। राजकुमार अपने अपमान का अनुभव कर रहे हैं। जब बुलाऊँ, तब आना।

[सफ़ीयत चुपचाप चली जाती है।]

दुर्गादास : मैंने तुम्हारा अपमान नहीं किया, राजकुमार ! तुमने मेरा अपमान किया है और इस पवित्र मोती की माला का भी। यह माला, महाराणा जसवंतसिंह की स्वतंत्र साँसों से आन्दोलित होने वाली यह माला, आज प्रेम का उपहार बन रही है ? मेवाड़ की स्वच्छंद विजयलक्ष्मी अप्सरा की भाँति वासना के कुंजों में...

अजीत : **(तड़पकर)** सेनापति ! अपने अधिकार की सीमा का ज्ञान हो।

दुर्गादास : अच्छा ! चाचा दुर्गादास से अब मैं केवल सेनापति ही रह गया ? ठीक है, राजकुमार ! इस सेनापति को अपने अधिकारों की सीमा का ज्ञान है। जिस समय तुम्हारा जन्म भी नही हुआ था, तबसे दुर्गादास के अधिकारों को रक्त का अभिषेक मिला है। घटनाओं ने भैरवी नृत्य करके मेरे अधिकारों की सीमायें निर्धारित की हैं। राजकुमार ! स्वर्गीय महाराणा जसवंतसिंह की मृत्यु-शैया के समीप मैंने तलवार लेकर उनके सामने प्रतिज्ञा की थी कि मारवाड़ की मर्यादा और स्वतंत्रता मेरे जीवन की प्रथम आकांक्षायें होंगी और तब से हज़ारों वीरों की बलि देकर, युद्ध में मृत्यु को पराजित कर, जौहर व्रतों में अपनी माताओं, बहिनों और पुत्रियों को चिताओं पर चढ़ाकर इस मारवाड़ के सेवक ने मारवाड़ की रक्षा की है। यही मेरा अधिकार है, यही मेरे अधिकार की सीमा है। मैंने आज तक अपने अधिकार माँगे नहीं हैं, बलपूर्वक लिये हैं। अधिकार भिक्षापात्रों में नहीं लिये जाते।

अजीत : किन्तु सेनापति दुर्गादास ! मारवाड़ की स्वतंत्रता की रक्षा करनेवाला मारवाड़ के राजकुमार की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं कर सकता, यह तुम जानते हो ?

दुर्गादास : जानता हूँ, और यह भी जानता हूँ कि तुम्हारे बड़े भाई कुमार पृथ्वीसिंह को अजमेर का विद्रोह शान्त करने पर औरंगज़ेब से विष-भरी शाही खिलअत के रूप में मृत्यु का पुरस्कार मिला था। यह भी जानता हूँ कि उस मृत्यु से तुम्हारे पिता महाराणा जसवन्तसिंह अधिक दिनों जीवित नहीं रहे। यह भी जानता हूँ कि उनकी मृत्यु-शैया आँसुओं से भीग उठी थी यह सोचकर कि मारवाड़ का क्या भविष्य होगा। तुम उस समय महारानी के गर्भ में थे। तब मैंने तुम्हारे संरक्षण की प्रतिज्ञा कर मारवाड़ की रक्षा में रक्त-स्नान का व्रत लिया था। इसके अतिरिक्त और मुझे क्या जानना है, मैं जानना चाहता हूँ ?

अजीत : यही कि राजनीति को जानने वाला चतुर सेनापति अपने प्राणों पर खेलकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युद्ध कर सकता है, नीति और कूटनीति की क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ पहचान सकता है, किन्तु प्रेम और वासना में अन्तर नहीं पहचान सकता। महाराणा जसवन्तसिंह का पुत्र वासना का कीड़ा नहीं हो सकता। वह पवित्र प्रेम का समर्थक है, जिसमें जाति और वर्ग का भेद नहीं है। मानवता में ईर्ष्या-द्वेष की जो अग्नि लगी हुई है, वह इस भुवन-व्यापिनी प्रेम की मंदाकिनी से शीतल हो जायगी।

दुर्गादास : राजकुमार ! अभी थोड़ा और ज्ञानार्जन करो। जाति और वर्ग के भेद को मिटाने वाली प्रेम की यह मंदाकिनी क्या गंधर्व विवाह की लहरों में ही बह सकती है ? प्रेम के क्या अन्य रूप नहीं हो सकते ? और फिर यह मन्दाकिनी केवल रात में ही छिपकर क्यों बहा करती है, वह भी ध्रुवनगर के दुर्ग के चरणों पर ? मेवाड़ के राजकुमार ! यह विश्वव्यापी प्रेम सूर्य बनकर दिन में समस्त वासनाओं को जला देता है और चन्द्र बनकर समस्त प्राणियों पर समान रूप से स्नेह, शीतलता और अमृत की वर्षा करता है और समस्त विश्व इस पर्व की पवित्रता में धन्य होता है। इस सूर्य के प्रकाश में और चन्द्र की ज्योत्स्ना में सभी को जाने का अधिकार है। वहाँ चाहे सेनापति हो या चाचा दुर्गादास हो, स्वतंत्रता से जा सकता है। उसके जाने पर प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया जा सकता।

अजीत : किन्तु राजपूती सिंह के पुत्र को आप उसकी क्रीड़ा से नहीं रोक सकते। यह मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है, यह मेरा स्वभाव-सिद्ध अधिकार है, और वह अक्षुण्ण है। क्रीड़ा अक्षुण्ण है, उसे आप नहीं रोक सकेंगे, कोई नहीं रोक सकेगा।

दुर्गादास : राजकुमार ! नहीं रोकूँगा। किन्तु राजपूती सिंह के पुत्र की यह क्रीड़ा युद्धभूमि में हो, लूनी नदी के किनारे न हो। वह राज-सिंहासन पर बैठे, ध्रुव-नगर के दुर्ग में प्रेम के सोपान पर नहीं। वह अपने गले पर तलवार को चक्राकार घूमने दे, फूलों की मालाओं को अपने गले में न पड़ने दे।

अजीत : किन्तु सेनापति ! सफ़ीयत-उन्-निसा से मेरा सम्बन्ध एक राजकुमार की व्यक्तिगत रुचि का प्रश्न है। यह प्राकृतिक है, नैसर्गिक है। संसार में कोई शक्ति नहीं है जो मेरी व्यक्तिगत रुचि में बाधा दे सके।

दुर्गादास : किन्तु अजीतसिंह का, तुम्हारी व्यक्तिगत रुचि का सम्बन्ध समस्त राजस्थान से है, राजस्थान के राजवंशों से है। तुम्हें ज्ञात है अजीतसिंह, राजपूतों ने अपने रक्त की पवित्रता के लिए कितने भयानक युद्ध किये हैं ? कितनी बार जौहर की ज्वालाएँ जली हैं ? आज तुम कहते हो कि तुम्हारी व्यक्तिगत रुचि का प्रश्न केवल तुम्हारे अधिकार की बात है। मारवाड़ के रक्त को तुम कलुषित नहीं कर सकते, राजकुमार !

अजीत : तब सुनो सेनापति ! आज से मैं समस्त राजस्थान को चुनौती देता हूँ कि वह मेरे अधिकार की ओर देखे और उस पर प्रश्न-चिह्न लगाने की धृष्टता करे।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो धृष्टता करेगा उसे मेरी तलवार की पैनी धार पर चलना होगा। तुम भी तैयारी करो, सेनापति दुर्गादास ! देखूँगा, मारवाड़ किसका साथ देता है, मेरा या तुम्हारा।

दुर्गादास : तैयार हूँ, राजकुमार ! दुर्गादास ने युद्धों को सदैव महाशक्ति का वरदान माना है। अभी तक मैंने तुम्हारी रक्षा में युद्ध किये थे, अब महाराणा जसवंतसिंह के तथा राजवंशों के आदर्शों के लिए युद्ध करूँगा। राजपूतों को निमंत्रण दो, राजकुमार, कि वे अपने आदर्श की विजय में आदर्श राजपूत वंश का विनाश देखें। राजस्थान-भर में प्रचार करो कि तुम्हारे गंधर्व-विवाह की संध्या में मारवाड़ की परतंत्रता की काली रात घिर आये और मारवाड़ के मर्यादा-रक्षण की जो प्रतिज्ञा मैंने स्वर्गीय महाराणा जसवंतसिंह के सामने की है वह अब अपने ही रक्त से पूरी हो।

अजीत : **(क्रोध से)** मैं सबसे प्रथम तुम्हें द्वंद्व-युद्ध का निमंत्रण देता हूँ, सेनापति !

दुर्गादास : मैं राजपूतों के आदर्श से गिरे हुए व्यक्ति का निमंत्रण अस्वीकार करता हूँ। मारवाड़ के सैनिक तुमसे युद्ध करेंगे।

अजीत : सेनापति ! तुम मारवाड़ से निर्वासित हुए।

दुर्गादास : मैं नहीं, राज्य-परिषद् तुम्हें निर्वासित करेगी, राजकुमार ! मारवाड़ भूमि के रजकणों से निर्मित राज्यवंश के खिलौने ! तुम्हें इस राज्यवंश की मर्यादा का इतना भी ध्यान नहीं आया कि तुम इस प्रसंग पर मौन रह जाते ? क्या तुम्हारे लिए वीर राजपूतों का जो रक्त बहा है वह केवल बालकों की क्रीड़ा थी ? विदेशियों द्वारा मारवाड़ के विनाश का जो तांडव हुआ है क्या वह केवल अभिनय-मात्र था ? आज फिर राजस्थान में पारस्परिक विद्रोह की ज्वाला धधके जिसमें सारी मर्यादा और समस्त गौरव फिर भस्म हो जाय ?

सफ़ीयत० : **(नेपथ्य से)** यह नहीं होगा, यह नहीं होगा, यह नहीं होगा। चाचा दुर्गादास ! तुम्हारे रहते भारतीय गौरव कभी नष्ट न होगा। यदि ऐसा होगा तो मैं संसार में नहीं रहूँगी। [**अश्रुपूर्ण नेत्र**]

दुर्गादास : सुखी रहो, बेटी ! मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। किन्तु राजकुमार यही देखना चाहते हैं। उठो, राजकुमार ! तलवार लो और मुझ पर वार करो।

सफ़ीयत० : नहीं, चाचा ! यह वार पहले मुझ पर होगा। उठो, राजकुमार ! मैंने समस्त बातें दूसरे कक्ष से सुनी हैं। मैं राजस्थान की रक्षा में अपना रक्त बहाऊँगी। तुम्हारी तलवार से मरने में मेरा सौभाग्य है। मेरे पिताजी ने चाचा दुर्गादास पर जो विश्वास किया था वह विश्वास संसार में अटल रहेगा।

दुर्गादास : बेटी, मैं सुखी हुआ। आज तुम्हारा चाचा बनने में मैं अपने गौरव का अनुभव कर रहा हूँ। तो तुम मेरा साथ देने के लिए तैयार हो ?

सफ़ीयत० : आप जो कहेंगे वही करूँगी। आप आज्ञा दीजिये।

दुर्गादास : राजपूती वंश के गौरव के लिए, देश के गौरव के लिए, मानवता के गौरव

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए मैं चाहता हूँ कि तुम मेरा साथ दो।

सफ़ीयत० : दूँगी। स्वतंत्रता-प्रिय अकबर की पुत्री, मैं वचन देती हूँ।

दुर्गादास : खूब सोच-समझ कर वचन दो, बेटी !

सफ़ीयत० : आपको क्या मेरे वचन में विश्वास नहीं है ?

दुर्गादास : हृदय में आग लगानी पड़ेगी, बेटी ! राजस्थान में शरीर के जौहर अनेक बार हुए हैं, यह मन का जौहर होगा, प्राणों का जौहर होगा।

सफ़ीयत० : आप मुझे आतंकित न कीजिये, चाचा दुर्गादास ! अपने प्राण भी दे सकती हूँ।

दुर्गादास : मुझे तुम्हारे प्राण नहीं चाहिएँ। मैं चाहता हूँ कि आज से तुम्हारा और राजकुमार अजीतसिंह का सम्बन्ध भाई-बहिन का हो।

[**तीव्र वाद्य का एक स्वर**]

सफ़ीयत० : (**स्तब्ध रहकर**) भाई बहिन...भाई बहिन...ओह ! (**चीखकर**) सफ़ीयत ! तू कहाँ है ? (**क्षण-भर सिसकती है, फिर सँभलकर**) राजस्थान की मर्यादा के लिए, राजवंश की पवित्रता के लिए, आपकी आज्ञा के लिए, (**अटकते हुए शब्दों से**) मैं...राजकुमार के...मार्ग से...सदैव के लिए...हट जाऊँगी !

दुर्गादास : (**आनन्द-विह्वल होकर**) हट जाओगी ? ओह, धन्य हो, सफ़ीयत, तुम्हारी जय ! सफ़ीयत की जय ! जय ! जय ! अनेक वर्षों तक तुम राजस्थान ही नहीं, देश के गौरव के लिए जीवित रहो। सफ़ीयत, तुम...तुम पर राजस्थान को गर्व होगा। तुम सदैव राजस्थान के क्षितिज पर ध्रुव-तारिका बनकर अटल रहो। राजकुमार ! तुम स्तब्ध होकर देख रहे हो ? नारी के जौहर की ज्योति देखो। राजपुत्र ! इस पूजा की शोभा देखो और इस शोभा की पूजा करो। वीर राजपूत ! महाराज जसवंतसिंह के फ़ौलादी रक्त ! इस पविन्त्रता के पुण्य पर्व में अपने मन से लड़ो और विजय प्राप्त करो। यह जौहर देखो ! ऐसा जोहर अभी तक राजस्थान में नहीं हुआ। मानवता में यह स्वर्गीय ज्योति देखो ! बोलो, बोलो, देवी सफ़ीयत की जय !

सफ़ीयत० : नहीं, आप बोलिए वीरवर अजीतसिंह की जय !

अजीत : (**सँभलते हुए शब्दों में**) मेरी नहीं, देवी ! (**जोर से**) देवी सफ़ीयत की जय !

दुर्गादास : (**प्रचंड ध्वनि से**) राजस्थान के जौहर की जय !

[**वाद्य-संगीत**]

[**परदा गिरता है।**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 21 :

औरंगज़ेब की आख़िरी रात

पात्र-परिचय

आलमगीर औरंगज़ेब—मुग़ल सम्राट्
ज़ीनत-उन्निसा बेगम—आलमगीर औरंगज़ेब की पुत्री
करीम—सिपाही
हकीम
कातिब

काल—18 फरवरी, 1707 ई०
स्थान—अहमदनगर का क़िला
समय—रात्रि के तीन बजे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

औरंगज़ेब की आख़िरी रात

[बीजापुर और गोलकुण्डा की शिया रियासतों पर विजय प्राप्त करने के बाद जब औरंगज़ेब ने मराठों का अन्त करने का निश्चय किया तो उन्हें अपनी असफलता स्पष्ट दीख पड़ने लगी। उन्होंने जब छत्रपति शिवाजी के पुत्र शम्भाजी को सपरिवार बन्दी कर लिया और उनके सामने इस्लाम धर्म में दीक्षित होने का प्रस्ताव रखा, तो शम्भाजी ने घृणा के साथ प्रस्ताव को ठुकराते हुए औरंगज़ेब के प्रति अत्यन्त कटु शब्दों का व्यवहार किया। फलस्वरूप शम्भाजी बड़ी निर्दयता के साथ क़त्ल किये गये। उनके क़त्ल होते ही मराठों में क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। सत्रह वर्षों तक भयंकर संघर्ष होता रहा। इधर मुग़ल सेना दिनों-दिन विलासी बन रही थी। फलस्वरूप प्रत्येक लड़ाई में उसे बहुत अधिक हानि उठानी पड़ती थी। सन् 1706 में औरंगज़ेब ने देखा कि उनकी सेना अब अत्यन्त विश्रृंखलित और आलसी हो गयी है। राज्य की आर्थिक दशा भी चिन्ताजनक हो रही है। लड़ाई की हानि 'जज़िया' कर से भी पूरी नहीं हो रही है। जलालुद्दीन अकबर के समय से संचित आगरा और दिल्ली के क़िलों की समस्त सम्पत्ति दक्षिण की लड़ाइयों में समाप्त हो चुकी है; तीन-तीन महीनों से सिपाहियों और सिपहसालारों का वेतन नहीं दिया गया है। राज्य की इस दुर्व्यवस्था के साथ वे अब वृद्ध हो गये हैं। पहले-जैसी शक्ति अब उनके शरीर में नहीं रही। उनका विजय-स्वप्न निराशा में तिरोहित हो चला है। उनकी चिन्ताएँ उन्हें चैन नहीं लेने देतीं। अन्त में हताश होकर वे अहमदनगर लौट आये हैं। इस समय वे अहमदनगर के क़िले में बीमार पड़े हुए हैं। उनका शरीर टूट चुका है। उन्हें ज्वर और खांसी है। इस समय उनकी अवस्था नवासी वर्ष की है। एक साधारण से पलंग पर लेटे हुए हैं। सिरहाने सफेद रेशम का तकिया है, जिसके दोनों बाजुओं में जरी की हलकी पट्टियां हैं। वे एक सफेद रेशम की चादर कमर तक ओढ़े हुए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। दुबला-पतला शरीर। कटी-छटी सफेद दाढ़ी। नाक लम्बी किन्तु वृद्धावस्था के कारण कुछ झुकी हुई। वे सफेद लम्बा कुरता पहने हुए हैं, जो रेशमी तनी से दाहिने कन्धे पर कसा हुआ है। गले में मोतियों की एक बड़ी माला पड़ी हुई है जिसके मध्य में एक बड़ा नीलम जड़ा है। हाथ में तस्बीह है। आलमगीर की मुख-मुद्रा अत्यन्त मलीन और पश्चात्ताप से परिपूर्ण है। उनकी दाहिनी ओर एक सुसज्जित पीठिका पर उनकी पुत्री ज़ीनत-उन्निसा बेगम बैठी हुई है। उसकी आयु चालीस वर्ष के लगभग है। देखने में सौम्य और आकर्षक। वह नीले रंग की रेशमी शलवार और प्याज़ी रंग की ओढ़नी से सुसज्जित है। गले में रत्नों की माला है और कमर में मोतियों की पेटी कसी हुई है। उसके मुख पर भी भय और आशंका की रेखाएँ अंकित हैं। कमरे में कोई विशेष सजावट नहीं है, किन्तु सारे वायुमण्डल में एक पवित्रता है। पलंग के सिरहाने दो शमादान जल रही हैं। दूसरी ओर केवल एक है, जिससे आलमगीर की आँखों में चकाचौंध न हो। पलंग के दाहिने ओर ज़ीनत-उन्निसा की पीठिका के समीप ही एक बड़ी खिड़की है, जिससे हवा का मन्द झोंका आ रहा है। उससे घने अन्धकार के बीच में आकाश के तारे दिखाई पड़ रहे हैं। आलमगीर के सामने कोने की ओर सोने के पिंजड़े में एक पक्षी बैठा हुआ है जो कभी-कभी अपने पंख फड़फड़ा देता है। पलंग से कुछ हटकर सिरहाने की ओर एक तिपाई है, जिस पर दवा की शीशियाँ रखी हुई हैं। उसके समीप एक ऊँचे स्टैण्ड पर लम्बे मुंह वाली सोने की सुराही है, उसमें गुलाब जल रखा हुआ है। उसके पास ही एक सोने का प्याला एक रेशमी कपड़े से ढका हुआ है। परदा उठने पर आलमगीर कुछ क्षणों तक बेचैनी से खाँसते हैं, फिर एक गहरी और भारी साँस लेकर शून्य की ओर देखते हुए ज़ीनत से कहते हैं]

आलम० : खाँसी! एक लमहे के लिए नहीं रुकती...कोई दवा उसे नहीं रोक सकती, ज़ीनत! कोई दवा उसे नहीं रोक सकती...यह मौत की आवाज़ है। इसे कौन रोक सकता है? (**फिर खांसते हैं**)...मौत की आवाज़!

ज़ीनत० : (**धैर्य के स्वरों में**) नहीं, जहाँपनाह! आपकी खाँसी बहुत जल्द अच्छी हो जायेगी। हकीमों ने......

आलम० : (**बीच ही में**) हकीमों ने...हकीमों ने कुछ नहीं समझा। कुछ नहीं समझा, उन्होंने। यह खाँसी कोई मर्ज़ नहीं है, बेटी! यह खाँसी सल्तनत के उखड़ने की आवाज़ है जो हमारे दम के साथ उखड़ना चाहती है। (**मुंह बिगाड़कर**) उखड़े! कहाँ तक रोकेंगे हम? (**खांसते हैं**) कितने बलवाइयों को नेस्तनाबूद किया,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कितने ग़दर रोके, लेकिन...लेकिन यह खाँसी नहीं रुकती, बेटी ! रुके भी कैसे ? **(शिथिल स्वरों में)** अब आलमगीर आलमगीर नहीं हैं ।

ज़ीनत० : नहीं, जहाँपनाह ! आज भी हिन्दुस्तान और दकन आपके इशारे पर बनता और बिगड़ता है । आपके तेवर देखकर अफ़ग़ानिस्तान भी घुटने टेकता है । राजपूत, जाट, मराठे और सिक्ख आज भी आपसे लोहा नहीं ले सकते ।

आलम० : लेकिन शिवाजी ले सकता था । हमारी थोड़ी-सी लापरवाही से वह हाथ से निकल गया । उसकी वजह से ज़िन्दगी-भर परेशान रहा । लेकिन था बहादुर और दिलेर...। खैर, 'काफ़िर ब जहन्नुम रफ़्त' **(खाँसते हैं)** उसका बेटा शम्भाजी... **[रुक जाते हैं और गहरी साँस लेते हैं ।]**

ज़ीनत० : छोड़िए इन बातों को, जहाँपनाह ! ये बातें इस वक़्त दिल और दिमाग़ दोनों को ख़राब करने वाली हैं । आप जैसे ही अच्छे होंगे......

आलम० : **(बीच ही में)** अब अच्छे नहीं हो सकते, ज़ीनत ! चन्द घड़ियों की ज़िन्दगी ! कौन जाने कब ख़ामोशी आ जाये ? लेकिन बेटी ! हमने एक दिन भी आराम नहीं किया, **(खाँसते हैं)** एक दिन भी नहीं । राजपूत-जैसी क़ौम पर हुकूमत करना ज़िन्दगी का आराम नहीं है, सबसे बड़ी मेहनत है । मराठों की हिम्मत पस्त करना ज़िन्दगी का सबसे बड़ा करिश्मा है—वह हमने किया, बेटी ! वह हमने किया । लेकिन अब...अब हम कमज़ोर हो गये हैं । अब कुछ नहीं कर सकेंगे । **(ठण्डी साँस लेकर कलमा पढ़ते हैं)** ला इलाह इललिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह......

ज़ीनत० : आप सब कुछ कर सकेंगे, जहाँपनाह ! अच्छा, अब आप यह खाँसी की दवा खा लीजिए । **(दवा देने के लिए उठती है)** हकीम साहब दे गये हैं ।

आलम० : **(तीव्र स्वर में)** क्या हकीम साहब खुद नहीं आये ?

ज़ीनत० : आये थे । बड़ी देर तक आपका इन्तज़ार करते रहे । आप होश में नहीं थे । वे थोड़ी देर के लिए बाहर चले गये हैं । उन्होंने अभी फिर आने को कहा है ।

आलम० : जो दवा वह दे गये हैं, वह उन्हें चखायी गयी थी ? **[खाँसते हैं ।]**

ज़ीनत० : जी, मैंने भी चखी थी । दवा में किसी तरह का शक नहीं है ।

आलम० : यह अहमदनगर है, बेटी ! शिया रियासत बीजापुर और गोलकुण्डा के क़रीब । दुश्मनी दोस्ती में छुपकर आती है, ज़िन्दगी में यह हमेशा याद रखो ।

ज़ीनत० : आपका कहना सही है, जहाँपनाह ! लेकिन दवा मैंने खुद चखकर देख ली है ।

आलम० : हमारे सामने नहीं चखी गयी, ज़ीनत ! लेकिन खैर, कोई बात नहीं । दवा खायेंगे...लेकिन थोड़ी देर के लिए आराम, फिर वही तकलीफ़ । क्या करें दवा खाकर ! **(ज़ोर से खाँसी आती है)**...अच्छा लाओ, खायें तुम्हारी दवा ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आबे हयात से बढ़कर।

[आलमगीर हाथ बढ़ाते हैं। ज़ीनत प्याले में दवा डालकर देती है। आलमगीर उसे हाथ में लेकर देखते हैं। सोचते हुए एक बार रुकते हैं फिर थोड़ी-सी पीते हैं।]

आलम० : **(गला साफ कर)** पी ली तुम्हारी दवा, बेटी ! इस दवा में ज़ायक़े के साथ तुर्शी भी है। हुकूमत का प्याला भी ऐसा ही होता है।

ज़ीनत० : लेकिन आपने सब तुर्शी ज़ायक़े में तबदील कर ली है।

आलम० : नहीं, ज़ीनत ! मराठों ने ऐसा नहीं होने दिया। हम क़ुराने पाक की क़सम खाकर कहते हैं कि हम मराठों का नामोनिशान मिटाने में अपनी सारी सल्तनत की बाज़ी लगा देते, लेकिन...लेकिन अब वह हौसला नहीं रह गया। कमज़ोरी और बुढ़ापे ने हमें बेबस कर दिया है। **(ठहरकर)** हमारे बहुत-से काम अधूरे पड़े हैं। काश, हमारी ज़िन्दगी के दिन अभी...खत्म न...होते...!

ज़ीनत० : **(उत्साह से)** अभी आप बहुत दिनों तक सलामत रहेंगे, आलमपनाह !

आलम० : **(विह्वल होकर)** अह, फिर एक बार कहो, ज़ीनत ! हम यह बात फिर से सुनना चाहते हैं। ओफ़्...अगर हमारी ज़िन्दगी के दिन अभी खत्म न होते, हम एक बार फिर शमशीर लेकर मैदानेजंग में जाते, बाग़ियों से कहते, कम्बख़्तो ! आलमगीर कमज़ोर नहीं हैं। उनकी तलवार में अब भी चिनगारियाँ हैं। घुटने टेककर गुनाहों की माफ़ी माँगो ! नहीं, काफ़िरो ! दोज़ख़ का रास्ता ख़ून की नहर से है। हमारी शमशीर से कटो और दोज़ख़ में दाखिल... **(आवेश में खाँसी रुकने पर भारी साँस लेते हैं)** दोज़ख़...में दाखिल...हो...!

ज़ीनत० : आप आराम करें, जहाँपनाह ! नहीं तो आपकी तबीयत और भी ख़राब हो जायेगी।

आलम० : इससे ज़्यादा और क्या ख़राब होगी, ज़ीनत ! जब हम मौत के दरवाज़े पर खड़े होकर दस्तक दे रहे हैं, चाहे जब खुल जाये। और आलमगीर के लिए जल्दी ही खुलेगा। देर नहीं हो सकती। मौत भी डरती होगी कि देर हो जाने से कहीं आलमगीर सज़ा न दे। **(खाँसी)** ज़िन्दगी-भर सज़ा ! सज़ा ! **(रुकते हुए)** अब्बाजान...को...भी...आंजहानी शाहजहाँ को... **[सोचते हैं।]**

ज़ीनत० : आलमपनाह ! तज़किरे न उठायें।

आलम० : **(भौंहों में बल देकर)** क्यों न उठायें ? ज़िन्दगी-भर गुनाहों का बोझ उठाया है तो मरते वक़्त उसका तज़किरा भी न उठायें ? लेकिन, ज़ीनत ! हमने सैकड़ों बार अपने दिल को दिलासा देने की कोशिश की। हमने गुनाह कहाँ किये ? क़ुराने पाक की रूह से, शरअ से...इस्लाम का नाम दुनिया में बुलन्द करने के लिए—ज़िहाद के लिए, जो काम हमने किये क्या उनका नाम गुनाह है ? काफ़िरों को जहन्नुम रसीद किया...क्या यह गुनाह है ? उपनिषद् पढ़ने वाले दारा से सल्तनत छीनी...क्या यह गुनाह है ? नमूना-ए-दरबार-ए-इलाही में क्या मुझसे

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुनाह हुए ? आलमगीर—ज़िन्दापीर... ! लेकिन कोई आवाज़ कानों में कहती है कि आलमगीर ! तूने इस्लाम का नाम लेकर दुनिया को धोखा दिया है । तूने इस्लाम की हिदायतों को नहीं समझा । ज़ीनत ! तू (**तू पर ज़ोर**) बतला, यह आवाज़ ठीक है ? क्या हमने इस्लाम के उसूलों को ग़लत समझा ?

ज़ीनत० : (**शान्ति से**) आपसे कोई ग़लती नहीं हुई, जहाँपनाह !

आलम० : (**शून्य में देखते हुए**) हज़ारों सतनामियों को क़त्ल किया...दारा, शुजा, मुराद को तख़्ते-ताऊस का हक़ नहीं दिया और बाप को सात बरस तक...लम्बे सात बरस तक...!

ज़ीनत० : लेकिन आलमपनाह ! अगर ग़ौर से देखा जाये तो शहंशाह शाहजहाँ को नज़रबन्द करना ग़लत नहीं कहा जा सकता । अपनी पीरी में वे अपनी आँखों से अपने बेटों का मज़ार देखते, क्या उन्हें तकलीफ़ न होती ? आपने उन्हें उस तकलीफ़ से बचा लिया ।

आलम० : लेकिन उस तकलीफ़ के पैदा करने का ज़िम्मा किसका है ? हमारा । हमने ही लाहौर में दारा की क़ब्र बनवायी । हमने ही आगरे में मुहम्मद को भेजकर अब्बाजान का महल क़ैदखाने में तब्दील कराया...! उस दास्तान को तुम जानती हो ?

ज़ीनत० : जहाँपनाह ! मुझसे वह दर्दनाक दास्तान क्यों दोहरवाना चाहते हैं ? आप आराम कीजिए । आपकी तबीयत ठीक नहीं है ।

आलम० : तो हम ही वह दास्तान कहेंगे जो हमने मुहम्मद से सुनी है । (**शून्य में देखते हुए**) आधी रात थी...कमरे में सिर्फ़ एक शमा जल रही थी...दूसरी शमा शहंशाह शाहजहाँ की आँखों में झिलमिला रही थी । वह चारपाई पर तसवीरे-संग की तरह लेटे हुए थे । उनकी पथराई आँखें दूर पर दिखाई देने वाले ताज-महल पर जमी हुई थीं...हलकी चाँदनी थी । शहंशाह ने जहाँनारा से कहा, जहाँनारा ! आलमगीर से पूछो, वह हमारी तरह ताजमहल को तो क़ैद नहीं करेगा...?

ज़ीनत० : (**आग्रह के स्वरों में**) जहाँपनाह...!

आलम० : (**उसी स्वप्न में**) बादशाह की ज़बान तालू से सट गयी थी...गला सूख रहा था । गहरी और सर्द साँस लेकर उन्होंने फ़रमाया, 'मुमताज़ ! हमारी बेगम ! ताज हमें पत्थरों से नहीं, आँसुओं से बनवाना चाहिए था...काश, यह मुमकिन हो सकता !'

ज़ीनत० : (**सहानुभूति के साथ**) उन्हें बहुत तकलीफ़ थी, आलमपनाह ! लेकिन इस वक़्त यह सब सोचना बेकार है । रात ज़्यादा बीत रही है ।

आलम० : (**चौंककर तसबीह फेरते हुए**) क्या कहा ? रात ज़्यादा बीत रही है ? आज हमारे लिए भी शायद वही मौत की रात है । लेकिन हमारे सामने कोई ताजमहल नहीं है । (**ठहरकर**) हम इस लायक़ हैं भी नहीं, ज़ीनत ! ज़िन्दगी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में हमने कुछ नहीं किया, सिर्फ़ लड़ाइयाँ ही लड़ी हैं। उन्हीं में हमने फ़तह हासिल की है, लेकिन आज...आज ज़िन्दगी में हमें शिकस्त ही मिली...भारी शिकस्त। हमने अब्बाजान को क़ैद नहीं किया, इस आख़िर वक़्त में अपने चैनो-सुकून को ही क़ैद किया। आज इतने बरसों के बाद अब्बाजान की चीख़ हमारे कानों में आ रही है...प्यास से उनका गला सूख रहा है। उनकी आवाज़ में कितना दर्द है...तुम सुन रही हो...? नहीं ? उनकी हसरत-भरी निगाहों की टक्कर से ताजमहल जैसे चूर-चूर होने जा रहा है।

ज़ीनत० : **(अत्यन्त सांत्वना के स्वरों में)** जहाँपनाह ! कहीं कुछ नहीं है। आप सोने की कोशिश कीजिए। जो कुछ हुआ उसे भूल......

आलम० : **(बीच ही में)** नहीं भूल सकते, ज़ीनत ! हमने अपनी रूह नींव में दफ़्न कर सल्तनत की इमारत खड़ी की है। आज रूह तड़पकर करवट लेना चाहती है। वह चीख़ रही है। तुम उसकी आवाज़ भी नहीं सुनना चाहतीं ?

ज़ीनत० : जहाँपनाह ! ख़ुदा को याद कीजिए। सोने की कोशिश कीजिए। रात आधी से ज़्यादा बीत चुकी है।

आलम० : ज़िन्दगी उससे ज़्यादा बीत चुकी है। **(नेपथ्य की ओर उँगली उठाकर)** देखती हो यह अँधेरा ? कितना डरावना ! कितना ख़ौफ़नाक ! दुनिया को अपने स्याह परदे में लपेटे हुए है। गोया यह हमारी ज़िन्दगी हो। इसमें कभी सुबह नहीं होगी, ज़ीनत ! अगर होगी भी तो वह इसके काले समुन्दर में डूब जायेगी। इस अँधेरे में सूरज भी निकले तो वह स्याह हो जायेगा।...**(रुककर)** ओह... कितना अँधेरा है, ख़ुदा ! हमने तेरा नाम लेकर सल्तनत पर कब्ज़ा किया, तेरा नाम लेकर औरतों और बच्चों को क़ैद किया, वे सब तेरे बच्चे ! तेरे बन्दों पर एतबार नहीं किया। तेरा नाम लेकर...क़ुरान की क़सम खाकर मुराद...भाई मुराद से सुलह की और फिर...और फिर...उसका ख़ून......

[खाँसी आती है और फिर निश्चेष्ट हो जाते हैं।]

ज़ीनत० : **(घबराहट के स्वरों में)** जहाँपनाह...! जहाँपनाह ! **(फिर पुकारकर)** करीम ! करीम !

[सिपाही करीम का प्रवेश। वह अदब से सलाम करता है।]

ज़ीनत० : **(आवेश के स्वरों में)** हकीम साहब को फौरन यहाँ आने की इत्तला करो। बादशाह सलामत की तबीयत ख़राब होती जा रही है। फ़ौरन जाओ। हकीम साहब अमीरों के दूसरे कमरे में होंगे। फ़ौरन...

क़रीम० : जो हुक्म। **[अदब के साथ सलाम कर प्रस्थान]**

[ज़ीनत के मुख पर घबराहट के चिह्न और स्पष्ट हो जाते हैं। वह एक पंखे से हवा करती है। आलमगीर होश में आते हैं। धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलकर ज़ीनत को घूरकर देखते हैं।]

आलम० : **(काँपते हुए स्वरों में)** कौन...? अब्बाजान ! **(आँखें फाड़कर)** तुम...

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुम जीनत हो ? अब्बाजान कहाँ गये ? अभी तो यहाँ आये थे। (सोचते हुए) ...द था उनका चेहरा...आँखों में आँसू थे। (ठण्डी साँस लेकर) इतने बड़े शहन्शाह की आँखों में आँसू ? उन्होने हमारे सामने घुटने टेक दिये और कहा, शहन्शाह आलमगीर ! हमें हमारा बेटा औरंगज़ेब वापस कर दो...! बादशाही लिबास में हमारा बेटा खो गया है...। उसे हमें वापस कर दो...! (कुछ ठहरकर) लेकिन ज़ीनत ! वह बेटा कहाँ है ? उसने तो अपने अब्बाजान को क़ैद किया है। (इसी समय कमरे में टँगा हुआ पक्षी अपने पंख फड़फड़ा उठता है। आलमगीर उसकी तरफ चौंककर देखते हैं)...और यह परिन्दा अपने पर फैलाकर हमसे कुछ कह रहा है...? क्या कहेगा ? इसे भी तो हमने सोने के पिंजड़े में क़ैद किया है। (ज़ीनत की ओर आग्रह से) ज़ीनत ! इस पिंजड़े का दरवाज़ा खोल दो। (ज़ीनत पिंजड़े का दरवाज़ा खोलती है) उसे निकालो। (ज़ीनत परिन्दा पकड़कर निकालती है) उड़ा दो उसे। (ज़ीनत उसे खिड़की से बाहर उड़ा देती है। आलमगीर उसके उड़ने की दिशा में कुछ देर देखकर सन्तोष की गहरी साँस लेते हैं) आ...ज़ा...द ! (कुछ रुककर) हम अब्बाजान को इस तरह आज़ाद नहीं कर सके ! हिन्दुस्तान के बादशाह को इस परिन्दे की क़िस्मत भी नसीब नहीं हुई !

ज़ीनत० : लेकिन आलमपनाह ! बादशाह तो न जाने कब के दुनिया की क़ैद से निकल कर आज़ाद हो गये। अब किस बात का मलाल है ? आप अपनी तबीयत सँभालिए। मैंने हकीम साहब को बुलवाया है। वे आते ही होंगे।

आलम० : (ज़ीनत की बात जैसे उन्होंने सुनी ही नहीं) परिन्दे की क़िस्मत...बादशाह की क़िस्मत नहीं हो सकी...! इस अँधेरे में उस परिन्दे की क़िस्मत जागी है। वह खुश होकर शोर कर रहा है। बचपन में दारा भी इसी तरह शोर करता था। (रुककर) कुछ वैसी ही आवाज़ आ रही है। (सुनते हुए) वह देखो ! वह आ रही है। (रुककर) लेकिन यह आवाज़ कैसी है ? इस ख़ौफ़नाक अँधेरे में यह आवाज़ जैसे मुँह फाड़कर खाने को दौड़ रही है। यह आयी ! ज़ीनत ! यह आवाज़ सुनती हो ?

ज़ीनत० : (आश्चर्य से) कैसी आवाज़ ? कौन-सी आवाज़, जहाँपनाह ?

आलम० : (आँखें फाड़कर) अरे, इतने ज़ोर से आवाज़ आ रही है और तुम्हें सुनायी नहीं पड़ती ? यह देखो। (सुनते हुए) फिर आयी। यह हर लमहे तेज़ होती जा रही है। ज़ीनत ! (पुकारकर) ज़ीनत ! यह आवाज़ ! (चीखकर) यह ख़ौफ़नाक...आवाज़ !

ज़ीनत० : (धैर्य के स्वरों में) कोई आवाज़ नहीं, जहाँपनाह ! आपकी तबीयत में घबराहट है। इसी वजह से ऐसा ख़याल पैदा हो रहा है। (विश्वासपूर्वक) कहीं कोई आवाज़ नहीं है। आप अपने को सँभालने की कोशिश करें।

आलम० : (घबराहट से कुछ उठकर) नहीं, नहीं, यह आवाज़ बराबर आ रही है। कोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीख़ रहा है। (**संकेत कर**) यह देखो ! अँधेरे में यह कौन झाँक रहा है ? कौन ? (**ज़ोर से**) कौन ? (**पुकारकर**) सिपहसालार ?

ज़ीनत० : (**समीप होकर**) कोई नहीं है, जहाँपनाह ! सिपहसालारकी ज़रूरत नहीं है।

आलम० : (**घबराहट से भर्राये हुए स्वर में**) यह खिड़की के पास कौन है। (**संकेत करते हुए**) कराहता हुआ, चीख़ता हुआ ? ओह ! उसने फिर चीख भरी, अरे दारा...! (**काँपते हुए**) दारा ! तुम हो ? हमने तुम्हारा ख़ून नहीं किया। हमने नहीं किया, दारा ! हुसेनखाँ ज़बरदस्ती तुम्हारे कमरे में घुस गया। हमने उसे हुक़्म नहीं दिया था। और...और...(**काँपकर**) तुम्हारा सिर कहाँ है, दारा ! तुम्हारा सिर किधर गया ? (**आलमगीर उठ खड़े होते हैं। फिर लड़खड़ाते हुए**) हम खोजकर लायेंगे। हम अभी खोजकर लायेंगे। (**हाथ फैलाते हुए**) तुम्हारा इतना ख़ूबसूरत सिर...! [**ज़ीनत उन्हें रोककर फिर पलंग पर लिटा देती है। आलमगीर अचेत हो जाते हैं।**]

ज़ीनत० : (**अपने आँचल से अपने माथे का पसीना पोंछती हुई**) जहाँपनाह......

[**करीम का प्रवेश**]

करीम : (**अदब से सलाम करके**) शहज़ादी ! हकीम साहब तशरीफ़ लाये हैं।

ज़ीनत० : (**शीघ्रता से**) फ़ौरन उन्हें अन्दर भेजो, इसी वक़्त।

करीम : (**सलाम कर**) जो हुक्म। [**शीघ्रता से प्रस्थान**]

ज़ीनत० : (**कम्पित स्वर में, आँखों में आँसू भरकर**) क्या जानती थी कि अहमदनगर में यह सब होगा ! या ख़ुदा ! [**आलमगीर को चादर उढ़ाती है।**]

[**हकीम साहब का प्रवेश। लम्बी दाढ़ी, काला चोग़ा, सिर पर अमामा, सफेद पैजामा और जरी के जूते। साथ में दवाओं का एक सन्दूक़चा**]

हकीम : (**बादशाह को अदब से सलाम करने के बाद ज़ीनत को सलाम करते हैं**) आदाब !

ज़ीनत० : (**कम्पित स्वर में**) आलमपनाह को होश नहीं है, हकीम साहब ! (**उठकर हकीम साहब के पास आती है**) आज रात को आलमपनाह की तबीयत बहुत ही ख़राब रही। जानें, उन्हें क्या हो गया है ? जागते हुए ख़्वाब देखते हैं और चीख़ उठते हैं। एक लमहा उन्हें चैन नहीं है। (**करुण स्वर में**) अब आप ही मेरे नाख़ुदा हैं। तबीयत घबराती है। जहाँपनाह को अच्छा कर दीजिए, जल्द अच्छा कर दीजिए।

हकीम : जहाँपनाह को होश नहीं है ? (**गम्भीर और सांत्वना के स्वरों में**) घबराइए नहीं, घबराइए नहीं, शहज़ादी ! ख़ुदा पर भरोसा रखिए। वह चाहेगा तो इंशा-अल्लाह, बादशाह सलामत बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे। देखिए, मैं दवा देता हूँ। बादशाह सलामत अभी होश में आये जाते हैं। घबराने की कोई बात नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज़ीनत० : **(विकृत स्वर में)** मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि मैं क्या करूँ !

हकीम : इतमीनान के साथ आप बादशाह सलामत को पंखा झलें। मैं उन्हें होश में आने की दवा देता हूँ।

[हकीम अपने सन्दूकचे में से एक टिकिया निकालते हैं। ज़ीनत पंखा झलती है।]

हकीम : **(डिबिया का ढक्कन खोलते हुए)** अब बादशाह सलामत की खाँसी कैसी है ?

ज़ीनत० : खाँसी में बहुत आराम है। पहले तो वे हर बात कहने में खाँसते थे। आप की दवा से उनकी खाँसी बहुत कुछ रुक गयी, लेकिन घबराहट बहुत ज़ियादह बढ़ गयी है। **[पंखा झलती है।]**

हकीम : घबराहट भी दूर हो जायेगी। **(आलमगीर की नाक के समीप बहुत आहिस्ते से डिबिया ले जाते हैं)** अभी जहाँपनाह को होश आता है। आप सब्र करें।

ज़ीनत० : उनकी बेचैनी देखकर तो मैं बिलकुल ही घबरा गयी थी। मैंने बड़ी मुश्किल से अपने को क़ाबू में रखा। अगर मैं भी घबरा जाती तो फिर इधर था ही कौन ?

हकीम : जहाँपनाह की खिदमत करना मेरा पहला फ़र्ज़ है।

ज़ीनत० : इसीलिए तो मैंने आपके पास फ़ौरन खबर भेजी।

हकीम : मैं ख़बर पाते ही हाज़िर हुआ। **(आलमगीर पर गहरी नज़र डालकर)** देखिए, देखिए ! बादशाह सलामत को होश आ रहा है। पंखा ज़रा धीमा करें।

[आलमगीर के ओठों में कुछ स्पन्दन होता है, जैसे वे कुछ कहना चाहते हैं। फिर हलकी अँगड़ाई लेकर आँखें खोलते हैं। ज़ीनत और हकीम के मुख पर प्रसन्नता की झलक।]

ज़ीनत० : **(उत्साह से)** होश आ गया ! होश आ गया !

हकीम : बादशाह सलामत को आदाब अर्ज़ करता हूँ। **[दरबारी ढंग से सलाम करता है।]**

आलम० : **(धीमे स्वर में)** पा...नी...!

[ज़ीनत शीघ्रता से सुराही में से गुलाबजल निकालकर आगे बढ़ाती है।]

ज़ीनत : जहाँपनाह, यह पानी......

[आलमगीर उठने की कोशिश करते हैं। हकीम उन्हें उठने में सहारा देता है। आलमगीर पानी पीने के लिए झुकते हैं। लेकिन दूसरे ही क्षण रुक जाते हैं।]

आलम० : **(प्रश्नसूचक स्वर)** यह कौन-सा पानी है ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज़ीनत० : **(नम्रता से)** वही गुलाबजल है जो ग्रापके लिए खास तौर से तैयार किया गया है ।

ग्रालम० : **(सन्तोष से)** लाग्रो । एक घूंट पीकर...**(घबराकर)** हमारी तसबीह कहां है ?

ज़ीनत० : **(पलंग से तसबीह उठाकर)** यह है, जहाँपनाह !

ग्रालम० : **(लेते हुए)** हमेशा मेरी ज़िन्दगी के साथ रहने वाली...! **(फिर एक घूंट पानी पीकर हकीम साहब को घूरते हुए)** तुम कौन...हो ? **(एक क्षण बाद जैसे स्मरण करते हुए)** शायद...हकीम...साहब...?

हकीम : **(सलाम करते हुए)** जी, जहाँपनाह !

ग्रालम० : **(कातर स्वर में)** हमारी हालत बहुत ख़राब है, हकीम साहब ! ग्रब शायद हम न बचेंगे । **[ठण्डी साँस लेते हैं ।]**

हकीम : ऐसी बात न फ़रमायें, जहाँपनाह ! बुखार ग्रापका ग्रब दूर हो ही गया, सिर्फ़ कमज़ोरी ग्रौर खाँसी है । खाँसी भी ग्रब ग्रच्छी हो चली है, ग्रौर कमज़ोरी भी, इन्शाग्रल्लाह, दूर हो जायेगी ।

ग्रालम० : तो ज़िन्दगी भी दूर हो जायेगी, हकीम साहब ! इस वक़्त हमारे लिए कमज़ोरी ग्रौर ज़िन्दगी दो ग्रलग-ग्रलग चीज़ें नहीं हैं । एक दूर होगी तो दूसरी भी दूर हो जायेगी । ग्रौर ग्रालमगीर कमज़ोर होकर ज़िन्दा नहीं रहेंगे ।

हकीम : **(अदब से)** ग्रालमपनाह ! ग्राप बजा फ़रमाते हैं । **(हकीम यह बात ग्रादत से कह देते हैं लेकिन अपनी गलती महसूस करने पर घबराकर)** लेकिन इसे सही नहीं मानना चाहिए, ग्रालमपनाह ! **(यह सोचकर कि उन्हें यह भी नहीं कहना चाहिए वे और घबराकर कहते हैं)**...मैं क्या ग्रर्ज़ करूं...कुछ जवाब नहीं दे सकता । **[हाथ मलते हुए सिर झुका लेते हैं]**

ग्रालम० : **(गम्भीरता से)** ज़ीनत, हकीम साहब से कहो कि वे हमें बेहोशी की दवा दें ।

ज़ीनत० : **(बात बदलने के विचार से)** इन्हीं की दवा से तो ग्राप होश में ग्राये हैं, जहाँपनाह !

ग्रालम० : **(गम्भीर किन्तु रुकते हुए स्वरों में)** लेकिन, ज़ीनत ! इस होश से हमारी बेहोशी ग्रच्छी है । गुनाहों की याद ग्रब बरदाश्त...**(रुककर, चौंककर, ग्रपनी बात पलटते हुए)** हकीम साहब, कमज़ोरी की हालत ग्रब बरदाश्त नहीं होती । ऐसी दवा दीजिए कि बेहोशी का ग्रालम रहे । **(रुककर)** ग्रापके पास—शराब को छोड़कर—कोई ऐसी दवा है ?

हकीम : जहाँपनाह ! ग्रापकी कमज़ोरी बहुत जल्द रफ़ा हो जायेगी ।

ग्रालम० : **(तीव्रता से)** हमारे सवाल का जवाब दीजिए, हकीम साहब ! ग्रापके पास शराब को छोड़कर कोई ऐसी दवा है ?

हकीम : **(घबराकर हकलाते हुए)** जी, ऐसी दवाएँ तो बहुत हैं, ग्रालमपनाह !

लेकिन आपको—अपने जहाँपनाह को कैसे दे सकता हूँ ? ये दवाएँ आपके लिए नहीं हैं, आलमपनाह !

आलम० : **(आँखें फाड़कर)** आलमपनाह के लिए नहीं हैं ? कौन-सी दौलत है जो आलमगीर के लिए नहीं है ? इस वक़्त बेहोश हो जाने की दवा हमारे लिए सब से बड़ी दौलत है । हकीम साहब ! हम इस वक़्त वही चाहते हैं ।

ज़ीनत० : **(भृकुटि-संचालन के साथ)** हकीम साहब ! आपके पास एक ऐसी दवा भी तो है जिसमें थोड़ी देर की बेहोशी के बाद सारी कमज़ोरी दूर होकर तबीयत में ताज़गी आती है ? [**घूरकर देखती है ।**]

हकीम : **(सँभलकर)** हाँ, हाँ, एक ऐसी दवा मेरे पास है । मेरे वालिद साहब ने वह नुसखा देकर कहा था कि जब सब दवाएँ बेकार साबित हों तब उसका इस्तेमाल किया जाये । **(हिचकते हुए)** मैं अभी उसका इस्तेमाल नहीं करना चाहता था ।

ज़ीनत० : **(आलमगीर से)** और जहाँपनाह, इस वक़्त वह दवा न खायी जाये तो बेहतर होगा । सुबह होने में ज़्यादा देर नहीं है । और अज़ान का वक़्त क़रीब आ रहा है । आप ख़ुदा की इबादत न कर सकेंगे । अभी वह दवा रहने दें ।

आलम० : यह बात ठीक कह रही हो, बेटी ! अच्छा, अभी वह दवा रहने दीजिए, हकीम साहब ! आप अज़ान होने के वक़्त तक दूसरी दवा दे सकते हैं ।

हकीम : बसरोचश्म । **(शहज़ादी से)** शहज़ादी, आप मुझे एक प्याला इनायत फ़रमायें, मैं कमज़ोरी दूर करने की दवा अभी पेश करूँ ।

ज़ीनत० : **(प्याला उठाकर)** यह लीजिए ।

हकीम : **(अपने सन्दूकचे में से एक दवा निकालते हुए)** ख़ुदा चाहेगा तो आपको फ़ौरन आराम होगा । सितारों की नहूसत दफ़ा होगी । **(प्याले में दवा डालते हुए)** आलमपनाह ! हमीदुद्दीनख़ाँ ने तो सितारों की नहूसत दूर करने के लिए चार हज़ार रुपये का एक हाथी आलमपनाह पर तसद्दुक़ कर दिया होगा ?

आलम० : **(गम्भीर स्वर में)** नहीं । जुमेरात को हमीदुद्दीनख़ाँ ने नुजूमियों के कहने के मुताबिक़ तसद्दुक़ करने के बारे में एक दरख़्वास्त ज़रूर पेश की थी, लेकिन हमने उस दरख़्वास्त में यह बढ़ा दिया कि यह तो अंजुमपरिस्तों का रिवाज़ है । इसके बजाय चार हज़ार रुपये क़ाज़ी को ग़ुरबा में तक़सीम करने के लिए दे दिया जाये ।

हकीम : **(उत्साह से आँखें चमकाकर)** आलमपनाह ने क्या बात कही है ! अब तो सितारों की नहूसत दूर होने में कोई अन्देशा भी नहीं रह गया और मुझे भी यह कामिल यक़ीन है कि यह अर्क़ आपको ऐसी ताक़त देगा कि आप तन्दुरुस्त होकर अपनी रिआया के दर्दोग़म को दूर करते हुए सौ साल तक सलामत रहेंगे ।

आलम० : **(सोचते हुए)** सौ साल तक ! यानी ग्यारह बरस और । लेकिन हकीम साहब, हम ग्यारह दिन भी जिन्दा नहीं रहेंगे । बेटों को भी तो बादशाहत करने का मौक़ा मिले । हमारे बेटे **(सोचते हुए)** मुअज़्ज़म...आज़म...कामबख़्श...

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हकीम : **(दवा का प्याला सामने करते हुए)** यह सही है, आलमपनाह ! लेकिन मुझे भी अपनी ख़िदमत करने का मौक़ा दें। मैंने अपनी हिकमत की बेहतरीन दवा आलमपनाह के रूबरू पेश की है।

आलम० : **(ज़ीनत से)** अच्छा ज़ीनत, यह दवा रख लो। इसे हम नमाज़ के बाद पियेंगे। अब आप तशरीफ़ ले जा सकते हैं। [**ज़ीनत दवा का प्याला ले लेती है।**]

हकीम : **(सिर झुकाकर)** जो जहाँपनाह का हुक़्म। लेकिन एक गुज़ारिश है।

आलम० : क्या ?

हकीम : **(हाथ जोड़कर)** आलमपनाह कुछ न सोचें, कोई गुफ़्तगू न करें। इस वक़्त आराम करना खुद एक मुफ़ीद दवा होगी। सुबह होते ही आलमपनाह की तबीयत अच्छी मालूम होगी।

आलम० : अच्छी बात है; हम कुछ न सोचेंगे। कुछ गुफ़्तगू न करेंगे। लेकिन हम अपने बेटों को ख़त तो लिखवा सकते हैं ?...**(सोचकर)** वही करेंगे। हकीम साहब ! अब आप तशरीफ़ ले जाइए। हमें अपने बेटों की याद आ रही है।

हकीम : जो हुक़्म।

[**बादशाही अदब के अनुसार सलाम करके प्रस्थान**]

आलम० : **(सोचते हुए)** हकीम साहब कहते हैं कि हम कुछ न सोचें, कोई गुफ़्तगू न करें, सुबह होते ही तबीयत अच्छी मालूम होगी।...लेकिन ज़ीनत ! हम जानते हैं कि हमारी तबीयत अच्छी नहीं होगी। हमने अपनी किश्ती समुन्दर में छोड़ दी है। अब साहिल दूर होता जा रहा है।

ज़ीनत० : तबीयत में घबराहट होने की वजह से आलमपनाह ऐसा फ़रमा रहे हैं। अब आपकी तबीयत अच्छी होने जा रही है। हकीम साहब की दवा बहुत मुफ़ीद साबित हुई है। देखिए, आपकी खाँसी को कितना फ़ायदा पहुँचा है !

आलम० : **(ज़ोर देकर)** तुम नहीं समझीं, ज़ीनत ! जिस तरह सुबह होने से पहले रात और भी सुनसान और ख़ामोश हो जाती है, उसी तरह मौत से पहले हमारी सारी शिकायतों का शोर ख़ामोश हो गया है। अब हमारा आख़िरी वक़्त क़रीब है।

ज़ीनत० : **(आँखों में आँसू भरकर)** ऐसा न कहें, आलमपनाह !

आलम० : **(गहरी साँस लेकर)** और ज़ीनत ! हमारी बेटी ! आज इस आख़िरी वक़्त में हमारे बिस्तर के नज़दीक हमारा एक भी बेटा नहीं है। ऐसे बाप को तुम क्या कहोगी जिसने बादशाहत में ख़लल पड़ने के वहम से अपने कलेजे के टुकड़ों को सज़ा देकर हमेशा क़ैदख़ाने में रखा ? अपने नज़दीक आने भी नहीं दिया। **(सोचते हुए)** हमारे क़ैदी बच्चो ! तुम बदक़िस्मत हो कि आलमगीर तुम्हारा बाप है। तुमने और कोई गुनाह नहीं किया। तुम लोगों का सिर्फ़ यही गुनाह है कि तुम औरंगज़ेब के बेटे हो। आज तुम्हारा बाप मौत के दरवाज़े पर पहुँच

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर तुम्हारा याद कर रहा है !...मुअज़्ज़म...आज़म...कामबख्श !

ज़ीनत० : **(आग्रह से)** जहाँपनाह, मैं उन लोगों तक आपके ये मुहब्बत-भरे अल्फ़ाज़ ज़रूर पहुँचा दूंगी ।

आलम० : **(सन्तोष से)** हम अपनी क़ब्र से भी तुम्हें दुआ देंगे, बेटी ! हम खुद अपने बच्चों को खत लिखाना चाहते हैं । इस आख़िरी वक़्त में हमारी ख्वाहिश पूरी होने दो । कातिबों को बुलाओ । **[ठण्डी साँस लेते हैं ।]**

ज़ीनत० : आपका हुक्म पूरा होगा, अब्बाजान ! **(पुकारकर)** करीम !

[करीम का प्रवेश । वह सलाम करता है ।]

ज़ीनत० : शाही कातिब को इसी वक़्त हाज़िर किया जाये !

करीम : जो हुक्म । **[सलाम कर शीघ्रता से प्रस्थान]**

आलम० : **(मन्द स्वर में)** हम खुश हुए, बेटी ! हमारी दुआएँ तुम्हारे साथ रहें । आज तक हमने शायद किसी की ख्वाहिश पूरी नहीं की, हमें कोई हक़ नहीं कि किसी से भी अपनी ख्वाहिश पूरी करने के लिए कहें । लेकिन तुमने हमारी ख्वाहिश पूरी की । बहुत दिनों तक जियो ।

ज़ीनत० : जहाँपनाह ! शहज़ादी जहाँनारा ने अब्बाजान की क़ैद में सात साल तक ख़िदमत की तो क्या मैं आपकी ख़िदमत कुछ दिनों तक भी न करूँ ?

आलम० : हमें भी क़ैद में समझो, बेटी ! हमारे गुनाहों ने हमें चारों तरफ़ से घेर रखा है । ज़मीर की ज़ंजीरों ने भी हमारे हाथ-पैर बाँध लिए हैं । हम अब इस दुनिया को आँख उठाकर भी नहीं देख सकते । जिस सल्तनत को ख़ून से सींच-सींचकर हमने इतना बड़ा किया है उसे अगर अब आँसुओं से भी सींचना चाहें तो हमें एक पूरी ज़िन्दगी चाहिए । वह हमारे पास कहाँ है ? **(गला सूख जाता है । ठहरकर)** बेटी ! पानी...पानी...गला सूख रहा है ।

[ज़ीनत प्याले में गुलाबजल लेकर पिलाती है ।]

ज़ीनत० : आप थक गये हैं, जहाँपनाह ! सारी रात आपको बहुत बेचैनी रही ।

आलम० : उस बेचैनी के ख़तम होने का वक़्त भी आ रहा है । **(खिड़की की ओर संकेत करते हुए)** देखो, ये तारे ढल रहे हैं । रात-भर इन्होंने रोशनी की और अब से वे अपनी आख़िरी घड़ियाँ गिन रहे हैं । हम भी गिन रहे हैं, लेकिन हमने उम्र-भर अँधेरा ही फैलाया । उजाले की कोई किरन नहीं रही । हम मौत को ही उजाला दे सकें तो अपने को खुश-क़िस्मत समझेंगे । **(स्तब्धता । एकबारगी चौंककर)** सुबह हो गयी क्या ? **[खिड़की की ओर देखते हैं ।]**

ज़ीनत० : **(उसी ओर देखती हुई)** हाँ, जहाँपनाह ! आसमान पर सफ़ेदी छाने लगी है ।

आलम० : **(गहरी साँस लेकर)** ख़ुदा की इबादत का वक़्त आ रहा है । **(तसबीह फेरते हैं)** ज़ीनत, हमने ज़िन्दगी-भर इबादत का ढिंढोरा पीटा, लेकिन ख़ुदा के पास तक नहीं पहुँच सके । अगर पहुँच पाते तो चलते वक़्त इतने गुनाहों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बोझ हमारे सिर पर न होता। चलने का वक़्त क़रीब आ रहा है। मुझे ख़ुशी है कि आज जुमा है। हमने ज़िन्दगी-भर इबादत कर यही चाहा कि जुमा हमारा आख़िरी दिन हो। **(अस्थिर होकर)** कातिब अभी नहीं आया?

ज़ीनत० : आ रहा होगा, जहाँपनाह! करीमबख़्श फ़ौरन ही उसे लेकर हाज़िर होगा।

आलम० : (ठण्डी साँस लेकर) ज़ीनत, जब हम पैदा हुए थे तब हमारे चारों तरफ़ हज़ारों लोग थे, लेकिन...लेकिन इस वक़्त हम अकेले जा रहे हैं। हम इस दुनिया में आये ही क्यों? हमसे किसी की भलाई नहीं हो सकी। हम वतन और रैयत दोनों के गुनाह अपने सिर पर लिए जा रहे हैं।

ज़ीनत० : आलमपनाह! आपने तो वतन और रैयत की भलाई की है, और...

आलम० : (बीच ही में रोककर) इस आख़िरी वक्त में ऐसी बात मत कहो, ज़ीनत! ये बातें बहुत बार सुनी हैं। लेकिन अब इन बातों से रूह काँपती है, दिल डूबता है। काश! ये बातें सच होतीं! **[गहरी साँस लेते हैं।]**

ज़ीनत० : नहीं, आलमपनाह! खानदाने तैमूरी में आपसे बढ़कर अद्ल करने वाला कोई नहीं हुआ।

आलम० : और उस अद्ल में हमने अपनी मुराद पूरी की।...मुराद **(मुराद शब्द से मुरादबख़्श का स्मरण आने पर)** और हमारे मुरादबख़्श ने सामूगढ़ की लड़ाई में हमारे कहने पर दारा से लोहा लिया। कितनी हैरतअंगेज़ जंग थी वह? **(सोचते हुए)** राजा रामसिंह ने तलवार का ऐसा हाथ चलाया कि हम मय हाथी के ज़मींदोज़ हो जाते, लेकिन मुरादबख़्श...मुरादबख़्श ने अपनी ढाल पर तलवार रोक राजा रामसिंह पर ऐसा वार किया कि वह हाथी के पैरों पर आ गिरा। उसका केशरिया बाना ख़ून से लथपथ होकर ज़मीन पर फैल गया, और बस इस सबका बदला मुरादबख़्श को क्या मिला? ओह...पा...नी...

[ज़ीनत फिर पानी पिलाती है।]

ज़ीनत० : हुज़ूरेआली! आपसे दस्तबस्ता अर्ज़ है कि आप अब कुछ न फ़रमायें। ऐसी बातें करके आप अपनी हालत और ख़राब कर लेते हैं।

आलम० : (उतावली से) इस वक़्त हमें मत रोको, ज़ीनत-उन्निसा! हमें मत रोको। हम कहेंगे, ज़रूर कहेंगे। बुझने से पहले शमा की लौ भड़क उठती है। हमारी याददाश्त भी ताज़ी हो रही है। एक-एक तसवीर आँखों के सामने आ रही है। हम हाथी पर बैठकर सैरगाह जा रहे हैं। आगे-पीछे हिन्दुओं का बेशुमार मजमा है। वे चीख़-चीख़ कर कह रहे हैं कि आलमपनाह! जज़िया माफ़ कर दीजिए। लेकिन हम माफ़ कैसे कर सकते हैं? दकन की लड़ाइयों का ख़र्च कहाँ से आयेगा? हम कहते हैं...तुम काफ़िर हो। जज़िया नहीं हटेगा। वे लोग हमारे रास्ते पर लेट जाते हैं। हमारा हाथी आगे नहीं बढ़ रहा है। हम गुस्से में आकर फ़ीलवान को हुक़्म देते हैं, इन कम्बख़्तों पर हाथी चला दो। हाथी आगे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बढ़ता है और सैकड़ों चीखें हमारे कान में पड़ती हैं।...हम हँसकर कहते हैं—काफ़िरो, तुम्हारी यही सज़ा है। जज़िया माफ़ नहीं हो सकता.........नही हो सकता......।

ज़ीनत० : (आँखों में आंसू भरकर) आलमपनाह !

आलम० : (उसी स्वर में) आज वह हाथी हमारे सामने झूम रहा है। मालूम होता है, वह हमारे कलेजे को चूर-चूर करता हुआ जा रहा है। ज़ीनत ! हमारा कलेजा टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा है...। इसकी दवा तुम्हारे हकीम साहब के पास नहीं है ?

ज़ीनत० : (कातर स्वर में) आलमपनाह ! आप यह दवा पी लीजिए। इस दवा से आपको बहुत फ़ायदा होगा।

[दवा का प्याला आगे बढ़ाती है।]

आलम० : (भारी साँस लेकर) जिसने सारी ज़िन्दगी खून का जाम पिया है, उसे दवा का जाम क्या फ़ायदा करेगा ? इसे फेंक दो, ज़ीनत ! उस खिड़की की राह फेंक दो।

ज़ीनत० : आलमपनाह ! यह दवा...[हिचकती है।]

आलम० : (तीव्र स्वर में) ज़ीनत ! हम अब भी हिन्दुस्तान के बादशाह हैं। हमारे हुक्म की शमशीर अब भी तेज है। फेंको, वह दवा !

[ज़ीनत खिड़की की राह से वह दवा फेंक देती है।]

आलम० : (सन्तोष से) हम खुश हुए। **(ठहरकर)** सोचो, जो दवा हकीम ने नहीं चखी, वह दवा हमारे काम की नहीं है। अहमदनगर का हकीम आगरा और दिल्ली का हकीम नहीं है।

ज़ीनत० : तो, जहांपनाह, वह दवा मैं चख लेती।

आलम० : ज़ीनत, ज़िन्दगी-भर हमने अपने ही मकान में आग लगायी है। मरते वक़्त अपनी बेटी को भी मौत का जाम चखने देते...? क्या हम हकीम को दवा चखने का हुक्म नहीं दे सकते थे ? लेकिन अब दवा पर हमारा भरोसा नहीं है, ज़ीनत, दुआ पर भरोसा है। हमारे लिए दुआ करो !...हमारे लिए दुआ करो...!

ज़ीनत० : (हाथ बाँधकर ऊपर देखती हुई) जहाँपनाह सलामत रहें ! जहाँपनाह सलामत रहें ! आ...मी...न...[आँखें बन्द कर लेती है।]

[करीम का प्रवेश]

करीम : (सलाम करके) शहजादी, कातिब हाजिर है।

आलम० : (चौंककर खुशी के स्वर में) क्या कातिब आ गया ? आ गया ? इसी वक़्त उसे हमारे रूबरू हाज़िर करो। हमारे पास ज्यादा वक़्त नहीं है।

करीम : (सलाम कर) जो हुक्म। **[शीघ्रता से प्रस्थान]**

आलम० : (सन्तोष की साँस लेकर) कातिब आ गया, बेटी ! काश, यह हमारी सारी ज़िन्दगी की दास्तान बड़े हरफ़ों में दर्ज करता ! हमारे बेटों के लिए यह बहुत

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बड़ी नसीहत होती। आलमगीर के आखिरी वक़्त में सच्ची ज़िन्दगी पैदा होती। (तसबीह फेरकर कलमा पढ़ते हैं) ला इलाह इल-लिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह...

ज़ीनत० : (आँखों में आँसू भर) अब्बाजान ! [उसका गला रुँध जाता है।]

आलम० : रोओ मत, बेटी ! हम खुश हैं कि तुम हमारे पास हो। आखिरी वक़्त में अपनी बेटी की आवाज़ से हमारी क़ब्र में फूल बिछ जायेंगे, उसके आँसुओं के क़तरों से हमारे गुनाह धुल जायेंगे। हमारी बेटी ज़ीनत ! [उसका हाथ अपने हाथ में लेते हैं।]

[कातिब का प्रवेश। ढीला-ढाला इबा (चोग़ा), कमर में कमरबन्द, सिर पर साफ़ा, सफ़ेद पैजामा, कामदार जूता। वह आकर शाही सलाम करता है।]

आलम० : (शीघ्रता से) कातिब ! तुम आ गये। हम अपने बेटों को खत लिखाना चाहते हैं। जल्द लिखो। हमारे पास वक़्त बहुत थोड़ा है। लिखना शुरू करो।

[आलमगीर आँखें बन्द कर लेते हैं।]

कातिब : (सिर झुकाकर) जो इरशाद !

[कातिब बैठकर लिखने की मुद्रा धारण करता है। कुछ देर तक स्तब्धता रहती है। फिर आलमगीर मन्द किन्तु व्यथित स्वरों में बोलते हैं। कातिब लिखता जा रहा है।]

आलम० : (धीरे-धीरे) सलाम अलेकुम...आज़म, हमारे बेटे, हम जा रहे हैं...! हम ज़िन्दगी में अपने साथ कुछ नहीं लाये, लेकिन अपने साथ गुनाहों का कारवाँ लिए जा रहे हैं। तुम उख़ूवत, अम्न व ऐतमाद पर ख़याल रखना...। यह माले दुनिया हेच है। हमारी आँखों ने खुदा का नूर नहीं देखा...जिस्म से गरमी निकल गयी है, अब कोयलों का ढेर बाक़ी है...! हाथ-पैर सूखे दरख़्त की शाखों की तरह सख़्त हो रहे हैं और कलेजे पर मायूसी की चट्टान रखी हुई है...खुदा से दूर हूँ...और दिल में कोई सुकून नहीं है...हमारे लिए कौन-सी सज़ा होगी... यह सोचा भी नहीं जा सकता...खुदा की रहमत पर हमारा पूरा यक़ीन है, लेकिन हम अपने गुनाहों का बोझ कहाँ ले जायें ? अब हमने समन्दर में अपनी किश्ती डाल दी है...खुदा...हाफ़िज़...!

ज़ीनत० : (आँखों में आँसू भरे हुए) अब्बाजान !

आलम० : (आँख बन्द किये हुए) कामबख़्श, हमारे बेटे...

ज़ीनत० : (कातिब की ओर इशारा करके) लिखो। [कातिब लिखता है।]

आलम० : हम अकेले जा रहे हैं.. तुम बेसहारे हो, इसका हमें मलाल है...! लेकिन इससे क्या फ़ायदा...? जो सज़ाएँ हमने दी हैं...जो गुनाह हमने किए हैं...जो बेइन्साफ़ियाँ हमने की हैं...इन सबका अज़ाब हम अपने आग़ोश में लिए हैं... हम तुम्हें खुदा पर छोड़ते है। अपनी माँ उदयपुरी को तक़लीफ़ मत देना...! मैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रुखसत होता हूँ...अलविदा...! **[थोड़ी देर तक स्तब्धता रहती है ।]**

जीनत० : (करुण स्वर में) अब्बाजान ! आप ऐसा खत क्यों लिखा रहे हैं ?

आलम० : (जीनत की बात पर कुछ ध्यान न देकर) ज़ीनत ! मेरी बेटी ! इस ज़िन्दगी के चिराग़ में अब तेल बाक़ी नहीं रहा...! इस ख़ाक के पुतले को कफ़न और ताबूत की जेबाइश की जरूरत नहीं...! इस बदनसीब को ज़मीन में यों ही दफ़्न कर देना...इस मुश्तेख़ाक को पहली ही मंजिल पर सिपुर्द-ख़ाक कर दिया जाये...हमें खुशी होगी अगर हमारी क़ब्र पर क़ुदरती सब्ज़ मखमल की चादर बिछी होगी...**(कुछ देर ठहरकर)** आँ जहानी हमारे गुनाहों को बख्श दीजिए...! दारा...! शुजा...! मुराद...!

[इसी समय बाहर 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनि में अज़ान होती है । आलमगीर ध्यान से सुनते हैं । उनके ओठों में कुछ स्पन्दन होता है, फिर एक झटके के साथ सिर उठाकर अज़ान आने की दिशा में नेपथ्य की ओर देखते हैं ।]

आलम० : (तसबीह फेरते हुए नेपथ्य की ओर देखकर रुकते किन्तु स्पष्ट स्वरों में) अल्ला...हो...अक...

['अकबर' का अन्तिम अंश 'बर' ओठों ही में रह जाता है और तकिये पर आलमगीर का सिर झटके से गिर पड़ता है ।]

जीनत० : (शीघ्रता से आलमगीर के सिर के समीप जाकर रुँधे हुए कण्ठ से) आलमपनाह ! अब्बा...जान...!

[कोई जवाब नहीं मिलता । बाहर अज़ान होती रहती है । जीनत अपने आँचल से आँसू पोंछती हुई आलमगीर का मुँह सिरहाने पड़े हुए रेशमी कपड़े से ढाँप देती है । कातिब घुटने टेककर दोनों हथेलियाँ जोड़कर मन-ही-मन कुछ पढ़ने लगता है ।]

[परदा गिरता है ।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 22 :

पानीपत की हार

•

पात्र-परिचय

बालाजी बाजीराव—पेशवा
जनकोजी भोंसले—सेनापति
भास्कर राव—नायक
स्त्री—पांडुरंग नैने की माँ
क़ासिद—पानीपत के साहूकार द्वारा भेजा गया
नाना फड़नवीस—राज्य के आय-व्यय लेखक—संदेश-वाहक
राजगुरु—पेशवा-वंश के कुलगुरु
द्वारपाल

•

काल—20 जनवरी, 1761 ई०
समय—संध्याकाल
स्थान—ताप्ती नदी के समीप बुरहानपुर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानीपत की हार

[बुरहानपुर में बालाजी बाजीराव का शिविर। पानीपत के भीषण युद्ध की आशंका में वे पूना से चलकर ताप्ती के किनारे बुरहानपुर तक आ गये हैं। एक ऊँचा और विस्तृत तम्बू है, जिसमें रेशम और सोने के तारों की झालरें लगी हैं। रंग-बिरंगे परदे। फर्श पर रेशमी बिछावन जिन पर सोने का काम किया गया है।

मध्य में एक ऊँचा सिंहासन है। उससे हटकर छोटे-छोटे आसन हैं किन्तु इस समय जनकोजी भोंसले और भास्कर राव अपने आसनों के समीप खड़े हुए हैं। बालाजी बाजीराव अशान्त होकर टहल रहे हैं।

चारों ओर एक निस्तब्धता छाई है। पश्चिम के सूर्य की हलकी सुनहरी किरणें बाईं ओर से शिविर में प्रवेश कर रही हैं। बालाजी बाजीराव एक क्षण ठहरकर जनकोजी भोंसले को संबोधित करते हैं।]

बालाजी : (अशान्ति से टहलते हुए एक क्षण रुककर) राज्यश्री का अपमान ! क्या यह सत्य नहीं है कि सदाशिव राव भाऊ ने दिल्ली में राज्यश्री का अपमान किया ?

जनकोजी : समाचार तो यही है, श्रीमन्त !

बालाजी : जैसे कोई पागल दर्पण में अपना मुख देखकर उस दर्पण को चूर-चूर कर दे, कोई मतवाला हाथी अपने ही महावत को पैरों से कुचल दे, कोई मूर्ख सुगन्धि फैलाने के लिए फूलों की माला हाथों में मसल दे, यह किस बुद्धि का वैभव है ? कल के समाचार का एक-एक शब्द एक भटकी हुई चिनगारी है जिससे महाराष्ट्र के वैभव में आग लग सकती है।

भास्कर : शान्त हों, श्रीमन्त ! आपकी राजनीति का सागर किसी भी अग्नि को बुझा सकता है।

बालाजी : भास्कर ! वास्तविकता समझो—यह बलिपशु का संतोष है जिसके भविष्य में एक नंगी तलवार है। सदाशिव राव भाऊ ने दिल्ली पर विजय प्राप्त की। राजधानी में प्रवेश करते ही उनकी धन की तृष्णा इतनी बढ़ गयी कि उन्होंने राजसिंहासन के स्वर्ण शृंगार को गलवा डाला। चाँदी की छत उखाड़कर

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके सिक्के ढलवा डाले। मेरे राजकोष से वे दो करोड़ सिक्के ले गये थे। वे सब क्या हुए ?

जनकोजी : यह भी समाचार है, श्रीमन्त, कि उन्होंने राजस्थान के नरेशों से तीन करोड़ सिक्के और भी प्राप्त कर लिए थे।

बालाजी : इतनी धनराशि के होते हुए फिर राजसिंहासन की मर्यादा नष्ट करने की क्या ग्रावश्यकता थी ? जनकोजी ! क्या तुम नहीं देखते कि दिल्ली की राजलक्ष्मी नेत्रों में ग्राँसू भरकर हमारे सामने खड़ी है—वह सिसकते हुए शब्दों से कह रही है कि मैं महाराष्ट्र के हाथों में नहीं, उन लुटेरों के हाथों में पड़ गयी हूँ जो राजमर्यादा नहीं जानते। जिस सिंहासन पर महाराष्ट्र का साहसी सैनिक हमारा बेटा विश्वास राव बैठना उसका सोना उखाड़ लिया जाय, राजभवन की रुपहली छत तोड़ दी जाय, यह कौन-सी राजमर्यादा है ? राजधानी की राजलक्ष्मी की यह वाणी क्या सत्य नहीं है ?

जनकोजी : सत्य है, श्रीमान् !

बालाजी : तो फिर महाराष्ट्र को इसका क्या प्रायश्चित भोगना होगा ? भगवान गजानन से पूछो। उदगेर के युद्ध में सदाशिव राव भाऊ ने निज़ाम ग्रली को पराजित कर दौलताबाद, ग्रसीरगढ़ ग्रौर बीजापुर के दुर्ग लिए ग्रौर 62 लाख की वार्षिक ग्राय प्राप्त की। इसी विजय का यह ग्रहंकार है, जिससे भाऊ उत्तर भारत की राजनीति को खिलौने की भाँति तोड़ रहा है ग्रौर महाराष्ट्र की मर्यादा कलंकित हो रही है।

जनकोजी : श्रीमन्त ! मुझे ग्राज्ञा दें कि मैं ग्रपनी सेना लेकर उत्तर भारत की ग्रोर बढ़ूँ। श्रीमन्त भाऊ के ग्रमर्यादित कार्य से भरतपुर के महाराज सूरजमल ग्रपनी तीस हजार सेना लेकर भरतपुर लौट गये ग्रौर इन्दौर के होल्कर तटस्थ हो गये।

बालाजी : ग्रौर भाऊ ने उन्हें रोकने का प्रयत्न नहीं किया ?

भास्कर : श्रीमन्त ! भाऊ ने ही तो दोनों का ग्रपमान किया। जब हमारी सेना राजसी वैभव के साथ—बड़े-बड़े तोपखानों, खेमों ग्रौर सैनिकों की स्त्रियों ग्रौर बच्चों के साथ धीरे-धीरे ग्रागे बढ़ रही थी तो महाराज सूरजमल ग्रौर महाराज होल्कर ने श्रीमन्त भाऊ को सलाह दी थी कि सैनिकों के परिवारों ग्रौर भारी खेमों को ग्वालियर या झाँसी में छोड़ दिए जावें ग्रौर हलके सामान के साथ सेना फुर्ती से ग्रागे बढ़े, तब श्रीमन्त भाऊ ने दोनों नरेशों का ग्रपमान कर दिया।

बालाजी : ग्रपमान कर दिया ? किस भाँति ?

भास्कर : श्रीमन्त, भाऊ ने होल्कर नरेश से कहा कि तुम्हारे पूर्वज बकरी भेड़ चराते रहे हैं तो यह सेना गडरियों की नहीं है जो बनजारों की भाँति चले। भरतपुर नरेश से कहा कि तुम जाट हो। जाटों में इतनी बुद्धि कहाँ कि वे राजनीति ग्रौर वैभव की बात समझ सकें। यह बात सुनकर दोनों ही रुष्ट हो गये।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भरतपुर नरेश तो रणक्षेत्र से अपनी सेनाएँ भी हटा ले गये।

बालाजी : घोर अदूरदर्शिता। यह सब ऐसे अवसर पर हुआ जब हम पानीपत की युद्धभूमि पर अहमदशाह अब्दाली की शक्ति को सदैव के लिए आगे बढ़ रहे हैं। सदाशिव राव भाऊ से मुझे पहले से ही आशंका थी किन्तु उनका अहंकार इस सीमा तक बढ़ जायगा इसकी कल्पना नहीं थी। नाना फड़नवीस को भी साथ ले गये हैं, कहीं उस बेचारे ब्राह्मणपुत्र पर भी संकट न आ जाय।

भास्कर : एक बात पर और भी विचार करें, श्रीमन्त ! दिल्ली जीतने पर श्रीमन्त भाऊ ने दिल्ली के शाह आलमगीर को हटाकर महाराष्ट्र के चिरंजीव विश्वास राव को दिल्ली का सम्राट् घोषित कर दिया। चिरंजीव तो सम्राट् होते ही किन्तु इतने शीघ्र घोषणा करना ठीक नहीं हुआ। इस घोषणा से अवध के नवाब शुजाउद्दौला और दूसरे मुसलमान सरदार जो हमारे सहायक रहे हैं, वे सब मन-ही-मन असंतुष्ट हो गये हैं। इस समय तो हमें मुसलमानों की सहानुभूति भी चाहिए।

जनकोजी : किन्तु, भास्कर राव ! अधिक चिन्ता की बात नहीं है। श्रीमन्त भाऊ के साथ बीस हजार सवार, दस हजार पैदल और इब्राहीम गारदी का तोपखाना भी है। सिंधिया की फौजें भी हैं।

बालाजी : किन्तु साथ में अहंकार और अदूरदर्शिता भी तो है। यह महाराष्ट्र का स्वभाव नहीं है, जनकोजी ! छत्रपति शिवाजी ने भी आलमगीर औरंगज़ेब से लोहा लिया। बड़ी से बड़ी फौज़ों के मुक़ाबले में उन्होंने जैसी दूरदर्शिता दिखलायी, वैसी इतिहास में कहाँ है ? अफजल ख़ाँ जैसे चालाक और कूटनीतिज्ञ सरदार को एक क्षण में समाप्त कर देना छत्रपति का ही काम था। औरंगज़ेब के चक्रव्यूह से निकल आना इतिहास की अद्वितीय घटना है। लेकिन भाऊ सदाशिव राव छत्रपति शिवाजी का उदाहरण नहीं समझ सके।

जनकोजी : अधिक चिन्ता न करें, श्रीमन्त ! पानीपत के युद्ध में हमारी ही विजय होगी। त्र्यम्बक सदाशिव पुरन्दरे हमारी सेना के बड़े कुशल सेनापति हैं। साथ विट्ठल शिविदेव, नरूशंकर, शमशेर बहादुर, बलवन्त गजानन मेहन्दले एक-से-एक चुने हुए वीर सेना के साथ हैं। महाराष्ट्र की शक्ति बड़े-से-बड़े अहंकार से नष्ट नहीं हो सकती। फिर साथ में श्रीमन्त के चिरंजीव विश्वास राव भी हैं। यद्यपि वे केवल उन्नीस वर्ष के हैं किन्तु उनके सामने बड़े-से-बड़े वीर के भी पैर उखड़ जाते हैं।

भास्कर : वे तो मेरे बचपन के साथी रहे हैं, श्रीमन्त ! उनकी वीरता तो ऐसी है कि वे एक साथ दस सैनिकों से लड़ सकते हैं।

बालाजी : **(गहरी साँस लेकर)** विश्वास राव—महाराष्ट्र के आदर्शों की रक्षा करने में समर्थ। इसी विश्वास से उसका नाम राजगुरु ने विश्वास राव रखा। भाऊ सदाशिव राव चाहते थे कि पानीपत के युद्ध में उसे न भेजा जाय। वह बालक

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है । किन्तु मैंने ही उसे जाने का आदेश दिया । मैंने कहा कि महाराष्ट्र के बालक युद्धभूमि में ही बड़े होते हैं । उनकी तलवार रणक्षेत्र में ही भवानी के कृपाण से शक्ति प्राप्त करती है । उनका रक्त तभी सार्थक होता है जब वह अपने रंग से रणभूमि का अभिषेक करे ।

जनकोजी : वे तो, श्रीमन्त, शत्रुओं के रक्त से रणभूमि का अभिषेक करेंगे । फिर आपके आदेश से राजस्थान के सभी नरेश श्रीमन्त भाऊ की सहायता कर रहे हैं । जैसे ही श्रीमन्त भाऊ चम्बल पार कर आगे बढ़े कि जनकोजी सिन्धिया दामाजी गायकवाड़, जसवन्त राव पोवार, अप्पाजी आठावले, अन्ताजी मनकेश्वर और गोविन्दराव बुनेले अपनी-अपनी सेना लेकर उनसे मिले हैं । हमारी सैन्य-शक्ति अपार है, श्रीमन्त !

बालाजी : यह पानीपत का युद्ध है, जनकोजी ! इसी में महाराष्ट्र के भाग्य का निर्णय है । अफ़ग़ानिस्तान का अहमदशाह अब्दाली महाराष्ट्र का उत्कर्ष सहन नहीं कर सकता । इसीलिए वह अवसर देखकर आता है । और मैं कहता हूँ कि शत्रु को अवसर देना ही राजनीति की सबसे बड़ी भूल है । तुम जानते हो, जनकोजी, शत्रु के आने का अवसर क्या है ? अवसर है हमारी परस्पर की फूट । जब हम छोटी-छोटी बातों पर राष्ट्र की इकाई भूल जाते हैं, तब हम जंगली जानवरों की तरह अपनी-अपनी माँदें अलग बनाते हैं और व्याघ्र हमें एक-एक कर समाप्त कर देता है ।

जनकोजी : सत्य है, श्रीमन्त !

बालाजी : सदाशिव राव भाऊ यही भूल करते हैं । उन्होंने अपनी ही पंक्ति में फूट कर दी और अहमदशाह अब्दाली व्याघ्र की तरह महाराष्ट्र पर टूटना चाहता है ।

भास्कर : मुझे विश्वास है, वह घेर कर मारा जायगा, श्रीमन्त !

बालाजी : युद्ध और वर्षा के बादलों पर विश्वास कैसा ? आग और पानी कब किस ओर बरस जाय कौन जानता है, भास्कर ! यद्यपि हमारी सैन्य-शक्ति महान् है, किन्तु हृदय में अनेक प्रकार की शंकाएँ सर्प की भाँति चल रही हैं । पानीपत का नाम एक फूत्कार की भाँति हृदय में गूंज रहा है । आज भगवान् गजानन की आरती दो बार बुझी । कहीं महाराष्ट्र की आरती के दो दीप न बुझ गये हों ?

जनकोजी : शत्रुओं के दो वीर मारे गये होंगे, श्रीमन्त ! आप आज्ञा दें तो दस हजार सैनिक लेकर मैं भी पानीपत की ओर प्रस्थान कर दूं ।

बालाजी : तुम नहीं, मैं जाऊँगा, जनकोजी ! समाचार जानने की उत्सुकता में पूना से यहाँ बुरहानपुर तक आ ही गया हूँ, नर्मदा पाट कर शीघ्र ही दिल्ली पहुँचना चाहता हूँ । नाना फड़नवीस में भी मेरा मन लगा हुआ है । उसका न जाने क्या हाल होगा । उसके प्राणों का दायित्व भी हम पर है ।

भास्कर : आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, श्रीमन्त ! जनकोजी को ही जाने की अनुमति प्रदान करें । वे वहाँ से शीघ्र ही विजय का समाचार लावेंगे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बालाजी : (सोचते हुए) विजय...विजय...राज्यश्री के अपमान पर विजय...पंक्ति में फूट होने पर भी विजय...

[बाहर किसी के क्रन्दन की ध्वनि। सिसकियाँ क्रमशः अधिक जोर से सुनाई पड़ती हैं।]

बालाजी : (चौंककर) यह कैसा क्रन्दन ? (भास्कर राव से) भास्कर राव बाहर जा के देखो !

भास्कर : (सिर झुकाकर) जैसी आज्ञा, श्रीमन्त ! [शीघ्रता से प्रस्थान]

बालाजी : आज प्रातःकाल जब भगवान् गजानन की आरती हवा के तीव्र झोंके से बुझ गई तभी शंका का विष मेरे हृदय में फैलने लगा था कि पानीपत से आया हुआ समाचार भी कहीं मेरी आशा की आरती न बुझा दे। (सिसकियाँ तीव्रता से सुनाई देती हैं) यह कौन स्त्री है ?

[शिविर के बाहरी दरवाजे से एक स्त्री शीघ्रता से भास्कर राव के साथ आती है। वह विह्वलता में बालाजी बाजीराव के चरण पकड़ लेती है।]

स्त्री : (सिसकियाँ लेते हुए) पांडुरंग...पांडुरंग चला गया, श्रीमन्त ! युद्ध में...युद्ध में मारा गया...मेरा पांडुरंग...(सिसकियाँ लेकर) मेरा अकेला लाल...पांडुरंग...मुझे छोड़कर...चला गया। [सिसकियाँ जोर-जोर से लेती है।]

बालाजी : (सन्तोष के स्वरों में) पांडुरंग चला गया ? मातृभूमि पर रक्त की बूंदें भी चढ़ती हैं, देवि ! आँसू की बूंदें नहीं। उठो ! (भास्कर से) भास्कर ! यह कौन स्त्री है ?

भास्कर : सेनानायक पांडुरंग सदाशिव नैने की माँ है। श्रीमन्त ! यह अभी पानीपत के गाँव से आयी है।

बालाजी : तो पांडुरंग की मृत्यु हुई ! कोई बात नहीं, देवि ! महाराष्ट्र में हजारों माँओं ने अपने पुत्रों की बलि दी है। यदि उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बहती तो महाराष्ट्र में प्रलय की बाढ़ आ जाती। नहीं, नहीं, उनके अश्रु पानी बनकर नहीं बहे। उनके अश्रु प्रतिशोध के स्फुलिंग बन गये। तभी तो महाराष्ट्र में इतना प्रकाश है, इतनी उष्णता है। तुम भी अपने आँसुओं को संचित रखो। दुर्दिन में महाराष्ट्र के काम आवेंगे। (स्त्री बालाजी राव के पैर छोड़कर उठती है। उसकी सिसकियाँ बन्द होती हैं) आज महाराष्ट्र धैर्य की कसौटी पर कसा जा रहा है। सही सूचना जान-बूझकर छिपायी जा रही है। और महाराष्ट्र की तीखी तलवार म्यान से निकली है। बोलो, देवि ! पानीपत के युद्ध में सैनिकों की विजय कब तक निश्चित हो जायगी। तुम तो पानीपत से ही आ रही हो।

स्त्री : (सँभलकर) समाचार अच्छे नहीं हैं, श्रीमन्त ! हमारी सेना का कार्यक्रम निश्चित ढंग से नहीं चलता। जब आक्रमण का अवसर नहीं था, तभी श्रीमन्त भाऊ ने आक्रमण करने की आज्ञा दी और उसी में हमारी सेना के चार हज़ार व्यक्ति कट गये। उन्हीं में आपका पांडुरंग भी था, सेना में सबसे आगे। उसकी तलवार की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गति जैसे भवानी की तलवार की गति थी। 'हर-हर महादेव' कहकर शत्रु पर बाज की तरह टूटा। जब शत्रु उसकी तलवार के सामने आते थे तो गाजर-मूली की तरह कट जाते थे। कितनों का उसने रक्त बहाया। लेकिन उसका भी रक्त बहा, वीर सैनिक शत्रुओं का रक्त बहाकर जीवित भी तो लौटते हैं। मेरा पांडुरंग जीवित नहीं लौट सका। मुझसे कहता था, श्रीमन्त, कि मैं तुम्हें लेकर श्रीमन्त को विजय की सूचना दूंगा। आज मैं ही उसकी मृत्यु की सूचना लेकर आई हूँ। (**सिसकियाँ**) मैं उसके बिना जीवित नहीं रहूँगी, श्रीमन्त !

बालाजी : धैर्य रखो, देवि ! तुम मेरे दुःख का अनुमान क्यों नहीं करतीं, तुम्हारा तो केवल एक ही पुत्र रणभूमि की बलि हुआ है, मेरे चार हज़ार पुत्र मारे गये। विश्वास राव कहाँ है ? वह भी तो सेना के सामने युद्ध करता है ?

स्त्री : श्रीमन्त ! विश्वास राव जी के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जानती। मैं तो पहले ही युद्ध में अपने पुत्र को खोकर चली आई हूँ। [**हलकी सिसकी**]

बालाजी : विश्वास राव भी रणकुशल है। उसने हज़ारों शत्रुओं को मारा होगा ? वह हाथी पर सवार होकर युद्ध करना अच्छी तरह जानता है। उसने तो हाथी पर से ही युद्ध किया होगा ?

स्त्री : मैं नहीं जानती, श्रीमन्त !

बालाजी : तुम नहीं जानतीं किन्तु सेना का प्रत्येक वीर उसे जानता है। जब दोनों हाथों से वह तलवार चलाता है तो ज्ञात होता है जैसे एक ही तलवार दस तलवारें बन गई हैं। अच्छा होता यदि पांडुरंग उसके साथ ही रहता। वह कवच की भाँति पांडुरंग की रक्षा करता।

स्त्री : मेरे पांडुरंग का ऐसा भाग्य कहाँ था, श्रीमन्त ! वह वीरता से लड़ा और रणभूमि में सो गया।

बालाजी : वह रणभूमि में नहीं, युद्ध की शैय्या पर सोया है। पुत्र की कीर्ति ही माता के हृदय को संतोष दे सकती है। विपत्ति से विवाद नहीं किया जा सकता, देवि ! यदि शोक को उत्तर देना है तो साहस का कवच धारण करो। तूफ़ान और काली घटाओं में इन्द्रधनुष बनो। तुम्हारे पुत्र का बलिदान तो ऐसा है कि मृत्यु की भी आँखों में आँसू आ जायँ, किन्तु तुम हँसो इसलिए कि तुम माता हो। तुमने ऐसे पुत्र को जन्म देकर अपना मातृत्व अमर कर दिया है।

स्त्री : श्रीमन्त के वचनों से मुझे जीवन-दान मिला है, नहीं तो पुत्र के बिना मैं जीवित नहीं रह सकती थी।

बालाजी : तुम्हारा पुत्र तो जीवित है, देवि ! महाराष्ट्र के कण-कण में जीवित है। पहले वह सीमित था, अब असीम हो गया। प्रभु ने सबसे सुन्दर देह फूल की बनायी। किन्तु उन देहों में वह प्राण की प्रतिष्ठा करना भूल गया। तुम्हारे पुत्र ने उन देहों में प्राण की प्रतिष्ठा की है और आज प्रत्येक फूल रक्त को मुस्कान में बदल कर आशा और उल्लास का संदेश दे रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्त्री : मैं धन्य हुई, श्रीमन्त !

बालाजी : कोई भी विपत्ति लम्बी नहीं है, देवि ! यदि तुम उसे देश-प्रेम और राष्ट्रीयता से नापो। सूर्य की भाँति परिस्थितियों के उज्ज्वल पक्ष को ही देखो। **(भास्कर राव से)** भास्कर राव ! वीर जननी के विश्राम की व्यवस्था राजकीय शिविर में हो !

भास्कर : जो आज्ञा, श्रीमन्त !

बालाजी : **(स्त्री से)** जाओ, देवि ! विश्राम करो !

स्त्री : श्रीमन्त इसी प्रकार दीन-दुखिया की चिन्ता करें ! **[प्रणाम करती है।]**

[भास्कर के साथ स्त्री का प्रस्थान]

बालाजी : जनकोजी ! जननी का हृदय देखा। सृष्टि की किसी भी वस्तु से महान् पांडुरंग ने मातृभूमि पर जीवन निछावर किया। और माता ऐसे पुत्र पर ही जीवन निछावर करना चाहती है।

जनकोजी : श्रीमन्त ! मुझे तो कुछ बोलने का साहस ही नहीं हुआ। जितना उसके करुण-क्रन्दन से हृदय द्रवित हो रहा था, उतना ही आपके उत्साहमय वाक्यों के प्रवाह से उमंग और उत्साह की किरणें फूट रही थीं। श्रीमन्त ही उसे धैर्य दे सकते थे, अन्यथा वह अपना जीवन तो समाप्त ही करने जा रही थी। मैं अवाक् होकर निराशा और आशा के द्वन्द्व को देखता ही रहा। अन्त में आपका आशा का सन्देश ही विजयी हुआ।

बालाजी : जनकोजी ! माता अपने पांडुरंग की ममता में इतनी अधिक लीन हो गई कि वह यह नहीं सोच सकी कि महाराष्ट्र के जो चार हज़ार वीर कट गये हैं उनकी माताएँ भी तो उसी की भाँति दुखी होंगी। फिर हमारा विश्वास राव भी तो युद्ध में गया है। और पांडुरंग की भाँति वह भी सेना के आगे युद्ध करता है। वह महाराष्ट्र की नींव में शत्रुओं का रक्त भर रहा है जिससे नींव और भी सुदृढ़ हो जाय।

जनकोजी : सचमुच, श्रीमन्त ! महाराष्ट्र की नींव की सुदृढ़ता श्रीमन्त विश्वास राव की वीरता की तलवार के सहारे है। फिर यह तो भवानी की इच्छा है कि वे किसे रणभूमि में अमरत्व का वरदान देती हैं। राज्य तो बनते-बिगड़ते रहते हैं।

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल : श्रीमन्त की जय !

बालाजी : आज्ञा है।

द्वारपाल : श्रीमन्त ! पानीपत के साहूकार ने जो क़ासिद भेजा है, वह द्वार पर उपस्थित है।

बालाजी : शीघ्र ही उसे भेजो ! बहुत दिनों से उसकी प्रतीक्षा थी।

द्वारपाल : जो आज्ञा। **[प्रस्थान]**

बालाजी : पानीपत के साहूकार से सच्ची सूचनाएं मिल सकेंगी। हम आज भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानीपत के युद्ध का परिणाम नहीं जान सके हैं।

जनकोजी : श्रीमन्त ! पानीपत का साहूकार आपका सेवक है। उसने प्रत्येक महत्व-पूर्ण घटना के समाचार भेजने का वचन दिया था। अवश्य महाराष्ट्र की विजय की सूचना होगी।

[**क़ासिद का प्रवेश**]

क़ासिद : (**हाथ जोड़कर**) श्रीमन्त की जय !

बालाजी : स्वस्ति ! तुम पानीपत से आये हो, क़ासिद ?

क़ासिद : हाँ, श्रीमन्त !

बालाजी : साहूकार जी सानन्द हैं ?

क़ासिद : सानन्द नहीं हैं, श्रीमन्त ! बहुत चिन्तित हैं।

बालाजी : हम भी बहुत चिन्तित हैं। पानीपत के युद्ध में महाराष्ट्र के भाग्य का क्या निर्णय हुआ ? भाऊ विश्वास राव और नाना फड़नवीस तो कुशल से हैं ?

क़ासिद : यह पत्र भेजा है उन्होंने, श्रीमन्त ! [**पत्र आगे बढ़ाता है।**]

बालाजी : जनकोजी ! पत्र पढ़ो।

जनकोजी : जो आज्ञा। (**क़ासिद के हाथ से पत्र लेकर पढ़ते हुए**) राजमान राजे श्री पंत प्रधान पेशवा बालाजी बाजीराव की सेवा में साहूकार केशव का दण्ड-प्रणाम स्वीकार हो। आगे समाचार ये है कि पानीपत के युद्ध की ज्वाला में हमारे दो मोती घुल गये।

बालाजी : (**चीखकर बीच ही में**) जनकोजी !

जनकोजी : श्रीमन्त ! संभवतः पत्र के अंत में कोई संतोषप्रद समाचार हो। पूरा सुनने की कृपा करें। (**पुनः पढ़ते हुए**) हमारे दो मोती घुल गये, सत्ताईस मोहरें खो गयीं और चांदी और तांबे के खोए हुए सिक्कों की गणना भी नहीं की जा सकती। सामन्तों के साथ न देने के कारण पानीपत की लड़ाई में हार......

बालाजी : (**बीच ही में**) पानीपत की लड़ाई में हार ? (**करुण स्वर**) पानीपत की लड़ाई में...हार...

जनकोजी : श्रीमन्त अपने को सँभालें...।

बालाजी : जनकोजी ! यह क्या हो गया ? पानीपत के युद्ध में इतनी अधिक सेना के होते हुए हार ? यह असम्भव है, यह समाचार झूठ है।

क़ासिद : श्रीमन्त ! क्षमा करें। पानीपत की हार मैंने इन्हीं आँखों से देखी है। भगवान की कृपा होती अगर मेरी आँखों की ज्योति उसी समय नष्ट हो जाती। हज़ारों महाराष्ट्र वीर अफ़ग़ानियों और पठानों की तलवारों से कट गये। उनके रक्त की धार से सारा पानीपत लाल हो गया।

बालाजी : पानीपत लाल हो गया ? क़ासिद ! क्या अहमदशाह अब्दाली की तलवार इतनी तेज़ थी ? ओह ! (**सिर पकड़कर**) यह क्या हो गया ?

क़ासिद : श्रीमन्त ! अहमदशाह अब्दाली के पैर तो उखड़ चुके थे। उसकी सेना

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाग रही थी। उसी समय श्रीमन्त होलकर की फ़ौज ने मैदान छोड़ दिया। उनके सिपाही जान-बूझ कर पीछे हटते हुए रणक्षेत्र से भाग उठे। तभी अहमदशाह अब्दाली की फ़ौज आगे बढ़ी और उसकी हार जीत में बदल गयी।

बालाजी : (**विह्वलता में**) तो...तो होल्कर ही इस हार का उत्तरदायी है ? भाऊ ने उसकी बात नहीं मानी इसीलिए उसने मौके पर धोखा दिया ? भाऊ और विश्वास राव ने कुछ नहीं किया ?

क़ासिद : श्रीमन्त ! जैसे ही श्रीमन्त होल्कर की सेना भागी कि श्रीमन्त विश्वास राव ने अपना हाथी शत्रुओं की मार-काट के बीच में बढ़ा दिया। सैकड़ों शत्रुओं को हाथी के पैरों के नीचे दबाते हुए उन्होंने अपने बाएँ हाथ के भाले से घुड़सवारों की छाती छेद दी और दाहिने हाथ की तलवार से शत्रुओं के सिर उड़ा दिए।

बालाजी : विश्वास राव !...मैं जानता था कि तुम शत्रुओं से महाराष्ट्र के मरे हुए वीरों का बदला लोगे। हाँ, फिर क्या हुआ ?

क़ासिद : जब श्रीमन्त विश्वास राव इस तरह शत्रुओं के सिर उड़ा रहे थे उसी समय, श्रीमन्त, उसी समय उनके पेट में गोली लगी।

बालाजी : (**करुणा से**) गोली !...क्या...क्या...वे घायल हो गये ?

क़ासिद : वे हाथी पर ही निढाल होकर बैठ गये। श्रीमन्त ! यह ख़बर फैलते ही श्रीमन्त भाऊ घोड़ा दौड़ा कर उनके पास पहुँचे। श्रीमन्त विश्वास राव को आहत देखकर उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे। तभी श्रीमन्त विश्वास राव ने कहा, काका ! आँसू बहाने का समय नहीं है। हारते हुए युद्ध को जीत में बदलिए। एक-एक क्षण रक्त की बून्द बन कर बह रहा है। शत्रु को मारिए...

बालाजी : (**गहरी साँस लेकर**) धन्य हो, विश्वास ! तुम महाराष्ट्र के सच्चे सपूत हो। (**उत्सुकता से**) फिर ?

क़ासिद : श्रीमन्त विश्वास राव की ललकार सुनकर भाऊ शत्रुओं के बीच में घुस गये। और फिर उनका पता नहीं चला कि वे कहाँ गये। दोनों ही वीर पानीपत की भेंट हो गये।

बालाजी : (**करुणा से**) भेंट हो गये ? आह ! (**सिर पकड़ लेते हैं**) दो मोती घुल गये—तभी साहूकार ने ऐसा लिखा। भगवान् गजानन ! यह तुमने क्या किया ? ये दोनों रत्न—अपनी ऋद्धि-सिद्धि का कोष इन्हीं से भरना था तुम्हें ? हाय, भाऊ ! हाय, विश्वास !

जनकोजी : श्रीमन्त ! चलिए, शयनकक्ष में चलिए। आपका स्वास्थ्य पहले से ही ख़राब है।

बालाजी : (**तीव्रता से**) मेरे सम्बन्ध में क्यों बात कर रहे हो ? भाऊ और विश्वास के विषय में बातें करो। दोनों वीर मेरे सिंहासन को अपने रक्त से अभिषिक्त कर चले गये और मैं अस्वस्थ होकर उसी सिंहासन पर बैठा हूँ। क्या मैं धिक्कार के योग्य नहीं हूँ ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनकोजी : श्रीमन्त ! आप तो युद्ध में जाने के लिए प्रस्तुत ही थे। आपकी दुर्बलता देखकर ही श्रीमन्त भाऊ ने आपसे रुक जाने की प्रार्थना की थी।

बालाजी : और मैं रुक गया, जनकोजी ! मैं समर-भूमि में जाने से रुक गया और वे दोनों चले गये। युद्ध-यात्रा पर जाने से पहिले भाऊ और विश्वास राव मेरे पास आये थे। दोनों वीर वेश में सजे हुए थे। दोनों ने मेरे चरण स्पर्श किए और जाने की आज्ञा माँगी। मैंने भगवान् गजानन के चरणों के फूल उन दोनों के मस्तक पर रखे। उस वीर-वेश में मेरा विश्वास राव कितना सुन्दर लग रहा था, जैसे स्वामी कार्तिकेय युद्ध के लिए सजे हों। बड़ी-बड़ी आँखों में युद्ध का अनुराग। हँसकर उसने मुझे पिता नहीं कहा—पन्त प्रधान श्रीमन्त पेशवा कहा और एक सैनिक की भाँति सिर उठाया। मैंने देखा, उसके माथे पर टीका नहीं त्रिपुण्ड है। मैंने भी हँसी में पूछा—सैनिक ! तुम्हारे मस्तक पर त्रिपुण्ड ? उस ने कहा—सेवक को रणक्षेत्र में रौद्र रूप धारण करना है, इसीलिए मस्तक पर त्रिपुण्ड अंकित किया है। मैंने कहा—भगवान् शंकर तुम्हारी रक्षा करें (**शिथिल स्वर से**) किन्तु रक्षा नहीं हो सकी।

जनकोजी : यह एकमात्र संयोग की बात है, श्रीमन्त, कि उन्हें गोली लग गई।

बालाजी : वह गोली मुझे लगनी चाहिए थी। यदि मैं वहाँ होता तो विश्वास को पीछे कर मैं अपने वक्षस्थल पर गोली खाता। लेकिन मैं वहाँ नहीं पहुँच सका। लेकिन इस गोली का पूरा बदला लिया जायगा। (**क़ासिद से**) क़ासिद ! चलो पानीपत मेरे साथ। मैं अहमदशाह से युद्ध करूँगा। कहूँगा, तुमने मेरे बच्चे के साथ युद्ध कर क्या वीरता दिखलायी ! मुझसे युद्ध करो। मुझसे युद्ध ...[**शब्द गले में उलझ जाते हैं।**]

क़ासिद : धैर्य रखें, श्रीमन्त ! आपका प्रताप तो देश में चारों ओर फैला है। अहमदशाह पानीपत का युद्ध जीतकर भी पानीपत में नहीं है। वह अफ़ग़ानिस्तान की तरफ चला गया। जीतकर भी जैसे वह हार गया है। श्रीमन्त ! उसकी इतनी हार हुई है कि वह उसे जीत कर भी पूरा नहीं कर सकता।

बालाजी : लेकिन मेरी कितनी हानि हुई है, क़ासिद, यह कौन जान सकेगा। मैं दुखी हूँ। तुमसे फिर बात करूँगा। तुम जाओ।

क़ासिद : जो आज्ञा। [**प्रस्थान**]

बालाजी : पांडुरंग नेने की माँ से कहना, जनकोजी, कि मैंने भी अपना प्यारा पुत्र खो दिया है और मेरी आँखों में आँसू नहीं हैं। कहना कि पांडुरंग अकेला नहीं गया है। उसके साथ मेरा विश्वास राव भी है और साथ में लक्षाधिक महाराष्ट्र के सैनिक। मेरा सूर्य प्रकाश की अनन्त किरणों के साथ डूबा है। अब अंधेरी रात है और मैं हूँ।

[**अपना सिर हथेली से टेक लेते हैं। निस्तब्धता। एक क्षण बाद घन्टे की ध्वनि सुनायी पड़ती है।**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनकोजी : श्रीमन्त ! राजगुरु का आगमन हो रहा है ।

बालाजी : नदी की बाढ़ ने जब किनारों को तोड़ दिया तब शरद ऋतु की निर्मलता आ रही है । जब नेत्रों की ज्योति समाप्त हो गयी तब अंजन की रेखा का क्या उपयोग होगा ?

[**राजगुरु का प्रवेश**]

राजगुरु : (**आते ही**) धर्मासाठीं मरावें । मरोनि अवघ्यासी मारावें । मारितां मारितां घ्यावें । राज्य आपलें ।

बालाजी : राजगुरु के चरणों में बाजीराव का प्रणाम !

जनकोजी : चरणों में जनकोजी का प्रणाम !

राजगुरु : स्वस्ति ! पंत प्रधान ! शोक से अपने जीवन को कुरूप मत बनाओ। पानीपत की हार केवल परिस्थितियों की हार है, वीरों की हार नहीं । और जब वीरों की हार नहीं तब तुम्हारा निरुत्साह और शोक अनुचित है । यदि तुम्हारे हृदय में निरुत्साह और शोक आ गये तो मैं समझूंगा कि ये दोनों अहमदशाह अब्दाली के गुप्तचर हैं जो तुम्हारे हृदय से आरम्भ कर सारे महाराष्ट्र को क़त्ल करने आये हैं । इन गुप्तचरों को दूर करो, नहीं तो ये तुम्हारे हृदय को ही दूसरा पानीपत बना देंगे, जिससे जीत का कोई अंकुर नहीं उग सकेगा ।

बालाजी : राजगुरु ! मेरे हृदय में जिज्ञासा है कि महाराष्ट्र ने ऐसा कौन-सा पाप किया जिसका परिणाम इतना भयावह हुआ । पानीपत ने हमारा पानी उतार लिया, हमारी पत नष्ट कर दी । भाऊ और विश्वास राव भी चले गये, राजगुरु ! यह किस महापाप का दण्ड है ?

राजगुरु : पंत प्रधान ! न यह महापाप है, न महादण्ड । राज्य में महापाप तो तब होता है जब राजा निरंकुश और अत्याचारी हो, जनता की सुख-सुविधा छीन ली जाय, उस पर अनेकानेक कर लगाये जायँ, जब दीन प्रजा को खाने-पीने और रहने की सुविधा न हो । ऐसा तो तुम्हारे राज्य में नहीं है । तुम तो प्रजा को अपनी संतान समझते हो । पानीपत की हार महादण्ड भी नहीं है । महादण्ड तो तब होता जब राज्य आततायियों के हाथ में चला जाता । जनता की सभ्यता और संस्कृति समाप्त हो जाती । जनता का नैतिक वल और धर्म नष्ट कर दिया जाता । यह तो कुछ भी नहीं हुआ । केवल सुन्दर रणक्षेत्र में हमारी थोड़ी-सी सेना वीरगति को प्राप्त हुई । मैं देखता हूँ कि इस थोड़ी-सी पराजय की प्रतिक्रिया होगी । समस्त महाराष्ट्र फिर से ऐक्य के सूत्र में बंधेगा और पानीपत का बदला शत्रुओं के प्रचण्ड ऐश्वर्य और वैभव से लिया जायगा । समर्थ स्वामी रामदास ने कहा है—

आहे तितुकें जतन करावें । पुटे आणिक मेलवावें ।
महाराष्ट्र राज्यचि करावें । जिकड़े तिकड़े ।

बालाजी : आपके कथन से शान्ति मिली, राजगुरु !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजगुरु : आज रात में भगवान् गजानन की आरती होगी। उसमें पंत प्रधान आने का कष्ट करें।

बालाजी : अवश्य उपस्थित होऊँगा। एक बात और बतलाएँ, राजगुरु! पानीपत से कोई सूचना मिली कि नानाफड़न वीस कहाँ है? वह युद्ध में तो नहीं मारा गया? दुबला-पतला बीमार लड़का विश्वास राव की भाँति प्रिय! वह कैसे बचा होगा?

राजगुरु : नाना फड़नवीस सुरक्षित है।

बालाजी : **(उल्लास से)** सुरक्षित है! धन्य, गजानन! धन्य, राजगुरु! वह कहाँ है?

राजगुरु : वह पानीपत से दो घंटे पूर्व लौटा। मेरे ही साथ यहाँ आया है। द्वार पर है।

बालाजी : **(विह्वलता से)** द्वार पर है? जनकोजी! तुम जाकर देखो और उसे शीघ्र ही मेरे पास लाओ।

जनकोजी : जो आज्ञा, श्रीमन्त! **[प्रस्थान]**

बालाजी : राजगुरु! नाना फड़नवीस बच गया! भगवान् गजानन तुमने मेरे नाना को बचा लिया। मुझे तो ऐसा लगता है, राजगुरु, जैसे मेरा विश्वास राव ही आ गया। भाऊ के साथ गया था, काशी और वृन्दावन की तीर्थयात्रा करने, रण-यात्रा भी कर ली उसने।

राजगुरु : अच्छा! अब आप नाना फड़नवीस से मिलें किन्तु किसी कारण से आप दुखित न हों। मैं चलूंगा, मुझे पूजा के लिए देर हो रही है।

बालाजी : प्रणाम करता हूँ। भगवान् गजानन से प्रार्थना करें कि महाराष्ट्र के भविष्य पर आँच न आने पावे।

राजगुरु : **(हाथ उठाकर)** स्वस्ति! **[प्रस्थान]**

[उनके प्रस्थान पर फिर घंटा बजता है।]

बालाजी : **(सोचते हुए)** ओह, नाना! तुम बच गये, नहीं तो मेरे दुर्भाग्य ने मेरे सभी रत्न मुझ से छीन लिये। तुम्हारा बच कर आ जाना तो वैसा ही है जैसे किसी को उसकी खोई हुई दृष्टि फिर से प्राप्त हो जाय।

[जनकोजी के साथ नाना फड़नवीस का प्रवेश]

बालाजी : ओह! नाना तुम आ गये। **(उठकर)** देखूँ, कहीं तुम्हें तो कोई घाव नहीं लगे। नहीं...नहीं...तुम स्वस्थ और सकुशल हो।

नाना० : श्रीमंत की जय!

बालाजी : नाना! मेरी जय बोलते हो? जय...जय...**(व्यंग्य की हँसी हँसते हैं)** मेरा परिहास न करो, नाना! अहमदशाह अब्दाली की जय बोलो। पानीपत में उसने मेरी दोनों भुजाएँ काट लीं—भाऊ और विश्वास। उनका रक्त देखा था तुमने? कितना लाल था? **(जनकोजी से)** जनकोजी! तुम अब मुझे अकेला रहने दो नाना के साथ। इस समय मुझे किसी सेनापति की आवश्यकता नहीं है। तुम जाओ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनकोजी : जो आज्ञा, श्रीमन्त ! [प्रस्थान]

बालाजी : अभी राजगुरु आये थे, नाना। उन्होंने समर्थ गुरु रामदास की वाणी सुनायी। मैंने उनसे बड़ी शक्ति पाई। बड़ी कठिनाई से मैंने अपने आँसू तो रोक लिए किन्तु भाऊ और विश्वास राव के रक्त की बूंदें मेरी आँखों के भीतर ही भीतर बह रही हैं, नाना ! जो किसी के हाथों से नहीं पोंछी जा सकतीं।

नाना० : श्रीमंत ! दोनों वीरों का रक्त इतिहास भी नहीं पोंछ सकता। बहने दीजिए उसे। महाराष्ट्र की फूट की संधियाँ शायद उसी रक्त से भरेंगी। मैं लज्जित हूँ कि अपना रक्त बहाने का अवसर न पा सका। श्रीमन्त भाऊ ने शपथ देकर मुझे रणभूमि से लौटा दिया।

बालाजी : वे तीर्थयात्री को रण-यात्री कैसे बना सकते थे। भाऊ ने ठीक किया कि मेरे सहारे के लिए उन्होंने तुम्हें वापस लौटा दिया। लेकिन तुम बतलाओ, नाना ! जो तुम्हें भाई के समान प्रिय था उस विश्वास राव को खोकर मैंने क्या नहीं खो दिया ?

नाना० : श्रीमन्त ने ऐसे वीर पुत्र के पिता होने का गौरव प्राप्त किया है। इस पानीपत के युद्ध में हार कर भी महाराष्ट्र ने युद्ध-वीरों को उत्पन्न करने का गौरव घोषित कर दिया है। वह पराजय पाने पर भी विजयी है।

बालाजी : तुम सत्य कहते हो, नाना ! हमारे महाराष्ट्र के वीर यदि विजयी नहीं हो सके तो शत्रु को मार कर मरने का साहस तो दिखला सके।

नाना० : यदि यही साहस भविष्य में परस्पर की फूट की जड़ उखाड़ सका तो सत्य ही हिन्दू पद पादशाही की राजनीति अखण्ड राजनीति होगी, श्रीमन्त !

बालाजी : किन्तु पानीपत की हार...

नाना० : (बीच ही में) श्रीमन्त क्षमा करें। मैं बीच ही में बोल रहा हूँ। पानीपत की हार की बात जल्दी-से-जल्दी भूलने की बात है। हम विपत्तियों के पक्षियों को सिर पर उड़ने से नहीं रोक सकते, किन्तु उन्हें राज्य में घोंसले बनाने से रोक सकते हैं।

बालाजी : लेकिन यह कैसे भूला जा सकता है कि आज महाराष्ट्र के दो परम वीर सदाशिव राव भाऊ और विश्वास राव नहीं हैं।

नाना० : श्रीमन्त ! यदि हमारी पूर्व दिशा की खिड़कियाँ टूट जायँ तो क्या सूर्योदय का प्रकाश हमें नहीं मिलेगा ? प्रकाश तो सब तरफ से आने का रास्ता खोजता है। श्रीमन्त ! हम कपड़ों को उलट कर नहीं पहिनते लेकिन यदि हम बादलों को उलट कर देखें तो हमें प्रकाश-ही-प्रकाश दिखलायी देगा। इस समय तो धैर्य ही हमारा राज्य है और साहस ही हमारा मुकुट है। हमारा दुःख हमारी वीरता की ही छाया है क्योंकि हम प्रकाश में खड़े हैं। छाया का महत्त्व नहीं है, श्रीमन्त ! प्रकाश का महत्त्व है।

बालाजी : तुम्हारी वाणी से प्रकाश मिलता है, नाना ! यद्यपि तुम मेरे बच्चे के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समान हो किन्तु समस्त जीवन की गतिविधि में तुम्हारी दृष्टि है। भगवान् गजानन तुम्हें शक्ति दें कि भविष्य में भी तुम प्रकाश दे सको।

नाना० : श्रीमन्त ! आपका आशीर्वाद अमर रहे। जिस प्रकार आकाश को अपनी नीलिमा पर और धरती को अपनी हरीतिमा पर विश्वास है, उसी प्रकार मानव को अपने साहस पर विश्वास होना चाहिए। हमारे श्रीमंत विश्वास राव ने इसी सत्य की घोषणा की है। जब मुझे अपने इस भाई पर इतना गर्व है तो आपको अपने पुत्र पर कितना न गर्व होगा।

बालाजी : विश्वास राव के विश्वासी नाना ! आज मैंने तुम्हें अपने पुत्र का महत्त्व दिया।

नाना० : मैं कृतार्थ हुआ, श्रीमन्त ! आपके पुत्र को बहुत कड़ी परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं। महाराष्ट्र में मैं अपनी वही परीक्षा दूंगा। महाराष्ट्र उसका भगवा झंडा फिर से लहरायेगा। भगवान् गजानन की कृपा हो। आप महाराष्ट्र के बिखरे वीरों को फिर से एकत्र करें। लोग कहते हैं कि गुलाब चाहे जहाँ उगे, अपने साथ काँटे भी उत्पन्न करता है। मैं कहता हूँ, ठीक है, किन्तु जहाँ काँटा है, वहाँ कुछ समय बाद गुलाब भी होगा।

बालाजी : मुझे भी विश्वास है, नाना, कि हमारी हार ही विजय की दुंदुभी बनेगी।

नाना० : मैं धन्य हूँ, श्रीमन्त, कि आपके शोक ने साहस का रूप ले लिया। साहस तो आप में है ही, कुछ क्षणों के लिए शोक-समाचार से दब गया था। यह निश्चय मानें, श्रीमन्त, कि उत्साह की गति पृथ्वी की सबसे सुन्दर लकीर है और प्रसन्नता की ध्वनि पृथ्वी की सबसे मधुर ध्वनि है।

बालाजी : तुम महाराष्ट्र में ही नहीं, सारे भारतवर्ष में अमर रहोगे, नाना ! चलो मेरे साथ विश्राम-कक्ष में चलो।

नाना० : चलिए, श्रीमन्त ! आप स्वस्थ हों। मैं पानीपत की हार को जीत में बदलने का प्रण करता हूँ। महाराष्ट्र का मंगलाचरण विजय से आरम्भ हुआ था, उसका भरतवाक्य भी मेरे जीते-जी विजय से समाप्त होगा।

बालाजी : तथास्तु ! चलो मेरे साथ।

[प्रस्थान]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 23 :

नाना फड़नवीस

●

पात्र-परिचय

गंगा—कैलासवासी नारायण राव पेशवा की पत्नी (आयु 17 वर्ष)
पार्वती—कैलासवासी सदाशिव राव भाऊ की पत्नी (आयु 26 वर्ष)
महादेव } रघुनाथ राव राघोवा के गुप्तचर (आयु 24 वर्ष)
मामा } (आयु 30 वर्ष)
नाना फड़नवीस—श्रीमती गंगाबाई का संरक्षक और पेशवा का आय-व्यय लेखक (आयु 32 वर्ष)
राघोवा—नारायण राव पेशवा का काका और पेशवा पद का अपहर्ता (आयु 45 वर्ष)
हरिपन्त—कैलासवासी माधव राव पेशवा का कारकुन (आयु 30 वर्ष)
सौदामिनी—प्रतिहारी (आयु 18 वर्ष)
सैनिक आदि
नेपथ्य में जय-जयकार बोलने वाले व्यक्ति

●

काल—27 सितम्बर, 1773 ई०
समय—संध्या, 5 बजे
स्थान—पुरन्दर-स्थित नाना फड़नवीस का प्रासाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाना फड़नवीस

[वर्षाकालीन संध्या का सूर्य अधिक अरुण होकर इस प्रासाद की खिड़की से अपनी स्वर्ण-रश्मियों का स्वप्न-जाल कक्ष में बिछा रहा है, जो समीपवर्ती पेड़ की पत्तियों के हिलने से एक क्षण में सिमिट कर फैल जाता है। खिड़की से दूर-दूर के वन-प्रान्त की सोभा दृष्टिगत होती है। कक्ष में हलके बैंजनी रंग के परदे पड़े हुए हैं। कक्ष में मयूराकृत कुर्सियाँ और तख्त मखमल से सजे हुए हैं, उन पर जरी का काम भी किया गया है। स्थान-स्थान पर प्राकृतिक दृश्यों के चित्र लगे हुए हैं। दीवाल के मध्य में पेशवा नारायण राव का चित्र है, जिसमें वे मखमली मसनद पर तकिये के सहारे बैठे हुए हैं। मराठी पगड़ी, माथे पर त्रिपुण्ड, कानों में बड़े कुण्डल, गले में मोतियों की माला, हाथ में एक फरमान। चित्र के दोनों ओर ढाल और तलवार सुन्दर आकृति में सजे हुए हैं। बाहर जाने के लिए जो द्वार है, उस पर रेशमी परदा पड़ा हुआ है। खिड़की के नीचे से अन्तरंग कक्ष में जाने का मार्ग है। खिड़की के पीछे बाहरी मार्ग पर दो सैनिक हैं जो पहरा देने के क्रम में बारी-बारी से दीख पड़ते हैं।

कक्ष में तख्त के ऊपर मृत नारायण राव पेशवा की पत्नी श्रीमती गंगा बाई अत्यन्त तन्मयता से चित्र बना रही है। वह कभी-कभी कक्ष में लगे हुए पेशवा नारायण राव के चित्र की ओर देखकर फिर चित्र बनाने लगती है। उसके मुख पर करुणा और उत्सुकता की विचित्र भाव-मुद्रा है। उसकी अवस्था लगभग 17 वर्ष की है। दूर से किसी भिखारी के कण्ठ से एक नाथ के अभंग का आलाप सुन पड़ता है।

एक क्षण बाद एक दूसरी स्त्री प्रवेश करती है। वह मृत सदाशिव राव की पत्नी है। अवस्था लगभग 26 वर्ष की होगी। उसके मुख पर दुःख का आवेग अपेक्षाकृत कम है। उसका नाम पार्वती बाई है। वह अभंग का आलाप सुनने की मुद्रा में खिड़की तक बढ़ती चली जाती है।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पार्वती : **(खिड़की के बाहर देखते हुए)** संध्या के इस मनोरम समय में कितना मधुर अलाप है, गंगा ! पुरन्दर के इस दुर्ग में रहते हुए हमें कितने दिन बीत गये, ऐसा संगीत नहीं सुना। मालूम होता है जैसे किसी ने करुणा के धागे में आनन्द के फूल गूँथ दिये हैं।

गंगा : **(चित्र बनाते हुए)** करुणा...के...धागे में...आनन्द के फूल ! **[उसका गला भर जाता है।]**

पार्वती : हाँ, गंगा ! महाराष्ट्र की भूमि ही ऐसी है। चाहे जितने काँटे बो दिए जायँ, आनन्द के फूल कहीं-न-कहीं से निकल ही आते हैं। **(समीप आते हुए)** अरे ! तुम भी तो अपने चित्र में बहुत से फूल बना रही हो। देखूं, तुम्हारा चित्र ? अरे ! तुम्हारी आँखों में आँसू ?

गंगा : **(चित्र छिपाते हुए करुण स्वर से)** नहीं, पार्वती बाई ! मेरा चित्र मत देखो।

पार्वती : क्यों, ऐसी क्या बात है ?

गंगा : मुझे लज्जा लगती है।

पार्वती : लज्जा लगती है ? किस बात की लज्जा ? चित्र दिखलाने में लज्जा ? चित्रकार को यदि चित्र दिखलाने में लज्जा आये तो फिर वह चित्र बनाना ही छोड़ दे। चित्रकार तो चाहता है कि अधिक-से-अधिक आँखें उसके चित्र की रूप-माधुरी का पान करें, उसकी सराहना करें।

गंगा : पर मैं अपना चित्र किसी को नहीं दिखलाऊँगी।

पार्वती : श्रीमन्त नाना फड़नवीस को भी नहीं ?

गंगा : नहीं, उन्हें भी नहीं।

पार्वती : तो फिर चित्र बना ही क्यों रही हो ?

गंगा : करुणा के धागे में कोई आनन्द का फूल गुँथ जाय इसलिए।

पार्वती : तुमने तो मेरी ही बात दुहरा दी, गंगा !

गंगा : हाँ, ताई, तुमने मेरे हृदय में उठने वाले क्रन्दन को वाणी दे दी। रोते-रोते मेरी आँखों में आँसू नहीं रहे, ताई ! **(सिसकियाँ लेते हुए)** दुर्भाग्य ने मुझे कितना रुलाया है, तुम जानती हो। मेरे सुहाग की रेखा रक्त में डूब गई। मेरा रोम-रोम रोता रहा है। फिर भी मैं मर नहीं सकी। मैं कितनी अभागिनी हूँ। **[सिसकियाँ]**

पार्वती : तुम्हारी सिसकियों की पुकार से पेशवा नारायण राव लौटकर तो नहीं आ जायेंगे ! आँसू न बहाओ, गंगा ! ये आँसू अब मुझसे देखे नहीं जाते। काका राघोवा और आनन्दी बाई को मैंने कितना समझाया। क्या नहीं कहा। लेकिन कुछ नहीं। दुर्भाग्य की जो ज्वाला जलती थी, वह जल कर ही रही।

गंगा : उसी ज्वाला में मैं भी जलना चाहती थी, ताई ! उनकी हत्या के बाद मैंने आनन्दी बाई से कहा—मेरी हत्या भी कर दो, काकी ! मुझे क्यों आग में जलने के लिए छोड़ रही हो ? मेरे पति की हत्या के लिए आपको हत्यारे खोजने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़े। मेरी हत्या आपके ही हाथों हो जायगा। पर उन्होंने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी।

पार्वती : पिशाचिनी भी कभी प्रार्थना सुनती है। रक्त-पान करने वाली रक्त ही चाहती है, अमृत नहीं। किन्तु, गंगा, यही रक्त अग्नि-कुण्ड बनकर उनका नाश करेगा। उस अग्नि-कुण्ड का नाम जानती हो? **(एक-एक अक्षर पर जोर देकर)** श्रीमन्त...नाना...फड़...नवीस।

गंगा : सचमुच कितने नीतिज्ञ और दूरदर्शी हैं नाना। यदि वे न होते तो मैंने आत्महत्या कर ली होती।

पार्वती : उनके रहते कोई आत्महत्या नहीं कर सकता, गंगा! पानीपत के युद्ध की बात तो पुरानी हो गई, किन्तु उसमें काम आने वाले तुम्हारे भाऊ कैलास-वासी होकर भी न जाने कितनी बार मेरी आँखों के सामने आ जाते हैं। कहते हैं—पार्वती! पानीपत की हार को कौन जीत में बदल सकता है? और तब ध्यानावस्थित होकर मैं कह देती हूँ—नाना फड़नवीस।

गंगा : मुझे भी विश्वास है कि वे पानीपत की हार का कलंक अवश्य ही दूर कर देंगे। अब तो वे आते ही होंगे। किसी आवश्यक कार्य से बाहर गये हैं। शीघ्र ही आने को कह गये थे। अपनी सहज बुद्धि से कैसे-कैसे कार्य कर लेते हैं वे!

पार्वती : यह तो मैं भी जानती हूँ। चित्र बनाने में तुम्हारी रुचि देखकर उन्होंने चित्र निर्माण की सामग्री तुम्हारे लिए क्यों ला दी, इसका कारण तुम जानती हो?

गंगा : नहीं जानती, ताई! मैं तो यही समझती हूँ कि वे मुझे बहुत चाहते हैं।

पार्वती : नहीं, चित्र की सामग्री इसलिए ला दी है कि तुम चित्र बनाने में तन्मय रह कर अपना दुःख भूल सको।

गंगा : ओह, यह बात है। सचमुच चित्र खींचते समय मेरी कल्पना न जाने कहाँ-कहाँ चली जाती है। इसी चित्र ने न जाने कितनी देर से मुझे उलझा रखा है।

पार्वती : और यह चित्र तुमने मुझे दिखलाया भी नही।

गंगा : क्या करोगी यह चित्र देखकर। मेरे हृदय की ज्वाला में कभी-कभी एक फूल झाँक उठता है—उसी का यह चित्र है। कल्पना ही तो है।

पार्वती : वह कौन-सा फूल है?

गंगा : उसे देखकर तुम मेरी हँसी तो नहीं उड़ाओगी?

पार्वती : हँसी? हँसी उड़ाने की क्या बात है? फूलों का चित्र देखकर कोई हँसी उड़ाता है?

गंगा : वह जीवित फूल है, मेरी गोद में जल्द ही आयेगा।

पार्वती : यह बात है? **(मुस्कराकर)** ओहो! तो अब अपने आँसुओं को सुखा डालो, गंगा! अब तो सुख के दिन आन को हैं। पेशवा नारायण राव की सजीव स्मृति लेकर तुम जीवन से संघर्ष ले सकती हो। नाना फड़नवीस इस बात को जानते हैं?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गंगा : जानते हैं, इसीलिए तो वे मुझे तुम्हारे साथ पूना से यहाँ पुरन्दर के दुर्ग में ले आये हैं, नहीं तो राघोवा काका न जाने क्या षड्यंत्र करते।

पार्वती : वे तो षड्यंत्र करने में निपुण हैं। और गंगा, मैं तुम्हें बतलाऊँ, मैं यह बात जानती थी, यद्यपि तुमने इसे छिपाने के बहुत प्रयत्न किये। सच है आँसुओं की धारा में बहते हुए फूल की ओर किसे ध्यान होता। अच्छा, देखूँ तुम्हारा चित्र !

गंगा : मुझे लज्जा लगती है। ऐसा लगता है जैसे मेरा शोक झूठा है, मेरे आँसुओं की धारा का प्रवाह उलटा बहने लगा है, मेरी विपत्ति विदूषक बन गई है।

पार्वती : ऐसी बात नहीं है, गंगा ! एक फूल मुरझाता है, उसका स्थान दूसरा फूल ग्रहण कर लेता है। क्या पहले फूल के मुरझाने से दूसरे फूल की सुगंधि कम हो जानी चाहिए ? दूसरे फूल को तो अधिक उमंग के साथ खिलना चाहिए। देखूँ, तुम्हारे होने वाले शिशु का चित्र ! (**चित्र हाथ में ले लेती है**) ओहो ! बिलकुल पेशवा नारायण राव की ही आकृति है।...गोरा गुलाबी फूल-सा मुख...नई खिली हुई कलियों-सी आँखें। कनेर के फूल की तरह कान। अब मालूम हुआ कि तुम इस कक्ष में ही आकर क्यों चित्र खींचा करती थीं। इस कक्ष में पेशवा नारायण राव का यह चित्र लगा है न। [**संकेत करती है।**]

गंगा : इनके दर्शनों से आँसू बहने लगते हैं, पर हृदय को एक शान्ति मिलती है। जब मैं एकटक उनके चित्र की ओर देखती हूँ तो उनके ओंठ हिलते हुए ज्ञात होते हैं। वे होने वाले शिशु की बात मुस्करा कर कहने लगते हैं।

पार्वती : भगवान करें शीघ्र ही तुम माता बनो। तुम्हारा शिशु फूलों की मुस्कान लेकर आवे।

गंगा : बहुत मत कहो, ताई ! कभी-कभी मुझे अपने आप से भय लगने लगता है। ऐसा दुर्भाग्य लेकर आई हूँ कि अपने पति को तो खो ही चुकी हूँ कहीं अपने शिशु... [**गला भर आता है।**]

पार्वती : (**बीच में ही**) बड़ा प्रतापशाली होगा वह, गंगा ! तुम्हारे दुःख की कालिमा को दूर कर चन्द्र की भाँति उदित होगा।

गंगा : इसीलिए मैं अपनी कल्पना में डूबकर न जाने कैसे-कैसे चित्र बनाती रहती हूँ। यही चित्र कभी रुलाते हैं, कभी हँसाते हैं...(**एक क्षण रुककर**) तुम से एक प्रार्थना करूँ, ताई ?

पार्वती : मुझसे, कौन-सी प्रार्थना ?

गंगा : मानोगी ? मान लोगी ? नहीं, मुझसे कहते नहीं बनेगा।

पार्वती : कहो न। मानूँगी तुम्हारी बात।

गंगा : मैं यही चाहती हूँ कि...कि...[**रुक जाती है।**]

पार्वती : हाँ, हाँ कहो न।

गंगा : कहते नहीं बनता...मैं यही चाहती हूँ कि आप भगवान् गजानन से प्रार्थना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करें...भगवान् गजानन से प्रार्थना करें कि...वह खिलने वाला फूल...पुत्र-रूप में खिले...पुत्र अर्थात् पुत्र हो। **(अपने को सँभालकर)** मैंने अनुचित बात तो नहीं कहीं ? ताई, मैं बहुत मूर्ख हूँ।

पार्वती : नहीं, गंगा ! इसमें मूर्खता की वात क्या। यह तो माता की ममता है। मैं भगवान् गजानन से अवश्य प्रार्थना करूँगी कि तुम्हारा मातृत्व वीर पुत्र से ही धन्य बने। वीर छत्रपति शिवाजी की भाँति ही तुम्हारा पुत्र महाराष्ट्र-जननी की सेवा करे।

गंगा : तुम बहुत अच्छी हो, ताई ! तुम्हारी प्रार्थना भगवान् गजानन अवश्य सुनेंगे।

[बाहर तुरही का नाद]

पार्वती : देखो, भगवान् गजानन ने मेरी और तुम्हारी प्रार्थना सुन ली। चलो, पूजा का समय हो गया। भगवान् गजानन के मन्दिर में जाने की सूचना हो गई।

[परिचारिका का प्रवेश]

परि० : स्वामिनी की जय हो ! पूजा का समय हो गया।

गंगा : ताई के साथ मैं आ रही हूँ। पूजा की सब सामग्री प्रस्तुत है, सौदामिनी ?

सौदामिनी : प्रस्तुत है, स्वामिनी ! सतारा से दो श्रीमन्त आये हैं। वे अपने को आपका सम्बन्धी बतलाते हैं। आपसे भेंट करना चाहते हैं। मैंने उन्हें अंतरंग कक्ष में बिठला दिया है।

गंगा : श्रीमन्त नाना जी आये ?

सौदामिनी : अभी नहीं आये।

गंगा : नहीं आये ?

सौदामिनी : सतारा के श्रीमन्तों से क्या कहूँ ?

गंगा : उन लोगों को इस बाहरी कक्ष में आने को कह दो। हम लोग जा रहे हैं। मैं पूजा के बाद ही उनसे भेंट कर सकूँगी। श्रीमन्त नाना को इस बात की सूचना होनी चाहिए।

सौदामिनी : जैसी आज्ञा।

गंगा : ताई ! ये सतारा के श्रीमन्त कौन होंगे ? किसलिए भेंट करना चाहते हैं ?

पार्वती : सतारा में तो तुम्हारे कुछ सम्बन्धी भी हैं। शायद उन्हीं में से कोई हो।

गंगा : हो सकते हैं। भेंट करने में कोई आपत्ति तो नहीं है ?

पार्वती : आपत्ति क्या हो सकती है, पर पहले पूजा-भवन में चलें।

गंगा : अच्छा। चलो, ताई !

[दोनों का प्रस्थान]

[कुछ देर तक शान्ति रहती है। फिर भीतर के द्वार से एक व्यक्ति सशंकित दृष्टि से देखते हुए धीरे-धीरे प्रवेश करता है। उसके हाथ में एक काष्ठपेटिका है। दो-तीन कदम चलकर वह फिर चारों ओर देखता है और फिर नेपथ्य से दूसरे व्यक्ति को पुकारता है।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहला : आ जाओ, मामा ! कोई नहीं है ।

[पहला व्यक्ति बढ़ता है, उसके पीछे दूसरा व्यक्ति भी प्रवेश करता है । वह अपेक्षाकृत वृद्ध है ।]

पहला : गजानन की पूजा ? सौदामिनी ने कहा कि गंगा बाई पूजा के लिए गई हैं । (**व्यंग्य की मुस्कान**) गजानन की पूजा के लिए ।

दूसरा : महादेव ! सुनते हैं आजकल गंगा बाई चित्र बहुत बनाती हैं और उसके बाद पार्वती के साथ गजानन की पूजा करती है ।

महादेव : इस पूजा का क्या फल होगा, मामा, जब मैं महादेव होकर मारा-मारा फिर रहा हूँ । आज से मैं अपना नाम बदल दूँगा, मामा !

मामा : बदलो या न बदलो, यह तुम्हारी इच्छा । पर पहले देख लो आसपास कोई है तो नहीं ।

महादेव : अभी देख लेता हूँ । (**दोनों ओर दबे पाँव देखता है**) कोई नहीं है । जब नाना यहाँ नहीं होते तो कोई नहीं होता ।

मामा : अच्छा, यह बतलाओ वह तुम्हारी काष्ठपेटिका कहाँ है ? सतारा में तो नहीं भूल आये ?

महादेव : अरे, उसे कैसे भूल सकता हूँ, मामा ! उसी में तो मेरा दिमाग रखा है । आजकल मेरे दो दिमाग हैं । एक कंधे के नीचे, एक कंधे के ऊपर । यह काष्ठपेटिका, मेरा असली दिमाग तो इसी काष्ठपेटिका में है ।

मामा : मेरा ख्याल तो है कि तुम्हारे दो दिमागों में से एक भी काम न आयेगा । तुम्हारा यह दाँव भी खाली गया, महादेव !

महादेव : दाँव खाली नहीं जा सकता, मामा ! गंगा बाई हमें मिली नहीं कि हमने उन्हें यह पेटिका पकड़ाई और बस काम तमाम ।

मामा : काम तमाम ? इतने ज़हरीले कपड़े हैं ये ?

महादेव : राघोवा काका ने दिये हैं । आनन्दी काकी ने इन कपड़ों को ज़हर में डुबाया है । आनन्दी काकी कच्चा खेल कभी नहीं खेलती, मामा !

मामा : धीरे बोलो, महादेव, धीरे बोलो । यह नाना फड़नवीस का मकान है । यहाँ दीवारों के भी कान होंगे ।

महादेव : अरे, इस बाहरी कक्ष में कोई नहीं आता । बाहर संतरी पहरा दे रहा है । यहाँ कौन आयेगा ?

[सौदामिनी का प्रवेश]

सौदामिनी : मैं आ सकती हूँ ? श्रीमती गंगा बाई ने कहलाया है कि उन्हें पूजन में शायद कुछ देर लग जाय तो आप क्षमा कीजियेगा । आप यहीं विश्राम करें । वे पूजन के बाद ही आपके कपड़ों की भेंट स्वीकार करेंगी ।

महादेव : (**हर्षातिरेक से गद्‌गद् कंठ से**) धन्यवाद ! धन्यवाद ! सौदामिनी जी, हम लोग किस योग्य हैं कि श्रीमती गंगा बाई को कुछ भेंट कर सकें लेकिन सुना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि वे जल्दी ही माता बनने वाली हैं तो सतारा से उनके कुछ सम्बन्धियों ने उन्हें अच्छे-अच्छे रेशमी वस्त्र भिजवाये हैं। वे पूजन के पहले उन्हें धारण करतीं तो अच्छा होता, सौदामिनी जी !

सौदामिनी : इस समय तो वे पूजन-गृह में हैं—आ नहीं सकेंगी।

मामा : कोई बात नहीं, कोई बात नहीं। इन वस्त्रों को धारण कर पूजन तो दुबारा भी हो सकता है।

महादेव : हम लोग भेंट देकर ही जायेंगे। उनसे कह दीजिये कि हम लोग इसी बाहरी कक्ष में उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सौदामिनी : बहुत अच्छा ! यही मैं उनसे कह दूँगी। [प्रस्थान]

महादेव : देखा, मामा ! कैसी बातें करता हूँ मैं। बड़ी-बड़ी राजनीति एक तरफ और मेरे छोटे से नाटक का लटका दूसरी तरफ। जानते हो नाना फड़नवीस क्या सोचते हैं ?

मामा : क्या सोचते हैं ?

महादेव : मामा ! तुम पूरे सुदामा हो। अरे, यह बात सारे सतारा और पुरन्दर के लोग जानते हैं और तुम नहीं जानते ? नाना फड़नवीस सोचते हैं कि जैसे ही गंगा बाई के लड़का हुआ कि वह नारायण राव पेशवा के बाद नया पेशवा हुआ।

मामा : और अगर गंगा बाई के लड़की हुई तो ?

महादेव : उसका भी प्रबन्ध नाना ने किया है। इस समय पुरन्दर के क़िले में छः गर्भवती ब्राह्मणियाँ हैं। जिस किसी के पुत्र होगा, उसी को गंगा बाई का पुत्र कह कर पेशवा घोषित किया जायगा।

मामा : यह बात है। आर्य तुम तो पूरे राजकाजी हो। तो बेचारे राघोवा काका की पेशवा होने की सब आशाएँ धूल में मिल जायेंगी ?

महादेव : आनन्दी काकी के रहते कभी आशाएँ धूल में मिल सकती हैं, मामा ! इसी-लिये तो यह कपड़े की पोटली है। न गंगा बाई जीवित रहेगी न नया पेशवा होगा। समझा, मामा ! और फिर आत्म-रक्षा के लिये यह कटार !

[कटार निकालता है।]

मामा : यह तो राघोवा काका की कटार है।

महादेव : उन्होंने ही मुझे दी। कहा, समय पड़ने पर हमें उपयोग में लाना। देखो, कितनी तेज़ धार है। बिलकुल आनन्दी काकी की ज़बान है।

[बाहर आहट होती है।]

मामा : देखो ! कोई आ रहा है। अपनी कटार सँभालो।

महादेव : **(जल्दी में पैर के नीचे डाल कर)** यह रही पैर के नीचे।

[एक सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : जय हो !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महादेव : क्या बात है ?

सैनिक : श्रीमती गंगा बाई की सेवा में निवेदन है।

महादेव : गंगा बाई यहाँ नहीं है। क्या निवेदन है ?

सैनिक : पेशवाई के लिए विद्रोह करने वाले रघुनाथ राव जी राघोवा बन्दी हो गये हैं। नाना जी उन्हें साथ ला रहे हैं।

महादेव : क्या राघोवा काका बन्दी हो गये ?

मामा : बन्दी हो गये ?

सैनिक : श्रीमती गंगा बाई को यह सूचना देने की मुझे आज्ञा है।

महादेव : अच्छा..., मैं...मैं...श्रीमती गंगा बाई...को यह सूचना...यह सूचना दे दूंगा।

सैनिक : जय हो ! **[प्रस्थान]**

महादेव : **(क्रन्दन स्वर में)** मामा !

मामा : महादेव !

महादेव : यह क्या हो गया ?

मामा : यह दाँव भी खाली गया।

महादेव : जिन राघोवा काका के बल पर हम लोग राजनीति खेलने आये थे वे ही बंदी हो गये। ...अब क्या होगा ?

मामा : घबराओ मत, महादेव ! आनन्दी काकी तो बंदी नहीं हुई ? वे राघोवा काका को छुड़ाने की चाल अंगरेज़ टोपी वालों से मिलकर ज़रूर निकाल लेंगी।

महादेव : पर नाना तो अंगरेज टोपी वालों की सब चालें जानते हैं।

मामा : आनन्दी काकी की चाल तो नहीं जानते।

महादेव : अरे, जो ब्रह्मा भी नहीं जानते वह नाना जानता है। हाय ! अब क्या होगा ?

[बाहर कोलाहल होता है।]

मामा : देखो, खिड़की से, यह कैसा कोलाहल है ?

महादेव : देखता हूँ। **(खिड़की के समीप जाकर)** आगे बहुत से सैनिक चल रहे हैं। बीच में राघोवा मुँह लटकाये जा रहे हैं। लोहे की साँकलों से उनके हाथ बँधे हैं।

मामा : लोहे की साँकलों से ?

महादेव : हाँ, लोहे की साँकलें चलने से शब्द कर रही हैं। पीछे भी बहुत से सैनिक हैं। उनके पीछे घोड़े पर नाना फड़नवीस हैं। लोग उनका जय-जयकार करते हुए चल रहे हैं।

मामा : नाना फड़नवीस ने सतारा और पुरन्दर के लोगों का संगठन कर लिया है। उन्हीं की सहायता से शायद राघोवा काका को पकड़ा होगा। सखाराय बापू, त्रिम्बक राव और हरिपंत फड़के की गुप्त सभा इसीलिए हुई थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महादेव : (घबराकर) तो अब क्या होगा, मामा !

मामा : घबराओ मत, घबराओ मत, महादेव ! राघोवा खुद एक अच्छे योद्धा हैं। वे अपनी रक्षा की युक्ति सोच निकालेंगे।

महादेव : नहीं, मामा ! अब हम लोग भी बन्दी हुए। अब हम बचने के नहीं।

मामा : महादेव ! तुम तो अपने को राजनीति का आचार्य समझते थे। यह बात मालूम भी कैसे होगी कि हम राघोवा काका के षड्यंत्र में सम्मिलित हैं। हम लोग तो गंगा बाई के संबंधियों की ओर से वस्त्रों की भेंट लाये हैं।

महादेव : हाँ, यही बात है, यही बात है। मैं झूठ-मूठ घबरा गया था। तुम इसे सच मान गये ? अरे, मैं तो नाटक कर रहा था।

मामा : नाटक ही सही। लेकिन अब सोचो कि नाना फड़नवीस के आने पर हमें क्या करना चाहिये।

महादेव : तुम मत घबराना, मैं भी नहीं घबराऊँगा, जिससे उन्हें सन्देह न हो। खूब हँस-हँसकर बातें करेंगे, मामा !

मामा : हमें तो बस राघोवा काका के लिए पेशवाई चाहिए। चाहे अभी मिले, चाहे बाद में।

महादेव : वह तो होगा ही।

[बाहर कोलाहल पास आता सुनाई पड़ता है—"कहो, काका राघोवा ! पेशवाई चाहते थे?" "जल्दी-जल्दी चलो, काका ! अभी बन्दीखाना दूर है।" "नाना फड़नवीस की जय" "अरे भाई, कभी-कभी काका की भी जय बोल दो।" "नाना फड़नवीस की जय !"

मामा : नाना फड़नवीस की जय पास ही सुन पड़ती है। वे आने वाले ही हैं।

महादेव : हम लोग अंतरंग कक्ष में चले चलें। हम लोग श्रीमंतों की तरह अपने आने की सूचना देंगे। यहाँ बैठे रहेंगे तो हमारी उतनी इज्ज़त नहीं होगी।

मामा : तुमने अच्छा सोचा। अच्छा, चलो हम लोग जल्दी ही चलें। **[दोनों का भीतरी द्वार से प्रस्थान]**

[एक क्षण बाद नाना फड़नवीस बाहरी द्वार से आते हैं। वे दुबले-पतले शरीर के हैं, पर गंभीर। अपने शब्दों को तौलकर बोलते हैं। उनकी चाल ऐसी है जैसे एक सिंह अपनी गिरि गुहा में लौटता है।]

नाना० : **(पेशवा नारायण राव के चित्र को देखकर)** कैलासवासी पेशवा नारायण राव ! नाना फड़नवीस भी तुम्हें प्रणाम करता है। तुम्हारी हत्या की गई। आज उस हत्या का प्रतिशोध महाराष्ट्र की जनता ने लिया। कैलास में तुम सुखी हो ! **(पुकारकर)** सौदामिनी !

सौदामिनी : **(नेपथ्य से)** श्रीमंत !

नाना० : इस समय तो श्रीमती गंगा बाई पूजन-गृह में होंगी ?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौदामिनी : हाँ, श्रीमंत !

नाना० : उनकी पूजा कब तक समाप्त होगी ?

सौदामिनी : आरती हो चुकी है।

नाना० : आरती के बाद यहाँ आने का कष्ट करें।

सौदामिनी : जैसी आज्ञा, श्रीमंत ! **[जाना चाहती है।]**

नाना० : सुनो !

सौदामिनी : **(लौटकर)** आज्ञा, श्रीमंत !

नाना० : जब उनके आने की आवश्यकता होगी, मैं सूचित करूँगा। जाओ।

सौदामिनी : जैसी आज्ञा, श्रीमंत !

नाना० : थक गया हूँ। विश्राम करूँगा।

[कुर्सी पर लेटते हुए उनकी दृष्टि फर्श पर पड़ी हुई कटार पर पड़ती है।]

नाना० : **(उठाते हुए)** यह कटार !......किसकी कटार है...यहाँ कैसे... **(उठाकर देखते हैं)** इस कटार पर किसी का नाम भी खोदा गया है।...**(पढ़ते हुए)** पेशवा...रघुनाथ राव...राघोवा...राघोवा ? यह राघोवा की कटार है ? ... यहाँ कैसे... ? राघोवा तो अभी नियंत्रण में लाये गये हैं। फिर उनकी कटार यहाँ कैसे हो सकती है ? कोई षड्यंत्र रचा जा रहा है। **(पुकारकर)** सौदामिनी !

सौदामिनी : **(नेपथ्य से)** श्रीमंत !

नाना० : राघोवा की कटार...

सौदामिनी : आज्ञा, श्रीमंत !

नाना० : इस कटार को तुम पहिचानती हो ?

सौदामिनी : **(देखकर)** नहीं, श्रीमंत !

नाना० : यह इस कक्ष में कैसे आई ?

सौदामिनी : मैं नहीं जानती, श्रीमंत !

नाना० : यह कटार काका राघोवा की है।

सौदामिनी : काका राघोवा की ? रहस्यपूर्ण है।

नाना० : यह तुम्हारी सम्पत्ति तो नहीं है ?

सौदामिनी : नहीं, श्रीमंत ! आपके द्वारा दिये गये शस्त्र पर्याप्त हैं। उनके रहते अन्य शस्त्रों की आवश्यकता नहीं है।

नाना० : तुम कांप रही हो ? यह किसी षड्यंत्र की भूमिका ज्ञात होती है। मेरे आने के पूर्व इस कक्ष में कोई था ?

सौदामिनी : हाँ, श्रीमान ! श्रीमती गंगा बाई के दो सम्बन्धी हैं। वे श्रीमती गंगा बाई से भेंट करने के लिए सतारा से आये हैं। कुछ भेंट भी लाये हैं। वही इस कक्ष में बैठे थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाना० : श्रीमती गंगा बाई से उनकी भेंट हुई ?

सौदामिनी : नहीं, श्रीमंत ! श्रीमती पूजन के लिए चली गई थीं।

नाना० : इस समय वे सम्बन्धी कहाँ हैं ?

सौदामिनी : अन्तरंग कक्ष में श्रीमती की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

नाना० : उन्हें इस स्थान पर भेजो !

सौदामिनी : जो आज्ञा। [**प्रस्थान**]

नाना० : (**सोचते हुए**) श्रीमती गंगाबाई के सम्बन्धी......सतारा..... से......क्या भेंट लाये हैं ? भेंट के लिए......मेरी अनुपस्थिति......का......समय ही... क्यों चुना......गया......।

सौदामिनी : सतारा के श्रीमंत उपस्थित हैं ?

नाना० : आने दो।

[**महादेव और उसके मामा का प्रवेश**]

महादेव : श्रीमंत नाना की जय ! सतारा से महादेव प्रणाम करता है।

मामा : महादेव का मामा भी प्रणाम करता है।

नाना० : भूमि से अपना सिर उठाओ, महादेव ! जिससे मैं तुम्हारा मुख देख सकूं। और महादेव के मामा ! तुम्हारा नाम क्या है ?

मामा : नाम......मेरा नाम......सब लोग मुझे मामा ही कहते हैं।

नाना० : मामा...! किस लिए आप लोगों ने कष्ट किया ?

महादेव : श्रीमंत का यश चारों ओर फैला हुआ है। जैसे...जैसे...खेत में हरियाली फैली होती है।...नहीं मैं ठीक नहीं कह सका...जैसे तलवार की धार फैली रहती है।...नहीं, श्रीमंत.. मैं ठीक तरह से नहीं कह सकता। (**मामा से**) मामा ! तुम बोलो।

मामा : श्रीमंत ! आप के यश को सुनकर हम लोग यहाँ आये जैसे सूरज को देखकर किरणें आ जाती हैं।

नाना० : जैसे सूरज को देखकर किरणें...आप लोग सतारा से आये हैं।

महादेव : हाँ, श्रीमंत, सतारा से। वहाँ हम सब ने आपके दर्शन किए थे, आपके दर्शन। आप कितने सुन्दर हैं। (**मामा से**) मामा ! तुम बोलो।

मामा : श्रीमंत ! सतारा से हम लोग आपके लिए वस्त्र लाये हैं।

नाना० : मेरे लिए वस्त्र ? क्यों ? मैंने सुना कि आप लोग श्रीमती गंगा बाई से भेंट करने आये हैं।

मामा : हाँ, श्रीमंत ! श्रीमती गंगा बाई से भेंट करने आये थे, बिना भेंट किए ही चले जावेंगे।

नाना० : भेंट करने के लिए आये और बिना भेंट किए ही चले जायेंगे ?

महादेव : नहीं, श्रीमंत ! मामा आपके सामने ठीक बातें कह नहीं पाते। हम लोग श्रीमती गंगा बाई के लिए वस्त्र लाये थे।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाना० : वस्त्र, कैसे वस्त्र ?

महादेव : सतारा में उनके बहुत से सम्बन्धी हैं, उन्होंने सुना कि गंगाबाई शीघ्र ही माता होने वाली हैं, इस अवसर पर प्राचीन रीति के अनुसार उनके सम्बन्धियों ने उनके लिए रेशमी वस्त्र भेजे हैं।

नाना० : उनके सम्बन्धियों के प्रति हम लोग कृतज्ञ हैं। कहाँ हैं वे वस्त्र ?

महादेव : चन्दन की इस पेटिका में हैं।

नाना० : मैं इन वस्त्रों को देखना चाहूँगा।

महादेव : वे इस पेटिका में ही हैं।

नाना० : राज्य-शिष्टाचार के अनुसार तो वस्त्र चाँदी के थालों में सजाकर प्रस्तुत किए जाते हैं।

महादेव : हमें चाँदी के थालों में सजाने की आज्ञा नहीं है।

नाना० : किसकी आज्ञा नहीं है ? **(पुकारकर)** सौदामिनी !

सौदामिनी : **(नेपथ्य से)** श्रीमंत !

महादेव : नहीं, श्रीमंत ! सौदामिनी देवी को क्यों कष्ट देते हैं। इस चन्दन की पेटी में ही वस्त्र रहेंगे।

[सौदामिनी का प्रवेश]

सौदामिनी : श्रीमंत !

नाना० : चाँदी का एक थाल शीघ्र लाया जाय !

सौदामिनी : जो आज्ञा।

महादेव : तब तो हम बिना वस्त्र दिए ही चले जावेंगे।

नाना० : आपके वाक्य संदेह उत्पन्न करते हैं। आप हमारे अतिथि हैं। हमारे यहाँ सम्मान सहित विश्राम कीजिए। दो-एक दिन हमारे यहाँ रहकर भेंट लेकर जाइये।

मामा : श्रीमंत ! हमें शीघ्र ही जाने की आज्ञा दीजिये।

नाना० : ऐसा संभव नहीं हो सकेगा। आप हमारा आतिथ्य ग्रहण किए बिना यहाँ से नहीं जा सकेंगे।

[सौदामिनी का चाँदी का थाल लिए हुए प्रवेश]

सौदामिनी : यह चाँदी का थाल प्रस्तुत है।

नाना० : इस चाँदी के थाल में ये वस्त्र सजाइये।

महादेव : ये राजसी वस्त्र हैं, श्रीमंत ! हम लोग इनका स्पर्श नहीं कर सकते ?

नाना० : स्पर्श नहीं कर सकते ? अच्छी बात है। इन्हें इस पेटी में ही रहने दीजिये। एक बात और जानना चाहता हूँ। इन वस्त्रों के साथ कोई कटार भी भेजी गई है ?

मामा : कटार ? नहीं, श्रीमंत ! कोई कटार नहीं भेजी गई।

महादेव : **(धीरे से)** मेरी कटार कहाँ है ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाना० : यह है ! यह कटार इसी कक्ष में आप लोग छोड़ गये थे ।

महादेव : जी हाँ, यह मेरी कटार है । मैं इसे देख रहा था । उसकी यहाँ आवश्यकता नहीं थी इसलिए मैंने उसे पैर के नीचे ही दबा दिया था । जल्दी में उठाना भूल गया ।

नाना० : काका राघोवा आप पर बहुत प्रसन्न हैं ?

महादेव : नहीं, नहीं, श्रीमंत ! हम लोग तो आपके पक्ष के हैं, काका राघोवा से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है ।

नाना० : आपका कोई संबंध नहीं, फिर भी वे अपनी कटार आपको रखने के लिए देते हैं ।

महादेव : नहीं, यह तो मेरी अपनी कटार है ।

नाना० : इस कटार पर लिखा हुआ है—रघुनाथ राव राघोवा ।

महादेव : हम लोग पढ़ना नहीं जानते, श्रीमंत !

नाना० : इसीलिए आप इसे अपनी कटार कहते हैं । यह कटार काका राघोवा की है । **(जोर से)** बोलिए, यह कटार काका राघोवा की है ?

महादेव : **(घबराकर)** हाँ, श्रीमंत !

नाना० : यह उन्होंने आपको किस लिए दी ?

मामा : हमारे गाँव में गन्ने की खेती बहुत होती है तो...तो...ग...ग...गन्ना गन्ना छील कर खाने के लिए, श्रीमंत, हमें कटार दी गई ।

महादेव : **(मामा से)** मामा ! तुम चुप रहो । **(नाना से)** श्रीमंत ! मामा मूर्ख है । उसे उत्तर देना नहीं आता । श्रीमंत ! काका राघोवा एक बार सतारा आये थे । मैं उस समय बहुत दुखी था । आत्महत्या करना चाहता था । उन्होंने आत्म-हत्या करने के लिए मुझे यह कटार दी थी ।

नाना० : फिर आपने आत्महत्या नहीं की ?

महादेव : जी...मैंने आत्महत्या नहीं की ।

नाना० : आप लोग काका राघोवा के षड्यंत्र में हैं ?

महादेव : नहीं, श्रीमंत ! हम लोग किसी षड्यंत्र में नहीं ।

नाना० : **(पुकारकर)** सैनिक !

मामा : मैं तो बिलकुल ही निरपराध हूँ, श्रीमंत ! मेरे पास कोई कटार नहीं है ।

नाना० : काका राघोवा के सामने ही इसका निर्णय होगा ।

[सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : श्रीमंत की जय !

नाना० : इन दोनों 'वार' भाइयों को नियंत्रण में ले लो । और काका राघोवा को यहाँ लाओ ।

सैनिक : जैसी आज्ञा ।

महादेव : मामा ! मैं कहता था कि हम लोग गये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मामा : अच्छा होता कि जब राघोवा काका ने तुम्हें कटार दी थी, तभी आत्महत्या कर लेते।

महादेव : **(करुण स्वर में)** आत्महत्या तो हो ही रही है, मामा! **(नाना से)** श्रीमंत ! यह कपड़ों की पेटी अपने नियंत्रण में ले जाऊँ ?

नाना० : नहीं, यह यहीं रहेगी। सैनिक ! इन्हें ले जाओ। इन्हें बाहर ही रखना। अभी इनकी आवश्यकता होगी।

सैनिक : जो आज्ञा ! **(दोनों से)** चलिए, वार भाई !

मामा : **(जाते-जाते)** श्रीमंत नाना की जय बोलो, महादेव !

महादेव : मुझसे बोला नहीं जाता। मेरा गला ही बैठ गया है, मामा !

[सैनिक के साथ दोनों का प्रस्थान]

नाना० : सतारा से कपड़ों की भेंट—चन्दन की पेटी में और वे थाल में सजाये नहीं जा सकते, छुए नहीं जा सकते। **(चित्र की ओर देखकर)** पेशवा नर नारायण राव ! यह देखा—चित्र में से देख सकते हो राघोवा का यह षड्यंत्र ? तुम्हारी हत्या के बाद श्रीमती गंगाबाई की हत्या का षड्यंत्र। उसके लिए विष में बुझे हुए वस्त्रों की भेंट ! धारण करते ही उनकी मृत्यु हो जाय। अन्यथा काका राघोवा की कटार का उपयोग। ब्रह्मघाती काका राघोवा ! तुम्हें नर्क में भी स्थान नहीं मिलेगा। अच्छा ही हुआ कि खम्बात भागने के पहले ही तुम बंदी कर लिए गये। नहीं तो कम्पनी के वकील मास्टिन और गोविन्द राव गायकवाड से संधि कर तुम अपने को पूरा पेशवा समझ लेते। पेशवा...रघुनाथ राव हत्यारा, देशद्रोही ?

सैनिक : नाना की जय ! काका रघुनाथ राव द्वार पर हैं।

नाना० : उन्हें भीतर लाओ ! हरिपन्त फड़के साथ हैं ?

सैनिक : हाँ, श्रीमंत !

नाना० : दोनों ही भीतर आयें।

सैनिक : जो आज्ञा। **[प्रस्थान]**

नाना० : राजसत्ता का मोह, पेशवा बनने का स्वप्न, यह सब क्या इतना भयानक है कि काका अपने भतीजे की हत्या करे ?...विदेशी कम्पनी से संधि कर देश के प्रति विद्रोह किया जाय ? विद्रोह...भयानक विद्रोह...

[हरिपन्त फड़के के साथ राघोवा का प्रवेश। राघोवा बन्दी-वेश में हैं।]

हरिपन्त : श्रीमंत नाना जी की जय !

नाना० : स्वागत, हरिपन्त ! काका राघोवा को कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?

हरिपन्त : नाना ! श्रीमन्त भोंसले से युद्ध में पराजित होकर जब राघोवा भाग कर जंगलों में भटक रहे थे, तब मैंने उन्हें शीतल जल देकर उनकी प्यास बुझाई थी।

नाना० : जिस व्यक्ति की प्यास रक्त से नहीं बुझी, उसकी प्यास शीतल जल से कैसे बुझ सकती है, हरिपन्त !

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राघोबा : नाना ! मैं पेशवा का काका हूँ। तुम्हारे व्यंग्य के शब्द मेरे लिए अपमान-जनक हैं। पेशवा का काका सम्मान में पेशवा से भी महान् है।

नाना० : पेशवा का काका—सचमुच अगर पेशवा का काका अपने सम्मान की मर्यादा समझता। यदि पेशवा नारायण राव की हत्या के बाद पेशवा का काका स्वयं पेशवा बनना चाहता था तो उसका सम्मान इसी में था कि वह महाराष्ट्र की शक्ति के बल पर ही पेशवा बनता। राज्य के प्रमुख सरदारों की सहायता और जनता की सहानुभूति से ही पेशवा बनता। पेशवा बनने का यह मार्ग नहीं था कि विदेशी कम्पनी के वकील मास्टिन के चरणों पर पेशवा का काका अपना मस्तक झुकाता। आज पेशवा के काका से समस्त महाराष्ट्र और समस्त देश का अपमान हुआ है।

राघोबा : यह स्मरण रखो, नाना, कि तुम केवल फणनवीस हो, राज्य के आय-व्यय के लेखक हो। राज्यवंश के अधिकारी से इस तरह बात नहीं कर सकते। नारायण राव के बाद मैं ही पेशवा पद का अधिकारी हूँ।

हरिपन्त : काका ! अधिकारी तो आप उसी समय से अपने को मानने लगे थे जब से मेरे स्वामी माधव राव पेशवा की मृत्यु हुई थी।

राघोबा : चुप रहो, हरिपन्त ! माधव राव का साधारण-सा कारकुन यदि अच्छा सैनिक होकर छोटी-सी लड़ाई जीत ले, तो वह मुझसे बात करने का अधिकारी नहीं हो सकता। तुम्हें मेरी आलोचना करने का क्या अधिकार है ?

नाना० : पूरा अधिकार है, काका ! प्रजा का सामान्य व्यक्ति भी राजा की आलोचना करने का अधिकार रखता है। हिन्दू पद पाद-शाही जनता की मंगल-कामना से ही स्थिर है।

हरिपन्त : कैलासवासी माधव राव ने भी काका से यही कहा था।

नाना० : अट्ठारह वर्ष की छोटी-सी आयु में ही माधव राव की मृत्यु हुई।

हरिपन्त : मृत्यु नहीं हुई, नाना ! उनकी भी हत्या की गई।

राघोबा : हरिपन्त ! नीच ! नारकी ! यदि मैं इस समय स्वतंत्र होता तो तेरी जीभ काट कर फेंक देता। व्यर्थ का कलंक लगाने वाला हरिपन्त आज संसार में जीवित नहीं रहता।

नाना० : तुम्हारे दुर्भाग्य से वह जीवित है, काका ! वास्तव में माधव राव की हत्या की गई है। सत्य का उद्घाटन भले ही सुनने में अच्छा न लगे, पर इतिहास में उसे अंकित रहना चाहिए।

हरिपन्त : काका ! आप चाहे मुझ पर कितना ही क्रोध करें, पर शान्त हृदय से आप सोचिए कि हिन्दू पद पादशाही पर शस्त्र चलाने के लिए जब आप तैयार हुए तो क्या आप समस्त राष्ट्र के शत्रु नहीं हुए ? क्या आपने पेशवा माधव राव के विरोध में सरदारों को अपनी ओर नहीं फोड़ा ? मेरे सामने ही पेशवा माधव राव ने कहा था—काका ! यदि हम आप ही लड़ेंगे तो शत्रुओं की मस्ती कौन दूर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करेगा ? पानीपत के संहार का बदला किस प्रकार लिया जायगा ? हमारे कैलासवासी पूर्वज हमें क्या कहेंगे ? राज्य आपका है, मैं आपका हूँ। आप ही राज्य सँभालें और शत्रुओं का विनाश करें। इतने पर भी आपने पेशवा माधव राव का साथ नहीं दिया और विदेशी वकील मास्टिन की सहायता से उनका सर्वनाश किया।

राघोवा : यह बात झूठ है। नाना फड़नवीस ! तुम राज्य के अधिकारी हो। मेरा अपमान करने के कारण हरिपन्त फड़के को दंड दो।

नाना० : मेरे न्याय पर आपने विश्वास किया, काका, इसके लिए आपको साधुवाद ! इस पर विचार किया जायगा। किन्तु, हरिपन्त, तुम जाओ। काका इस समय क्रोध में हैं। फिर बात करना।

हरिपन्त : जैसी आज्ञा। [**प्रणाम करता है।**]

नाना० : हरिपन्त गये। अब आपको क्रोध नहीं आयेगा। अब आप शान्त हृदय से सत्य स्वीकार करने का साहस दिखला सकेंगे। सम्भव है, पेशवा माधव राव की हत्या न की गई हो किन्तु पेशवा नारायण राव की तो हत्या की गई, यह आप स्वीकार करेंगे ?

राघोवा : हाँ, हत्या हुई। किन्तु यह हत्या मैंने नहीं की। मैं यह हत्या करना भी नहीं चाहता था।

नाना० : किसने हत्या की ?

राघोवा : बधिकों ने।

नाना० : किसकी आज्ञा से ?

राघोवा : आनन्दी बाई—मेरी पत्नी की आज्ञा से। मैंने तो केवल पेशवा नारायण राव के लिए 'घरावा' यानी 'पकड़ लो' की आज्ञा दी थी, आनन्दी बाई ने 'घ' का 'म' करके 'मरावा' अर्थात् 'मार डालो' लिखकर मेरी आज्ञा में परिवर्तन कर दिया और नारायण राव की हत्या हुई।

नाना० : काकी आनन्दी बाई को क्या कहूँ, किन्तु जिस समय पेशवा नारायण राव को मारने के लिए बधिक झपटे उस समय वे दौड़कर आपसे लिपट गये और उन्होंने क्रन्दन-स्वर में कहा—"काका ! मेरा राज्य ले लो, पर मुझे जीवन दान दो। यदि आप मुझे मरवाना ही चाहते हैं तो किसी वीर के लिए जो मृत्यु उचित है, उसी मृत्यु से मुझे मरने दो।" किन्तु आपने नारायण राव पेशवा का वह क्रन्दन सुना ही नहीं।

राघोवा : मैं लाचार था, नाना !

नाना० : लाचार इसलिए थे कि आप स्वयं पेशवा होना चाहते थे। आपको पेशवा नारायण राव की नव-वधू के निरन्तर बहने वाले आँसुओं पर दया नहीं आई ? उसके जीवन-भर होने वाले चीत्कार और क्रन्दन से आपका हृदय द्रवित नहीं हुआ ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राघोवा : स्त्रियों के आँसुओं में राजनीति द्रवित नहीं होती, नाना ! और भी उज्ज्वल होती है। युद्ध-भूमि में हज़ारों वीर कट जाते हैं, उनकी स्त्रियों के आँसुओं से न राज्य बनते हैं, न बिगड़ते हैं।

नाना० : काका ! तुम्हारी राजनीति की परिभाषा पर मुझे दुःख है। युद्ध-भूमि में वीरों की मृत्यु अभिमान और गौरव की वस्तु है; किन्तु क्रूरता से, छल से वीर की हत्या करना राजा और उसके राज्य के लिए कलंक की बात है। आपका यह कलंक मानव-जाति के इतिहास में काला धब्बा बनकर रहेगा।

राघोवा : नाना ! सावधान हो। अपने वाक्यों को मर्यादा में रहने दो। कोई समय आयेगा जब मैं तुम्हारे स्थान पर होऊँगा और तुम बेड़ियों से जकड़े हुए मेरे सामने खड़े होंगे।

नाना० : मैंने ब्रह्महत्या नहीं की, मैंने गोत्रजहत्या नहीं की. मैंने पुत्र-वध नहीं किया जो तुमने किया है, काका ! मेरी राजनीति स्वार्थ के पैरों नहीं चलती, जनता के पैरों चलती है। यदि मैं पेशवा होना चाहता तो तुमसे पहले पेशवा होता, किन्तु पेशवाई उसे मिलनी चाहिए जो जनता की सेवा से पेशवाई का अधिकारी है। मैं पहले भी फड़नवीस था, आज भी हूँ और कल भी यहीं रहूँगा। काका ! अनुचित राज्य-लिप्सा के गले में सोने की जंजीर नहीं लोहे की जंजीरें होती हैं। अनुचित नीति-मत्ता राजद्रोह है, राष्ट्रद्रोह है।

राघोवा : **(तीव्रता से)** राष्ट्रद्रोही तुम हो। हूँ SSS, तुमने मेरा साथ नहीं दिया। पेशवाओं का रक्त मेरे शरीर में अभी तक प्रवाहित है। पेशवा नारायण राव की मृत्यु के बाद—मृत्यु भले ही हत्या से ही क्यों न हुई हो—उस वंश में मेरे सिवाय कौन पुरुष था जो पेशवाई का अधिकारी होता। केवल मैं था, शेष स्त्रियाँ थीं; किन्तु तुमने मेरा साथ—राज्य का साथ नहीं दिया और मृतक पेशवा नारायण राव की पत्नी गंगाबाई का पक्ष लेकर नई पेशवाई खड़ी कर ली। गंगाबाई राज्य की स्वा-मिनी, सखाराम बापू और तुम मंत्री, और राघोवा विद्रोही हैं, उसका राज्य पर कोई अधिकार नहीं है, ऐसी तुमने शहर-शहर में दुहाई फिरवा दी। नागपुर के भोंसले को अपने पक्ष में कर लिया और मुझे बंदी करने के लिए भोंसले की सेनाएँ चल पड़ीं। हरिपन्त जैसे तुच्छ कारकुन को सेनापति बनाकर मुझे अपमानित कराया। राष्ट्र-द्रोही कौन है ? परिस्थितियों से पूछो—मैं हूँ या तुम हो। नाना ! मेरी पेशवाई में तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध न होता, इसलिए अपने स्वार्थ के लिए तुमने गंगाबाई को स्वामिनी बनाया है। स्वार्थी नाना ! राष्ट्रद्रोही तुम हो, तुम।

नाना० : काका ! राष्ट्रद्रोही मैं हूँ ? यदि तुम किसी ईश्वर को मानते हो तो उससे पूछो। तुम मनुष्य की हत्या कर सकते हो, सत्य की हत्या नहीं कर सकते। कैलास-वासी पेशवा नारायण राव की पत्नी श्रीमती गंगाबाई मातृत्व के पथ पर हैं। उनका पुत्र ही पेशवा-पद का अधिकारी होगा। उस पुत्र के अधिकारों की रक्षा करने में ही मेरी राज-सेवा है। और तुम्हारी राज्य-सेवा ? योग्य-पेशवा की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हत्या कर उसकी पेशवाई छीनना तुम्हारी राज्य-सेवा है। मैं हत्यारे का साथ नहीं दे सका—इसमें मेरा स्वार्थ है? नागपुर के भोंसले साथ नहीं दे सके, भोंसले का क्या स्वार्थ है? जो अपने पाप को पुण्य का रूप दे सकता है, वह संसार में कौन-सा पाप नहीं कर सकता? काका! अपने पाप का नग्न रूप देखो। तुम केवल पुरुष ही की हत्या नहीं कर सकते, स्त्री की भी हत्या कर सकते हो।

राघोवा : स्त्री की हत्या? मैंने किस स्त्री की हत्या का प्रयत्न किया है?

नाना० : गंगाबाई की। पेशवा नारायण राव की हत्या करने के बाद उनकी पत्नी गंगाबाई की हत्या के लिए प्रयत्न?

राघोवा : यह झूठ है।

नाना० : इस चन्दन की पेटी में जो वस्त्र रखे हुए हैं वे झूठ नहीं बोलते। ये वस्त्र हाथ से नहीं छुए जा सकते। घोर हलाहल में बसे हुए हैं। ये वस्त्र श्रीमती गंगाबाई को धारण करने के लिए भेजे गये हैं। काका! क्या मैं यह भी कहूँ कि इन्हें किसने भेजा है?

राघोवा : किसने भेजा है?

नाना० : जिसकी यह कटार है। **(कटार फेंकता है)** इस पर जो नाम खोदा गया है, वह है रघुनाथ राव राघोवा।

राघोवा : यह तुम कैसे कह सकते हो कि इन्हें मैंने ही भेजा है?

नाना० : इसका भी प्रमाण दिया जा सकता है। **(पुकारकर)** सैनिक! काका, तुम्हारा देशद्रोह अनेक जिह्वाएँ लेकर बोलता है।

सैनिक : श्रीमन्त की जय हो! आज्ञा?

नाना० : अतिथि-कक्ष में बैठे हुए महादेव और उसके मामा को उपस्थित करो।

राघोवा : **(सोचता हुआ)** महादेव और उसका मामा?

नाना० : यही आदमी थे, काका, जिन्हें तुमने अपनी कटार देकर विष के बुझे हुए वस्त्र चंदन की पेटी में भेजे थे। चंदन की पेटी में विष से भरे हुए वस्त्र! ठीक है, काका! चन्दन के वृक्ष में विषधर ही लिपटे रहते हैं, आपने इस सत्य को प्रमाणित कर दिया।

राघोवा : **(क्षोभ से धीरे)** तो ये दोनों व्यक्ति पकड़े गये।

[सैनिक के साथ महादेव और उसके मामा का प्रवेश]

महादेव : श्रीमंत काका और नाना की जय!

मामा : श्रीमंत नाना और काका की जय!

नाना० : महादेव! तुम जो विष से भरे हुए वस्त्र श्रीमती गंगाबाई के लिए लाये वे किसने भेजे थे?

महादेव : वे...वे...सतारा ने भेजे थे?

नाना० : सतारा ने भेजे थे? सतारा से किस व्यक्ति ने भेजे थे?

महादेव : सतारा से गंगाबाई के सम्बन्धियों ने भेजे थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाना० : उनका क्या नाम है ?

मामा : मैं बतलाऊँ, नाना ! जिस व्यक्ति ने भेजे थे, उसका नाम हम नहीं ले सकते।

नाना० : मैं यह निर्णय देता हूँ कि यदि भेजे जाने वाले का नाम इसी समय नहीं बतलाया गया तो दोनों व्यक्तियों को प्राणदण्ड दिया जायगा।

महादेव : प्राणदण्ड ?

मामा : (**अधिक डरे हुए शब्दों से**) प्राणदण्ड ? (**राघोवा से**) काका ! अब तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो।

नाना० : जो व्यक्ति स्वयं बंदी है, वह कैसे रक्षा कर सकता है ?

महादेव : तो हम लोगों को क्षमा कीजिए, श्रीमन्त नाना फड़नवीस !

नाना० : क्षमा किसी प्रकार नहीं मिल सकेगी। नाम प्रकट किया जाय, नहीं तो तुम दोनों प्राणदण्ड के भागी होंगे।

महादेव : (**राघोवा से**) काका ! एक हजार स्वर्ण-मुद्राएँ वापस ले लीजिए और हम दोनों के प्राण बचा लीजिए।

नाना० : सुना, काका ! एक हजार स्वर्ण-मुद्राएँ वापस ले लीजिए। एक हजार स्वर्ण-मुद्राओं से तुम श्रीमती गंगाबाई के प्राण लेना चाहते थे। सोचा होगा कि श्रीमती गंगावाई को मार डालने के बाद नये पेशवा का पुश्त ही नहीं उठेगा। और तुम सरलता से पेशवा हो सकोगे।

राघोवा : मैं लज्जित हूँ, नाना फड़नवीस !

नाना० : सैनिक ! इन दोनों को ले जाओ और बन्दीगृह में डाल दो।

मामा : अब हमें प्राणदंड तो नहीं मिलेगा ?

महादेव : अब तो आपको काका का नाम भी मालूम हो गया।

नाना० : इसका निर्णय बाद में किया जायगा। (**सैनिक से**) ले जाओ इन्हें !

सैनिक : जो आज्ञा। [**दोनों के साथ सैनिक का प्रस्थान**]

नाना० : काका राघोवा को बन्दीगृह में अकेले रहने से कष्ट होगा। ये दोनों व्यक्ति साथ रहेंगे तो आगे के षड्यंत्र बनाने में सरलता होगी।

राघोवा : नाना फड़नवीस ! अब मुझे अधिक अपमानित न करो।

नाना० : मैं आपको अपमानित नहीं कर रहा राघोवा काका, आपके कार्य ही आपको अपमानित कर रहे हैं; किन्तु अब आपसे मेरी प्रार्थना है कि अपनी जननी जन्म-भूमि के प्रति आप विश्वासघाती न बनें। ये टोपी वाले अंगरेज़ यहाँ व्यापार की सुविधा माँगने के लिए आये थे, पर अब ये हमारे देश पर अधिकार करना चाहते हैं। ये चाहते हैं कि हम लोग आपस में हमेशा लड़ते रहें जिससे ये कभी आपके साथ, कभी हमारे साथ संधि कर अपने राज्य की जड़ें जमाते जायँ।

राघोवा : ऐसी बात नहीं है, नाना ! अंग्रेज़ों का वकील मास्टिन तो बहुत ही सच्चा और ईमानदार है। वह हमारा मित्र भी है।

नाना० : वह मित्र इसीलिए है कि तुम उसके हाथ की कठपुतली बने रहो। जानते हो,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बंबई की कौंसिल ने मास्टिन को पत्र में क्या लिखा है ? यह लिखा है कि मराठों को घर-ही-घर में एक-दूसरे से लड़ा कर या जिस तरह हो सके इस बात की कोशिश करो कि मराठे हैदर के साथ या निज़ाम के साथ मिलने न पावें। मास्टिन इस बात के लिए कोशिश कर रहा है और उसे आप मित्र समझते हैं ?

राघोवा : क्या यह सच है ?

नाना० : मेरे गुप्तचरों ने मुझे इस पत्र की प्रतिलिपि दी है। एक दूसरे पत्र में फिर मास्टिन को लिखा गया है कि इस अवसर पर साष्टीं और वसीन प्राप्त करने में जितनी परिस्थितियाँ हमारी सहायता कर सकें उन्हें तुम खूब परिश्रम के साथ बढ़ाना और चाहे कुछ भी क्यों न हो, पूना छोड़कर कहीं न जाना। इस पत्र की प्रतिलिपि भी मेरे पास है।

राघोवा : आपके गुप्तचर पत्र की झूठी नक़ल भी दे सकते हैं।

नाना० : मेरे गुप्तचर आपके महादेव और उसके मामा की भाँति नहीं हैं जो प्राणदण्ड के भय से स्वामी का नाम ले सकते हैं। पर आपके अविश्वास की कोई दवा मेरे पास नहीं है। आप देशद्रोही हैं और सदैव रहेंगे। अपने घर की आग से आप शत्रुओं के घर में दीपक जलायेंगे। मास्टिन इस समय भी पूना में है और वह हम लोगों में अविश्वास के बीज बो रहा है। आप उसे जल से सींचेंगे।

राघोवा : अब अच्छा नाना ! यदि तुम मुझे पेशवा मान लो तो मैं मास्टिन को छोड़ दूं। जहाँ तुम कहो वहाँ रहूँ—पूना में, पुरन्दर में, सतारा में। तुम्हें मैं फणनवीस नहीं, मंत्री बनाऊँगा। तब महाराष्ट्र में कोई अविश्वास के बीज नहीं बो सकेगा और न उन्हें कोई सींच सकेगा।

नाना० : सुनो, राघोवा ! तुम्हारी तरह मैं व्यापार नहीं करता। राष्ट्र-सेवा रुपयों से या मंत्री पद से नहीं तौली जाती। तुम पेशवा के पद के अधिकारी नहीं हो सकते। पेशवा होंगे श्रीमती गंगाबाई के पुत्र। मैंने अभी से उनका नामकरण कर दिया है, सवाई माधव राव।

राघोवा : और यदि गंगाबाई के पुत्र न होकर पुत्री हुई तो ?

नाना : तो गंगाबाई दत्तक पुत्र स्वीकार करेगी और उसी पुत्र का नाम होगा सवाई माधव राव। किन्तु कैलासवासी पेशवा नारायण राव के वंश में ही पेशवाई रहेगी।

राघोवा ; यह तुम्हारा अंतिम निर्णय है ?

नाना० : मेरा ही नहीं समस्त महाराष्ट्र का यह निर्णय है। महाराष्ट्र का कोई भी सावधान व्यक्ति तुम्हारा साथ नहीं दे सकता। यदि कोई तुम्हें स्वार्थ के ज़ाल में फँसाकर मार सकता है तो वह कम्पनी का वकील मास्टिन है। मैं फिर एक बार कहना चाहता हूँ, काका, कि मास्टिन से सावधान रहो। हम सब मिलकर इन कूटनीतिज्ञ अंग्रेज़ों को सारे देश से बाहर निकाल देंगे। भोंसले, निजाम और हैदर अली हमारे साथ हैं। हम सब मिलकर इन विदेशियों की चालाकी को समझें। तुम श्रीमती गंगाबाई के होने वाले पुत्र सवाई माधव सिंह के संरक्षक बनो और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने काका के नाम को सार्थक करो।

राघोवा : सोचूंगा, नाना ! इन बातों पर विचार करूंगा।

नाना० : भगवान् गजानन तुम्हें महाराष्ट्र का महापुरुष बनायें। श्रीमती गंगाबाई को आशीर्वाद दोगे ? वे भगवान् गजानन की पूजा समाप्त कर चुकी हैं।

राघोवा : जब तुम मुझे हत्यारा कहते हो तो हत्या करने वाला आशीर्वाद कैसे दे सकता है ?

नाना० : दे सकता है, यदि वह हत्या का प्रायश्चित करे और यह राष्ट्रसेवा ही प्रायश्चित है। किन्तु तुम्हारा कहना भी ठीक है। महाराष्ट्र की पवित्र देवी पर कोई अपवित्र छाया भी नहीं पड़नी चाहिए। काका ! आपने कहा है कि आप मेरी बातों पर विचार करेंगे। बन्दीगृह में आपको विचार करने का पर्याप्त अवकाश मिलेगा। (पुकारकर) सैनिक !

[सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : श्रीमन्त की जय !

नाना० : सैनिक ! हरिपन्त बाहर होंगे। उनसे कहो कि काका राघोवा विश्राम करना चाहते हैं।

सैनिक : जो आज्ञा। [प्रस्थान]

नाना० : (पुकारकर) सौदामिनी !

[सौदामिनी का प्रवेश]

सौदामिनी : श्रीमन्त की जय !

नाना० : सौदामिनी ! श्रीमती गंगाबाई से कहो कि वे इस कक्ष में आने का कष्ट करें।

सौदामिनी : जो आज्ञा। [प्रस्थान]

नाना० : काका ! पानीपत के युद्ध में महाराष्ट्र का भयानक पराभव हुआ। परस्पर की फूट से हमने अपना देश और धन तो खोया ही, न जाने कितने वीरों के रक्त से देश की शस्य श्यामला भूमि लाल कर दी। और विदेशी हमें खिलौनों की भाँति खिलाकर हम पर हँसते हैं और एक-दूसरे के ऊपर उछालकर तोड़ रहे हैं। सोचो, समझो, काका ! परस्पर की फूट भारत के लिए अभिशाप बनी है। इस अभिशाप को सदैव के लिए समाप्त कर दो।

[हरिपन्त का प्रवेश]

हरिपन्त : श्रीमन्त की जय !

नाना० : हरिपन्त तुम आ गये। काका राघोवा ने कहा है कि वे मेरी बातों पर विचार करेंगे। इनके बन्धन खोल दो। इन्हें विश्रामगृह में ले जाकर इनके विश्राम की व्यवस्था करो जिससे इन्हें सोचने की सुविधा मिले।

हरिपन्त : काका यों तो भले आदमी हैं, किन्तु काकी आनन्दी बाई...

राघोवा : (चीखकर) हरिपन्त ! अपनी जिह्वा पर नियंत्रण रखो।

नाना० : हरिपन्त ! काका की बात का बुरा मत मानना। नियंत्रण अवश्य रखना।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राघोवा काका के बन्धन तो खुल जायेंगे किन्तु इनकी गतिविधि पर नियन्त्रण रखना।

हरिपन्त : जैसी आज्ञा।

नाना० : और सुनो ! चन्दन की इस पेटिका को जिसमें विष भरे वस्त्र हैं, अग्नि-देव को समर्पण कर देना। इसके वस्त्रों को कोई व्यक्ति स्पर्श न करे। काका राघोवा के राजसूय की अग्नि को ही यह समर्पित हो।

हरिपन्त : जो आज्ञा।

नाना० : **(गहरी सांस लेकर)** अच्छा ! काका राघोवा यह फणनवीस भट्ट वंशी काका रघुनाथ राव को प्रणाम करता है। भविष्य में ऐसे काम न करना कि महाराष्ट्र तुम्हें काका कहने में लज्जा का अनुभव करे।

राघोवा : नाना फड़नवीस ! तुम भी मेरे और अपने भविष्य पर एक बार फिर सोचना।

नाना० : सत्य का संशोधन नहीं होता, काका ! जाओ।

हरिपन्त : चलो, काका ! **[दोनों का प्रस्थान]**

नाना० : महाराष्ट्र के सौभाग्य की चन्द्रकला कब राहु के मुख से मुक्त होगी, यह भगवान् गजानन जानें।

[सौदामिनी का प्रवेश]

सौदामिनी : श्रीमंत की जय ! श्रीमती गंगाबाई आ गई हैं।

नाना० : आने के लिए उनसे निवेदन हो।

सौदामिनी : जैसी आज्ञा। **[प्रस्थान]**

नाना० : **(सोचते हुए)** महाराष्ट्र के सौभाग्य की चन्द्रकला—श्रीमती गंगाबाई ! बड़े सुन्दर चित्र खींचती है। महाराष्ट्र के स्वर्णिम भविष्य का भी कोई चित्र खिंचे !

[गंगाबाई का प्रवेश]

नाना० : फड़नवीस का श्रीमती को नमस्कार !

गंगा : नमस्कार, नाना ! आज आपने मुझे बहुत देर के बाद स्मरण किया।

नाना० : श्रीमती ! आज बड़े-बड़े काण्ड घटित हुए। सतारा से वस्त्रों की भेंट लेकर दो भद्र पुरुष आये थे।

गंगा : हाँ, मैंने सुना। वे मेरी प्रतीक्षा भी कर रहे थे। मैं भगवान् गजानन की पूजा के लिए चली गई थी। वे चले गये ?

नाना० : चले गये, बन्दीगृह में।

गंगा : बन्दीगृह में ?

नाना० : हाँ, बन्दीगृह में। तुम्हारे लिये वस्त्रों की भेंट लाये थे। काका राघोवा ने पूना में रहते हुए सतारा से यह भेंट भेजी थी विष में डुबाकर जिससे उन वस्त्रों को धारण करते ही तुम संसार से चली जाओ और उनकी पेशवाई का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रास्ता साफ हो जाय।

गंगा : नाना ! यह तो बहुत अच्छा होता। इन भीषण कष्टों से मैं मुक्ति पा जाती। जिस रास्ते मेरे स्वामी गये हैं, उसी रास्ते मैं भी चली जाती। [**एक अश्रु**]

नाना० : अरे, तुम्हारी आँखों में आँसू ? तुम तो वीर-पत्नी हो और अब वीर-जननी भी होने वाली हो। क्या तुम चाहती हो कि चन्द्र की कला डूब जाय जिससे अन्धकार में चोरों को चोरी करने का अवसर मिले ?

गंगा : आप सबकी रक्षा कर लेंगे, नाना ! आप बहुत बड़े नीतिज्ञ और दूरदर्शी हैं।

[**यवनिका**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 24 :

कलंक-रेखा

पात्र-परिचय

महाराणा भीमसिंह—उदयपुर के महाराणा
महारानी चावड़ी—महाराणा भीमसिंह की पत्नी
कृष्णाकुमारी—महाराणा की पुत्री
देवला—कृष्णाकुमारी की सखी
जवानसिंह—महाराणा भीमसिंह के भाई
संग्रामसिंह—शक्तावत सरदार
सँपेरा और अन्य चार व्यक्ति

काल—21 जुलाई, 1810 ई०
समय—सन्ध्या के 5 बजे
स्थान—उदयपुर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कलंक-रेखा

[राजमहल के समीप एक उपवन । जवानसिंह और देवला में बात-चीत हो रही है । देवला फूल चुन रही है ।]

जवान० : (विह्वल स्वर में) एक बात पूछूं, देवला ?

देवला : हाँ, कुँवर चाचा ! लेकिन...

जवान० : लेकिन क्या ?

देवला : मुझे राजकुमारी के लिए फूल चुनकर पूजा की सामग्री सजानी है । पहले उनके लिए फूल चुन लूँ ।

जवान० : (अप्रतिभ शब्दों में) फूल-सी राजकुमारी के लिए फूल ? (सँभलकर) बहुत अच्छा । मैं सोच रहा था कि फूल के स्थान पर कहीं राजकुमारी ही पूजा की सामग्री न बन जाये ।

देवला : यह तो सच है, कुँवर चाचा ! जब राजकुमारी कृष्णा देव-प्रतिमा के सामने नत-मस्तक होती हैं, तो ज्ञात होता है जैसे देव-प्रतिमा के चरणों पर एक सजीव फूल चढ़ा हुआ है ।

जवान० : (सोचते हुए) सजीव फूल...सजीव फूल ! (सहसा) एक बात पूछूं, देवला ?

देवला : हाँ, कुँवर चाचा ! लेकिन...

जवान० : फिर लेकिन ?

देवला : हाँ, आजकल राजमन्दिर के विषय में बात पूछी नहीं जाती या तो कही जाती है या सुनी जाती है ।

जवान० : आजकल ऐसा क्यों, देवला ?

देवला : इसलिए कि प्रश्न का चिह्न विच्छू के डंक की तरह टेढ़ा है, जिसमें जहर भरा रहता है । जब तक प्रश्न का उत्तर न मिल जाये तब तक तो सन्देह के जहर में मन डूबा ही रहता है ।

जवान० : ठीक है, तो मैं सन्देह नहीं करूँगा, देवला, मैं सन्देह नहीं करूँगा । मैं यही पूछना चाहता...मैं यही सुनना चाहता था कि कृष्णाकुमारी का विवाह...

देवला : (बीच ही में) बस, कुँवर चाचा ! आगे नहीं । आप कुंवर हैं, फिर भी राजपूती रक्त इस वाक्य को पूरा करने की शक्ति नहीं रखता ? राजपूतों की आँखों की लाली कुसुम्मा-पात्र में तैर रही है । विदेशियों के लिए हमारे शस्त्र मखमली म्यानों में गहरी नींद ले रहे हैं । ये प्रश्न रक्त से पूरे किये जाते हैं, शब्दों से नहीं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जवान० : **(टूटते स्वर में)** देवला ! तुम ठीक कह रही हो, तुम ठीक कह रही हो लेकिन...लेकिन...

देवला : कुँवर चाचा ! आप इतने घबराये हुए क्यों हैं ? आपके मुख से शब्द ठीक-ठीक निकलते भी नहीं । **(गहरी नजर से देखते हुए)** अच्छा ! और यह कटार... यह कटार आपने क्यों खोल रखी है ?

जवान० : **(घबराकर)** यह कटार ? नहीं तो...नहीं तो...अच्छा । यह कटार यह कटार, जो मेरी कमर में है ? अरे, इसका मखमली म्यान खराब हो गया था । मैंने उसे निकाल दिया । तुम्हीं ने तो अभी कहा था कि विदेशियों के लिए हमारे शस्त्र मखमली म्यानों में गहरी नींद ले रहे हैं । इसलिए मैंने पहले से ही इस कटार का म्यान निकालकर फेंक दिया ।...और तुम्हारी सखी तो यहीं कहीं होगी । मुझे मिली नहीं ।

देवला : राजकुमारी पूजा के वस्त्र धारण करने गयी हैं । उन्होंने मुझसे फूल चुनने के लिए कहा और...

[लोगों की बातचीत का सम्मिलित स्वर, जो दूर से धीरे-धीरे पास आता जा रहा है । एक स्वर—"क्यों, यह कैसे हुआ ?" दूसरा स्वर—"वह कहाँ थी ?" तीसरा स्वर—"क्या मर गयी ?" चौथा स्वर—"नहीं, अभी जीवित होगी ?"]

[संपेरे की बीन सुन पड़ती है ।]

जवान० : **(घबराये स्वर में)** कुछ लोग आ रहे हैं । अच्छा, देवला ! अब मैं जाता हूँ ।

देवला : ठहरिए, ठहरिए । देखिए, बाहर कौन है ? क्या दुर्घटना हो गयी, किसी को सर्प ने काट लिया ?

जवान० : **(विह्वल स्वर में)** नहीं, नहीं...कोई दुर्घटना नहीं हो सकी । कोई दुर्घटना नहीं हुई । कृष्णा को...कृष्णा को यह मालूम न हो कि मैं...मैं...यहाँ आया था...। **(दूर जाता हुआ स्वर)** मैं यहाँ आया था । **[प्रस्थान]**

देवला : **(दोहराते हुए)** कृष्णा को मालूम न हो कि मैं यहाँ आया था ? **(सोचते हुए)** कुछ समझ में नहीं आता । कुँवर चाचा जवानसिंह कटार लेकर आये और चले गये ? ...और...और कृष्णा को मालूम न होने पाये ?... **[बीन बन्द हो जाती है ।]**

[नेपथ्य में एक स्वर—"जहर तो सारे शरीर में फैल गया !" दूसरा स्वर—"अब तो वह हमेशा के लिए सो गयी !" तीसरी स्वर—"बीन बजाने से क्या होगा ?" पहला स्वर—"बीन बजाने से सर्प आ जायगा और काटी हुई जगह से जहर खींच लेगा ।" तीसरा स्वर—"न जाने साँप कहाँ होगा !" दूसरा स्वर—"अरे, ये सब कहने की बातें हैं । कहाँ का जहर खींचना ।" तीसरा स्वर—"हाय, बेचारी मर गयी ! अभी उमर ही क्या थी ?" पहला स्वर—"भाग्य की बात !"]

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[**बीन थोड़ी देर तक बजती है ।**]

देवला : (**पुकारकर**) ए, बीन वाले ! (**बीन रुक जाती है**) क्या इसे साँप ने काट लिया ?

बीन० : हाँ, अन्नदाता ! ज़हर चढ़ गया है ।

देवला : तो इसका ज़हर नहीं उतार सकते ?

बीन० : अच्छा, अन्नदाता ! बीन बजाकर सर्प को बुला रहा हूँ । वही सारा ज़हर खींच लेगा ।

देवला : ठीक है । पर इसे यहाँ से दूर ले जाओ । यहाँ राजकुमारी के घूमने की जगह है । इस बेचारी स्त्री को देखकर राजकुमारी को दुःख होगा ।

बीन० : अच्छा, अन्नदाता ! (**अपने साथियों से**) चलो जी, उठाओ । दूर ले चलो इसे ।

[**बीन बजती है । धीरे-धीरे उसका स्वर दूर होता जाता है ।**]

देवला : (**गहरी साँस लेकर**) बेचारी स्त्री ! दो घण्टे पहले हँस रही होगी, इस समय ज़मीन पर पड़ी है । ओह ! कितना भयानक ज़हर है ?

[**राजकुमारी कृष्णा का प्रवेश**]

कृष्णा : देवला !

देवला : राजकुमारी !

कृष्णा : देवला ! तू फूल चुनने के लिए आयी थी, यहीं रुक गयी ?

देवला : (**अपराधी के-से स्वर में**) राजकुमारी ! मैं...

कृष्णा : (**बीच ही में**) बीन सुन रही थी । तेरा बचपन अभी तक नहीं गया । कौन था वह बीन वाला ?

देवला : कोई नहीं, राजकुमारी ! साँपों का खेल दिखलाता था । थोड़ी देर देखने लगी ।

कृष्णा : पूजा के समय साँपों का खेल ? ठीक है, साँप भी तो भगवान् एकलिंग के मस्तक के आभूषण हैं ।

देवला : और राजकुमारी ! कुँवर चाचा भी आये थे ।

कृष्णा : कुँवर चाचा ? जवानसिंह ? यहाँ ? किसलिए ?

देवला : मैं क्या जानूँ । उनकी कमर में खुली हुई कटार थी ।

कृष्णा : खुली हुई कटार ? अपनों के लिए या दूसरों के लिए ?

देवला : दूसरों के लिए तो शक्ति ही नहीं रह गयी, अपनों के लिए ही होगी । और जाते समय मुझ से कह गये कि राजकुमारी को मालूम न हो कि मैं यहाँ आया था ।

कृष्णा : अच्छा, तो तूने यह बात मुझ से क्यों कह दी ?

देवला : (**हँसकर**) मैं राजकुमारी की सखी हूँ, कुछ उनकी सखी तो हूँ नहीं ।

कृष्णा : सच है, मेरी सखी मुझ से कोई बात नहीं छिपा सकती । लेकिन देवला, कुँवर चाचा और कुछ कह रहे थे ?

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवला : बातों-ही-बातों में वे आपके विवाह की बात पूछना ही चाहते थे कि मैंने दूसरी बात छेड़ दी।

कृष्णा : (**अस्फुट स्वर में**) मेरे विवाह की बात ?

देवला : हाँ, मैंने कहा कि कुँवर चाचा ! आजकल राजमन्दिर के विषय में बात पूछी नहीं जाती, कही या सुनी जाती है।

कृष्णा : सच, देवला ! आज हमारे राजमन्दिर की स्थिति ही ऐसी है, जिसमें विवाह की बात मखमली म्यान की गहराई है, जिसमें कटार या तलवार छिपी रहती है। मुझे तो इसमें कोई रुचि नहीं है।

देवला : ऐसा क्यों, राजकुमारी ?

कृष्णा : देवला ! मैं चारों ओर एक विचित्र उदासी का अनुभव कर रही हूँ। पिता जी के मस्तक पर चिन्ता की रेखाएँ प्रतिदिन लम्बी होती जा रही हैं। माता जी मुझे देखकर न जाने क्यों आँसुओं से आँखें भर लेती हैं। मैं कारण जानना चाहती हूँ, तो मुझे कोई ठीक ढंग से उत्तर ही नहीं देता। राजमन्दिर का सारा वातावरण जैसे सर्प की तरह कुण्डली मारकर बैठा है। कहीं मुझे डस न ले ? तू जानती है, ऐसा क्यों है ?

देवला : मैं नहीं जानती, राजकुमारी !

कृष्णा : यदि तू नहीं जानेगी, तो कौन जानेगा, देवला ! यह आकाश की निर्मलता जैसे किसी सन्यासी की साधना है, जो संसार से ऊपर उठ चुकी है। यह ठण्डी वायु जैसे किसी तपस्विनी का आशीर्वाद है, जिससे संसार से विराग उत्पन्न होता है। और मेरे मन में उदासी ऐसी बैठ गयी है, जैसे किसी का घर जल गया हो और वह किसी पेड़ के नीचे सिर झुकाये बैठा हो।

देवला : राजकुमारी ! क्षमा करें। यदि समय का चक्र कभी उदासी की तरफ घूम जाये, तो क्या ऐसी बातें भी सोची जानी चाहिए, जैसी आप सोच रही हैं ? यह तो एक बादल है, जो चन्द्रमा के ऊपर आ गया है। अभी आया है, अभी चला जायगा।

कृष्णा : नहीं, देवला ! यह वह बादल नहीं है, जो चन्द्रमा के ऊपर से चला जाये। यह तो चन्द्रमा के भीतर का कलंक है, जो उसके हृदय में समाकर बैठा है सदैव के लिए। इससे उसे मुक्ति नहीं है।

देवला : राजकुमारी ! छोड़िए इन बातों को। देखिए, मैंने आपके लिए कितने सुन्दर फूल चुने हैं ! यह जूही का फूल देखिए, जो सुगन्धि की साधना में इतना छोटा हो गया है। ऐसा ही तो आपका जी छोटा हो रहा है। लेकिन इसकी सुगन्धि आपके रूप की तरह चारों दिशाओं में फैली है।

कृष्णा : पर, देवला ! जूही के कितने फूल धूल में गिरे हुए हैं ? मिट्टी में मिलने के लिए ही तो यह रूप नहीं है ?

देवला : राजकुमारी ! यह फूल तो किसी के कण्ठ की श्री और शोभा बढ़ायेगा,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और देखिए यह चम्पक, जिसके प्राणों की सुगन्धि उसके हृदय की पीत आभा में साकार हो उठी है। पर यह आपके चरणों की कान्ति भी नहीं पा सका... बेचारा चम्पक...

कृष्णा : इसके हृदय के पीले रंग में जैसे मेरा सुख-सूर्य अस्त हो रहा है।

देवला : नहीं, राजकुमारी ! इसका यह पीत वर्ण आपके विवाह के हरिद्रा रंग का निमन्त्रण है।

कृष्णा : **(ग्लानि से)** विवाह ? सभी लोग इसकी कामना करते हैं। मेरे मन में न जाने क्यों इसकी चाह नहीं है। माली एक पौदे को अपने बाग़ में बड़े प्यार से इसलिए लगाये कि फूल निकलने के समय वह उस पौदे को किसी अपरिचित माली को सौंप दे ?

देवला : संसार की परम्परा तो यही है, राजकुमारी !

कृष्णा : यह परम्परा मुझे नहीं चाहिए, देवला ! जा, देर हो रही है। इन फूलों की एक सुन्दर-सी माला गूँथ दे। आज भगवान् एकलिंग का कण्ठ इससे सजाऊँगी।

देवला : राजकुमारी ! कण्ठ सजाने का ध्यान तो आपको आया। **(दबी हुई हँसी)** जाती हूँ। **[प्रस्थान]**

कृष्णा : **(उदास हँसी हँसकर)** कण्ठ सजाने का ध्यान ! विवाह !...परम्परा ! यह सब कुछ नहीं। **(देखकर)** अरे, पिता जी आ रहे हैं और माता जी भी साथ हैं। मैं अलग हट जाऊँ।

[अलग हट जाती है। महाराणा भीमसिंह और महारानी का प्रवेश]

महाराणा : यह एकान्त ठीक है। यहीं अपने प्राणों का क्रन्दन तुम्हें सुनाऊँगा, महारानी !

महारानी : महाराणा ! जिस राज्य की नारियों ने क्रन्दन नहीं किया, वहाँ महाराणा के प्राणों का क्रन्दन एक अनहोनी घटना है।

महाराणा : सचमुच, महारानी ! आज बाप्पा रावल के सिंहासन का भार शृगालों के कन्धों पर है। सूर्य ने चमकने के लिए जुगनुओं से प्रकाश माँगा है और समुद्र अपने गर्जन के लिए झींगुरों के स्वरों का भिक्षुक है। तभी तो महाराणा का हृदय आज क्रन्दन करता है, जिसे शब्द भी अंगीकार करने में अपना अपमान समझते हैं। वह क्रन्दन प्राणों में ही सिमट गया है और राजनीति की कगारों से पिस रहा है।

महारानी : तब महाराणा जी, मैं उन कगारों को काटूंगी। मैं क्षत्राणी हूँ, प्रलय की घटा बनकर ऐसी बरसूंगी कि उसमें कगारे ही नहीं, प्राणों के क्रन्दन भी डूब जायेंगे। और यदि वे नहीं डूबे, तो जौहर की लपटों से उनमें चिनगारियाँ भर दूंगी। किन्तु मेवाड़ के मस्तक को मलिन न होने दूंगी।

महाराणा : तुम धन्य हो, महारानी ! किन्तु राजनीति जौहर से भी अधिक भयानक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। इस राजनीति की बाढ़ में चित्तौड़ की तीन चिताएँ डूब चुकी हैं, अब...अब सारा उदयपुर डूबने को है।

महारानी : किन्तु, महाराणा ! जो अग्नि कभी शीतल नहीं हुई, वह जल की धारा में कैसे डूब सकती है ?

महाराणा : कृष्णा के विवाह के प्रसंग में।

महारानी : कृष्णा के विवाह के प्रसंग में ?

महाराणा : हाँ, महारानी ! अमीरखाँ एक बड़ी सेना लेकर उदयपुर की सीमा पर लोहे की दीवार बनकर खड़ा हुआ है। उसने चूड़ावत अजीतसिंह के द्वारा कहलाया है कि यदि आप अपनी कन्या का विवाह जोधपुर के महाराजा मानसिंह से नहीं करेंगे, तो मैं आपके राज्य को बरबाद कर दूंगा।

महारानी : किन्तु जब हम कृष्णा का टीका जयपुर के महाराज जगतसिंह को भेज चुके हैं, तब जोधपुर के महाराज मानसिंह से हम सम्बन्ध की बात ही कैसे कर सकते हैं ? और फिर अमीरखाँ को हमारे आपसी सम्बन्ध से क्या मतलब ?

महाराणा : महारानी ! राजनीति आग की ज्वाला है, जो चाहे जिस दिशा में जल सकती है। जो आग पाकशाला का शृंगार है, वह सारे घर को जला भी सकती है।

महारानी : लेकिन अमीरखाँ तो पहले उदयपुर-नरेश का सहायक था ?

महाराणा : अब जोधपुर-नरेश का मित्र है। महाराज मानसिंह ने अमीरखाँ को घूस देकर अपनी तरफ़ मिला लिया है।

महारानी : तो अमीरखाँ से कहला दीजिए कि कृष्णा का सम्बन्ध जयपुर में स्थिर हो चुका है, अब जोधपुर से किसी प्रकार की बात नहीं हो सकती।

महाराणा : तो अमीरखाँ उदयपुर में आग लगा देगा। हमारी समस्त मातृभूमि ही जौहर की चिता बन जायगी।

महारानी : तो क्या जयपुर-नरेश, जो हमारे सम्बन्धी होने जा रहे हैं, हमारी रक्षा न करेंगे ? युद्ध की छाया में ही हम अपनी बेटी का विवाह करेंगे।

महाराणा : यह कैसे होगा, महारानी ! जयपुर-नरेश के सरदारों में पहले से ही फूट है। वे जोधपुर के युद्ध से वापस चले आये हैं। हमारे सरदारों में भी फूट है। अब उदयपुर और जोधपुर की सम्मिलित सेना भी अमीरखाँ का कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

महारानी : अमीरखाँ इतना प्रचण्ड है ?

महाराणा : हाँ, और एक दूसरी कठिनाई भी है। यदि हम जयपुर के जगतसिंह जी के यहाँ से टीका वापस माँगते हैं, तो वे अपना अपमान समझकर हम पर आक्रमण कर बैठेंगे। इस प्रकार जयपुर और जोधपुर दोनों ही हमारे शत्रु होंगे और अमीरखाँ कभी इस ओर और कभी उस ओर से हमारे ऊपर मौत और आग बरसाने में पीछे नहीं रहेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महारानी : तब क्या होगा ?

महाराणा : हमारी मातृभूमि श्मशान बनने की प्रतीक्षा में है । सिन्धिया ने सदाशिव राव के द्वारा मेवाड़ से सोलह लाख वसूल कर हमारा कोष समाप्त कर दिया है । उदयपुर के पास शक्ति नहीं है कि वह युद्ध करे ।

महारानी : तब उदयपुर प्राण देकर युद्ध करेगा ।

महाराणा : किन्तु, महारानी ! क्या एक कन्या के पीछे मेवाड़, अम्बर और मारवाड़ के हज़ारों वीरों को रक्त में डूब जाने दूँ ? जिन सरदारों ने वंशानुगत मेवाड़ की सेवा में अपना जीवन व्यतीत किया है क्या उनके पवित्र रक्त को पानी की तरह बह जाने दूँ ? एक ओर कृष्णा का विवाह, दूसरी ओर सहस्रों वीरों के पवित्र रक्त के व्यर्थ बहाने का प्रश्न है ।

महारानी : तो महाराणा ! आप अपने वीरों को बचाइए, राजस्थान की नारियाँ अपनी तलवार उठायेंगी ।

महाराणा : भावुक मत बनो, महारानी ! राज्य की दृष्टि से सोचो कि क्या राजा अपने परिवार के एक व्यक्ति की रक्षा के लिए अपनी निरपराध प्रजा के सहस्रों वीरों का बलिदान कर दे ? अपनी कन्या की रक्षा में यदि अपनी मातृभूमि के विनाश के बीज बो दे, तो क्या भविष्य का इतिहास भीमसिंह के नाम पर नहीं थूकेगा ? कन्या के छोटे-से जीवन की हलकी साँस के लिए एक तूफ़ान को निमन्त्रण दूँ, जो बाप्पा रावल और महाराणा प्रताप की मातृभूमि के अंग-अंग क्षत-विक्षत कर दे ? एक सुकुमार शरीर की रक्षा के लिए लाखों शक्तिशाली शरीर युद्ध की अग्नि में जलाये जायें ? सहस्रों सिसोदियों की वीरता की ज्योति एक फूँक से बुझ जाने दी जाये ? एक लहराती हुई चिनगारी से सारे नगर में आग लग जाने दी जाये ?

महारानी : तो फिर आपने क्या उपाय सोचा है ?

महाराणा : उपाय ? मेरे लिए कोई उपाय नहीं है, महारानी ! मेरा राजमुकुट आज वह धूमकेतु है, जो उदास आकाश के मस्तक पर रखा हुआ है और जिसके उदय होने पर अमंगल और भय की आशंका होने लगती है । यह राजमुकुट, जो मुग़लों की तलवार के वेग से भी अपने स्थान से नहीं हटा, जो राजपूतों के रक्त की नदियों पर सदैव तैरता रहा, एक क्षण को भी न डूबा, आज मेरे आँसू की एक बूँद में डूबना चाहता है । महारानी, बचाओ ! **(चीखकर)** मुझे इस कलंक से बचाओ !

महारानी : महाराणा......

महाराणा : **(बीच ही में)** आज चित्तौड़ के जौहर की ज्वाला मेरे रोम-रोम में जल रही है । सिसोदियों की वंश-मर्यादा आकाश का हृदय चीरते हुए वज्र की तरह मेरे मस्तक पर गिरने जा रही है । **(चीखकर)** बाप्पा रावल ! इस वंश को कलंकित करने वाले भीमसिंह को देख रहे हो ? उसके जीवन को मृत्यु का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शृंगार दो, उसके कष्ट को प्रलय की अग्नि बना दो, जिससे वह एक क्षण में भस्म हो जाये।

महारानी : महाराणा, ऐसे अशुभ वाक्य मैं नहीं सुन सकूँगी। मैं स्वयं इसका उपाय खोजूँगी।

महाराणा : तुम किस प्रकार उपाय खोजोगी, महारानी ? एक ओर अमीरखाँ यम-राज की तरह मृत्यु का जाल खोले खड़ा है, दूसरी ओर हमारे सरदारों की आपसी द्वेष-भावना ने एक-दूसरे का रक्त पीने का व्रत लिया है। हमारी शक्ति की तलवार टूट गयी है, केवल मूठ हाथ में है। आज बाप्पा रावल की भूमि अपने सम्मान के लिए सतृष्ण नेत्रों से हमारे बाहुबल की ओर देख रही है और हम अपनी निर्बलता में अपनी मातृभूमि की ओर देख भी नहीं सकते। सिसोदिया-वंश की ऐसी दशा इतिहास में पहले कभी नहीं हुई।

महारानी : तो क्या हम अपनी मातृभूमि की रक्षा कर ही न सकेंगे ?

महाराणा : चूड़ावत सरदार अजीतसिंह ने मातृभूमि की रक्षा का एक उपाय प्रस्तुत किया है।

महारानी : कौन-सा ? **(उतावली से)** शीघ्र बतलाइए, शीघ्र बतलाइए।

महाराणा : मैंने वह प्रस्ताव स्वीकार न करते हुए कहा, अजीतसिंह ! तुम...तुम अपनी तलवार उठाओ और अपने महाराणा का कलंक रक्त से धो दो। अजीत-सिंह ने कहा...अजीतसिंह ने कहा, उदयपुर के महाराणा को कर्तव्य-वेदी पर अपना हृदय काटना पड़ता है। महाराणा लाखा ने मेवाड़ की बलि-माला में अपने पुत्रों के सिर फूलों की तरह गूँथे थे, महारानियों ने अपने पुत्रों को सुसज्जित कर रण-भूमि में भेजा था। आप एक पुत्री के लिए ही दुःखी हैं ?

महारानी : एक पुत्री के लिए ?

महाराणा : हाँ, सभी सरदार कहते हैं कि इसके अतिरिक्त मेवाड़ का मान किसी प्रकार भी नहीं बचाया जा सकता।

महारानी : चूड़ावत अजीतसिंह का क्या प्रस्ताव था ? मैं शीघ्र सुनना चाहती हूँ, मैं शीघ्र सुनना चाहती हूँ।

महाराणा : ओह ! मैं उसे कैसे कहूँ ? महारानी ! मेरे कण्ठ से उसकी ध्वनि नहीं निकल सकेगी।

महारानी : मातृभूमि की रक्षा के लिए प्रत्येक बात कही और सुनी जा सकती है।

महाराणा : तो सुनो...अपना हृदय पत्थर का बनाकर सुनो। अजीतसिंह ने यह प्रस्ताव किया कि अम्बर, मारवाड़ और मेवाड़ के सहस्रों सैनिकों के रक्त से मेवाड़ को नहलाने की अपेक्षा यह उचित होगा कि युद्ध का कारण ही दूर कर दिया जाये।

महारानी : कारण ही दूर कर दिया जाये ? मैं कुछ समझी नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाराणा : बात यह है कि व्यर्थ के युद्ध की अपेक्षा यह अच्छा होगा कि कृष्णा को मृत्युदण्ड...

महारानी : **(बीच ही में)** ओह, महाराणा ! यह आप क्या...यह आप क्या कह रहे हैं ? बेचारी कृष्णा, मेरी कृष्णा को...मेरी कृष्णा को यह दण्ड ! ऐसा नहीं हो सकता...ऐसा नहीं हो सकता......

[जवानसिंह का प्रवेश]

महाराणा : कौन ? कुँवर जवानसिंह ! तुम यहाँ हो ? तुम्हारी कमर में खुली हुई कटार है, पर उस पर रक्त का कोई धब्बा नहीं है ? अब उस कटार पर मेरे रक्त का धब्बा लगेगा।

जवान० : महाराणा ! मुझे क्षमा करें। मैं कृष्णा के कक्ष में कटार लेकर गया था, लेकिन कृष्णा मुझे मिली नहीं। देवला ने कहा कि वे स्नानागार में हैं। मैं वहीं से वापस लौट रहा हूँ।

महारानी : **(करुण स्वर में)** मेरी कृष्णा, मेरी कृष्णा ! मैं कृष्णा पर यह दण्ड होते हुए नहीं देखूंगी। मैं कृष्णा के पास जाऊँगी, अभी जाऊँगी। मेरी कृष्णा **(चीखते हुए)** मेरी कृष्णा...कृष्णा **[प्रस्थान]**

महाराणा : **(विह्वल कण्ठ से)** गयी ! माँ का हृदय ! माँ की ममता ! कुँवर जवानसिंह ! अब इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है कि मैं अपने प्राण दे दूं। न तो मातृभूमि की दुर्दशा ही देखूंगा और न अपनी कृष्णा का प्राण-दण्ड ही।

[कृष्णाकुमारी का प्रवेश]

कृष्णा : **(संयत स्वर में)** यह तो बहुत सरल है, पिताजी ! आपकी कृष्णा हँसते-हँसते इस दण्ड को स्वीकार करेगी।

महाराणा : **(चीखकर)** ओह, कृष्णा ! तू यहाँ कहाँ ? मेरी बेटी ! तूने कुछ सुना तो नहीं ?

कृष्णा : मैंने सब सुन लिया है, पिताजी !

महाराणा : **(विह्वल स्वर में)** नहीं बेटी ! यह झूठ है, बिलकुल झूठ है। जो अपनी शक्ति का लोहा शत्रु से नहीं मनवा सकते, वे ही ऐसी बातें कह सकते हैं।

कृष्णा : नहीं, पिताजी ! चूड़ावत अजीतसिंह ने जो प्रस्ताव किया है, वह अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए है। मैं उस प्रस्ताव से सहमत हूँ। आप मुझे प्राण-दण्ड दीजिए।

महाराणा : किस अपराध पर दूं, बेटी ! तू मेरे हृदय से पूछ कि मैं संसार की सारी सम्पदा प्राप्त कर भी तुझे नहीं खोना चाहता।

कृष्णा : किन्तु, पिताजी, मातृभूमि सारे संसार की सम्पदा से भी अधिक मूल्यवान है और उसकी रक्षा मुझे प्राण देकर भी करनी चाहिए।

महाराणा : कृष्णा ! तेरे प्राणों का मूल्य जानती है क्या है ? समस्त राजपूतों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कायरता का ज्वलन्त उदाहरण। क्या तू राजपूतों को सदैव के लिए कलंकित करना चाहती है ?

कृष्णा : पिताजी ! राजपूतों के मस्तक पर कलंक तो इस बात से लगेगा कि उन्होंने एक पुत्री के मोह में अपनी मातृभूमि के पवित्र मस्तक पर शत्रुओं के पैरों के चिह्न लग जाने दिये। क्या एक फूल को बचाने के लिए माली अपने सारे बाग़ में आग लगा दे ?

महाराणा : बेटी, तू मेवाड़ की शोभा है। तेरे बिना मेवाड़ श्मशान की भाँति हो जायगा। और तब वीरों की वाणी शृगालों के कोलाहल से अधिक नहीं रहेगी। उनकी तलवार बच्चों के खिलवाड़ की वस्तु बन जायगी।

कृष्णा : पिताजी, मेवाड़ की रही-सही जो शोभा है, उसे मेरे कारण नष्ट न होने दीजिए। महारानी पद्मिनी के कारण मेवाड़ में मृत्यु नाची थी। उस इतिहास के दोहराने का अवसर न आने दीजिए, पिताजी ! ये सच्चे स्वामिभक्त मेवाड़-निवासी, जिन्होंने वर्षों युद्ध और विपत्ति में मेवाड़ का साथ दिया है, मेरे अकेले जीवन के लिए युद्ध की बलि बनें—मेरी सुन्दरता के पीछे—जो आज है, कल नहीं। फिर यह आज ही समाप्त क्यों न हो जाये ? (**कुंवर जवानसिंह से**) कुंवर चाचा, निकालो अपनी कटार और सुन्दरता के छद्मवेश में छिपे इस जीवन को समाप्त कर दो......

महाराणा : (**क्रन्दन के स्वर में**) ओह ! मुझ से यह देखा नहीं जायगा, नहीं देखा जायगा। महारानी कहाँ हैं, कहाँ हैं महारानी ? (**पुकारकर**) महारानी...... (**जाते हुए**) महारानी...महारानी... [**प्रस्थान**]

कृष्णा : (**दृढ़ता से**) कुंवर चाचा, मैंने सब बातें सुन ली हैं। अच्छा होता, यदि मैं तुम्हें पहले ही मिल जाती और तुम अपना काम पूरा कर लेते। कुंवर चाचा, मातृभूमि की रक्षा के लिए राजस्थान की नारियों ने क्या नहीं किया ?

जवान० : (**करुण स्वर में**) कृष्णा...!

कृष्णा : कुंवर चाचा, यदि मैं पुत्री न होकर पुत्र होती, तो क्या आप मुझे मातृभूमि की रक्षा के लिए तलवार लेकर युद्ध में जाने की आज्ञा न देते ? मैं दुर्भाग्य से पुत्री हूँ, तो क्या मुझे अपनी मातृभूमि के लिए मरने की आज्ञा न मिलेगी ? मेरे कारण उदयपुर की भूमि अपवित्र हो, यह मैं सहन नहीं कर सकूंगी।

जवान० : (**शान्त स्वर में**) कृष्णा ! तू धन्य है। तेरी-जैसी बालिकाओं से ही मेवाड़ की कीर्ति संसार में जागती रहेगी।

कृष्णा : तो कुंवर चाचा ! आप अपनी कटार उठाइए और रक्त के अमृत से मुझे अमर कर दीजिए।

जवान० : बेटी ! मैं क्या कहूँ ? चूड़ावत अजीतसिंह की इच्छा से और महाराणा की मौन स्वीकृति से ही मुझे यह क्रूर कार्य सौंपा गया है। बतला, मैं क्या करूँ ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृष्णा : जो प्रत्येक राजपूत को करना चाहिए। जब जयपुर और जोधपुर दोनों ही उदयपुर के रक्त-पान का व्रत ले चुके हैं, तो उन्हें ऐसा रक्त देना चाहिए, जो उनके कण्ठ में आग की लपट बनकर उनकी तृष्णा सदैव के लिए शान्त कर दे।

जवान० : तू ठीक कह रही है, बेटी ! पर मुझसे यह न होगा...यह न होगा।

कृष्णा : कुँवर चाचा ! आप राजाज्ञा की अवहेलना कर रहे हैं। मातृभूमि के अपमान के साथ-ही-साथ आप अपने महाराणा की भी अवज्ञा कर रहे हैं।

जवान० : मैं इस अवज्ञा का दण्ड सहन कर लूँगा।

कृष्णा : पर कुँवर चाचा, मेवाड़ की जन्मभूमि आपको कभी क्षमा नहीं कर सकेगी। अमीरखाँ की सहायता से जोधपुर और जयपुर हमारे नगर पर टूट पड़ेंगे और हमारी मातृभूमि श्मशान बन जायगी। मैं कहती हूँ, कुँवर चाचा ! मेरी मृत्यु से जयपुर और जोधपुर दोनों राजवंशों का क्रोध समाप्त हो जायगा और शत्रुओं का हृदय ऐसी करुणा से भर जायगा कि उदयपुर पर आनेवाली और विपत्तियाँ भी दूर हो जायँगी।

जवान० : ऐसी बात है ! तब कृष्णा, मैं यह राजाज्ञा पूरी करूँगा। झुकाओ अपना सिर, मैं एक ही प्रहार में इसे काटकर मेवाड़-भूमि को समर्पित कर दूँ।

कृष्णा : **(हर्ष से गद्‌गद होकर)** आप धन्य हैं, चाचा ! ओह, आप कितने धन्य हैं ! अपने चाचा के हाथों से मैं मृत्यु का सुख पाऊँगी, इससे बढ़कर मेरा सौभाग्य और क्या होगा ! कुँवर चाचा ! आप कितने महान् हैं !

जवान० : पर बेटी, मेरा हृदय काँप रहा है। अपने ही हाथ से अपनी इतनी सुन्दर बेटी को इस निर्दयता...

कृष्णा : कुँवर चाचा, आप भी तो तेजस्वी राजपूत हैं। आपको यह निर्बलता शोभा नहीं देती।

जवान० : कृष्णा बेटी ! फिर हमारा इतिहास भी यह लिखेगा कि कुँवर जवानसिंह ने, निष्ठुर और कायर जवानसिंह ने, निरपराव कृष्णा के रक्त से अपने हाथ कलंकित किये। नहीं, कृष्णा ! यह नहीं होगा।

कृष्णा : पर आप चूड़ावत अजीतसिंह के सामने इस कार्य को पूरा करने का वचन दे चुके हैं। राजपूत को अपने वचनों का पालन करना चाहिए।

जवान० : मैंने वचन अवश्य दिया था, पर कृष्णा ! तुझे देखकर उस वचन के प्रति मेरे मन में अपने-आप से घृणा होती है। और जब तूने कोई विरोध नहीं किया, क्रोध नहीं किया और भोली हरिणी के समान आत्म-समर्पण कर दिया, तो मैं किस शक्ति से तेरे कोमल शरीर को शिकारी की भाँति शस्त्र से बेंध दूँ ? अमृत के कुण्ड में हलाहल की वर्षा कर दूँ ? और कपूर के समान तेरे सुन्दर शरीर में लपकती हुई ज्वाला भर दूँ ? इन हाथों को कलंकित करने...

कृष्णा : कुँवर चाचा, आप नारियों की करुणा लेकर मेवाड़ का उद्धार नहीं कर सकेंगे। और चाचा, वीरों के हाथ से कलंक भी साका बन जाता है। फिर यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तो बलिदान है। बलिदान से हाथ पवित्र होता है, कलंकित नहीं। यह बलिदान है—कुल-लक्ष्मी की पूजा है।

जवान० : कुल-लक्ष्मी की पूजा ?

कृष्णा : निस्सन्देह, कुँवर चाचा ! यह कुल-लक्ष्मी की पूजा है, अर्चना है।

जवान० : तो फिर, तो फिर उठाऊँ अपनी कटार ?

कृष्णा : कुँवर चाचा, आप धन्य हैं। मातृभूमि की रक्षा के लिए आपका उत्साह ही कसौटी पर कसा गया है। मन की निर्बलता पर आपके राजपूती हृदय ने विजय प्राप्त की।

जवान० : तब यह रही कटार। इसे आज संसार के सबसे कोमल शरीर में प्रवेश पाने का सौभाग्य मिलेगा। मेरी कटार ! तू धन्य है कि आज राजस्थान में एक अमर बलिदान की विधातृ बन रही है। तेरी हलकी-सी गति से कठोर-से-कठोर चीज़ कटकर टुकड़े-टुकड़े हो सकती है। अब तू कृष्णा के शरीर की कोमलता का स्पर्श कर। उसका शरीर ही तेरा नवीन म्यान बन जाये।

कृष्णा : चाचा ! आपके हृदय की दृढ़ता अमर हो।

जवान० : कृष्णा ! तू मेवाड़ की स्त्रियों में धन्य है। इतिहास तेरे चरित्र से अनन्त काल तक प्रकाशित रहेगा। राजस्थान की नारियाँ तेरे यश के गीत गायेंगी। तेरा मरण राजस्थान का त्योहार होगा, पर्व होगा।

कृष्णा : चाचा, मैं मातृभूमि की वन्दना कर लूं। मेरी मेवाड़ जननी ! मेरा शरीर धन्य है कि उसका रक्त तुम्हारे चरणों का प्रक्षालन करेगा। मुझे अपनी गोद ही में जन्म देना, जिससे मैं तुम्हारी रक्षा में अपने प्राणों की बलि फिर दे सकूं। जननी-जन्मभूमि ! तुम्हें मेरा प्रणाम है।

जवान० : कृष्णा !

कृष्णा : कुँवर चाचा ! आपका हाथ क्यों काँप रहा है ?

जवान० : नहीं, कृष्णा ! मेरा हाथ भाग्य की तरह कठिन है। झुकाओ अपना सिर !

कृष्णा : मेरे सिर झुकाने से मेरे मेवाड़ का सिर ऊँचा हो ! [**सिर झुकाती है।**]

जवान० : तो फिर यह उठी कटार ! (**अपने हाथ के कड़े पर शब्द करता हुआ कटार ऊपर उठाता है**) जय एकलिंग !...(**करुण स्वर में**) ओह ! मेरा हाथ काँप रहा है। यह कटार मुझसे सँभल नहीं सकती। (**कटार के गिरने की आवाज़**) मैं हत्या नहीं कर सकता। इतने कोमल शरीर पर यह क्रूरता ? नहीं, नहीं।

कृष्णा : कुँवर चाचा !

जवान० : बेटी कृष्णा ! कुँवर चाचा को क्षमा करो। उससे यह काम नहीं होगा ...(**प्रस्थान करते हुए**) नहीं होगा...नहीं होगा...नहीं होगा। [**प्रस्थान**]

कृष्णा : चले गये ? कहते हैं, मुझसे यह काम नहीं होगा...नहीं होगा, तो किससे होगा ?

[**देवला का प्रवेश**]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवला : राजकुमारी ! कुँवर चाचा भागते हुए क्यों चले गये ? 'नहीं होगा', 'नहीं होगा' कहते हुए निकल गये ।

कृष्णा : क्या बताऊँ, क्यों निकल गये ? देवला ! मेरा दुर्भाग्य सब जगह मेरा रास्ता रोक लेता है ।

देवला : अब तक आपकी उदासी नहीं गयी, राजकुमारी ?

कृष्णा : उदासी ? उदासी नहीं, देवला ! यह तो जीवन का महान् पर्व है ।

देवला : तो राजकुमारी ! मैंने भी इस महान् पर्व पर आपकी इच्छानुसार एक बहुत सुन्दर माला गूँथी है । उससे भगवान् एकलिंग की पूजा में शोभा आ जायगी ।

कृष्णा : बहुत बड़ी शोभा आ जायगी ! तू बहुत अच्छी है, देवला ! तूने माला तो गूँथ ही ली, बस एक काम और कर ।

देवला : वह क्या, राजकुमारी ?

कृष्णा : भगवान् एकलिंग के लिए विष का एक पात्र ।

देवला : (चौंककर) विष का पात्र ?

कृष्णा : हाँ, देवला ! भगवान् ने विश्व-कल्याण के लिए कितनी उमंग से मुस्कान के साथ विष-पान किया था । इसीलिए उनका एक नाम नीलकण्ठ भी है । आज मैं भगवान् को उन्हीं का प्रिय नैवेद्य लगाऊँगी—हलाहल विष ।

देवला : राजकुमारी ! क्या हलाहल विष भी नैवेद्य की सामग्री है ?

कृष्णा : नैवेद्य की सामग्री तो भक्ति-भावना पर निर्भर रहती है । आज मेरी भक्ति उस सीमा पर पहुँच गयी है, देवला, जहाँ हलाहल भी नैवेद्य की सामग्री बन जाता है ।

देवला : किन्तु, राजकुमारी ! विष को नैवेद्य की सामग्री बनाकर आदर न दीजिए ।

कृष्णा : क्यों ?

देवला : इसलिए, राजकुमारी, कि नैवेद्य की सामग्री भगवान् को अर्पित करने के बाद व्यर्थ नहीं जायगी । उसे महाप्रसाद मानकर ग्रहण करने की आवश्यकता होगी ।

कृष्णा : तुझे इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए ।

देवला : फिर उस नैवेद्य के प्रसाद को ग्रहण कौन करेगा ?

कृष्णा : मैं ।

देवला : आप ?

कृष्णा : हाँ, देवला ! महाप्रसाद को ग्रहण करने में संकोच कैसा ? मैं उस महाप्रसाद को ग्रहण कर अमर हो जाऊँगी ।

देवला : किन्तु, राजकुमारी ! मेरी प्रार्थना है कि इस प्रसाद को आप ग्रहण न करें । यदि ग्रहण करने की आवश्यकता होगी, तो मैं ग्रहण कर लूंगी । देवला के रहते राजकुमारी के लिए यह अवसर न आयेगा ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृष्णा : तब तो तू स्वार्थी है, देवला ! महापुण्य की भागिनी तू ही होना चाहती है और अपनी राजकुमारी के महापुण्य को तू छीनना चाहती है। स्वार्थी ! [दबी हुई हँसी]

देवला : तब, राजकुमारी, हलाहल के पात्र की आज्ञा न दीजिए।

कृष्णा : मेरी भक्ति-भावना पर कोई प्रश्न-चिह्न नहीं लगा सकता, देवला ! तू स्वयं जानती है कि राजमन्दिर के विषय में बात पूछी नहीं जाती, या तो कही जाती है, या सुनी जाती है।

देवला : मैं जानती हूँ, राजकुमारी ! इसीलिए प्रार्थना करना चाहती हूँ।

कृष्णा : कौन-सी प्रार्थना ?

देवला : यही कि यदि हलाहल विष को आप नैवेद्य की सामग्री बनाना ही चाहती हैं, तो उस महाप्रसाद का अभिसिंचन उस स्थान पर कर दिया जाये, जहाँ मेवाड़ की नारियों ने अपनी आत्मरक्षा के लिए जौहर की ज्वाला जलायी थी। इस महाप्रसाद के पाने का अधिकार उन्हीं नारियों को हो, जिन्होंने मेवाड़ के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग किया हो।

कृष्णा : (दोहराते हुए) इस महाप्रसाद के पाने का अधिकार उन्हीं नारियों को हो, जिन्होंने मेवाड़ के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग किया हो !

देवला : हाँ, राजकुमारी !

कृष्णा : मैं तुझसे सहमत हूँ। तू जा, हलाहल प्रस्तुत कर।

देवला : जो राजकुमारी की इच्छा। [प्रस्थान]

कृष्णा : देवला ! बेचारी देवला ! महाप्रसाद के नाम से सशंकित हो उठी। कहीं मैं पान कर लूँ। किन्तु उसके कथनानुसार मैं भी तो उसे पान करने की अधिकारिणी हो सकती हूँ, जब मैंने अपने मेवाड़ के लिए जीवन उत्सर्ग करने का निश्चय कर लिया है।

[महाराणा और महारानी का प्रवेश]

महाराणा : महारानी !

महारानी : महाराणा ! आपकी बातों से मुझे सन्तोष नहीं होता। मैं यह सब अपनी आँखों से कैसे देख सकूँगी ?

महाराणा : (धीरे से) कुँवर जवानसिंह यदि असफल न होते, तो यह बात ही नहीं होती।

महारानी : जवानसिंह मनुष्य है। वह पशु नहीं हो गया है।

कृष्णा : किन्तु माँ ! इतने मोह, इतनी ममता से भी कहीं राजपूत अपने जीवन का आदर्श पा सकता है ? कुँवर चाचा ने मुझे निराश कर दिया। उन्होंने मुझे अपने कर्तव्य के पालन में सहायता नहीं दी। कहीं तुम भी ममता के वशीभूत हो मुझे कर्तव्य-मार्ग से विचलित न कर दो ?

महारानी : कृष्णा ! क्या तूने इसीलिए जन्म लिया था कि मैं अपनी आँखों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामने यह भयानक काण्ड होते देखूं ?

कृष्णा : माँ ! तुम वीर माता हो और मैं वीर कन्या हूँ। मैं भी तो अपनी मातृ-भूमि की रक्षा का अधिकार रखती हूँ। मैं तुम्हारे अमृत को लज्जित नहीं करूँगी।

महारानी : बेटी ! तू धन्य है। पर तेरा अपराध ही क्या है ?

कृष्णा : माँ ! बलिदान अपराध पर निर्भर नहीं है। मेवाड़ की रक्षा के लिए राजस्थान की नारियों ने क्या नहीं किया, माँ ! तुम ऐसा आदर्श उपस्थित करो कि प्रत्येक माँ अपने मातृत्व में गौरव का अनुभव करे। माँ ! तुम यह घोषणा कर दो कि माँ अपने शिशु को अमृतमय दूध पिलाकर बड़ा करती है केवल इसलिए कि वह अपनी मातृभूमि की रक्षा में विष-पान कर सके। तुम मुझे एक विष का पात्र दे दो, माँ !

महारानी : नहीं, बेटी ! यह मैं कभी नहीं कर सकूंगी। [**सिसकती है।**]

कृष्णा : माँ ! क्या जौहर की ज्वाला में जलने से पहले माताओं ने अपने गोद के बच्चों को चूमकर अग्नि में होम नहीं दिया ? तुम भी मुझे विष का प्याला देकर इस जौहर की परम्परा पर आँच न आने दो।

महारानी : बेटी, यह तू क्या कह रही है ? कहाँ मैं सोच रही थी कि कुछ दिनों में अपनी कृष्णा के विवाह का उत्सव मनाऊँगी। सारे राजस्थान की नारियों को निमन्त्रण दूंगी कि वे कृष्णा को सुहाग का आशीर्वाद दें। नगर की स्त्रियाँ धवल मंगल करके झरोखों से चढ़-चढ़ कर गातीं, पट-मण्डप छाये जाते, मंगलकलश बाँधे जाते, कृष्णा का रत्नों से सिंगार होता, मोतियों से माँग सँवारी जाती, मैं महलों की जाली से सब उत्सव देखती। हाय, मेरी कृष्णा ! [**सिसकने लगती है।**]

कृष्णा : (**सांत्वना के स्वर में**) माँ ! सिसोदिया-वंश में सन्तान का मोह कलंक है। यह कलंक अपने ऊपर मत आने दो।

महारानी : (**करुण स्वर में**) बेटी, तुझसे मैं क्या कहूँ। किन्तु क्या माँ भी अपनी बेटी को विष दे सकती है ?

कृष्णा : माँ ! आज मैं तुम से अन्तिम वरदान माँगती हूँ, जो एक राजपूत रमणी अपनी पुत्री को उस समय देती है, जब उसका और उसकी मातृभूमि का सम्मान संकट में है। माँ ! मेरी याचना स्वीकार करो।

महारानी : (**सिसकते हुए**) यह मुझ से कैसे होगा, बेटी ?

कृष्णा : माँ ! विष तो मैं स्वयं भी पी सकती हूँ, किन्तु माता के हाथ से पीने में वह विष भी अमृत हो जायगा। (**आग्रह के स्वर में**) माँ ! मेरी प्रार्थना मान लो। जिस शरीर की रक्षा नौ मास तक तुमने अपने उदर में इतनी सावधानी से की, क्या उसकी सम्मान-रक्षा अब तुम नहीं करोगी ? तुम माँ हो, बेटी की प्रत्येक प्रकार की रक्षा तुम्हें ही करनी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महारानी : (रोते हुए) मैं इसे कैसे अस्वीकार करूँ, बेटी ! मैं अपनी कृष्णा को विष कैसे दे सकूँगी ? [रोते हुए प्रस्थान]

कृष्णा : (महाराणा से) पिताजी ! आप इतने उदास न हों। आपने मेवाड़ की रक्षा कर ली है। आपने इस समय अपने विवेक का परिचय दिया है।

महाराणा : कृष्णा ! तू नहीं जानती कि इस समय मेरा हृदय कितना हा-हाकार कर रहा है।

कृष्णा : नहीं, पिताजी ! राजस्थान में कन्याएँ तो जन्म से ही मृत्यु को सौंप दी जाती हैं। आपने मुझे इतने वर्षों का वरदान देकर मुझ पर कितना उपकार किया है ! यह आपका दिया जीवन यदि आपके चरणों में ही समर्पित कर दूँ, तो यह मेरा कर्तव्य ही होगा।

महाराणा : (करुण स्वर में) कृष्णा !

कृष्णा : और पिताजी ! आज तक राजस्थान में नारियों ने न जाने कितने सम्मिलित जौहर किये हैं, यदि आज मैं अकेली ही जौहर करूँ, तो क्या आपको सुख और सन्तोष नहीं होगा ? मैं अपने पिता की...(महारानी एक भरा हुआ पात्र लेकर आती हैं) ओह, तुम कितनी महान् हो, माँ ! यह विष का प्याला लेकर तुम आ गयीं ! तुमने राजपूतों की माताओं के सामने ही नहीं, समस्त संसार की माताओं के सामने आत्म-सम्मान का उज्ज्वल आदर्श रखा है, माँ ! तुम धन्य हो। (पात्र हाथ में लेती है) मेरा प्रणाम स्वीकार करो, पिताजी ! आपको मेरा प्रणाम है। प्राणों से अधिक प्यारी अपनी मेवाड़-भूमि के प्रति और प्रत्येक राजपूत नारी के प्रति मेरी मंगल-कामना स्वीकार हो ! जय एकलिंग ! [भरा हुआ पात्र ओठों से लगाकर पी जाती है।]

महाराणा : (चीखकर) कृष्णा ! मेरी बेटी कृष्णा !

कृष्णा : (एक क्षण के बाद) माँ ! तुमने मुझे धोखा दिया है। विष के प्याले के स्थान पर तुमने कुसुम्मा का मधुर पात्र दे दिया। हाय री माँ की ममता ! तुम्हारे इस प्रेम को मैं क्या कहूँ !

महाराणा : क्या यह विष का पात्र नहीं है ?

कृष्णा : नहीं, पिताजी ! विष-पात्र भी हो, तो वह स्नेहमयी जननी के हाथों से अमृत-पात्र हो जायगा। अब भगवान् एकलिंग को मैं जिस विष का नैवेद्य लगाऊँगी, वही महाप्रसाद मैं ग्रहण करूँगी। वही मेरे भाग्य का सबसे बड़ा वरदान होगा। माँ ! अन्तिम बिदा लेती हूँ। तुम्हें और पिताजी को प्रणाम ! जय मेवाड़...! [प्रस्थान]

महारानी : (क्रन्दन के स्वर में) बेटी ! बेटी ! कृष्णा ! [पीछे-पीछे शीघ्रता से जाती है।]

[नेपथ्य में—"बेटी, बेटी, कृष्णा !"]

महाराणा : (शिथिल स्वर में) मेवाड़ को इस सुकुमार बलि की भी आवश्यकता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी !...यह राजपूतों के जीवन की सबसे बड़ी हार है। सबसे बड़ा कलंक है।

[नेपथ्य में बड़ी हलचल होती है। शक्तावत सरदार संग्रामसिंह कहते हैं—"मुझे मत रोको। मैं महाराणा से मिलकर ही रहूँगा।"]

[लड़खड़ाहट के साथ संग्रामसिंह प्रवेश करते हैं।]

संग्राम० : महाराणा !

महाराणा : कौन, शक्तावत संग्रामसिंह ?

संग्राम० : महाराणा ! क्या यह सच है कि चूड़ावत अजीतसिंह के कहने से आपने जवानसिंह को कृष्णाकुमारी की हत्या के लिए नियुक्त किया और वह सफल नहीं हुआ ?

महाराणा : मैं इसका उत्तर नहीं दे सकूँगा।

संग्राम० : क्योंकि यह सच है। और क्या यह भी सच नहीं है कि कृष्णाकुमारी ने राजपूतों को वीरता पर कलंक लगाने वाले कायरों और नपुंसकों की तरह समझा है और स्वयं विष-पान करने का जौहर अपने ऊपर लिया है ? क्या देवला का यह कथन सत्य नहीं है कि राजकुमारी ने आपकी चिन्ता दूर करने के लिए एकलिंग को हलाहल का नैवेद्य चढ़ाकर स्वयं उसे पीने का प्रण किया है ?

महाराणा : **(शिथिल स्वर में)** सत्य है, संग्रामसिंह ! अमीरखाँ से रक्षा पाने का और कोई उपाय जो नहीं था।

संग्राम० : **(आवेश से)** तो यह कहिए कि राजपूत की तलवार का पानी उतर चुका। मेवाड़ की राजकुमारी अपने आत्म-सम्मान के लिए मृत्यु से सहायता माँगे और जोंक की तरह जीवन से चिपटे हुए राजपूत मातृभूमि का रक्त चूसते रहें ? और जब कृष्णा को मृत्यु-दण्ड दिया गया, तो आपने मेवाड़ के सैनिकों को आत्म-हत्या की आज्ञा नहीं दी ? आपकी कमर से यह तलवार लटकती रही और आपने इसके टुकड़े-टुकड़े नहीं किये ? असमर्थता का राग अलापने वाला पिता क्या कन्या से पहले विष-पान नहीं कर सकता था ?

महाराणा : **(चीखकर)** संग्रामसिंह !

संग्राम० : मुझे किसी बात का भय नहीं है। मैंने महाराज शक्तसिंह के वंश में जन्म लिया है, जिन्होंने विपत्ति में महाराणा प्रताप की रक्षा की। मुझे विलम्ब से सूचना मिली, नहीं तो कृष्णा का जीवन घरौंदे की तरह नष्ट न किया जा सकता। और उस कायर-कलंकी अजीतसिंह का प्रस्ताव आपने माना ही क्यों ? क्या इससे सारी राजपूत-जाति हमेशा के लिए लांछित नहीं हुई ? क्या अमीरखाँ पठान ने मेवाड़ को नष्ट कर दिया ? और क्या बेचारी कृष्णा के मरने से उदयपुर हमेशा के लिए सुरक्षित हो गया ? अमीरखाँ अगर सामने था, तो क्या अजीतसिंह अपने पूर्वजों की तरह मर नहीं सकता था ? मरने की चुनौती पर मैं संग्रामसिंह सबसे पहले पूर्वजों का ऋण चुकाता। लेकिन यह बात मुझ से छिपा कर रखी गयी। अजीतसिंह ही आपका सर्वस्व था, जो तलवार लेकर शत्रुओं पर कूदना नहीं

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जानता, जानता है एक अबोध कन्या की हत्या से शत्रु के अट्टहास में अपनी निर्लज्ज हँसी मिलाना।

महाराणा : संग्रामसिंह, तुम सुनो !

संग्राम० : नहीं सुनूँगा, महाराणा ! राजनीति की बातें सुनने का अवकाश नहीं है। जो राज्य अपनी राजपुत्री की रक्षा नहीं कर सका, उसे नष्ट हो जाना चाहिए। जो पिता अपनी पुत्री की हत्या के षड्यन्त्र में शामिल हो, वह पिता...

महाराणा : खामोश, संग्रामसिंह !

संग्राम० : यह लीजिए तलवार ! इसे वापस लौटाता हूँ। (**तलवार फेंकता है**) युगों से यह तलवार हमारे वंश में रही है। इसने उदयपुर की सेवा में सहस्रों मस्तकों को काटा है। हमारे पूर्वजों ने इसी से इस राजवंश की सेवा की है। कृष्णा की इस लज्जाजनक मृत्यु के बाद यह तलवार हमारे वंश में नहीं रहेगी। आज से हमारी तलवार इस राज्य से बिदा हुई। इस गिरी हुई तलवार को तोड़ डालिए या अपनी कन्या के मृत शरीर पर इस तलवार से फिर प्रहार कीजिए। जय एकलिंग !

महाराणा : संग्रामसिंह, संग्रामसिंह...

[महारानी का देवला के साथ सिसकते हुए प्रवेश]

महारानी : (**करुण कण्ठ से सिसकियाँ लेती हुई**) मेरी कृष्णा, मेरी कृष्णा...अब इस संसार में...नहीं रही...!

महाराणा : (**विह्वल स्वर से**) कृष्णा !

देवला : (**सिसकते हुए**) महारानी मूर्च्छित हो गयी थीं। मेरे रोकने पर भी राजकुमारी ने तीन बार विष-पान किया। तीनों बार वमन के द्वारा वह निकल गया। अन्त में उन्होंने गहरी अफ़ीम के कुसुम्मा को हँसते हुए पान किया। महाराज एकलिंग को प्रणाम कर वे सदा के लिए गहरी नींद में सो गयीं।

महारानी : (**चीखकर**) मेरी कृष्णा !

महाराणा : (**कातर होकर**) मुझे धिक्कार है।

महारानी : काला ज़हर उसके सारे शरीर में फैल गया। क्या कोई उस ज़हर को नहीं उतार सकता ?

[दूर पर सँपेरे की बीन सुनायी पड़ती है।]

देवला : साँप के ज़हर की तरह इसका ज़हर भी नहीं उतरेगा।

महाराणा : वह ज़हर अब नहीं उतर सकेगा, महारानी ! उसका ज़हर और मेरी कलंक-रेखा सदा के लिए अमर हो गयी।

[रानी की एक गहरी सिसकी। दूर से आती हुई सँपेरे की बीन सुनायी पड़ रही है।]

[यवनिका]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 25 :

बापू

पात्र-परिचय

निर्देशक	संकटाप्रसाद
उमेश	शान्ता
संतोष	नरेश
इन्सपैक्टर	हिन्दू
शकूर	मुसलमान
दयाराम	सिख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बापू

निर्देशक : बापू ! तुम युग-पुरुष हो। इस युग का इतिहास तुम्हारे पद-चिह्नों की रेखाओं से लिखा जायगा। भय और कष्टों को कुचलते हुए जब तुम्हारे चरण बढ़े तो कोई शक्ति उनकी गति नहीं रोक सकी और वे चरण वहाँ जाकर रुके जहाँ स्वाधीनता का सिंहद्वार था।

बापू ! तुमने हमें स्वाधीनता दी। दासता की कालिमा से हमारा जीवन धुँधला हो गया था—तुम सत्य के ऐसे सूर्य थे जिसके उदय से हमारे जीवन में प्रकाश छा गया।

तुमने जीवन में क्रान्ति उपस्थित कर दी—पश्चिमी सभ्यता ने वस्तुवाद के प्रभाव स्वार्थों का जो संघर्ष हमारे मन में उत्पन्न किया था वह तुमने वस्तुओं के यथार्थ मूल्यांकन से सहज ही दूर कर दिया—इस यंत्र-युग में तुमने चरखे का महत्त्व समझाया। चरखे के पीछे स्वावलंबन और श्रम के रहस्य में तुमने संसार के अर्थशास्त्र को लज्जित कर दिया। भौतिकवाद के कठोर संघर्ष में तुमने अध्यात्म-वाद से प्रेरित आत्म-परिष्कार और हृदय-परिवर्तन के सत्य को स्पष्ट कर दिया। पशु-बल के सामने तुमने सत्याग्रह की विजय दिखलाकर संसार को चकित कर दिया और शताब्दियों से पराधीन देश को स्वतंत्रता का प्रकाश दिखाया। विज्ञान के समक्ष तुमने विश्वास को अधिक शक्तिशाली प्रमाणित किया। जीवन की परिस्थितियों को सुलझाने के लिए बहस हो रही थी।

[**उमेश और संतोष में बातें हो रही हैं।**]

उमेश : भाई संतोष ! आज बात क्या है ? बिस्तर पर लेटे हुए हो।

संतोष : (**गिरे स्वर में**) आओ, उमेश ! बैठो।

उमेश : बैठ तो जाऊँगा ही, लेकिन और दिनों तो तुम सेमसन की तरह उमंग और उत्साह से भरे नज़र आते थे, लेकिन आज...

संतोष : क्या पिक्चर देखकर लौट रहे हो ?

उमेश : पिक्चर तो रोज़ ही देखता हूँ। तुम्हारी सूरत की ही एक पिक्चर देख रहा हूँ—लेकिन—ये सिर पर बाल बिखरे हैं और सूरत ये बनी ग़म की।

संतोष : तुम तो अपनी ज़बान ही मुझ पर माँजने लगे—जरा बीमार क्या पड़ गया।

उमेश : बीमार ? अच्छा ! बीमार पड़ गये ? कैसे ?

संतोष : यों ही ज़रा सर्दी लग गई—हलका बुखार हो आया और कुछ खाँसी उठ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खड़ी हुई।

उमेश : वह बैठ नहीं सकतो।

संतोष : इसीलिए तो लेट गया हूँ कि खाँसी बैठ जाय।

उमेश : देखो, यह उठना-बैठना ठीक नहीं—यह इन्फ्लूएंजा है—बिगड़ जाय तो महीनों तुम्हें बिस्तर पर रखे। इसकी अभी से फिक्र रखनी चाहिये—पेन्सिलिन का इंजैक्शन लेना चाहिये।

संतोष : पेन्सिलिन का इंजैक्शन ?

उमेश : हाँ, किसी डाक्टर को दिखाओ, उससे इंजैक्शन लो।

संतोष : मैं डाक्टरों के चंगुल में नहीं फँसता। एक बार उनके चंगुल में फँसा कि बीमारी न रहने पर भी महीनों बिस्तर पर रहना पड़ेगा।

उमेश : ऐसी बात नहीं—अच्छे डाक्टर का इलाज थोड़ी ही देर में बीमारी को ऐसा गायब कर देता है जैसे कभी-कभी तुम्हारे दिमाग से अक्ल गायब हो जाती है। [**हँसी**]

संतोष : अच्छा, तुम तो डाक्टरों के एजेण्ट मालूम होते हो। मैं तो समझता हूँ कि बीमारी में आराम करना बहुत ज़रूरी है...और...एक बात और...

उमेश : वह क्या ?

संतोष : वह यह कि मन की शक्ति से बीमारी को दूर किया जाय।

उमेश : (**हँसकर**) ओफ-हो ! मन की शक्ति से ? ऐसी मन की शक्ति होती तो आज दुनिया के बादशाह होते।

संतोष : हो सकते हो। राम बादशाह ही तो थे स्वामी रामतीर्थ।

उमेश : अच्छा, तो रामतीर्थ ही राम बादशाह बने ? यह किसकी शक्ति थी ?

संतोष : राम की।

उमेश : राम की शक्ति से बीमारी भी दूर हो सकती है ?

संतोष : अवश्य ! अगर राम की शक्ति में विश्वास हो, तो।

[दूर से शोर होता है, ये वाक्य सुन पड़ते हैं : 'कम्बख्त आँखों में धूल झोंककर भागना चाहता था', 'खूनी तो नहीं है ? हाँ, हाँ इसी ने खून किया है'. 'इसके कपड़ों में खून के छींटे देख लीजिये।']

इन्सपैक्टर : हाँ, तो यही है वह बदमाश ! क्यों जी, समझता हूँ कानून तो तुम्हारे बाप की मिलकियत है, चाहा और खून कर दिया। (**शकूर से**) क्यों शकूर ! इसे कहाँ पाया ?

शकूर : गली से हटकर वहाँ झाड़ी में छुपा हुआ था।

इन्सपैक्टर : जहन्नुम में भी छिपना चाहे तो वहाँ पकड़ लिया जायगा—कानून की आँखों में धूल नहीं झोंक सकता। क्यों जी, खून करना आसान समझ लिया ? खून न हुआ लाल पानी हुआ, जब चाहा बहा दिया।

क़ैदी : हुज़ूर ! हमने लाल पानी समझा तभी तो हमें काला पानी मिलेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्सपैक्टर : काला पानी नहीं, इसे फाँसी पर चढ़ाऊँगा, फाँसी पर ! क्या नाम है तुम्हारा ?

क़ैदी : दयाराम, सरकार ।

इन्सपैक्टर : (**हँसकर**) दयाराम ! नाम तो दयाराम और काम खून करना, क्या कहना है ! नाम के ही लायक तुम्हारा काम है ! क्यों जी, उस बूढ़े चाचा पर दया नहीं आई ?

दयाराम : सरकार ! पहले तो मैंने उसे बहुत समझाया, पर वह गाली पर गाली बकता गया । सरकार ! मैं कहाँ तक ग़म खाता । मुझे भी गुस्सा आ गया—मैं अन्धा हो गया । मैं नहीं जानता, सरकार ! कब मेरे हाथों में लाठी आ गई ।

इन्सपैक्टर : और तुम्हें यह मालूम हुआ कि नहीं कि लाठी के साथ तुम्हारे हाथों में हथकड़ी आ गई ? (**शकूर से**) शकूर, ले चलो इसे थाने में ।

शकूर : हुज़ूर ! इसके गाँव के एक साहब कौंसिल के मेम्बर भी हैं । देखिये, साहब आ गये ।

[**कौंसिल के मेम्बर का प्रवेश**]

कौं० मे० : आखआह ! इन्सपैक्टर साहब ! जैरामजी की ! आखिर यह कौनसी बात है कि आप इस गाँव में तशरीफ लावें और खबर तक न दें । कुछ चाय और नाश्ता तो करते ? आख़िर मैं जो इस गाँव में पड़ा हुआ हूँ वह केवल आप लोगों की खातिर तो पड़ा हुआ हूँ । आप आयें तो ढंग से कुछ खाना-पीना हो । नहीं तो इस गाँव में तो आप लोगों के लायक कुछ दूध-पानी भी मिलना मुश्किल है । (**पुकार कर**) अरे रामहरख ! दौड़कर एक कुरसी तो ले आ । इन्सपैक्टर साहब इतनी देर से खड़े हैं, कम्बख़्त कहाँ मर गया ?

इन्सपैक्टर : कोई बात नहीं, ड्यूटी पर सब कुछ करना पड़ता है, यह तो एक मामूली बात है । लेकिन माफ कीजिये, मैं आपको पहचान नहीं सका ।

कौं० मे० : (**हँसते हुए**) ह्-ह्-ह्-ह्...कोई बात नहीं । आप मुझे नहीं पहचानते, कोई मुज़ायका नहीं ! मैं तो आपको पहचानता हूँ तेजबहादुर साहब ! वाह नाम के लायक ही आपकी शान है । तेज भी और बहादुर भी । ऐसा नाम और ऐसा ज्ञान सब लोगों को नहीं मिलता, क्या कहना है ! और इन्सपैक्टर साहब, मैं डिप्टी साहब को भी जानता हूँ और कोतवाल साहब की तो मुझ पर खास मेहरबानी है । जब कभी इस गाँव में तशरीफ लाते हैं तो सबसे पहले मेरे ही गरीबखाने पर तशरीफ फरमाते हैं ।

इन्सपैक्टर : अच्छा !

कौं० मे० : जी हाँ, आप बड़े आदमी हैं । आप लोग इतना काम करते हैं तो आराम भी लाजमी है । क्यों शकूर मियाँ ?

शकूर : हुज़ूर सही फरमाते हैं ।

कौं० मे० : देखिये साहब, मियाँ शकूर भी यही कहते हैं । मैं तो आप लोगों से बरसों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से मिलता आ रहा हूँ। आप मेरा नाम भी जानते होंगे, संकटाप्रसाद एम० एल० सी०। मैं कौंसिल का मेम्बर हूँ।

इन्सपैक्टर : अच्छा, आप ही मिस्टर संकटाप्रसाद हैं।

संकटा० : जी, जी, मुझे ही लोग संकटाप्रसाद कहते हैं। कई बार शहर आया-गया हूँ, मैंने आपको वहाँ भी देखा है और आपके बारे में कोतवाल साहब से भी बातें हुई हैं। वाह ! क्या कहना है, आपकी मुस्तैदी और होशियारी से तो हमारे शहर की रौनक है। आप जैसा अफसर आना तो हमारे शहर की खुश-क़िस्मती है। अच्छा, तो चलिये, कुछ नाश्ता-पानी कर लीजिये।

इन्सपैक्टर : जी नहीं। मैं नाश्ता तो कर चुका हूँ, मुझे शहर भी जल्दी लौट जाना है।

संकटा० : तो आपका काम तो पूरा हो ही चुका है, साहब ! आप चाहें तो दो रोज़ ठहर कर शहर जा सकते हैं—आप थक भी गये होंगे—कुछ देर आराम कर लीजिये।

इन्सपैक्टर : बहुत-बहुत धन्यवाद ! मुझे जाने ही दीजिये।

संकटा० : मुझे एक चिट्ठी कोतवाल साहब के पास पहुँचानी है, कुछ देर तो रुक जाइये।

इन्सपैक्टर : (**शकूर से**) अच्छा शकूर, तुम मुलज़िम को लेकर थाने चलो, मैं अभी आता हूँ।

शकूर : जो हुकुम ! चलो जी, दयाराम !

[दयाराम के साथ बाहर जाता है।]

संकटा० : आप बहुत मेहरबान हैं, इन्सपैक्टर साहब ! हाँ, तो बात सिर्फ यही है कि जो यह खून का मामला है न, यह बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बताया गया है। दयाराम के चाचा कमज़ोर तो थे ही, उन्हें गुस्सा आया और वे दयाराम को मारने के लिए उठे तो लड़खड़ा कर गिर गये, उनका सिर फूट गया। दुश्मनों ने कह दिया कि दयाराम ने खून किया है।

इन्सपैक्टर : जो भी हो, अब तो यह तहक़ीक़ात से मालूम हो जायगा।

संकटा० : हाँ, वह तो मालूम ही हो जायगा, लेकिन आजकल दोस्तों से ज्यादा दुश्मनों की तादाद है। वे उल्टी-सीधी बातें ही कहेंगे।

इन्सपैक्टर : मेरे चलाये हुए केस में उल्टी-सीधी बातें नहीं चलतीं।

संकटा० : वह तो मैं जानता हूँ इन्सपैक्टर साहब, लेकिन मैं चाहता था कि यह मामला ऐसा है जिसमें आपको ज्यादा तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं है। जब खून ही नहीं हुआ तो खूनी कैसा ?

इन्सपैक्टर : जी !

संकटा० : जी हाँ, मैं कोतवाल साहब के पास जा रहा हूँ, उनके सामने आपकी तारीफ और सिफारिश भी तो करनी है।

इन्सपैक्टर : आप यह तकलीफ न उठायें, मैं यह केस छोड़ूंगा नहीं।

संकटा० : छोड़ने में तो कोई हर्ज नहीं है, आगे आपकी मर्जी ! अब आप इतनी तकलीफ उठा कर आये हैं तो भेंट दिये बिना मैं आपको अपने गाँव से कैसे जाने दे सकता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हूँ, यह रही आपकी भेंट—यह रही !

इन्सपैक्टर : (**चौंककर**) यह क्या ? मैं ऐसा आदमी नहीं हूँ, मिस्टर संकटाप्रसाद ! आप इन बातों से मुझे मोल नहीं ले सकते । मैं अब यहाँ एक मिनट नहीं ठहर सकता ।

संकटा० : अरे, क्या नाराज हो गये ? यह तो हमारे गाँव का दस्तूर है, साहब ! खैर, कोई बात नहीं—कोतवाल साहब को चिट्ठी लिख देता हूँ ।

इन्सपैक्टर : जी नहीं, या तो आप अपनी चिट्ठी डाक से भेजें या उनसे खुद मिलें । मैं पोस्टमैन नहीं हूँ । दयाराम ने खून किया है उसकी सज़ा उसे मिलनी चाहिये ।

संकटा० : अब मैं आपको कैसे समझाऊँ, इन्सपैक्टर साहब !

इन्सपैक्टर : समझाने की ज़रूरत नहीं है । आप काउंसिल के मेम्बर हैं तो मेम्बर की शान के मुताबिक काम कीजिये—महात्मा गान्धी जी के देश में रह कर अब ये बातें नहीं हो सकतीं ।

निर्देशक : बापू ने इस यंत्र-युग में चरखे का संगीत अपनाया । करोड़ों हाथों से उत्पन्न होकर चरखे की संगीत-लहरी मिलों के शोर के ऊपर छा गई—और उससे स्वावलंबन और संतोष की भावना जाग उठी । चरखा ही हमारी स्वतंत्रता का प्रतीक बना, उससे हमने स्वतंत्रता ही नहीं प्राप्त की, वरन् अहिंसा की भावना रखकर हमने जितना अधिक धन विदेशों में जाने से बचाया, उतना ही आत्मनिर्भरता के कोष में वृद्धि की।

[चरखा चलने की ध्वनि]

[नरेश और शान्ता में बातें हो रही हैं ।]

नरेश : यह क्या, फिर वही चरखा ? शान्ता ! तुम तो चलते-फिरते भी चरखे को हाथ पर सुदर्शन-चक्र की भाँति घुमाया करो । चरखा न हुआ, तुम्हारा पति हुआ जो उँगली के इशारे पर नाचता फिरे ।

शान्ता : तो चरखे से तुम्हें इतनी चिढ़ क्यों है ?

नरेश : चिढ़ क्यों ? इस बीसवीं सदी में चरखा ? मिलों के युग में चरखा ? एरोप्लेन होते हुए बैलगाड़ी में चढ़ने का शौक ? अरे, जहाँ मिलों से हज़ारों गेज सूत पलक मारते निकल आता है वहाँ धी...रे...धी...रे...टूटे हुए सूत को जोड़ते हुए चरखे को माला की तरह फेरना—यह तो लँगड़ाते हुए सैकड़ों मील का सफर करने जैसा है ।

शान्ता : तुम भी खूब सुनी-सुनाई बातें कहते हो । ज़रा देश को देखो, देश की उस संख्या को देखो, बेकारी को देखो, फिजूल समय खो देने को देखो ! अगर बेकार आदमी, वक़्त बरबाद करने वाला आदमी चरखा चला ले तो उसमें उसकी कौन-सी हानि है ? वह सिगरेट के धुएँ की तरह अपना कीमती समय भी हवा में उड़ा देता है ।

नरेश : अच्छा, तो यह बात है—यह बेकारी का नुस्खा है, लेकिन तुम तो बेकार नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो—घर में हजारों काम हैं, लेकिन आप हैं कि चरखा...

शान्ता : तो तुम्हें चरखे से इतनी चिढ़ क्यों है ? मैं चरखा चलाती हूँ तो अपने हाथों से ही तो चलाती हूँ, तुम्हारे हाथों को तो तकलीफ नहीं पहुँचाती !

नरेश : मेरे हाथों को नहीं, मेरे दिमाग को तकलीफ होती है। अब तुम्हें दुनिया में कोई काम ही नहीं रह गया सिवाय चरखे के ?

शान्ता : काम तो सबसे बड़ा यही है अगर पूछा जाय। तुम यही सोचो कि अगर हमारे देश की सोलह करोड़ स्त्रियाँ एक दिन में पचास गज सूत ही कातें तो प्रति दिन ८ अरब गज सूत निकल सकता है, मरदों की बात जाने दो।

नरेश : ओ हो ! तुम तो हिसाब में भी ज़ोरदार हो। ठीक है, ठीक है, लेकिन सब स्त्रियों को तो तुम्हारे जैसा शौक नहीं है।

शान्ता : यह शौक की बात नहीं है—यह उस लगाव और तपस्या की बात है जिससे हमारी जनता की तकलीफ कम हो। आज उसके पास तन ढकने के लिए कपड़ा तक नहीं है, चरखा चलाये तो जनता अच्छी तरह कपड़ा पहन सकती है।

नरेश : तो आपने सारे देश को कपड़ा पहनाने की शपथ ली है ?

शान्ता : आपको भी लेनी चाहिये। आप तो तरह-तरह के कपड़े पहनें और देश की आधी से ज्यादा जनता एक गज कपड़े के लिए तरस जाय—यह कौन-सी बात है ?

नरेश : मेरे पास पैसे हैं तो कपड़ा खरीदता हूँ; और लोग भी तो कपड़ा खरीद सकते हैं।

शान्ता : लेकिन और लोगों के पास कपड़ा खरीदने के लिए पैसे नहीं हैं। उनके पास समय है, वे उस समय चरखा चलाकर सूत तैयार कर सकते हैं और उसके बदले कपड़े ले सकते हैं।

नरेश : आज तो बड़े ज्ञान की बातें कर रही हो। अच्छी बात है, आज से नौकरी छोड़-कर चरखा कातूंगा।

शान्ता : नौकरी क्यों छोड़ियेगा, नौकरी कीजिए और उसके बाद जितना समय आप इधर-उधर की बातों में बिता देते हैं, उस समय में चरखा कातिए।

नरेश : इससे क्या होगा ?

शान्ता : इससे यह होगा कि हमारे देश को बाहर से कपड़ा मँगवाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। अभी तो जो थोड़ा-बहुत कपड़ा हमारे देश में होता है वह सब देश के लिए पूरा ही नहीं होता।

नरेश : अब तुम चरखा चलाने लगी हो तो पूरा हो जायगा ?

शान्ता : नहीं, पूरा तो तब होगा जब तुम भी चलाने लगो। पूरा न होने की बात पर एक घटना याद हो आई।

नरेश : अच्छा, कौन-सी ?

शान्ता : एक बार एक पगड़ीधारी सेठजी बापू से मिलने आये। बातचीत के सिलसिले में सेठजी ने बापू से प्रश्न किया—बापू ! आपके नाम की टोपी देश-भर में चल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निकली है । तमाम लोग गांधी-टोपी पहनते हैं, पर आप न जाने क्यों टोपी नहीं पहनते ?

नरेश : बात तो उसने ठीक पूछी । फिर ?

शान्ता : बापू हँसे और बोले कि बीस टोपियों के बराबर का कपड़ा तो आप अपनी पगड़ी में पहने हुए हैं, बाकी १९ व्यक्तियों को नंगे सिर रहना पड़ेगा—शायद मैं उन्हीं में से एक हूँ। [हँसी]

नरेश : बापू ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया ।

शान्ता : हाँ, बापू हँसना और हँसाना दोनों ही जानते थे । उनका हृदय पवित्र था, इसलिए उनके मन में हिंसा नहीं थी । इसी चरखे को वे अहिंसा का मूल-मंत्र मानते थे । बिना बाहरी देशों पर आक्रमण किये, चरखे के द्वारा अपने ही देश में वस्त्र तैयार कर वे अन्य देशों से वस्त्र-आयात खत्म कर देना चाहते थे ।

नरेश : यह बात तो सच है—मैंने कभी इतना सोचा ही नहीं—नौकरी करने से फ़ुरसत नहीं मिली—रात-दिन एक ही चक्की में पिसता हूँ । ये बातें मुझे कहाँ सूझें ! लेकिन तुम बड़े पते की बातें करती हो । मालूम होता है आजकल तुम प्रार्थना-सभा में रोज जाती हो । बड़े ढंग की बातें करने लगी हो ।

शान्ता : हाँ, प्रार्थना-सभा में तो रोज जाती हूँ ।

निर्देशक : और बापू ने जातीय एकता का शंखनाद किया । उसी का यह फल है कि इतने बड़े देश का संगठन हो सका और इस देश में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और सिख भाई-भाई बनकर रह सके । हमारे देश में सब धर्मों के मानने वाले पूर्ण अधिकार और स्वतंत्रता से एक साथ रहकर देश की उन्नति में समान रूप से भाग ले सके । विदेशियों के शासन ने हम में भेदभाव के बीज बो दिये ।

[अनेक स्थानों पर सभाएँ हो रही हैं । एक वक्ता सभा में बोल रहे हैं ।]

हिन्दू : भाइयो और बहिनो ! इस देश में हमारी संख्या सबसे अधिक है, इसलिए राज्य का अधिकार हम लोगों को ही मिलना चाहिए । हिन्दू और मुस्लिम दंगों में मुसलमानों का ही पक्ष लिया जाता है, बेचारे हिन्दू व्यर्थ में ही मारे जाते हैं । हिन्दू धर्म सबसे पुराना धर्म है, सबसे बड़ा धर्म है । इसमें वर्णाश्रम धर्म है, यह आर्यावर्त्त हमारा है, इसे कोई हमसे छीन नहीं सकता । हमारा अखंड हिन्दुस्तान है, हमारा सनातन धर्म है, राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ हमारा है, हिन्दू महासभा हमारी है, हम मुसलमानों को यहाँ नहीं रहने देंगे । बोलो, हिन्दू महासभा की जय !

निर्देशक : और दूसरी ओर—

मुसलमान : मेरे प्यारे दोस्तो ! क़दीम ज़माने से हमारी सल्तनत इस मुल्क में रही है । यह लाल क़िला, यह ताजमहल, यह फतेहपुर सीकरी, यह कुतुब मीनार हमारी इमारतें हैं । आज इस्लाम खतरे में है । हम अपनी सारी कुव्वत लगा देंगे लेकिन अपनी हुकूमत अपने हाथों से न जाने देंगे । अगर हमारे इस्लाम पर कोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमला होगा तो खून का दरिया बहा देंगे, काफिरों को जहन्नुम-रसीद करेंगे और देखेंगे कि इस मुल्क पर हमारी ही हुकूमत रहती है। क़ायदे-आज़म जिन्ना—ज़िन्दाबाद !

निर्देशक : और तीसरी ओर—

सिख : सत सिरी अकाल ! भाइयों दे विच एलान करदा हूँ कै जै हिन्दुस्तान को जीतने में अगर कोई फौज लड़ी ए तो वो सिक्खों दी फौज ए। दिल्ली शैर ते पिशौर नूँ हमारी फौज ने दुश्मनों दे छक्के छुड़ाये, अग्र मुसलमान लोग पाकिस्तान दे नारे बुलन्द करते हैं तो हमारा सिक्खिस्तान बनेगा।

निर्देशक : और इस तरह देश में भेद के जो बीज बो दिये गये थे उनका विष-वृक्ष शीघ्र ही फलता, लेकिन बापू ने जातीय एकता की भावना पर विशेष बल दिया। बापू ! तुमने हमारे देश की सभी विपत्तियाँ दूर कर दीं और उसे स्वतंत्रता प्रदान की। तुम आज हमारे बीच में नहीं हो, पर शरीर से मुक्त होकर साहस और तेज के रूप में तुम प्रत्येक देशवासी के मन में समाये हुए हो। कौन कहता है कि तुम संसार में नहीं रहे, तुम जन-मन में मुखरित होकर अजर हो, अमर हो। बापू ! देश का प्रत्येक जन तुम्हें 'बापू' नाम से पुकारता है, इस तरह तुम सच्चे अर्थ में राष्ट्रपिता हो।

राष्ट्रपिता ! आज तुम हमारा और सारे देश का प्रणाम स्वीकार करो !

[**यवनिका**]

●

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारी प्रकाशित अभिनव-नाट्यकृतियाँ

उदयशंकर भट्ट

क्रान्तिकारी	२-००
विद्रोहिणी अम्बा	२-००
सगर-विजय	१-२५
शक-विजय	२-२५
मुक्ति-दूत	२-००
एकला चलो रे	१-००
दाहर अथवा सिन्ध-पतन	२-००
नया समाज	१-५०
आदिम-युग तथा अन्य एकांकी	४-००
पर्दे के पीछे	३-००
कालिदास	२-००
विश्वामित्र : दो भाव-नाट्य	३-००
जवानी और छः एकांकी	२-५०
सात प्रहसन	२-५०
समस्या का अन्त	३-००
धूम-शिखा	२-५०

लक्ष्मी नारायण मिश्र

वितस्ता की लहरें	२-००
भगवान मनु तथा अन्य एकांकी	२-५०

विष्णु प्रभाकर

दस बजे रात	४-००

मामा बरेरकर

कोरी करामात	२-००
अ-पूर्व बंगाल	१-५०
कला के लिए	१-५०
भूमि कन्या-सीता	१-५०

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

विषपान	,,	२-००
स्वप्न-भंग	,,	२-००
उद्धार	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२-००
शपथ	,,	२-५०
छाया	,,	१-२५
बादलों के पार	,,	३-५०

जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'

समर्पण	२-००

देवराज 'दिनेश'

यशस्वी भोज	२-००
मानव-प्रताप	२-००
बिना बुलाए पंच	३-००

गोविन्द वल्लभ पन्त

सुजाता	१-५०
विष-कन्या	४-००

चतुरसेन शास्त्री

पग-ध्वनि	२-००

चिरंजीत

उसकी तस्वीर	१-५०
रंगा-रंग	२-००

कमलेश्वर

अधूरी आवाज	१-५०

कनाद ऋषि भटनागर

जनता का सेवक	२-००
हम एक हैं	१-५०

विनोद रस्तोगी

भगीरथ के बेटे	१-००
नए हाथ	२-५०

परितोष गार्गी

मोहिनी	१-५०
छलावा	३-००

आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-६